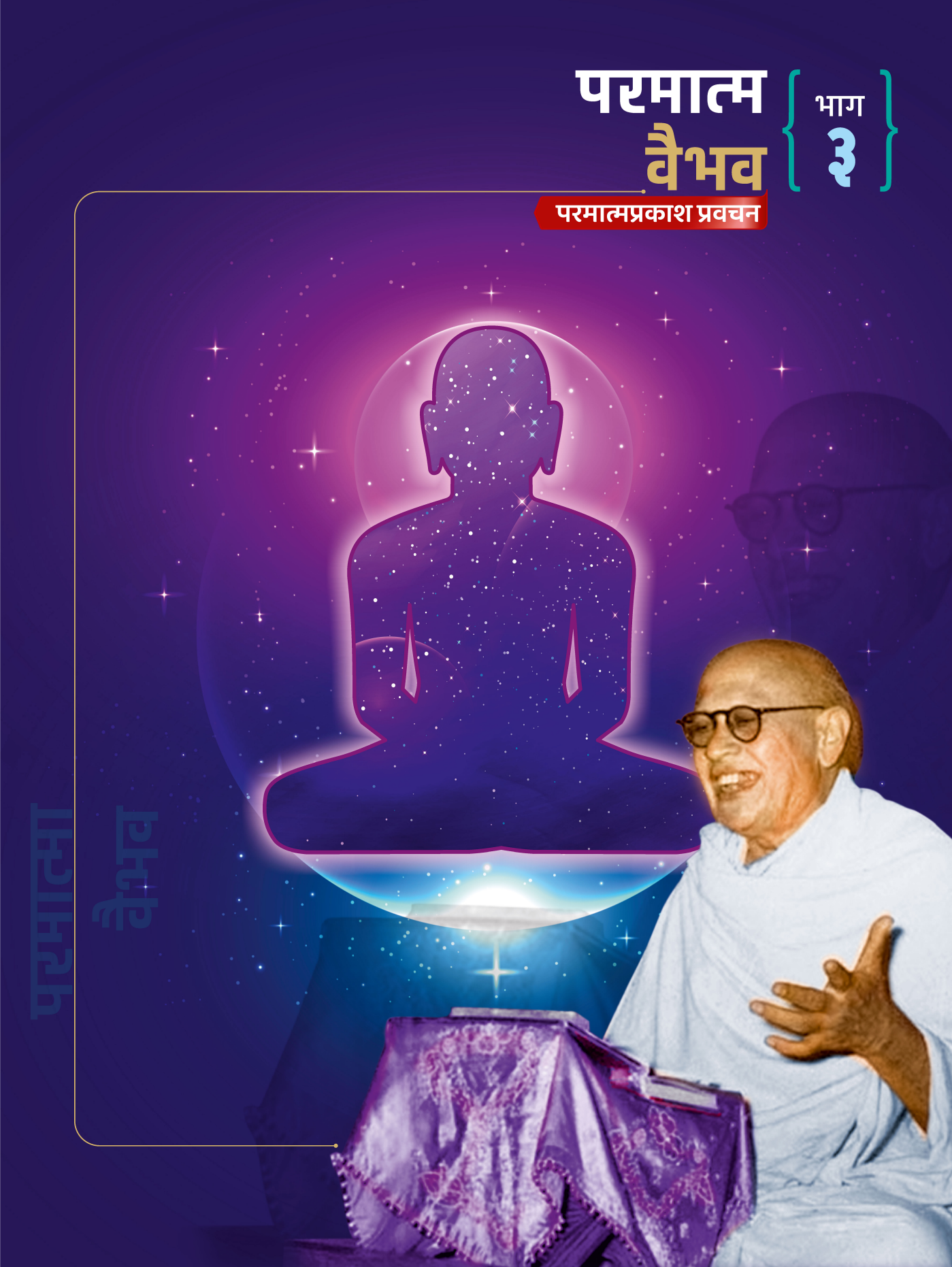
परमात्म वैभव

भाग ३

परमात्मप्रकाश प्रवचन



ॐ

परमात्मने नमः

परमात्म वैभव

(भाग - 3)

श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव प्रणीत श्री परमात्मप्रकाश परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ई.स. 1965-66 वर्ष के शब्दशः प्रवचन
प्रवचन क्रमांक 61-87, परमात्मप्रकाश प्रथम अधिकार
गाथा 92 से 123, द्वितीय अधिकार गाथा 1 से 22

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2081	वीर संवत 2551	ई. सन 2025

—: प्रकाशन :—

भगवान महावीर जयन्ती (चैत्र शुक्ल 13)

दिनांक 10 अप्रैल 2025

के पावन प्रसंग पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

ॐ

सहज चिदानन्द

प्रकाशकीय निवेदन

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकाशित हुए मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास देखने में आवे तो श्री योगीन्दुदेव ई.स. की छठवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने स्वयं की सातिशय अनुभव लेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की। आपश्री ने स्वानुभव दर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आपश्री ने स्वरूप की भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान और वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती है।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1100 के मध्य होने का माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढुंढारी में सुबोध टीका रची है। यह ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित हुआ है। आत्मा परमात्मा किस प्रकार हो, उसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन दृष्टिगोचर होता है। प्रथम अधिकार में भेदविवक्षा से आत्मा—बहिर्आत्मा, अन्तरआत्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, उसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्वप्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान शासन में अपने सबके परमतारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर

अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्रायः हुए अखण्ड मोक्षमार्ग को पुनः जागृत करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट करके प्रकाशित किया है। आपका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील बने हैं और पंचम काल के अन्त तक उनके द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से चलता रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन किये हैं। उनमें से एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के ऊपर प्रवचन ऑडियो में आज मौजूद है, वह सुनते हुए आपश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। आपश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप प्रकाशता तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपकी उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन इस वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलपना, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष लिया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार की संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों का हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वे अलौकिक हैं! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलाकर उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना या बोलना, वह सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। तथापि उनका अपार उपकार हृदयगत होने से शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से प्रस्फुटित हो उठते हैं। आपके उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से नहीं चुकाया जा सकता, मात्र आपके द्वारा प्रकाशित पंथ के ऊपर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झवेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं। तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके भी आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्य देशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी., वेवसाईट www.vitragvani.com, vitragvani app, vitragvani YouTube channel जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा किया गया है। इस कार्य के

पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ सामान्यजन लें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् जीवंत रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। इससे पूर्व ई.स. 1976-77 में हुए प्रवचन 'परमात्मप्रकाश प्रवचन, भाग 1 से 8' तक प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती भाषा में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य पूजा ईम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला, मुम्बई; श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड, मुम्बई, श्री अतुलभाई जैन, मलाड, मुम्बई द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। ट्रस्ट सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा जवाबदारीपूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक और उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-गुरु-शास्त्र से क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट का मुमुक्षुगण से अनुरोध है कि दृष्टिगोचर अशुद्धियों से हमें अवगत कराये, जिससे आगामी आवृत्ति में अपेक्षित सुधार किया जा सके।

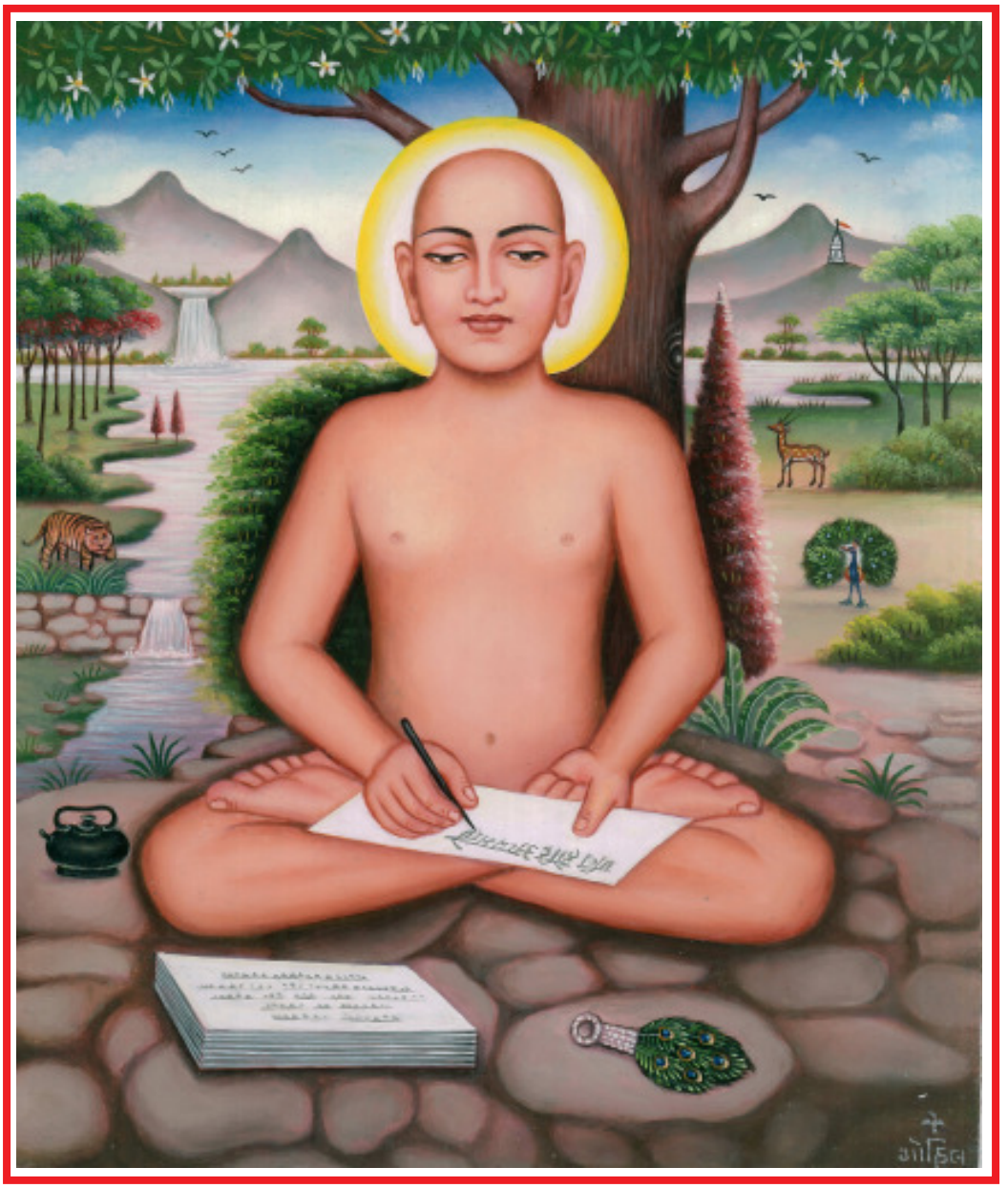
प्रस्तुत प्रवचनग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ सात भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। जिसका यह तीसरा भाग है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

इति शिवम्

ट्रस्टीगण
श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई



श्रीमद् भगवत् योगीन्दुदेव



अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से)

आत्मधर्म नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन

तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज

परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।

2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।

3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।

4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।

5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।

6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।

7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।

8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।

9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।

10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
६१	२७-११-१९६५	गाथा -९२ - ९३	००१
६२	२८-११-१९६५	गाथा - ९३ - ९४	०१७
६३	२९-११-१९६५	गाथा - ९५	०३४
६४	३०-११-१९६५	गाथा - ९६ - ९७	०५०
६५	०२-१२-१९६५	गाथा - ९७ से ९९	०६७
६६	०३-१२-१९६५	गाथा - ९९ - १००	०८४
६७	०४-१२-१९६५	गाथा - १०१ से १०३	१०१
६८	०५-१२-१९६५	गाथा - १०४ से १०६	११९
६९	०६-१२-१९६५	गाथा - १०६ से १०८	१३७
७०	०७-१२-१९६५	गाथा - १०९ से ११०	१५४
७१	०९-१२-१९६५	गाथा - ११० से ११२	१७२
७२	१०-१२-१९६५	गाथा - ११३ से ११४	१८९
७३	११-१२-१९६५	गाथा - ११५ - ११६	२०७
७४	१२-१२-१९६५	गाथा - ११७ - ११८	२२४
७५	१३-१२-१९६५	गाथा - ११९ से १२१	२३९
७६	१५-१२-१९६५	गाथा - १२१ - १२२	२५५
७७	१६-१२-१९६५	गाथा - १२२ - १२३	२७१
७८	१७-१२-१९६५	द्वितीय अधिकार, गाथा - १ से ४	२८६
७९	१८-१२-१९६५	गाथा - ४ से ६	३०५
८०	१९-१२-१९६५	गाथा - ७ - ८	३२४
८१	२०-१२-१९६५	गाथा - ८ - ९	३४१

८२	२१-१२-१९६५	गाथा - १० से १३	३५८
८३	२३-१२-१९६५	गाथा - १३ - १४	३७६
८४	२४-१२-१९६५	गाथा - १५ से १७	३९५
८५	२५-१२-१९६५	गाथा - १८ से १९	४१४
८६	२६-१२-१९६५	गाथा - १९	४३२
८७	२७-१२-१९६५	गाथा - २० से २२	४५२

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

परमात्म वैभव

(भाग-३)

(श्रीमद् योगीन्दुदेव विरचित श्री परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६५-६६ वर्ष के शब्दशः धारावाहिक प्रवचन)

मागसर शुक्ल ४, शनिवार, दिनांक - २७-११-१९६५
गाथा - ९२-९३ प्रवचन - ६१

गाथा - ९२

पहले भाग की ९२ गाथा। **आगे आत्मा का चेतनभाव वर्णन करते हैं:—** आत्मा का तो चेतनभाव, दर्शन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित चेतनभाव, वह आत्मा का है। समझ में आया? हें?

मुमुक्षु : परिणमित?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमित। आत्मा का चेतनाभाव है। वस्तु त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वरूप ऐसा आत्मा, उसकी पर्याय में जितना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चैतन्य के परिणामरूप से परिणमा वह चेतनभाव, वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त दूसरा, वह आत्मा नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है।

९२) पुण्णु वि पाउ वि कालु णहु धम्माधम्मु वि काउ।
एक्कु वि अप्पा होइ णवि मेल्लिवि चेयण-भाउ॥९२॥

क्या कहते हैं? **पुण्यरूप शुभकर्म...** यह सातावेदनीय आदि शुभकर्म जो बँधे

हुए जड़ हैं, वह आत्मपर्याय नहीं, वह आत्मभाव नहीं। आत्मद्रव्य नहीं, आत्मगुण नहीं और वह आत्मपर्याय नहीं। जड़ शुभ, अशुभकर्म। ऐसा **पापरूप अशुभकर्म...** जड़, वह कहीं आत्मपर्याय नहीं, आत्मभाव नहीं। **अतीत अनागत वर्तमान काल...** भूत, भविष्य, वर्तमान काल, लो! कि यह भूत, भविष्य, वर्तमान, वह तो परवस्तु है, वह कहीं आत्मभाव नहीं। **आकाश...** वह आत्मभाव नहीं। **धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य शरीर, इनमें से...** काय धर्म—अधर्मास्तिकाय है न? **इनमें से एक भी आत्मा नहीं है, 'चेतनभाव मुक्त्वा' चेतनभाव को छोड़कर अर्थात् एक चेतनभाव ही अपना है।** समझ में आया?

भावार्थ :- व्यवहारनयकर यद्यपि पुण्य, पापादि आत्मा से अभिन्न हैं,... एक कहे जाते हैं। यह कर्म आदि अभिन्न निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है न। इसलिए निमित्त सम्बन्ध से व्यवहार से चेतना के भाव हैं, ऐसा व्यवहार से, उपचार से, आरोप से कहा जाता है। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर भिन्न हैं,...** शुद्ध निश्चय से ज्ञानानन्दस्वभाव आत्मा का देखने से, परिणमन करने से वे आत्मा से भिन्न हैं। कहो, समझ में आया? **और त्यागनेयोग्य हैं,...** यह कर्म, काल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति आदि सब छोड़नेयोग्य है।

उन परभावों को मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणत हुआ... देखो! यह आकाश, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, पुण्य-पाप के भाव और पुण्य-पाप के कर्म इत्यादि सब। उस परभाव को... मिथ्यात्व परभाव है, वह आत्मा के भाव नहीं। **मिथ्यात्व, रागादिरूप परिणत हुआ...** ... यह पुण्य-पाप के भाव और पुण्य-पाप के कर्म, धर्मास्ति आदि और शरीरादि सब, काय, धर्मास्ति आदि काय, वह मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्वरूप से भ्रमणारूप से परिणमता हुआ, राग और द्वेषरूप हुआ, **बहिरात्मा (अपने) जानता है,...** समझ में आया? बहिर् बुद्धिवाला बहिर् भाव को अपने मानता है। मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : शरीर से तो धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी शरीर से कब धर्म होता था? राग से धर्म होता नहीं तो शरीर से कहाँ से होता था? समझ में आया? आयेगा अभी बाद में गाथा में।

और उन्हीं को पुण्य, पापादि समस्त संकल्प, विकल्परहित,... देखो! बहिरात्मा, आत्मा का ज्ञानानन्द, चिदानन्दस्वभाव के भानरहित और मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप होते हुए ऐसे परभाव को आत्मा का भाव है, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। असत्यदृष्टि,

पापदृष्टि ऐसा मानता है। परन्तु वे **पुण्य, पापादि समस्त संकल्प-विकल्परहित,...** वापस समस्त संकल्प-विकल्प। शुभ-अशुभ, संकल्प-विकल्प जो रागादि, उनसे रहित, **निज शुद्धात्मद्रव्य में...** निज शुद्धस्वरूप चिदानन्द महान पदार्थ भगवान एक समय में **शुद्धात्मद्रव्य में सम्यक् श्रद्धान...** उसका सम्यक् श्रद्धान, वह परिणाम चैतन्यभाव जीव के हैं। समझ में आया?

शुभ-अशुभराग, कर्म, धर्मास्ति, कालादि से रहित भगवान शुद्धात्मपदार्थ, शुद्धात्मद्रव्य जो ध्रुव कहा था वह, ऐसे द्रव्य की। शुद्ध वस्तु त्रिकाल चैतन्य रत्नाकर से भरपूर भगवान, समझ में आया? अनन्त-अनन्त जीवत्वशक्ति, ज्ञानशक्ति, आनन्दशक्ति आदि अनन्त चैतन्य रत्नाकर के स्वभाव से भरपूर शुद्धात्मा की श्रद्धा, उसकी निर्विकल्प श्रद्धा। ऐसे आत्मा का ज्ञान। ऐसा निजशुद्धात्मा, उसका ज्ञान, उसका ज्ञान। ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, निजशुद्धात्मा का ज्ञान, और उसका चारित्र। सूक्ष्म बात है, भाई! परमात्मद्रव्य की बात है न यह। अन्दर स्वरूप में शुद्ध पदार्थ के सन्मुख का रागरहित सम्यग्दर्शन का परिणमन, रागरहित शुद्धात्मा का ज्ञान, रागरहित शुद्धात्मा में स्थिरतारूप चारित्र, ऐसा **अभेदरत्नत्रयस्वरूप परमसमाधि में तिष्ठता...** समझ में आया? उसमें ऐसा कहा था कि आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द शुद्धात्म वस्तु में वह पुण्य-पाप के भाव, पुण्य-पाप के कर्म, (उन्हें) मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा 'वे मेरे हैं' ऐसा मानता है। सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी, सम्यक्चारित्र में स्थिर वह शुद्धात्मा द्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान में स्थिर उस (पर) वस्तु को अपनी मानता नहीं। समझ में आया?

तिष्ठता सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धात्मा से जुदे जानता है। शुद्धात्मा के भाव से वह चीज़ भिन्न है, वह शुद्धात्मा का भाव नहीं। संकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप के भावकर्म आदि शुद्धात्मा की पर्याय—भाव नहीं। शुद्ध ध्रुव ऐसा परमात्मा, स्वयं परमात्मा। परमात्मा की व्याख्या है न यह! ऐसा परमात्मा जिसमें अनन्त-अनन्त बेहद जीवत्व चैतन्यशक्तिरूप रत्नाकर से भरपूर भगवान है। ऐसा अनन्त-अनन्त चिद्-ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सुख, वीर्य आदि चैतन्यरत्नाकर से भरपूर आत्मा है। ऐसा जो आत्मा का शुद्धात्मद्रव्यस्वरूप, उसकी अन्तर में निर्विकल्प अनुभव में सम्यग्दर्शन होने से और उसका—आत्मा का ज्ञान होकर, आत्मा की स्थिरता हुई, उसमें ... उसमें परिणमता आत्मा अपने मानता

नहीं, अर्थात् पृथक् पड़ गये हैं। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? बहुत बड़ी बातें मानो इसमें। कहो, भीखाभाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा जो परमात्मा स्वयं ही वस्तु... वस्तु... वस्तु। उस परमात्मा से बहिर् जिसकी दृष्टि है, वह बाह्यदृष्टि अर्थात् मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा, वह शुभ-अशुभराग, शुभाशुभ कर्म, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल को अपना मानता है। शुद्धात्मद्रव्य परमात्मस्वरूप उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति—निर्मल पर्याय, उस निर्मल अवस्थारूप से परिणमता, रहता हुआ आत्मा, वह पुण्य-पाप, संकल्प-विकल्प आदि को अपने जानता नहीं। समझ में आया? **शुद्धात्मा से जुदे जानता है।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संकल्प-विकल्प विकार है, इसकी निर्मल पर्याय नहीं। कहते हैं न संकल्प, विकल्प वह विकारीदशा, वह आत्म द्रव्य-गुण की पर्याय नहीं। आत्म द्रव्य शुद्ध है, उसके गुण शुद्ध हैं, उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उसकी पर्याय शुद्ध है, वह उसकी पर्याय है। उस पर्याय में संकल्प, विकल्प को अपने मानना और उस निर्मल पर्याय को भूल जाना, प्रगट न होना और इसे मानना, उसका नाम मिथ्यादृष्टि है। गजब बात! कहो, जमुभाई! चैतन्यभाव, वह आत्मा है, यहाँ यह सिद्ध करना है। यह पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर, वह चेतनभाव नहीं; वह अचेतनभाव है। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्यसूर्य भगवान परमात्मा स्वयं चैतन्यप्रकाश अर्थात् तेज-नूर ऐसा जो आत्मस्वरूप, उसका चैतन्यभाव, उसके चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की स्थिरता अंश, वह चैतन्य की पर्याय कहो या वह चैतन्य का भाव कहो। यह संकल्प, विकल्प, वे चैतन्यभाव नहीं, वे तो अचेतनभाव हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में। यह पर्याय ऐसे हुई, तब यह भिन्न है, ऐसा ज्ञात होता है, ऐसा। संकल्प, विकल्प भले थोड़े हों थोड़े, परन्तु वे भिन्न हैं, एक में इसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह ९२ गाथा हुई। कहो, समझ में आया या नहीं?

बराबर नहीं। भाई पूछिये नहीं, नहीं पूछिये। अब एक यह पाव घण्टे में बात की, दो मिनिट में कैसे जवाब देना?

यह बात की नहीं? ऐसी सीधी बात है या नहीं? यह वस्तु है या नहीं आत्मा? पदार्थ है या नहीं? महान गुण का पिण्ड वह है या नहीं? समझ में आया? अनन्त, एक-एक गुण की अनन्त सामर्थ्य शक्तिवाला, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप, वह शुद्धात्मा है। ऐसा शुद्धात्मा, उसकी पर्याय में पर को राग, द्वेष, पुण्य-पाप को अपने माने तो वह बहिरात्मा है। क्योंकि निर्मल पर्याय उसकी होती है। मलिन पर्याय और कर्म उसके नहीं होते। समझ में आया? आहाहा! तब वह पर को पर भिन्न कौन मान सके? पर को, संकल्प, विकल्प को, कर्म को भिन्न कौन माने? कि उनसे भिन्न पड़ा हुआ चिदानन्द वस्तु की श्रद्धा, ज्ञान की रमणता के परिणमन में रहा हुआ वह समाधिस्थ अथवा सम्यग्दृष्टि जीव अर्थात् अन्तरात्मा, परिणमन हुआ अन्तरात्मा उन्हें भिन्न जानता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : बातें करने की यह बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बातें करे क्या? बात किसके साथ करे, बात करे कौन? बात वाणी में जाये, जड़ में, संकल्प-विकल्प जड़ में जाये, वहाँ वाणी का क्या कहना? आहाहा! समझ में आया?

यह बात बहिरात्मा, अन्तरात्मा तीन प्रकार का कथन कहा, लो।

★ ★ ★

गाथा - ९३

ऐसे बहिरात्मा परमात्मारूप तीन प्रकार के आत्मा का जिसमें कथन है, ऐसे पहले अधिकार में मिथ्यादृष्टि की भावना से रहित जो सम्यग्दृष्टि की भावना उसकी मुख्यता से आठ दोहा-सूत्र कहे। आगे भेदविज्ञान की मुख्यता से 'अप्पा संजमु' इत्यादि इकतीस दोहापर्यन्त क्षेपक-सूत्रों को छोड़कर पहला अधिकार पूर्ण करते हुए व्याख्यान करते हैं, उसमें भी जो शिष्य ने प्रश्न किया कि यदि पुण्य-पापादिरूप

आत्मा नहीं है, तो कैसा है ? ऐसे प्रश्न का श्रीगुरु समाधान करते हैं। देखो ! यह इस प्रकार से सम्बन्ध किया कि शिष्य को प्रश्न उठा कि प्रभु ! यह संकल्प, विकल्प, मन, वाणी, कर्म, शरीर, वे आत्मा नहीं तो आत्मा है कौन ? आप किसे आत्मा कहते हो ? ऐसा शिष्य का (प्रश्न है कि) प्रभु ! आप आत्मा किसे कहते हो ? इन्हें आत्मा नहीं तो और आत्मा दूसरा कौनसा होगा ? यह सब नहीं, यह सब नहीं, तब और कौनसा आत्मा ? उसके उत्तर में गुरु कहते हैं।

९३) अप्पा संजमु सीलु तउ अप्पा दंसणु णाणु।
अप्पा सासय-मोक्ख-पउ जाणंतउ अप्पाणु॥ ९३॥

शब्दार्थ :- 'आत्मा' निज गुण-पर्याय का धारक ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ही... देखो ! क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञान-आनन्दस्वरूप जो प्रभु वह स्वयं अपने निज गुण का परिणमन, निर्मल परिणमन। समझ में आया ? आत्मा अनन्त गुण का रूप, उसका श्रद्धागुण का सम्यक् परिणमन, ज्ञानगुण का सम्यक् परिणमन, चारित्रगुण का सम्यक् परिणमन, आनन्दगुण का आनन्दरूप परिणमन, ऐसे निज गुण-पर्याय का धारक, **ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ही संयम है,...** आहाहा ! देखो ! कथन पद्धति तो देखो !

द्रव्य परमात्मा, परन्तु वह द्रव्य परमात्मा स्वयं जैसे उसके गुण हैं अन्दर त्रिकाल ज्ञानगुण का सम्यक् ज्ञानरूप से परिणमन पर्याय में होना। श्रद्धागुण का पर्याय में सम्यक् श्रद्धारूप से परिणमन होना, आनन्दगुण का पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्दरूप से प्रगट परिणमन होना, चारित्रगुण का पर्याय में शान्ति-स्थिरतारूप से परिणमन होना। ऐसा निज गुण-पर्याय का धारक ज्ञानस्वरूप चिदानन्द ही संयम है। वह परिणाम जो निर्मल हुए, वह संयम है। आहाहा ! उसकी व्याख्या करेंगे, हों ! पाठ में निश्चय की बात है। टीका में उसका साधनपना निमित्त का व्यवहार से बतायेंगे। उसमें बड़ी गड़बड़ उठती है। अरे ! भगवान ! क्या करता है ? प्रभु ! तेरे पास महान पदार्थ महा आनन्दचक्र, चक्रवर्ती के निधान कम हों, परन्तु यह कम हो ऐसा नहीं। आहाहा ! ऐसे अनन्त गुण का भण्डार ऐसा भगवान अपने आत्मा की ओर के श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति के परिणामरूप परिणमता यह आत्मा ही संयम है। समझ में आया ? उसे संयम कहा जाता है।

उसे **शील है, तप है,...** (ऐसा) कहा जाता है। आत्मा ही अपने शुद्ध गुण का

पिण्ड प्रभु, शुद्धरूप से परिणमन की दशा (रूप से परिणमे), उस दशा को शील, तप और शील कहा जाता है। इसका नाम शील और तप है। आहाहा! समझ में आया? और **आत्मा दर्शन-ज्ञान है,...** भगवान आत्मा अपना निर्विकल्प सम्यग्दर्शनरूपी परिणमन होना, दर्शनगुण है, उसका पर्यायरूप से सम्यक् दर्शन, चैतन्य निश्चय सम्यक्रूप से परिणमन होना, वह सम्यग्दर्शन, वह आत्मा है। समझ में आया? और स्वसंवेदन वीतरागी आत्मा का ज्ञान, वह आत्मा है। आहाहा! बहुत बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न। वाचक है, वह वाच्य को तो समझावे न। आहाहा!

यह **आत्मा दर्शन-ज्ञान है, और 'आत्मानम् जानन्' अपने को जानता अनुभवता हुआ...** देखो! यह सब निर्मल जो पर्याय कही, किसकी? संयम की, शील की, तप की, दर्शन की, ज्ञान की, वह **अपने को जानता अनुभवता हुआ आत्मा...** अपनी पर्याय में आत्मा को जानता हुआ, अनुभवता हुआ वह **आत्मा अविनाशी सुख का स्थान मोक्ष का मार्ग है।** समझ में आया? इसके दो, तीन अर्थ किये हैं अन्दर। है न? **'सासय-मोक्ख'**। इसके दो अर्थ—शाश्वत् मोक्ष, शाश्वत् मोक्ष का मार्ग और शाश्वत् सुख, ऐसे तीन अर्थ किये हैं। है न संस्कृत में? **'मोक्षपदं। अथवा पाठान्तरं सासयमुक्खपहुं शाश्वतमोक्षस्य पन्था मार्गाः, अथवा सासयसुक्खपउ'** सुखपद। ऐसे तीन अर्थ हैं। धीरे से कहेंगे। देखो! सुनो! कहो, समझ में आया इसमें? क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध वस्तु ध्रुव, वह स्वयं ही शुद्धरूप से वर्तमान परिणमता अविनाशी सुख का स्थान ऐसे मोक्ष का मार्ग स्वयं आत्मा ही है। मोक्षपर्यायरूप से भी आत्मा है और मोक्ष के मार्गरूप से भी आत्मा ही है और आनन्द के थोकरूप, शाश्वत् सुख के परिणमनरूप आनन्द भी वह आत्मा ही है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... वह स्वयं ही पूर्ण आनन्द की पर्यायरूप से परिणमता स्वयं ही शाश्वत् मोक्षरूप है। ऐसा आत्मा ही स्वयं शुद्धरूप से परिणमता, मोक्ष के मार्गरूप से परिणमता, वह आत्मा ही मोक्षमार्ग है, आत्मा ही मोक्षमार्ग है और आत्मा ही शाश्वत् आनन्दरूप है। समझ में आया? उस आनन्द के परिणाम से परिणमता अतीन्द्रिय आनन्दरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द से परिणमता हुआ स्वयं ही आनन्दरूप

वह आत्मा है। आहाहा! गजब भाई आत्मा! यह सब मकान, शरीर और यह सब कहाँ गये? जेचन्दभाई! यह शरीर नहीं चलता तब उकताहट (आती है)। कहाँ गया? नहीं यह तो ऐसा कहते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी नहीं, ऐसा है, ऐसा है, ऐसा कहा है यहाँ। ऐसा है, ऐसा उसे जानने में आता नहीं। दूसरे प्रकार से जानने में आता है मूढ़ को, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा शाश्वत् मोक्षपद, मोक्ष का मार्ग स्वयं ही है। आहाहा! शुद्ध अखण्डानन्द प्रभु अपने आश्रय में लीन होता सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति से परिणमता भगवान आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। मोक्षमार्ग कोई दूसरा नहीं। कहो, इसमें राग को, पुण्य को, विकल्प को मोक्षमार्ग नहीं कहा।

अब टीकाकार थोड़ा साधन का निमित्तपना सिद्ध करेंगे। १७२वीं गाथा में आवे न? १७२ गाथा में वीतरागभाव ही तात्पर्य आता है न? तथापि यह अमृतचन्द्राचार्य उसे—व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को अविरोधपने कैसे होता है, उसका वहाँ अन्दर किया है। ऐसा यहाँ भी (कहते हैं)। यह सब शैली मूल तो समयसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार और उसकी टीका अमृतचन्द्राचार्य की गजब की अलौकिक बात! यह सब आत्मा थे, हों! वे कोई परमेश्वर—परमात्मा नहीं हो गये थे। ऐसे आत्माओं को यह सब रचनाओं का विकल्प था और यह रचा गया, वह तो परमाणु की पर्याय है। पीछे कहते हैं कि यह विकल्प और यह (रचना) हम नहीं। हम विकल्प में आये नहीं और हम वाणी में, शास्त्र रचना में हम नहीं आये। आहाहा! हम तो हमारे शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की रचना में हम आये हैं। समझ में आया?

बात यह है कि यह शुद्ध आत्मपदार्थ कैसा है, उसकी इसे खबर नहीं। यह तो ऐसे साधारण आत्मा अर्थात् कुछ (नहीं), भिखारी की भाँति रंक। कीमत तो कुछ हीरा की कीमत, उसकी तो कुछ नहीं होती। आहाहा! पाँच, दस लाख का एक हीरा मिला हो तो कहे, आहाहा! तीन लाख का मुकुट तो भगवान के सिर पर वहाँ है न वहाँ पालीताणा। वे कहे, देखने आओ। हम गये थे (संवत्) १९९५ में। अब देखा कहा।

हार और क्या सिर पर है ? ऊपर था तो नीचे उतारा। ... साथ में थे न। उसके नौकर थे। तीन लाख का सिर पर मुकुट। अब उसकी इसे कीमत, (परन्तु) यह देखनेवाला कौन है, उसकी खबर इसे नहीं। इसे तो ऐसे देख-देखकर ऐसे टग टग देखा करे ऐसा। आहाहा! यहाँ लाल मणि है और यहाँ यह मणि है और पीली मणि है, ढींकणी मणि है। तीन लाख, तब तीन लाख थे ९५ में, हों! लो! कितने वर्ष हो गये ? २७ वर्ष। पौष में गये थे, ९५ का पौष महीना, मेरु तेरस को वहाँ थे। मेरु तेरस आती है न ? आती है। तुम थे ? नहीं थे। मेरु करते हैं, तीन मेरु करे। नहीं ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मेरु तब वहाँ ... कहो, समझ में आया ? यह उसमें माल नहीं, कहते हैं वहाँ मुकुट में और धूल में। इस भगवान को देखने के लिये निवृत्त हुआ नहीं कभी। यह वह कौन है परन्तु यह ? समझ में आया ? स्वयं तीन लोक का नाथ बादशाह आहाहा! तीन काल, तीन लोक को एक समय में समाहित कर दे, ऐसा आत्मा, अब उस आत्मा की इसे खबर नहीं होती।

भावार्थ : कहते हैं, अब व्याख्या पहले से करते हैं संयम की। संयम लिया है न, आत्मा वह संयम, ऐसा कहा था न ? **पाँच इन्द्रियाँ,...** पाँच इन्द्रियाँ और मन का रोकना, पाँच इन्द्रियाँ और मन का रोकना, वह विकल्प शुभ। **छह काय के जीवों की दयास्वरूप...** वह विकल्प शुभराग। वह **इन्द्रियसंयम तथा प्राणसंयम इन दोनों के बल से...** अर्थात् विकल्प का निमित्त, उसके बल से, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। ऐई! उसके बल से कहा, लो! वह तो यह बल कहलाता है। '**संयमबलेन साध्यसाधकभावेन**' ऐसा। व्यवहारनय से उसका बल, ऐसा कहा गया है। यह तो प्रवचनसार में नहीं आया ? पंचाचार, नहीं ? तेरे प्रताप से। वह सब ऐसे ही आवे कथन। अरे! भगवान! शुभ निमित्त से कथन है यह।

आत्मा में बाह्य विकल्परूप पाँच इन्द्रियों का संयम, मन का संयम, छह काय जीव की दयारूपी शुभ विकल्परूप संयम। **ऐसे इन्द्रियसंयम तथा प्राणसंयम इन दोनों के बल से...** अर्थात् शुभ विकल्प। वह साधक और साध्य मात्र **निश्चय से अपने शुद्धात्मस्वरूप में स्थिर होने से...** वह तो विकल्प तो एक साधनरूप से व्यवहार कहा,

परन्तु स्वरूप में, आनन्द में स्थिर होना, आत्मा के अतीन्द्रिय शान्तरस में स्थिर होना, उसे निश्चयसंयम कहते हैं। वह व्यवहारसंयम विकल्प, निश्चयसंयम आत्मा की दशा। आत्मा संयम कहना है न यहाँ। वह (शुभराग) आत्मसंयम नहीं। समझ में आया? कथन तो... वह वस्तु आती है न, होती है न। उस भूमिका के प्रमाण में पाँच इन्द्रिय, छठवाँ मन, छह काय, बारह असंयम, बारह असंयम है न। संयम की व्याख्या है न। बारह असंयम का त्यागरूप विकल्प, शुभराग उसकी भूमिका में, उसमें से हटकर शुद्ध भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु में संयम सम्यक् प्रकार से अतीन्द्रियरूपी परिणमन दशा होना, उसे आत्मसंयम, निश्चयसंयम, उसे अभ्यन्तर संयम कहते हैं। उसे छह काय आदि के विकल्प को बाह्य संयम, व्यवहार संयम कहते हैं। उस निमित्त के बल से, ऐसा यहाँ समझाया है। समझ में आया? बल तो अपने शुद्ध उपादान के परिणमन से परिणम रहा है। आहाहा! समझ में आया?

शुद्ध आत्मा चिदानन्दमूर्ति, शुद्ध उपादान, अन्तर के उपादान के अवलम्बन से शुद्धरूप से संयम, सम्यक् प्रकार से इन्द्रियदमन, अतीन्द्रिय आदि का परिणमन अन्तर में अन्तर अवलम्बन से हुआ, वही संयम और वही आत्मा। वह आत्मा उसे यह संयम कहा जाता है। परन्तु उसे पाँच इन्द्रिय आदि का विकल्प जो संयम का था, छोड़ने का, उस विकल्प को साधक, व्यवहार साधक, निमित्त साधन कहा जाता है। समझ में आया? वापस यह व्यवहारसंयम छठवें में और वह निश्चयसंयम आगे, ऐसा नहीं। वह तो एक समय में निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में होते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु, वह अपने में सम्यक् प्रकार से परिणमन यमरूप से परिणमता, निश्चय यम—सम्यक् प्रकार से शुद्धात्मस्वरूप में परिणमता वह आत्मा ही निश्चयसंयम है। उसमें वह विकल्प भी साथ में व्यवहार था, उसे साधक गिनकर उसे निमित्त कहा गया है। व्यवहार साधक कहकर निमित्त कहा गया है। समझ में आया? 'प्रभु का मारग है शूरों का कायर का नहीं काम' यह कायर का वहाँ काम नहीं। आहाहा! भगवान चैतन्यबिम्ब महा अनन्त गुण का मेरु, जिसके एक स्वभाव के एक-एक शक्ति के समक्ष महा समुद्र खाली हो, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। सब ज्ञात हो जाये, सब ज्ञात हो जाये तीन काल—तीन लोक ज्ञात हो। ऐसा भगवान

पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अन्तर्मुख का सम्यक् प्रकार से परिणमन हो जाना, उसे आत्मसंयम अथवा वह आत्मा का संयम कहा जाता है। और वह विकल्प है, वह आत्मसंयम नहीं। गजब बात, भाई! वह अनात्मरूप राग है शुभराग, परन्तु उसे अनुकूल निमित्त व्यवहार से गिनकर, व्यवहार से अनुकूल निमित्त गिनकर उसे साधकरूप से कहा गया है। वस्तु ऐसी है, आगे-पीछे करे तो वस्तु में नहीं आवे। समझ में आया?

साध्य-साधक कहा है न, साध्य-साधक भावकर। है न? '**साध्यसाधकभावेन निश्चयेन स्वशुद्धात्मनि संयमनात्**' '**संयमनात्**' स्वयं संयमरूप से परिणमता हुआ। आहाहा! वस्तु भगवान अनन्त गुणरूप पिण्ड का परिणमन, गुण का परिणमनरूप से परिणमना, ऐसी दशा को आत्मसंयम कहा जाता है। वह संयम, वह मोक्ष का मार्ग है। सब पर्याय को इकट्ठी करके फिर मोक्षमार्ग वह आत्मा है, ऐसा कहेंगे। गजब बात, भाई! अध्यात्म की बात मूल निश्चय सत्य बात। कभी इसे परिचय नहीं, कभी इसका माहात्म्य नहीं होता। कौन हूँ मैं? मैं कौन हूँ? श्रीमद् ने कहा न पहले, नहीं?

मैं कौन हूँ, आया कहाँ से, और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है, स्वीकृत करूँ परिहार क्या?
इसका विचार विवेकपूर्वक शान्त होकर कीजिये,
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के सिद्धान्त का रस पीजिये।

कहो, यह सोलह वर्ष की उम्र में आत्म-विवेक की बात करते हैं। समझ में आया? कहो, जमुभाई! हो सकता होगा, तब है या हुए बिना कहते होंगे? उम्र की उसे जरूरत नहीं। शरीर कितना बड़ा, किस जाति में जन्मा, किस वेश में रहा, इसकी उसे जरूरत नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु को अवलम्बती दृष्टि, उसे अवलम्बता ज्ञान, उसे अवलम्बती स्थिरता, वह आत्मा है। वह आत्मा संयम है, दूसरा कोई संयम-बंयम बाहर में रहता नहीं। राग में आत्मा नहीं तो और बाहर में आत्मा कहाँ आया। जो यहाँ व्यवहारसंयम कहा, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'**अप्पा संजमु**' ऐसा शब्द उठाया है न आचार्य ने तो। परन्तु वहाँ ऐसा एक निमित्त, भगवान सर्वज्ञ ने कहे हुए छह काय के जीव। छह काय के जीव अन्यत्र होते हैं कहीं? इसलिए छह काय को नहीं मारने का विकल्प दया का और पाँच इन्द्रिय और

मन, फिर वह वस्तु भी ऐसी वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं होती। पाँच इन्द्रियाँ और छठवाँ मन जो ऐसे वस्तु है, उसकी ओर का विकल्प संयम का, वह शुभरागरूपी व्यवहारसंयम, ऐसी भूमिका का ज्ञान कराया। उससे रहित स्वभाव में स्थिर हुआ, (ऐसी) उसकी अन्तर की दशा, वह निश्चयसंयम है। वह निश्चयसंयम मोक्ष का मार्ग है। विकल्प को व्यवहारमोक्षमार्ग कहना, परन्तु है वह बन्ध का मार्ग। समझ में आया? अब उसमें से यह सब निकालना कहाँ से इसमें? ऐई नेमिदासभाई! इसमें तो बल कहा है, लो! पढ़ो संस्कृतवाले। करो व्याकरणवाले अर्थ। बापू! वह तो निमित्त की वहाँ ऐसी ही व्यवहार से अनुकूलता थी, ऐसा बताया है, भाई! निश्चय से तो प्रतिकूलता है। कहो, आत्मा को संयम कहा है, देखा न!

निश्चय से अपने शुद्धात्मस्वरूप में स्थिर होने से आत्मा को संयम कहा गया है,... लो! यह विकल्प है, उससे हटकर स्वरूप में जो स्थिर हुआ है, उसे आत्मा कहा गया है, वह आत्मा संयम कहा गया है, ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की मेहरबानी है अन्दर में, आत्मा की मेहरबानी सबमें पड़ी है। नहीं कहाँ पड़ी? समझ में आया? आहाहा! एक बात की, क्या एक की? '**अप्पा संजमु**' पहला बोल कहा न, उसकी व्याख्या हुई।

अब '**अप्पा सीलु**' **बहिरंग सहकारी निश्चय शील का कारणरूप...** बहिरंग सहकारी इतना एक ओर, एक शब्द। निश्चय शील के कारणरूप वह बहिरंग सहकारी कारणरूप, ऐसा। निश्चय शील अर्थात् आत्मा के परिणाम शुद्ध जो '**अप्पा सीलु**' आत्मा शील शुद्धस्वभाव से परिणमन, आत्मा का शीलस्वभाव। आत्मा शुद्ध द्रव्य वस्तु, उसका गुण शुद्ध, उसका शुद्धरूप से शुद्ध के स्वभावरूप से, वीतरागी परिणमनरूप से परिणमना, ऐसा आत्मा का शील है, वह आत्मा शील है। उसे बहिरंग निमित्त कारण... बहिरंग सहकारी है न, ऐसा शब्द है, देखो! सहकारी शब्द में है न अन्दर में? बहिरंग सहकारी, देखो! मुझे दूसरा कहना है कि साथ में है, ऐसा कहना है। भले उसमें भाई ऐसा लिया, परन्तु यहाँ सहकारी साथ-साथ में ऐसा करके सबमें सहकारी ले लेना, ऐसा वापस, टीका ऐसी की है। समझ में आया?

भले वहाँ '**बलेन**' शब्द प्रयोग किया, परन्तु आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव ऐसे रूप से परिणमता हुआ उसे बहिरंग साधन जो इन्द्रिय, मन और छह काय की (अहिंसा), बारह अव्रत के (त्यागरूप) संयम का विकल्प, वह भी बहिरंग सहकारी है, वर्तमान बहिरंग सहकारी है। पहला यह व्यवहार और फिर निश्चय, ऐसा नहीं। सहकारी में से बात उड़ जाती है। समझ में आया? पुस्तक है? घर की रखी है? ऐसा, ठीक। अच्छी बात है। पिता ने रखी है? ठीक। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कहते हैं कि शील किसे कहना? कि भगवान आत्मा जो निश्चय शील, निश्चय शील, सत्य शील। निश्चय शील अर्थात् सत्य शील जो शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव, शुद्ध निर्विकल्प वीतराग पिण्ड प्रभु आत्मा, वह वीतरागी पर्यायरूप से परिणमे, ऐसा जो वीतराग शीलस्वभाव, वह निश्चय शीलस्वभाव, वह सत्य शीलस्वभाव। उसे बहिरंग सहकारी उसी काल में बाहर एक विकल्प साथ में है।

जो काम क्रोधादि के त्यागरूप व्रत की रक्षा वह व्यवहार शील है,... यह व्रत की रक्षा का विकल्प। समझ में आया? अहिंसा आदि जो सत्य आदि व्रत, उनका विकल्प, शुभराग, उसे व्यवहारशील कहा जाता है। काम, क्रोधादि छोड़ना, आदि छोड़ना। विकल्प है न, उस विकल्प को व्यवहारशील कहा जाता है। वह व्यवहारशील आत्मा के निश्चय स्वभाव के शील के साथ बहिरंग सहकार; सहकार अर्थात् निमित्तरूप से साथ में है, बहिरंग साथ में है, अन्तरंग में वह नहीं। है अन्दर पाठ, देखो! '**बहिरंगसहकारिकारणभूतेन कामक्रोधविवर्जनलक्षणेन**' यह तीव्र काम, क्रोधादि छूटे हैं न। तीव्र अशुद्ध परिणाम छूटे, तीव्र विकारस्वभाव। शील लेना है न? तीव्र अशुभ विकारशील है, वह छूटा। मन्द विकाररूपी कषाय का शील रहा, वह बहिरंग सहकारी कहा जाता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा स्वयं शुद्ध वस्तु पदार्थ महान, उसके अवलम्बन में उसे आश्रय का जो शुद्धस्वभाव का परिणमनशील, शुद्धस्वभाव वीतराग परिणमनशील, वह अभ्यन्तर, अभ्यन्तर अंग निश्चय-सत्य शील। सत्य शील, वह आत्मशील। उसके साथ जो यह पाँच काम, क्रोधादि अशुभ तीव्र का नहीं, यह तीव्र नहीं, ऐसा जो अन्दर मन्द का विकल्प, वह बहिरंग सहकारी शील निमित्तरूप से साथ में कहा जाता है। कहो, धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस कारण का अर्थ एक उपचारी कारण और एक यथार्थ कारण। ....कारण आया न, (ऐसा) कहते हैं। बहिरंग सहकार—साथ में रहा हुआ कारण। ठीक। समझ में आया? एक अभ्यन्तर कारण और एक बाह्य साथ में रहा हुआ कारण। ठीक। एक व्यवहारकारण और एक निश्चयकारण। आहाहा!

शील स्वभाव, शील स्वभाव, भगवान आत्मा का अकषायस्वभाव, भगवान आत्मा द्रव्य का वीतरागस्वभाव, वस्तु वीतरागस्वभाव, वस्तु अकषाय निर्दोष वस्तुस्वभाव, उसके परिणमन में, उसके अवलम्बन से निर्दोष वीतरागी शील स्वभाव से (परिणमे), वह अभ्यन्तर, अभ्यन्तर आत्मस्वभाव शील, वह आत्मशील, वह आत्मशील, वह परिणाम, वह आत्मशील। उसके साथ रहा हुआ तीव्र अशुभ के त्यागरूप विकल्प जो उठा काम, क्रोध का भोग नहीं, यह नहीं, यह नहीं—ऐसा जो शुभ विकल्प, वह राग की मन्दतारूप व्यवहार शील, व्यवहार शील, वह निश्चय शील के साथ बहिरंग सहकारी निमित्तरूप कारण गिनने में आया है। अरे... भगवान! जैसा है, वैसा उसे न जाने और आड़ा-टेढ़ा काटे। कहो, समझ में आया? कहाँ गया? रमेश कहाँ गया? ठीक। कहो, समझ में आया इसमें?

शील के दो प्रकार—एक निश्चयशील, एक व्यवहारशील। निश्चयशील, वह आत्मा। आत्मा अर्थात् वह पर्याय आत्मा, हों! वीतरागस्वभावी शुद्ध त्रिकाल, वह तो द्रव्य आत्मा, वस्तु आत्मा, उसके सन्मुख का अरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का शील स्वभाव प्रगट हुआ, वह पर्यायरूपी शील आत्मा। पर्यायरूपी शील आत्मा। द्रव्यरूपी शील आत्मा तो त्रिकाली। समझ में आया? वह त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वभाव, वह तो त्रिकाली वस्तु। मेरु वज्र स्तम्भ, उसमें एकाकार होकर झरना झरा। अरागी श्रद्धा, ज्ञान का स्वभाव शुद्ध प्रगट हुआ, वह आत्मशील, आत्मा की पर्यायरूपी आत्मशील, उसके साथ काम, क्रोधादि अशुभभाव का त्याग और शुभराग का उत्पन्न होना, उसे बहिरंग साथ में रहा हुआ कारण-निमित्तरूपी कारण गिनकर, उसे शील कहा गया है। वास्तव में तो वह बन्ध का कारण है। निश्चयशील, वह मोक्ष का कारण है। क्योंकि अन्त में ऐसा कहेंगे, आत्मा स्वयं मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहेंगे न? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो रास्ते में पूछा था। ... ऐसे पूछते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? रस तो आता है न, रास्ते में साथ में आते हैं। जिज्ञासा है उन्हें, समझने की जिज्ञासा करते हैं। कहो, यह आत्मा... समझ में आया? अरे! इसे यह बालक हो या युवा हो या वृद्ध हो, वह कोई आत्मा को लागू पड़ता नहीं। वह आत्मा है नहीं, यह तो पहले से आ गया। तरुण नहीं, वृद्ध नहीं, यह तो आ गया या नहीं? वह तो आत्मा, वह आत्मा ही है, ऐसा का ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ अनादि-अनन्त एकरूप चिदानन्द अनन्त स्वभाव का पिण्ड आत्मा है। अब जब आत्मा को अन्तर में अवलम्बकर शुद्धरूप परिणमे, ऐसी दशा को फिर संयम कहो, शील कहो, मोक्ष का मार्ग कहो। उसके साथ विकल्प का भाग है, उसे बहिरंग साथ में रहा हुआ कारण उपचारी कहो। एक है, वस्तु दूसरी है इतनी बात। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार है।

और निश्चयनयकर अन्तरंग में अपने... है न उसमें? उसमें कहा था बहिरंग, इसे कहा अन्तरंग। भगवान अन्तर का अंग, वह अंग बहिरंग है रागादि, यह अन्तरंग। समझ में आया? '**निश्चयेनाभ्यन्तरे**' ऐसा है न शब्द, संस्कृत में है। बहुत सरस टीका भी की है न! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दघन का अभ्यन्तर अर्थात् अभ्यन्तर अंग। समझ में आया? अन्तरंग अभ्यन्तर अंग। अन्दर निर्मलानन्द भगवान के अन्तर में, अन्तर में परिणमन शुद्ध। **अपने शुद्धात्मद्रव्य का निर्मल अनुभव...** अन्तरंग में भगवान आत्मा शुद्ध परमात्मा का (अनुभव)। स्वयं ही परमात्मा स्वयं वस्तु है। उसका अभ्यन्तर में—अन्तर में उसका परिणमन शुद्ध द्रव्य का निर्मल अनुभव, निर्विकारी अनुभव, **वह शील कहा जाता है,...** उसे आत्मशील कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? दो बोल हुए। '**अप्पा संजमु सीलु**' अब यह '**तउ**' आया। तुम्हारे यह सब तप-बप करके बैठे हैं न। पोल निकलती है इसमें तो सब। अपवास-बपवास किये थे। सेठिया बहुत करे और मुफ्त में लाभ लेना पाँच रुपये, पचास रुपये खर्चे। जाओ तुमको पैसा देते हैं, ढींकणा दिया। अपवास करे... आहाहा! हमने उसको लाभ दिया। थोड़ा लाभ इसे आता होगा। '**अप्पा तउ**' आत्मा तप है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

पहले बाह्य से लिया है, हों! उसमें ऐसा लिया न। '**बहिरंगेन सहकारिकारण-भूतानशनादिद्वादशविधतपश्चरणेन**' बहिरंग में अपवास, ऊनोदरी आदि का जो विकल्प

है... बारह प्रकार के तप है न? अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, कायक्लेश, प्रायश्चित, विनय, वैय्यावृत्त, स्वाध्याय, ध्यान उसका जो विकल्प है बहिरंग, बहिरंग राग की मन्दता। वह बहिरंग अर्थात् बाह्य सहकारी। समझ में आया? पाठ में '**बहिरङ्गेन**' है, यहाँ बाह्य सहकारी, उसमें अंग डाला था। बहिरंग से सहकारी बाह्य का सहकारी निमित्त साथ में रहा हुआ हों परन्तु वापस। साथ में रहा हुआ है न ऐसे, उसमें क्या है? साथ में रहा हुआ कब कहलाये? पहले यह और फिर वह? ओहोहो! मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्टीकरण किया है, बहुत सरस किया है। शास्त्र के पेट का मर्म खोला है उन्होंने। उसे कहे, नहीं... नहीं... नहीं। इस प्रमाण निकलता है या नहीं? वह निश्चय-व्यवहाराभास, भाई! निश्चय-व्यवहाराभास। निश्चय के साथ व्यवहार साथ में देखकर, निमित्त देखकर, उपचार करके व्यवहार किया है। इन्होंने तो शास्त्र में से खोलकर बात रखी है, परन्तु... हम बहुत पढ़े हैं न। यह पठन का अपच हो गया। अरे! भगवान बापू! पठन यह नहीं होता। पठन तो आत्मा के भानसहित का हो, तब उसे सब व्यवहार, निमित्त कहाँ क्या उसकी खबर पड़े। समझ में आया?

बाह्य सहकारी कारणभूत जो अनशनादि बारह प्रकार का तप है,... बारह प्रकार लिये, हों! वह अभ्यन्तर भी बाह्य सहकारी। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय भी बाह्य सहकारी विकल्प है वह, पुण्यबन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा! **उससे तथा निश्चयकर अन्तरंग में...** लो! यह तो कहलाये न। '**करणेन**' ऐसा है न? '**द्वादशविधतपश्चरणेन**' इसलिए फिर उससे, ऐसा। **निश्चयकर अन्तरंग में सब परद्रव्य की इच्छा के रोकने से...** सब इच्छा रुक गयी—निरोध। आत्मा के आनन्द में अमृत-अमृत, आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वह अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, उसे निश्चय तप कहा जाता है। उसका नाम तपस्या। समझ में आया? '**परमात्मस्वभाव (निजस्वभाव) में प्रतापरूप तिष्ठ रहा है,... प्रतापरूप तिष्ठ रहा है,...** शुद्ध भगवान की प्रताप सम्पदा से शोभित दशा प्रगट स्वतन्त्र हुई है। **इस कारण और समस्त विभावपरिणामों के जीतने से आत्मा ही तपश्चरण है,... 'अप्पा तउ'।** यह आत्मा तपश्चरण है। समझ में आया? दूसरी कोई तपस्या नहीं। तीन बोल कहे, विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ५, रविवार, दिनांक - २८-११-१९६५
गाथा - ९३-९४ प्रवचन - ६२

आत्मा संयम, शील और तप है, यह तीन बोल आ गये हैं। अब आत्मा सम्यग्दर्शन है और सम्यग्ज्ञान है, यह बात दो (बाकी) रही है। **आत्मा ही निजस्वरूप की रुचिरूप सम्यक्त्व है,...** है? अन्दर 'निश्चय' शब्द चाहिए। देखो, इसमें विशिष्टता यह है कि यहाँ पहले के तीन बोल में निश्चय-व्यवहार आ गया है, इसलिए इसमें इन्होंने व्यवहार नहीं डाला। ९४ में निश्चय-व्यवहार डालेंगे। क्या कहा? इस ९३ में आत्मा संयम है, उसका बहिरंग कारण पाँच इन्द्रिय आदि बाह्य असंयम का त्याग, ऐसा विकल्प, उसे बहिरंग साधन, बहिरंग साधक, बहिरंग कारण कहा था। उसी शैली से सब ले लेना, परन्तु भाषा बदलेंगे सब। किसी में परम्परा कहेंगे, किसी में कुछ कहेंगे, हेतु तो एक का एक है। क्या कहा? यह आत्मा ही ज्ञान, दर्शन, आनन्द में परिणत हुआ वह स्वयं आत्मा ही संयम है और उसके बारह अव्रत के विकल्प का त्याग और व्रतादि विकल्प का रक्षण विकल्प, वह बाह्य संयम, उसे साधक कहकर बहिरंग कारण कहकर यह साध्य अन्तर निश्चय कहने में आया है, परन्तु है दोनों साथ में, दोनों साथ में हैं। उस साथ की व्याख्या भिन्न-भिन्न अब यहाँ करेंगे। अब यहाँ तीन बोल में यह आ गया है '**अप्पा संजमु**' '**अप्पा सीलु**' आत्मा तप।

अब आत्मा दर्शन—सम्यग्दर्शन वह आत्मा है। आत्मा, वह निजस्वरूप रुचिरूप निश्चय समकित है। आत्मा शुद्ध अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर में निर्विकल्प स्वरूप की रुचि, अनुभव होना, इसका नाम निश्चयसमकित कहा जाता है। देखो! यह सब विवाद है न? इसमें सब स्पष्टीकरण है एक-एक का। यह निश्चयसमकित है। उसके साथ व्यवहार यहाँ नहीं कहा, ९४ में कहेंगे। समझ में आया? आत्मा शुद्ध चैतन्य अनन्त गुण का चैतन्य रत्नाकर। सर्वज्ञ परमात्मा भगवान ने जैसा देखा, वैसा आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी अन्तर्मुख की निर्विकल्प अनुभूति होकर जो

प्रतीति होना, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन कहा जाता है। निश्चय अर्थात् सच्चा, निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार अर्थात् आरोपित, व्यवहार अर्थात् उपचार, व्यवहार अर्थात् बहिरंग निमित्तकारण। समझ में आया? लो!

वह सर्वथा उपादेयरूप है,... है? यह निश्चय सम्यग्दर्शन, आत्मा शुद्ध चैतन्य का अन्तर में अनुभव-ज्ञान होकर, उसमें निश्चय की प्रतीति होना, इसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन, वह सर्वथा उपादेय है। धर्मचन्दजी! आहाहा! **इससे सम्यग्दर्शन आत्मा ही है,...** इस कारण से सम्यग्दर्शन तो आत्मा का निर्विकल्प अनुभव होकर पर्याय हुई, वह आत्मा ही है। विकल्प है, राग है, वह अनात्मा है; वह आत्मा नहीं। यह बाद में कहेंगे। व्यवहार सम्यग्दर्शन का विकल्प जो है, वह आत्मा नहीं, उसे साधकरूप से, हेतुरूप से वहाँ कहेंगे। ९४ में, भाई! हेतुरूप शब्द है। '**सम्यक्त्वहेतुत्वाद्**'। भाषा बदलते हैं। बाकी तो वस्तु जैसी है एक की एक है। समझ में आया? **अन्य कोई नहीं है,...** ऐसा पहले निषेध किया। क्या कहते हैं? आत्मा संयम, आत्मा शील निश्चय शुद्धस्वरूप से परिणमन, वह और आत्मा तप, प्रतपंति इति तपः। आनन्द की शोभा से आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की प्रगट दशा से शोभे, वही आत्मा तप है, अन्य कोई नहीं। ऐसा और सिद्ध किया वापस। समझ में आया? अब ज्ञान, अन्तिम बोल है न, ज्ञान किसे कहना?

वीतराग स्वसंवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही है,... यह ज्ञान उसे कहते हैं कि आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यज्योति का ज्ञान स्वसंवेदन। आत्मा के ज्ञान का ज्ञान में वेदन, अनुभव में वेदन, ऐसा वीतरागी—रागरहित आत्मा का स्व-प्रत्यक्ष वेदन-संवेदन। **अनुभव से आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं,...** समझ में आया? उसका निमित्तकारण उसमें कहेंगे, ९४ में कहेंगे। उसमें उन तीन कारण में निमित्तकारण आ गया है न, इसलिए इसमें दो में समेट लिया है। उसमें फिर वापस लेंगे। समझ में आया? **वीतराग संवेदनज्ञान के अनुभव से आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,...** भगवान आत्मा वीतरागी ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है, वस्तु, वस्तु। वीतराग अर्थात् निर्दोष स्वभाव आत्मा। रागरहित अर्थात् द्वेषरहित, कषायरहित ऐसा जो आत्मस्वभाव शुद्ध त्रिकाल, उसका अन्तर रागरहित स्व प्रत्यक्ष ज्ञान का वेदन (होना), ऐसे ज्ञान को ज्ञान कहते हैं और वह आत्मा ज्ञान है, वह आत्मा ज्ञान है। आत्मा छोड़कर कोई विकल्प या शास्त्र का ज्ञान, वह कहीं आत्मा नहीं। कहो,

शशीभाई! दूसरे नहीं आये तुम्हारे? नहीं आये होंगे। इस वर्षा के (कारण से) नहीं न? व्यावहारिक कारण। ठीक। कहो, समझ में आया इसमें?

आत्मा ही निश्चयज्ञानरूप है,... ऐसा। स्वयं भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप अन्तर की पर्याय में ज्ञानानन्दरूप से, स्वसंवेदनरूप से हो, वह आत्मा ही ज्ञान है। उसकी पर्यायसहित, हों! पर्याय को आत्मा कहते हैं यहाँ। वह विकल्प जो उठता है शास्त्र पठन का या नौ तत्त्व आदि छह द्रव्य का कहेंगे, उसका जो विकल्प श्रद्धा, वह आत्मा नहीं। वह विकल्प है, वह बहिरंग निमित्तकारण जिसे साधक-साध्य में मिलाकर, दोनों मिला दिया है। उसे साधक भी कहा जाता है, उसे बहिरंग कारण, सहकारी कारण भी कहा जाता है। समझ में आया? व्यवहार को।

और मिथ्यात्व, रागादि समस्त विकल्पजाल को (छोड़कर) त्यागकर... भगवान आत्मा... अब मोक्षमार्ग तीनों करके सब इकट्ठा करते हैं। विपरीत मान्यता छोड़कर शुद्ध चिदानन्द भगवान की अन्तर अनुभव में प्रतीति, उसका ज्ञान, उसका शील, उसका संयम, उसका तप, वह **मिथ्यात्व, रागादि समस्त विकल्पजाल को त्यागकर परमात्मतत्त्व में...** परमस्वरूप भगवान आत्मा आनन्द का कन्द सच्चिदानन्द आत्मा, उसमें **परमसमरसीभाव के परिणमन से...** उसमें परम रागरहित समता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अर्थात् परम अरागी समता परिणमन से परिणमित **आत्मा ही मोक्षमार्ग है।** समझ में आया? पाँच बोल कहकर फिर आत्मा मोक्षमार्ग है, ऐसा छठवाँ बोल कहा। भारी सूक्ष्म परन्तु। वाडा को वाड़ावालों ने बाँध रखा है न बाहर से, इसलिए यह क्या कहते हैं, इसे पकड़ना मुश्किल पड़ता है। समझ में आया? और उसमें सब स्पष्टीकरण है, इन दो गाथाओं में एक-एक प्रकार का (स्पष्टीकरण है)। साधक-साध्य कहा, उस साधक को बहिरंग कहा न, उसी साधक को यहाँ हेतु कहेंगे और परम्परा कारण कहेंगे आगे की गाथाओं में। समझ में आया? वहाँ कैसे बैठे? दास! बाद में आये? कहो, आत्मा, वही मोक्षमार्ग है—ऐसा कहकर क्या कहा? कि बीच में जो व्यवहाररत्नत्रय का जो व्यवहारमोक्षमार्ग का विकल्प बहिरंग साधकरूप से, बहिरंग कारण निमित्तरूप से, साधकरूप से है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! जमुभाई! आहाहा! यह वस्तु वह...

तात्पर्य यह है कि बहिरंग द्रव्येन्द्रिय-संयमादि के पालने से... यह पालने से का

अर्थ यह, वहाँ आ गया था स्पष्टीकरण, बहिरंग सहकारी कारण। समझ में आया? साध्य-साधकभावेन, यह भी आया था न? और फिर दो बार आया था यह। तपस्या में भी बहिरंग सहकारी कारणभूत। पाँच इन्द्रिय के दमन का विकल्प, संयम का विकल्प उसे बहिरंग साधन कहकर, उसे बहिरंग सहकारी—साथ में कहकर उसे पालने से, ऐसा यहाँ कहा गया है। समझ में आया? **अन्तरंग में शुद्धात्मा के अनुभवरूप...** समय तो वही है। अन्तरंग के शुद्धात्म चिदानन्दज्योति भगवान आत्मा का अनुभव शुद्ध चैतन्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र। **भावसंयमादिक के परिणमन से...** ऐसे भाव संयम, भाव तप, भाव शील और भाव दर्शन और ज्ञान। **उपादेयसुख जो अतीन्द्रियसुख...** आदरणीय जो अतीन्द्रिय आनन्द, **उसके साधकपने से आत्मा ही उपादेय है।** उसका साधक करनेवाला आत्मा, इसलिए आत्मा ही उपादेय है। देखो! यहाँ वापस साधकपने से डाला, भाई! वह व्यवहार साधक और यह निश्चय साधक। आहाहा! बहुत डाला है। क्या कहा, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा... **भावसंयमादिक के परिणमन से उपादेयसुख जो अतीन्द्रियसुख उसके साधकपने से...** ऐसे अतीन्द्रिय सुख के साधकपनेवाला कौन है? कि आत्मा। समझ में आया? अतीन्द्रिय आत्मा का आनन्द, उसके साधकपने द्वारा आत्मा ही उपादेय है। दूसरा विकल्प आदि आता है, वह जाननेयोग्य है, परन्तु वास्तव में उपादेय है नहीं। यह ९३ हुई। छह बोल हुए ९३ में। कौनसे छह बोल हुए? ऐ... सेठ! हिम्मतवाले हों, उन्हें पूछिये तो ऐं... ऐं... हो जाये, तो उसे ऐसा-ऐसा हो जाता है।

★ ★ ★

गाथा - ९४

आगे निज शुद्धात्मस्वरूप को छोड़कर निश्चयनय से दूसरा कोई दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं है,... देखो! अब अधिक स्पष्ट करते हैं इसमें। **इस अभिप्राय को मन में रखकर गाथा-सूत्र कहते हैं—** ९४ (गाथा)।

९४) अण्णु जि दंसणु अत्थि ण वि अण्णु जि अत्थि ण णाणु।
अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु॥ ९४॥

आत्मा को छोड़कर दूसरा दर्शन, ज्ञान, चारित्र-फारित्र होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अभी ९६ में तो बहुत सरस आयेगा, ९६ है न, वहाँ तो '**अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु**' कह देंगे ९६ में तो। ऐसी गाथा भाई! रखी है उस मोक्षमार्गप्रकाशक में रखी है, मोक्षमार्गप्रकाशक में रखी है। आत्मा ही दर्शन कहा है न? पुरुषार्थसिद्धिउपाय का दृष्टान्त दिया है। परन्तु पूछा.... यह यहाँ से निकाला है कि आत्मा ही दर्शन, ज्ञान, बाकी सब व्यवहार कहा, बाकी सब व्यवहार। यह आगे कहेंगे। और उसमें फिर पुरुषार्थसिद्धिउपाय का '**आत्माविनिश्चिति**' ... कहा है न वह। समझ में आया?

यह आत्मा अखण्डानन्द ज्ञायकमूर्ति आत्मा को छोड़कर कोई सम्यग्दर्शन जगत में है ही नहीं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति उसका अन्तर में सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध श्रद्धा अन्तर अनुभव में (हो), वह आत्मा है, वह आत्मा छोड़कर दर्शन बाह्य में होता नहीं। समझ में आया? न एव—नहीं, ऐसा है न। **अन्य कोई ज्ञान नहीं है,...** देखो, अन्दर निमित्त कहेंगे। परन्तु आत्मा को छोड़कर अन्य दर्शन नहीं, आत्मा को छोड़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं और अन्य कोई चारित्र नहीं। तीनों ले लिये, मोक्षमार्ग क्यों? **अन्य कोई चारित्र नहीं है, ऐसा तू जान,...** गुरु शिष्य को कहते हैं कि हे आत्मा! तेरे आत्मा का अन्तर सम्यक् निश्चय अनुभव की प्रतीति आत्मा, निश्चय आत्मा का ज्ञान—आत्मज्ञान स्वसंवेदन, वह आत्मा, स्वरूप शुद्ध चिदानन्द में रमणता, वह चारित्र, वह आत्मा। आत्मा को छोड़कर अन्य में तेरा दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता नहीं। समझ में आया? शशीभाई! अब जरा नहीं, ऐसा कहा, हों! पाठ में वापस, एक व्यवहार है, वह बात सिद्ध करते हैं। आत्मा वह नहीं। क्या?

भावार्थ :- यद्यपि छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय,... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे। **छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ का श्रद्धान कार्य-कारणभाव से...** देखो! उसमें साधक-साध्य था, यहाँ कार्य-कारण (कहा), परन्तु सब वह की वह बात है। उसकी श्रद्धा का विकल्प, वह कारण कहा जाता है, बहिरंग साधन कहा जाता है, उसे परम्परा कारण भी कहेंगे। भाषा बदलते हैं, वस्तु तो एक की एक है। यह कार्य-कारणभाव से निमित्तकारण से और निश्चयसमकित के उपादान कार्य से। **निश्चयसम्यक्त्व**

का कारण होने से व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है,... व्यवहार साधक, निश्चय साध्य। क्या कहा?

देखो! भगवान आत्मा अपना शुद्ध भगवान स्वभाव का निश्चयसम्यग्दर्शन स्व आश्रय से प्रगट हुआ शुद्ध श्रद्धा अनुभव में वह निश्चय समकित, वह आत्मा। साथ में छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात, नौ तत्त्व का भेदरूप विकल्प श्रद्धा, उसे यहाँ निमित्त कारणरूप से, कारणरूप से, साधकरूप से, बहिरंग कारणरूप से, अनात्मारूप से, अनात्मारूप से उसे साधन निमित्तकारण कहा जाता है। समझ में आया? इसमें है या नहीं? यह तो लोगों को पकड़ में नहीं आता। भिन्न-भिन्न शब्द आये इसलिए मानो यह और कारण आया। वह तो कारण वहाँ कहा था। साधक-साध्य और बहिरंग... टीका में कहा था पहले। भगवान आत्मा अपना स्वआश्रय शुद्ध अखण्ड ज्ञान की मूर्ति उसका अन्तर अनुभव निर्विकल्प दृष्टि होकर जो श्रद्धा निश्चय हो, वह आत्मा, वह आत्मा। इसके अतिरिक्त अन्य, अन्य नहीं, ऐसा पहले कहा था। अब अन्य जो है, वह छह द्रव्य, पंचास्तिकाय, सात तत्त्व के भेद, उस विकल्प को बहिरंग निमित्त, सहकारी कारण, कारण और यह निश्चय कार्य, इस प्रकार से उसे कथन किया गया है। समझ में आया? है न?

सम्यक्त्व कहा जाता है, अर्थात् व्यवहार साधक है, निश्चय साध्य है,... पाठ में तो '**निश्चयसम्यक्त्वहेतुत्वाद्**' शब्द पड़ा है संस्कृत में। व्यवहार समकित हेतु है। हेतु कहो, कारण कहो, बहिरंग साधन कहो, अनात्म विकल्प भाव कहो। निकलता है इसमें से या नहीं? भाई! हमारे पण्डितजी को पूछना। कहाँ गये वजुभाई नहीं? पीछे बैठे हैं। ठीक। समझ में आया? इसमें है या नहीं। बराबर है। क्या कहा? यह अपने ९३ और ९४ की सन्धि सहित की बात चलती है। भगवान आत्मा एक स्वरूप अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। सर्वज्ञ परमात्मा का जैसा आत्मा, पर्याय एक ओर रखो, ऐसा ही यह आत्मा वस्तुरूप से, द्रव्यरूप से ऐसा ही आत्मा है। आया? यह आत्मा का अन्तर्मुख की निर्विकल्प राग के अवलम्बन बिना स्वभाव के अवलम्बन से जो निश्चय सम्यक् स्वआश्रय हो, उसे आत्मा कहा जाता है, और साथ में जो छह द्रव्य और सात तत्त्व का विकल्प हो, उसे व्यवहार समकित निश्चय का हेतु कहा (जाता है)। हेतु कहो, कारण कहो, साधक कहो, बहिरंग सहकारी निमित्त कहो। आहाहा! समझ में आया? ऐ... भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा बदलकर इसे यथार्थरूप से सिद्ध किया है। ढीला नहीं, ढीला नहीं, जैसा है वैसा ही है। समझ में आया? शब्द तो स्पष्ट रखे हैं कि यह आत्मा ही यह है। कहा नहीं? उसमें कहा था कि '**आत्मा संयमः शीलं तपः आत्मा दर्शनं ज्ञानम्। आत्मा शाश्वतमोक्षपदं**' '**जाणंतउ अप्पाणु**'। हुआ? यहाँ (कहा), '**अण्णु वि दंसणु अत्थि ण वि... जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु।**' ९४। आत्मा को छोड़कर कोई दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं, ऐसी बात सिद्ध की है। समझ में आया? पाठ तो इतना है, उसमें से यह टीकाकार ने व्यवहार निकाला। जैसा वहाँ १७२ में निकाला है पंचास्तिकाय में। निकाले, निकाले न, उसमें क्या है? समझावे न, इस प्रकार का विकल्प होता है।

भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप परमात्मस्वरूप ही आत्मा का है निश्चय। उसके स्वरूप का अन्तर्मुख, अन्तर्मुख स्वभाव का आश्रय होकर निर्विकल्प आत्मा के अमृत के वेदन के साथ प्रतीति होना, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! उस निश्चय सम्यग्दर्शन का हेतु अर्थात् कि कारण अर्थात् कि साथ में रहा हुआ विकल्प अर्थात् कि सहकारीरूप से साथ में रहा हुआ। सहकारी शब्द है न? उसमें सहचारी शब्द प्रयोग किया है, मोक्षमार्गप्रकाशक में। परन्तु निश्चय के साथ सहित निमित्त, ऐसा कहा। वह तो .... सहकारी है। शब्द बदलकर वस्तु को भिन्न-भिन्न प्रकार से सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा, आत्मा उसे कहते हैं कि अपने स्वरूप की, जैसा वह निर्विकल्प शुद्ध आनन्द और ज्ञायक आत्मा है, वैसी ही उसकी दृष्टि में, अनुभव में निर्विकल्प पर्यायरूप से आत्मा का निश्चय होना, वह आत्मा की पर्याय, वह निश्चय समकित है, वह आत्मा। उसके छोड़कर अन्य समकित नहीं, एक बात पहले कही। तथापि, अन्य नहीं तो भी व्यवहार कहता है कि है। भाई! निश्चय कहता है कि नहीं, तब व्यवहार कहता है कि है। यह बात साथ में ली है। समझ में आया इसमें?

क्या व्यवहार है? कि छह द्रव्य, पाँच अस्ति (काय), सात तत्त्व, नौ पदार्थ यह कारण, यह साधक, यह हेतु और निश्चय समकित कार्य। समझ में आया? ऐसे निश्चय समकित का कारण होने से व्यवहार समकित, वह हेतु कहा था न टीका में। **अर्थात् व्यवहार साधक है, निश्चय साध्य है,...** परन्तु यहाँ साध्य-साधन जो कहा, वह ९३ में

स्पष्टीकरण कर गये हैं। '**साध्यसाधकभावेन बहिरंगसहकारिकारणभूतेन**' ऐसा कहा था वहाँ। अर्थात् साध्य-साधक, ऐसे साधक पहला है और साध्य बाद में है, ऐसा नहीं। साध्य भी साथ में और साधक निमित्तरूप से भी साथ में। समझ में आया? आहाहा! अभी शास्त्र का अर्थ करने में बड़ा विवाद। आहाहा!

भगवान आत्मा... कहते हैं कि भाई! तेरा सम्यग्दर्शन तो तू है। तू अर्थात्? तेरी जाति अखण्डानन्द की उसमें—सम्यग्दर्शन में प्रतीति में ली, वह प्रतीति निर्विकल्प वीतरागी पर्याय है, वीतरागी पर्याय है, इसलिए उसे हम आत्मा कहते हैं। उस आत्मा को छोड़कर सम्यग्दर्शन अन्य में नहीं, ऐसा पहले कह दिया। अन्य दूसरे में नहीं होता, है न पाठ इसमें? समझ में आया? '**जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु... ण अत्थि**' है न? '**ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु**' आत्मा को छोड़कर दर्शन दूसरा नहीं, ऐसा पाठ में जो लिया है, उसे टीका में ऐसा कहा कि भगवान आत्मा शुद्ध सम्यग्दर्शन निश्चय, उसकी वीतरागी पर्याय, वह आत्मा है और राग, छह द्रव्य आदि का विकल्प, वह व्यवहारसमकित, वह निश्चय का कारण है, निश्चय का हेतु है, वह साधक है, यह साध्य है, साथ में रहा हुआ बहिरंग हेतु निमित्त है। कहो, छोटाभाई! इसमें निकलता है या नहीं? व्यवहार समकित, वह आत्मा नहीं, ऐसा भी यहाँ से निकलता है। विकल्प है, इसलिए आत्मा नहीं, परन्तु वहाँ निमित्त का ज्ञान साधकपना, निमित्तपना, बहिरंग कारण का ज्ञान कराया है। आहाहा! समझ में आया?

वह व्यवहार साधक, निश्चय साध्य, इसकी व्याख्या की। अर्थात् क्या? कि जो व्यवहार छह द्रव्य के विकल्प की श्रद्धा, उसे साधक कहा, उसे बहिरंग कारण कहा, उसे हेतु कहा, उसे साध्य का कारण, साध्य जो निश्चय दशा उस समय है वह, निश्चय साध्य जो है, उसका यह बहिरंग कारण, हेतु, साधकरूप से कहा गया है। उस समय और उस समय। आहाहा! ऐ... छोटाभाई! है? परमात्मप्रकाश है या नहीं? ठीक। यह व्याकरण के पढ़े हुए होशियार व्यक्ति कहलाते हैं। इसमें है या नहीं इसमें देखो! आहाहा! अरे! भगवान! तेरी तुझे पराधीनता हो तो ठीक पड़े, ऐसा मानता है। समझ में आया? एक बात हुई।

कहते हैं न? वापस बात ली देखो! कि व्यवहार साधक और निश्चय साध्य।

क्या कहा? वे छह द्रव्य, नौ तत्त्व का विकल्प जो है, वह साधक, बहिरंग कारण, हेतु। समझ में आया? इस साध्य का। तथापि—ऐसा होने पर भी **निश्चयनयकर एक वीतराग परमानन्दस्वभाववाला शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** निश्चय से एक वीतराग परमानन्द शुद्धात्मा, यह द्रव्य लिया। **वह उपादेय है, ऐसा रुचिरूप परिणाम से परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,...** कहो, समझ में आया? क्या कहा? फिर से कहते हैं, हों! यह कोई वाँचन हो गया झट इसलिए... व्यवहार साधक और निश्चय साध्य, ऐसा कहा। तथापि निश्चय से भगवान आत्मा वीतराग निर्दोषस्वरूप परमात्मा अपना ऐसा जो परम आनन्द, ऐसे स्वभाववाला भगवान आत्मा, वही उपादेय आदरणीय है। **ऐसा रुचिरूप परिणाम से परिणत...** देखो! पर्याय है निश्चयसमकित। ऐसे **रुचिरूप परिणाम से परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,...** आहाहा! समझ में आया? अब वह कहे कि, समकित परिणाम नहीं होते, वह तो गुण है। इतना विवाद निकालते हैं। पुरानी (बात) हो गयी? अब नयी चली है। साधक है और साध्य है और यह है और धूल है। अब सुन न। साधक कहो, बहिरंग कारण कहो, वर्तमान बहिरंग साधन कहो, हेतु कहो, जो कहो वह सब साथ में है। निश्चय बिना व्यवहार किसे कहना? परमार्थ स्वभाव के भान बिना सम्यग्दर्शन का व्यवहार आरोप डालना किसमें? आहाहा! कहो, दास! है पुस्तक, है या नहीं?

अब कहते हैं, **यद्यपि निश्चयस्वसंवेदनज्ञान का साधक होने से व्यवहारनयकर शास्त्र का ज्ञान भी ज्ञान है,...** ध्यान रखना! यह शास्त्र का ज्ञान, उसे व्यवहार से ज्ञान कहा। साधक निमित्तरूप से, बहिरंग साधनरूप से, बहिरंग हेतुरूप से, साथ में रहा हुआ इसलिए उस जाति का शास्त्र के उघाड़ का विकल्पात्मक ज्ञान, उसे साधकरूप से, बहिरंग कारणरूप से, निमित्त कारणरूप से कहा। कब? **तो भी निश्चयनयकर वीतराग-स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है।** आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान की तेजमूर्ति, वह ज्ञान का सूर्य भगवान, वह ज्ञानसूर्य ज्ञानरूप से सम्यक्रूप से अन्दर वीतराग स्वसंवेदनरूप परिणमे, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! वह आत्मा है, शास्त्रज्ञान अनात्मा है। ऐई! वजुभाई! हमारे पण्डितजी को पूछें कि भाई! कैसे यह? आहाहा! भाई! यह जो जाति निश्चय की है, उससे विरुद्ध जाति, इसलिए उसे अनात्मा कहा, लो! क्या कहा?

भगवान आत्मा ज्ञान का वेदन ज्ञान से ज्ञान को वेदे, वेदे, ज्ञान से जाने। आत्मा की निर्विकल्प पर्याय ज्ञान की ज्ञान वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान, वह आत्मा है, वह साध्य है। समझ में आया? उसमें शास्त्र का ज्ञान उस काल में हेतु है, निमित्त है, सहकारी कारण है, वह विकल्पात्मक है, वह आत्मा की जाति नहीं; अनात्मा है। उसे निमित्तरूप से, साधकरूप से, कारणरूप से कहा जाता है। शशीभाई!

मुमुक्षु : दृष्टान्त देकर समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त क्या? इसमें समझ में नहीं आता? परन्तु इसमें दृष्टान्त की क्या आवश्यकता है? सोना है न, सोना, उस सोना का तोल हुआ, इकट्ठा लाख का तोल हो। सोना है न यह चार सेर सोना, उसमें लाख हो लाख, उस लाख का तोल हो परन्तु वह सोना नहीं। लाख, सोना नहीं। तोल कहलाये (परन्तु) उसका पानी में डाले तो अकेला तोल सोना का आवे, लाख का तोल न आवे। पानी में लाख का तोल न आवे, सोना का तोल अकेला आवे। परन्तु तोला जाये, तब बाहर से तोला जाये तब बाहर से ऐसा कहा जाता है कि, लो! यह सोना इतना, ऐसा नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द का सम्यक् परिणमन, वह सोना है, आत्मा है। साथ में विकल्प जो छह द्रव्य का विकल्प है, वह लाख है। प्रमाणज्ञान में उसे निमित्तरूप से कहा, निश्चय में वह वस्तु है नहीं। वह आत्मा ही नहीं। समझ में आया? गजब बात! यह तो बहुत गड़बड़ चलती है न, वह इतना स्पष्टीकरण किये बिना... समझ में आया या नहीं?

कहते हैं, निश्चय अर्थात् सत्य दृष्टि से, सत्यरूप से देखे तो **वीतराग-स्वसंवेदनज्ञानरूप परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है।** सत्य ज्ञान तो उसे कहते हैं। सत् स्वरूप जो त्रिकाल ज्ञान की मूर्ति, उसका अन्तर ज्ञान निजानन्द का ज्ञान अन्तर में होना, वह सत् ज्ञान, निश्चय ज्ञान, आत्मज्ञान आत्मा। उसे आत्मा कहते हैं, उसे सत् ज्ञान कहते हैं, उसे निश्चय ज्ञान कहते हैं। साथ में शास्त्र का ज्ञान (हो), उसे निमित्त कहकर बहिरंग साधन देखकर, हेतु देखकर उस शास्त्रज्ञान को साधकरूप से कहा गया है, परन्तु वह आत्मा नहीं। आहाहा!

निश्चय कहे कि यह आत्मा, व्यवहार कहे कि यह आत्मा। निश्चय कहे कि यह आत्मा नहीं। समझ में आया? दर्शन, ज्ञान का वहाँ स्पष्टीकरण नहीं किया था। समझ में

आया? किसमें? ९३ में समुच्चय बात की थी। निश्चय की दो। इसलिए इस गाथा में निश्चय-व्यवहार डाला। उसमें डाला था, शील, संयम, तप में व्यवहार, यहाँ डाला दर्शन, ज्ञान का व्यवहार। वस्तु तो एक की एक कहनी है। समझ में आया? अभी इसके ख्याल में बात न आवे कि यह आत्मा क्या चीज़ है। और भगवान निर्विकल्प निजानन्दमूर्ति आत्मा है, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प तो आस्रवतत्त्व है। वे आत्मा हैं। शरीर, कर्म जड़तत्त्व है। विकल्प उठता है जो कुछ (आत्मा नहीं)। छह द्रव्य विकल्प आदि विकल्प है, वह तो आस्रवतत्त्व है। व्यवहार समकित, वह आस्रवतत्त्व है, राग आस्रवतत्त्व है; वह आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भिन्न-भिन्न रीति से कथनशैली से वस्तु समझानी हो तो ऐसा समझावे न।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द के तेज का सूर्य प्रभु आत्मा पूर्ण स्वभाव। ऐसा भगवान आत्मा असंख्य प्रदेशी पिण्ड अनन्त गुण का। अरूपी परन्तु पदार्थ है या नहीं? वस्तु है न? यह जड़, वह तो मिट्टी है, धूल है। वह तो एक पदार्थ इतना बड़ा, यह तो अनन्त रजकण का दलसहित। भगवान शरीर प्रमाण असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, अनन्त चैतन्य रत्नाकर, अनन्त अन्तर ज्ञान के, आनन्द के रत्नों से भरपूर भगवान आत्मा। आहाहा! ऐसे आत्मा की अन्तर्मुख होकर वीतरागी श्रद्धा की परिणति होना, वह निश्चय समकित कहा जाता है, वह आत्मा है। और व्यवहार समकित जो कहा, जिसे बहिरंग निमित्त कहा, जिसे साधक कहा, जिसे कारण कहा, वह आस्रव है, उसे अनात्मारूप से गिनकर, उसके अनुकूल व्यवहार गिनकर निमित्त साधक कहा है। समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन की व्याख्या। उसमें व्यवहार-निश्चय की नहीं थी, इसलिए इसमें व्यवहार-निश्चय डाला। उसमें तीन थे संयम, शील और तप। समझ में आया?

उसमें ऐसा लेना कि भगवान आत्मा अपने संयम, सम्यक् प्रकार से शुद्ध आनन्द के परिणमन में परिणमा, वह संयम है, वह निश्चय संयम, वह आत्मा है। व्यवहार संयम जिसे बहिरंग कारण पाँच इन्द्रिय के दमन और बारह अव्रत के विकल्प का त्याग और व्रत आदि का विकल्प, उसे बहिरंग साधन कहा, निमित्त कहा, समझ में आया? सहकारी कहा, परन्तु वह अनात्मा है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा शील।

क्रोध, मान, माया, लोभ का त्याग करूँ, ऐसा जो विकल्प, विकल्प वह व्यवहारशील है। अकषायस्वरूप से परिणमन अन्दर स्वभाव का होना, वह निश्चयशील है, वह निश्चयशील, वह आत्मा है। तब वह विकल्प जो उठा है, उसे बहिरंग निमित्त, बहिरंग साधन, साधक कहकर उसे साध्य कहा, परन्तु है वह अनात्मा। समझ में आया?

एक जाति हो तो दो नाम क्यों पड़े, भाई? इसे निश्चय और उसे व्यवहार, ऐसे दो नाम कैसे पड़े? एक जाति हो तो दो नाम कैसे पड़े? एक प्रकार का भाव हो तो दो कैसे पड़े? समझ में आया? आहाहा! इसी प्रकार बारह प्रकार के तप का विकल्प, वह बहिरंग साधन निमित्त। भगवान आत्मा अन्तरंग आनन्द के प्रतपन से अतीन्द्रिय आनन्द से (शोभे), जैसे सोना गेरुं से शोभे, उसी प्रकार भगवान आत्मा इच्छा निरोध के आनन्द से, अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव से शोभे, उसे अभ्यन्तर तप कहते हैं और वह तप, वह आत्मा है। बहिरंग तप का विकल्प, बहिरंग कारण, बहिरंग साधन, साधक, वह आत्मा नहीं। उसे निमित्त कहना, उसका नाम व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह बहुत चलता है न अब, ऐसी गड़बड़ चले, ऐसी चलती है। बहुत हो गया, व्यवहार तो चौथे, पाँचवें, छठवें में बहुत हो गया। अकेला परन्तु ऐसा। अरे... भगवान!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हो किसका? परन्तु निश्चय बिना व्यवहार हो किसका? व्यवहार अन्धा विकल्प भेद, राग... समझ में आया? वह आत्मा नहीं, व्यवहार वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह शास्त्रज्ञान, यह आत्मा नहीं। आहाहा! उघाड़ हो शास्त्र का इतना-इतना, ग्यारह अंग नौ पूर्व का। वह आत्मा नहीं। आहाहा! परालम्बी जो ज्ञान, उस परसत्तावलम्बी ज्ञान को धर्मी मोक्षमार्ग कहता नहीं। परमार्थ ज्ञान... आता है न? चिट्ठी में आता है। उसे परमार्थ ज्ञान कहता नहीं। धर्मी परालम्बी ज्ञान को परमार्थ ज्ञान कहता नहीं, उसे मोक्षमार्ग कहता नहीं। आहाहा! वह तो इन्होंने यही सब उतारा है। परन्तु (कहते हैं कि) यह गृहस्थ का है। अरे! सुन न! भगवान का कहा हुआ, भगवान आत्मा का कहा हुआ है। ले! अब आत्मा कहाँ गृहस्थ था? गृहस्थ और मुनि की तो पर्याय की दशा की बात है। भगवान आत्मा... कहते हैं... समझ में आया?

वस्तु... वस्तु... वस्तु... वस्तु... उसका अन्तर तप, अभ्यन्तर आनन्द का, वह

निश्चय तप, बारह प्रकार का विकल्प, वह व्यवहारतप। उसे बहिरंग कारण साधक-साध्य कहा, परन्तु है वह अनात्मा। वरना तो एक जाति का हो तब तो उसे इकट्ठा मिला देते, तो निश्चय में आ जाता। समझ में आया? निश्चय से व्यवहार विरुद्ध और व्यवहार से निश्चय विरुद्ध। दो नय विरुद्ध हैं। है या नहीं? आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह साधक-साध्य यह व्यवहार से साधन, व्यवहार से निमित्त, व्यवहार से हेतु, व्यवहार कारण, निमित्त कारण, बहिरंग हेतु। सब वह जैसा है, वैसा है। समझ में आया? ऐसे उपादान में कुछ आवे, एक निमित्त है सही चीज़, परन्तु वह उसकी नहीं, उसकी नहीं। इसी प्रकार निश्चय के काल में पूर्ण (वीतरागता) न हो, वहाँ विकल्प होता है, वह उसकी नहीं, आत्मा की नहीं। समझ में आया? वह साधक व्यवहार निमित्तरूप से कहे। क्योंकि ऐसा वहाँ विकल्प होता है कि जो उससे विरुद्ध जाति का विकल्प निमित्तरूप से भी गिनने में न आवे। ऐसा बहिरंग साधन व्यवहाररूप से छह काय की दया का विकल्प... समझ में आया? बारह प्रकार के भगवान ने कहे हुए व्यवहार के विकल्प का तप और इन्द्रियदमन आदि का विकल्प और छह द्रव्य आदि उसकी श्रद्धा का विकल्प, छह द्रव्य, सात तत्त्व आदि वस्तु, एक आत्मा में और उसका विकल्प, वह यहाँ नहीं, ऐसा। छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ का जो 'यह है' भेदरूप ऐसा जो विकल्प कि दूसरे से भिन्न पड़कर वही निमित्त होने की योग्यतावाला है, इसलिए उसे व्यवहार से साधक कहा जाता है। आहाहा! अरे.. भगवान! इसके घर की बातें छोड़कर बाहर की बातों में सब डाल देना। कहो, शशीभाई! बराबर है यह? है अन्दर, देखो!

यह भी एक परमात्मा है न। उल्टा पड़ा वह जोर करे परमात्मा। इतना सब जोर जाये उल्टे में तो भी जोर करे। आहा! यह तो कहा न, तेरी अशुद्धता की भी बलिहारी है। तेरी शुद्धता की तो बड़ाई परन्तु अशुद्धता की भी बढ़ाई है। आहाहा! भगवान! परन्तु वह वस्तु क्या है, उसकी जिसे अभी खबर, माहात्म्य न हो उसे अनुभव तो एक ओर रहा। समझ में आया? परन्तु यह एक महान पदार्थ जो विकल्प और देह, वाणी से अतीत—पृथक्। ऐसे पृथक् का ज्ञान पहले लक्ष्य में न आवे तो पृथक् करने का प्रयत्न

करे कैसे यह ? समझ में आया ? यह आठ-आठ वर्ष के बालक को समकित हो, तब इस प्रमाण होता है। लो! समझ में आया ? आहाहा! बालक तो शरीर की अवस्था है, आत्मा बालक है ? आहाहा! गजब परन्तु परमात्मप्रकाश! प्रकाशित है न! इसके रूप से प्रकाशित किया है न। कहते हैं, क्या कहा ?

निश्चयकर अर्थात् सत्य, सत्रूप रहा हुआ जो स्वरूप, उसे सत्रूप से परिणमन निश्चय सम्यक् करके वीतरागस्वसंवेदन परिणत हुआ। शास्त्र का ज्ञान (नहीं)। **तो भी निश्चयनयकर वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरूप परिणत हुआ शुद्धात्मा ही निश्चयज्ञान है।** ओहो! यह पर्याय को ज्ञान कहना है, हों! त्रिकाल की बात अलग, त्रिकाल तो द्रव्य है अखण्डानन्द प्रभु। उसकी सम्यग्ज्ञान की पर्याय परिणमित हुई निश्चयस्वभाव के अवलम्बन से, वह ज्ञान, वह सच्चा, वह सत्, वह आत्मा, वह परमार्थ। साथ में शास्त्रज्ञान सत् की अपेक्षा से असत्, वीतराग की अपेक्षा से विकल्प। समझ में आया ? यह स्वाश्रय की अपेक्षा से पराश्रय, परमार्थ की अपेक्षा से अपरमार्थ। भाई! ऐसा भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है। उसे साध्यरूप से कहकर शास्त्रज्ञान को निमित्तरूप से उसी काल में बहिरंग कारणरूप से, हेतुरूप से, साधकरूप से कहकर साधन कहा है। आहाहा! समझ में आया ? आहा! कहो, भीखाभाई! अब रहा चारित्र का बोल। दर्शन, ज्ञान का दो का आया न। यह तो मुद्दे की रकम की बात है, हों! सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः। आहाहा! अरे भगवान!

कहते हैं, **यद्यपि निश्चयचारित्र के साधक होने से अट्ठाईस मूलगुण...** मुनि के। मुनि के अट्ठाईस मूलगुण। उन्हें क्यों कहा है उसका व्यवहार साधक ? कि ऐसे अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, वह छठवें गुणस्थान के योग्य ऐसे ही होते हैं। अज्ञानी को छह काय की दया और अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत और ऐसे विकल्प मिथ्यादृष्टि को होते नहीं, एक आत्मा माननेवाले को ऐसे होते नहीं। यह तो एक आत्मा परिपूर्ण शुद्ध अखण्डानन्द सर्वज्ञ ने कहा हुआ ऐसे अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, ऐसे अनन्तगुणे दूसरे... समझ में आया ? आकाश के प्रदेश आदि सबको स्वीकार करके विकल्प से जो श्रद्धा की है, उसके अन्दर में निर्विकल्प प्रतीति हुई, तब उसको व्यवहार (श्रद्धा) कहा। और ऐसे ही अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प अस्थिरता के उत्पन्न होते हैं छठवें गुणस्थान

में। उन्हें छह आवश्यक, सामायिक, वन्दना... अरिहन्त को वन्दन, गुरु को वन्दन, ऐसा विकल्प। अरिहन्त जो परिपूर्ण वस्तु को प्राप्त और साधक ऐसे। ऐसे जीव को वन्दन का जो विकल्प है छह आवश्यक आदि का, अचेलपने का, नग्नपने का, निर्वस्त्र रहने का, ऐसी जो विकल्प की हद जो है, उसे साधकरूप से, बहिरंग निमित्तरूप से, कारणरूप से कहा (गया है)। किसको? जिसे अन्दर में निश्चयचारित्र परिणमा है उसे। समझ में आया? ऐसी वस्तु है। देखो न, कल कितना स्पष्ट किया था, लो।

कहते हैं, **निश्चयचारित्र के साधक होने से अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण...** सब भेदरूप है, हों! **व्यवहारनयकर चारित्र कहे जाते हैं,...** व्यवहार से, व्यवहार से अनात्मदशा को भी व्यवहार से चारित्र (कहा जाता है)। क्योंकि अट्ठाईस मूलगुण विकल्प है, आस्रवतत्त्व है। आहाहा! समझ में आया? भेदरूप विकल्प उठता है। उसे साधकरूप से कहना। किसे? यह कहेंगे कि, **अट्ठाईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तरगुण व्यवहारनयकर चारित्र कहे जाते हैं...** भेदरूप है न, भेद की अपेक्षा से। विकल्परूप भाव, भेदरूप भाव को साधक, बहिरंग कारण, हेतु उस काल में कहा गया है। किसको? **शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग-चारित्र को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही निश्चयनयकर चारित्र है,** उसे। समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसे अपने पूर्णानन्द स्वभाव में मेरी थाप दृष्टि की और एकाकार होकर जो परिणमा है, शुद्ध वीतरागी परिणमन को निश्चयचारित्र कहते हैं। समझ में आया? शुद्धात्मानुभूतिरूप, ऐसा कहा न? शुद्ध भगवान पूर्ण नाथ, उसकी अनुभूति की स्थिरता का चारित्र। ऐसे **वीतराग चारित्र को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही...** निज शुद्धात्मा ही, ऐसा कहा न। वहाँ कहा था न कि आत्मा ही चारित्र है। '**अण्णु जि चरणु ण अत्थि**' पाठ तो ऐसा है। पहले में ऐसा था '**अण्णु जि दंसणु अत्थि ण**' ऐसा है न? '**अण्णु जि अत्थि ण णाणु**' ऐसा है न? '**अण्णु जि चरणु ण अत्थि जिय मेल्लिवि अप्पा जाणु**'। अब ९६ में बहुत सरस आयेगा। उसने वहाँ पूछा था कि सबको व्यवहार कहा है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न भाई? यह आता है न एक जगह? नौवें (अधिकार) में। सबको छोड़कर एक को... व्यवहार है न यह बात है वह। यहाँ आया लो! ३२४ पृष्ठ पर है।

और किसी जगह एक आत्मा के निश्चय को समकित कहते हैं न। कहते हैं श्री पुरुषार्थसिद्धिउपाय में दर्शन का.... यह डाला, दृष्टान्त यह दिया। परमात्मप्रकाश में इसमें यही कहा है। एक आत्मा के निश्चय को समकित कहा है न! समझ में आया? सबको व्यवहार कहा। समझ में आया? उसे समकित कहा है। यह आयेगा, अभी आयेगा। उसमें तो कहा ९६ में स्पष्ट आयेगा। '**अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु**' सब व्यवहार। भगवान आत्मा की दर्शन-अनुभव दृष्टि, ज्ञान, चारित्र छोड़कर सब प्रकार व्यवहार कहने के। देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, नौ तत्त्व के भेद का विकल्प। समझ में आया? वह सब व्यवहार। निश्चय तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर्मुख की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही आत्मा, वही निश्चय। बाकी सब अन्य सब व्यवहार है। समझ में आया?

कहते हैं, **शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतराग-चारित्र को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा...** वह साध्य, वह साध्य कह दिया, निश्चय कहा, उसे आत्मा कहा, उसे अन्तरंग साधन कहा, अन्तरंग साधक कहा। समझ में आया? और विकल्प को, अट्ठाईस मूलगुण को बहिरंग साधक कहा। आया था न, भाई! वह साधक ... अन्तिम आया **अतीन्द्रियसुख उसके साधकपने से आत्मा ही उपादेय है।** अन्तिम। संस्कृत है न? इसलिए साधकपना यह वापस निश्चय साधक यह। बहुत स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया?

अरे! परन्तु स्वयं परमात्म छोड़कर उसकी दशा, वह कहीं बाहर होगी? राग में और शरीर में और निमित्त में उसकी दशा होगी? उसकी दशा उसमें होती है। उसकी दशा बाहर में होगी? (नहीं होगी)। रागादि, विकल्पादि में उसकी दशा, वह तो आस्रवतत्त्व है। वह आत्मतत्त्व है? शरीर, जड़ क्रिया, वह तो अजीवतत्त्व है, उसकी क्रिया में आत्मतत्त्व की पर्याय उसमें से आवे? यहाँ हो, यहाँ? यह कहनेवाले निकले हैं। जड़ से भी धर्म की पर्याय होती है, क्षायिक पर्याय होती है। भगवान! गजब बात है! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! तेरा दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वह निश्चय तो अन्तर आत्मा की शुद्ध निर्विकल्प वीतराग परिणति वह। उसके साथ ऐसा जो विकल्प व्यवहार दर्शन, व्यवहार ज्ञान शास्त्र का और व्यवहारिक चारित्र... समझ में आया? अट्ठाईस

मूलगुण आदि का विकल्प, उसे निमित्तरूप से, साथ में बहिरंग साधनरूप से, बहिरंग सहकारीरूप से वह साधन और इसे साध्य, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? निश्चय साधक तो भगवान आत्मा अनन्त सुख का नाथ, वह स्वयं ही परिणमता हुआ स्वयं साधक होता है। क्योंकि उसमें साधक नाम का गुण अन्दर में पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? अन्तर में पड़ा हुआ साधकगुण होकर आत्मा ही अपने स्वरूप का साधक होता है। व्यवहार साधक को निमित्तरूप से, अनात्मा को बहिरंगरूप से गिनकर हेतुरूप से साधन कहा। ज्ञान कराने के लिये दूसरी चीज़ का उस समय में ... ऐसा ही होता है, दूसरा नहीं होता। मुनि है, जिन्हें तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश हुआ, वीतराग परिणति से परिणमित आत्मा, उसे अट्ठाईस मूलगुण के ही विकल्प होते हैं। उसे वस्त्र लेने का, नग्नपने के अतिरिक्त का विकल्प नहीं होता। उसे मुनि कहते हैं। मुनिदशा तीन कषाय का नाश, भावलिंग परिणति, उसे अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। इसलिए ऐसे ही विकल्प होते हैं, दूसरे होते नहीं। वस्त्र लेने का, पात्र लेने का (विकल्प होता नहीं)। समझ में आया? तुम्बड़ी और तुम्बडा आते हैं न... दूसरे में अन्यमत में... ऐसा नहीं। मात्र उसके योग्य विकल्प यह दया, दान, व्रत आदि जो है, छह काय की दया का विकल्प (होता है)। छह काय की दया देखो, छह काय दूसरा कहाँ अन्यमति में है? वीतरागमार्ग में है, उसका इसे विकल्प न मारने का आवे इतना। ऐसे विकल्प को, उस जाति का विकल्प वह भूमिका ऐसी जाति की हो, उसे व्यवहार से बहिरंग साधन कहकर उसे कारण कहा है। समझ में आया?

तात्पर्य यह है कि अभेदरूप परिणत हुआ परमात्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। लो! यह इसका योगफल। भगवान आत्मा... भेद नहीं, भेद का ज्ञान कराया। भगवान आत्मा अन्तर्मुख में अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और रमणता में एकाकार होकर ध्यानरूप से परिणमे, वही आत्मा उपादेय है, वही ध्यान करनेयोग्य है, बाकी व्यवहार आदि के विकल्प का ध्यान करनेयोग्य नहीं, बीच में आवे, वह जाननेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक - २९-११-१९६५
गाथा - ९५ प्रवचन - ६३

गाथा - ९५

परमात्मप्रकाश ९५ गाथा पहले भाग की। **आगे निश्चयनयकर वीतरागभावरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही...** यह आत्मा वीतरागभाव से परिणमित पर्याय, ऐसा आत्मा, वह **निश्चयतीर्थ,...** है। समझ में आया? **निश्चयगुरु, निश्चयदेव,...** यह आत्मा है। **ऐसा कहते हैं—**

९५) अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णु जि गुरुउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुँ अप्पा विमलु मुएवि॥ ९५॥

देखो! यहाँ अस्ति-नास्ति से कथन है।

अन्वयार्थ :- हे जीव! तू दूसरे तीर्थ को मत जावे,... इसका अर्थ कहा कि व्यवहार तीर्थ में न जा। ऐई! परन्तु बराबर अर्थ करना पड़े न! जैसे हो वैसे भी इसे बराबर निर्णय तो करना पड़ेगा या नहीं? दूसरे अर्थात् व्यवहार तीर्थ को न जा। दूसरे प्रकार से **दूसरे गुरु को,...** व्यवहार गुरु को **मत सेवे,...** समझ में आया? गुरु जो है, वह परद्रव्य गुरु वह व्यवहार गुरु है, उसे मत सेव, उसकी सेवना न कर। परन्तु यहाँ आवे तो....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा, अर्थ में आयेगा। यह निमित्तरूप से कहेंगे, परन्तु वह सेवनयोग्य निश्चय से नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो परमात्मद्रव्य स्वयं ही है, स्वयं ही परमात्मा अपने शुद्ध परिणमन से स्वयं ही गुरु और तीर्थ और देव है, यह सिद्ध करना है। समझ में आया?

आत्मा परमात्मस्वरूप वीतराग चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। वह स्वयं ही आत्मा वीतरागभाव से निर्विकल्प शान्ति—समाधिभाव से परिणमित आत्मा, वही स्वयं तीर्थ

है, वह स्वयं गुरु है और वह स्वयं देव है। अन्य **दूसरे गुरु को मत सेवे...** यहाँ तो वह नकार आया है न, इसलिए जरा इसमें से निकाला है, भाई यह तो। व्यवहार न सेव, ऐसा निकाला है यहाँ तो। ऐसा नहीं। समझ में आया? व्यवहार हो भले उसे, परन्तु निश्चय से उसे न सेव, ऐसा यहाँ निषेध है। समझ में आया?

और **अन्य देव को मत ध्यावे,...** सर्वज्ञदेव कहते हैं कि, मुझे तू न ध्या, ऐसा कहते हैं। ऐ... गोकुलदासभाई! आहाहा! **अन्य देव को मत ध्यावे,...** सर्वज्ञ परमात्मा देवाधिदेव कहते हैं कि हे जीव! तू मुझे न सेव—तीर्थंकर कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि भगवान तेरा परमात्मस्वभाव ही है न प्रभु! उसकी सेवना में ही सब सत्य रहा हुआ है। बाहर की सेवना में शुभ विकल्प उठता है, राग होता है, परन्तु निश्चय से वह वास्तव में सेवनयोग्य नहीं। ऐसा यहाँ से सिद्ध करके फिर व्यवहार सिद्ध करेंगे। पाठ तो इतना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग का स्वरूप ही ऐसा है, इसलिए कहते हैं। यहाँ तो वीतराग ऐसा कह सकते हैं, इसका अर्थ कि वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है कि वीतराग स्वयं कहते हैं कि मेरे सन्मुख देखने से तेरी सेवा नहीं होगी। यह कहेंगे निमित्त साथ में। सुनो तो सही। परन्तु पहले-बाद में नहीं, ऐसा यहाँ जरा सिद्ध करना है, सुनो तो सही। आहाहा! भाई! भगवान आत्मा... आहाहा!

दूसरे गुरु को मत ध्या। तब? **रागादि मल रहित आत्मा को छोड़कर...** भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित प्रभु ऐसे आत्मा को छोड़कर, **अर्थात् अपना आत्मा ही तीर्थ है,...** उसे छोड़कर अन्यत्र न जा, इसका अर्थ करते हैं अब कि, **अपना आत्मा ही तीर्थ है, वहाँ रमण कर,...** समझ में आया? अपना आत्मा छोड़कर बाह्य तीर्थ नहीं, आत्मा को छोड़कर बाह्य गुरु नहीं, आत्मा को छोड़कर बाह्य देव नहीं—ऐसा सिद्ध करके (कहते हैं) कि भाई! भगवान आत्मा ज्ञानघन वस्तु वह स्वयं ही वीतराग से परिणमन हुआ, उसमें रमण कर। बाह्य तीर्थ और गुरु और देव में न जा, ऐसी पहली परमार्थ बात निश्चित की है। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वयं अपना गुरु है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। यहाँ कहेंगे, गुरु और देव स्वयं ही सब है। दूसरा परद्रव्य गुरु कहाँ से होता था ? परद्रव्य देव कहाँ से हो ? और परद्रव्य तीर्थ कहाँ से हो ? स्वआश्रय तीर्थ, देव और गुरुपना है। पराश्रय तो विकल्प है, व्यवहार है। यहाँ तो विशेष क्या कहना है ? कि गाथा में ऐसा आया है कि व्यवहार को न सेव, ऐसा आया। मुझे यहाँ तो इतना सिद्ध करना है। है सही, सेवनयोग्य नहीं।

दूसरे प्रकार से कहें तो उस व्यवहार को साधक कहेंगे, परन्तु वह साधक बन्ध का कारण है। उसे साधक कहेंगे। साध्य यह कहेंगे और साधक वह कहेंगे, परन्तु वह वास्तविक साधक नहीं। साधक शुद्ध आत्मा परिणमन होता हुआ भगवान आत्मा, वही साधक, शुद्ध का साधक है। आहाहा! समझ में आया ? पूर्ण शुद्ध साधक, पूर्ण शुद्ध साध्य, पूर्ण शुद्ध साध्य अतीन्द्रिय आनन्द का परिणमन साध्य, उसका साधक वीतराग परिणति से परिणमित आत्मा साधक है। विकल्प है, वह व्यवहार साधक है, उसका ज्ञान कराया है। वह तो ज्ञान इसका साधक होने पर स्व-पर का ज्ञान होने पर उसमें यह है, ऐसा ज्ञान आ जाता है। परन्तु निश्चय से उसकी सेवा का निषेध किया है। आहाहा! उसका ज्ञान आ जाता है उसमें। वह तो अपना साधकपना परिणमने से, पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द के साध्य के साधकरूप से होने से, निश्चय का ज्ञान होने से पर का व्यवहार यह विकल्प है, उसका ज्ञान आ जाता है, ज्ञान मात्र, ज्ञान तो यहाँ करने से ज्ञान आ जाता है। समझ में आया ? इसलिए जाननेयोग्य एक रह गया, सेवनयोग्य नहीं। निश्चय से सेवनयोग्य विकल्प नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प व्यवहारनय से साधक व्यवहार से आवश्यक कहा। निश्चय से स्वरूप का शुद्ध परिणमन, वह निश्चय आवश्यक है। बात तो है वह है। वह कहीं बात दूसरी हो जाये, ऐसा नहीं। आहाहा! छह कर्तव्य कहे, वे तो विकल्प के, व्यवहार के, निमित्त के, व्यवहार साधकपने के कथन के उपचार साधन है। वह आवश्यक अर्थात् व्यवहार आवश्यक, व्यवहार से आवश्यक, व्यवहार से उस समय

उस प्रकार के विकल्प की योग्यता हो, आता है, अवश्य आता है, इसलिए आवश्यक। ऐसा। परन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि उससे आत्मा का साध्य सिद्ध हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो परमात्मा के खेल अन्दर के स्वयं के हैं। उस पर के अवलम्बन से अपने खेल पूरे नहीं पड़ते। आहाहा! लोग चिल्लाहट मचाते हैं। अपनी महत्ता भासित नहीं होती। निर्विकल्प समाधि का पिण्ड प्रभु आत्मा। समाधि अर्थात् शान्ति, उसकी ही निर्विकल्प शान्ति की समाधि का परिणमन, वही स्वयं तीर्थ, देव और गुरु है। समझ में आया? कहेंगे, देखो अब।

अपना आत्मा ही तीर्थ है, वहाँ रमण कर,... भगवान आत्मा महान अतीन्द्रिय आनन्द का धाम वर्तमान उसे प्रगट अतीन्द्रिय आनन्द की व्यक्त साध्य के लिये ऐसे परमानन्द आत्मा में रमण कर। समझ में आया? **आत्मा ही गुरु है, उसकी सेवा कर...** है? उसमें लिखा है, देखो! लिखा है या नहीं? **और आत्मा ही देव है, उसी की आराधना कर।** तीन के शब्द बदले। एक में रमण कर, एक में सेवा कर और एक में आराधन कर। अपेक्षा से बात है। समझ में आया? समझ में आया कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। '**मा गच्छ, मा गच्छ मा चिन्तय**' है न? '**मा सेवस्व**' शब्द पड़े हैं, देखो! है न? '**अण्णु जि देउ म चिंति**' अन्य देव, तीर्थ '**मा गच्छ**'। तीर्थ '**मा गच्छ**' और अन्य देव, गुरु '**मा सेवस्व**' ऐसा संस्कृत में तीन शब्द पड़े हैं। ऐई! तीन अलग-अलग पड़े हैं, अलग है न, इसलिए अलग किये हैं न। '**अण्णु जि देउ म चिंति**' अर्थात् रमण कर तुझमें, ऐसा उसमें से निकाला। अन्य देव '**मा गच्छ**' वहाँ न जा, यहाँ कर, तुझमें सेवा कर। समझ में आया? दूसरे की सेवा न कर, गुरु की सेवा कर—तेरे आत्मा की, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- यद्यपि, **यद्यपि...** अर्थात् जो कि **व्यवहारनय से...** यह व्यवहारनय का साधन है निश्चय के साधन काल में विकल्प, उसे साधन कहा है। इसलिए पहले ले गये थे कि सहकारी कारण, बहिरंग सहकारी कारण, उसे साधकरूप से कहा है। जो बाधकरूप से है, मोक्ष का मार्ग नहीं, बन्ध का मार्ग है, अनात्मा है, उसे निमित्तरूप से साधक को साध्य का साधक कहा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। हाँ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, इसमें ही, इसमें ही यथार्थ का भान होकर उसमें यथार्थ विनय का विकल्प आये बिना नहीं रहता, ऐसी बात है। अकेले भान बिना का विकल्प आवे, वह व्यवहार से व्यवहार यथार्थ नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मोक्ष के व्यवहारनय अर्थात् निमित्तरूप से क्या? मोक्ष का स्थानक सम्मेदशिखर, गिरनार आदि जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर देखो! देखो! वे कहते हैं, जिनबिम्ब को देखकर निद्धत, निकाचित कर्म का (नाश होता है)। यहाँ कहते हैं कि वह व्यवहारनय है, भाई! वे कहें, जिनप्रतिमा के (दर्शन से निद्धत, निकाचित कर्म का नाश होता है)। क्या हो इसका अर्थ? यह तो व्यवहारनय की बात की है। निश्चय तो जिनबिम्ब स्वयं उसके दर्शन से निद्धत, निकाचित का नाश होता है। यह क्या अर्थ है? इससे विरुद्ध है वहाँ? धवल में अर्थ किया, वह हमको समझ में आये व्यवस्थित और इसमें नहीं समझ में आये।

यहाँ तो कहते हैं, सम्मेदशिखर, गिरनार और जिनप्रतिमा। चैत्य है न? चैत्य और चैत्यालय दो शब्द पड़े हैं। चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमा और चैत्यालय अर्थात् **जिनमन्दिर आदि तीर्थ हैं, क्योंकि वहाँ से गये महान...** कारण है। अब तीर्थ का वापस न्याय देते हैं। व्यवहार तो सही, परन्तु दूसरा हेतु सिद्ध करते हैं। **वहाँ से गये महान पुरुषों के गुणों की याद होती है,...** यह हेतु है, पाठ में है न, देखो! **'स्मरणार्थं' 'तीर्थभूतपुरुषगुणस्मरणार्थं तीर्थं भवति' 'गुणस्मरणार्थं तीर्थं भवति'** ऐसा कहना है। समझ में आया? उस स्थान में महापुरुषों के गुण के स्मरण का हेतु है, इसलिए उसे व्यवहारतीर्थ कहा जाता है। समझ में आया? देखो! सिद्धान्त भी साथ में रखा इकट्ठा सरस। समझ में आया? **'तीर्थभूतपुरुषगुणस्मरणार्थं तीर्थं भवति'** ऐसे तीर्थ की व्याख्या व्यवहार की, व्यवहार की भी यह है। कोई ऐसा कहता है न कि वहाँ जाकर क्या? गुण स्मरण है न! वहाँ कहाँ

परन्तु ? वह गुण स्मरण है, वह विकल्प है। भाई! गुण स्मरण अर्थात् (निजात्मा का) स्मरण, ऐसा न लेना। वहाँ भी गुण स्मरण होता है, वहाँ भी वीतरागता है, ऐसा नहीं। वह पुरुषों के—परपुरुषों के गुण का स्मरण वह विकल्पात्मक भेद है। आहाहा! तब तो उसे व्यवहार कहा। गुण स्मरण,... ऐसा कि वहाँ, लो! भगवान के दर्शन करने से, प्रतिमा के दर्शन करने से वहाँ तो गुण का स्मरण होता है अनन्त गुण का, तो अनन्त गुण का जैसा आत्मा वीतराग है, वैसा उसे भान होता है। ऐसा नहीं। आहाहा! वहाँ गुण के स्मरणरूप से तीर्थ है, स्मरण होने में वे निमित्त हैं। वह स्मरण है, वह विकल्पात्मक भाव है। समझ में आया ? छोटाभाई! वह तो निमित्त है। विकल्प उठा है। वह निमित्त भी विकल्प यहाँ तो उठा है। वह गुण स्मरण में ऐसा नहीं कि वीतरागता है। ऐसा नहीं। सिद्ध यह करना है यहाँ तो। समझ में आया ?

परगुण के स्मरण में तो विकल्पात्मक भाव है। स्वद्रव्य के आश्रय के अन्तर में एकाकार, वह वीतरागता भाव है। कठिन, जीव को ऐसा पड़ता है न। पंगु अर्थात् मानो कि कोई आधार हो न, तो ठीक पड़े। ऐसा जहाँ बतावे न वहाँ चिपट जाता है अन्दर। तुम्हारी कहाँ बात की है इसमें भी अभी ? दूसरे जीव सामान्य की बात चलती है यह। यह तो एक दूसरी बात है अन्दर। आता है न ? उसमें आया था, गुण स्मरण। वहाँ भगवान के दर्शन में क्या है दूसरा ? गुण स्मरण है। अरे भगवान! सुन न प्रभु! उस गुण स्मरण को तो यहाँ व्यवहार सिद्ध करना है, गुण स्मरण को निश्चय सिद्ध नहीं करना, व्यवहार सिद्ध करना है। समझ में आया ? आहाहा!

देखो न! व्यवहारनय से वह जिनप्रतिमा, मन्दिर, तीर्थ। **वहाँ से गये महान पुरुषों के गुणों की याद होती है,...** यह विकल्पात्मक निमित्त है, विकल्पात्मक निमित्त है, व्यवहार साधक कहलाता है, बन्ध का कारण है, अनात्मभाव है, उसे व्यवहार से साधक कहा जाता है। बहिरंग निमित्त कारण है। कठिन बात लोगों को। समझ में आया ?

वह गुण स्मरण करके क्या सिद्ध किया ? व्यवहार सिद्ध किया कि वहाँ वीतरागता सिद्ध की ? यहाँ तो व्यवहारनय से सिद्ध करना है। समझ में आया ? आहाहा! तो भी ऐसा विकल्पात्मक तीर्थ का निमित्तपना वहाँ हो और विकल्प होने पर भी, **वीतराग**

निर्विकल्पसमाधिरूप छेद रहित जहाजकर... देखो! वीतराग निर्विकल्पसमाधिरूप छेदरहित जहाज जो **संसाररूपी समुद्र के तरने को समर्थ जो निज आत्मतत्त्व है, वही निश्चयकर तीर्थ है,...** देखो! समझ में आया? विकल्प में वह निमित्त है, इसलिए व्यवहार तीर्थ कहा और वह विकल्प है बहिरंग साधन व्यवहार कहा। आहाहा! समझ में आया? वापस ऐसा नहीं कि यह निमित्त है, उसके उपादान में वीतरागपर्याय है और यह निमित्त, ऐसा नहीं। भाई! ऐसा कि निमित्त है तीर्थ, वह निमित्त है और यहाँ वीतराग पर्याय है, ऐसा नहीं। यहाँ विकल्पात्मक स्मरण है, उसमें वह निमित्त है। अर्थात् विकल्पात्मक को निमित्त है, इसलिए उसे व्यवहार तीर्थ कहा जाता है और उसका विकल्पात्मक हुआ, उसे व्यवहार साधन रूप से कहने में आता है। गजब बात! समझ में आया? ऐसा होने पर भी निमित्तरूप से बहिरंग साधनरूप से वह विकल्पात्मक और सामने निमित्त होने पर भी आत्मा भगवान अपने वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप... आहाहा! शान्त प्रभु अपने अवलम्बन को निर्विकल्प शान्ति का ध्यान, ऐसी जो परिणति, वह छिद्ररहित जहाज है, उसमें छिद्र नहीं। समझ में आया? वह विकल्प था, उसमें तो आस्रव आता है, ऐसा कहते हैं। भाई! ऐई! यह कथन पद्धति भी कैसी ली है न! यह तो निर्विकल्प समाधि छिद्ररहित जहाज है। आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वरूप के आश्रय से अवलम्बकर वीतराग निर्मल समाधि शान्ति, वह चौथे गुणस्थान से लेकर, हों! वह सब बात है।

जहाजकर संसाररूपी समुद्र के तरने को... छेदरहित है समाधि, जितनी एकाग्रता है वह। वीतराग परिणति छिद्ररहित है। समझ में आया? आहाहा! है न उसमें देखो न, संस्कृत टीका में सब है, हों! **जहाजकर संसाररूपी समुद्र के तरने को समर्थ जो निज आत्मतत्त्व है,...** भगवान आत्मा परन्तु कैसा आत्मा? कि निर्विकल्पसमाधिरूप परिणत आत्मा, उस आत्मतत्त्व को तीर्थ कहा जाता है। समझ में आया? वह परिणति, निर्विकल्प परिणतिवाला आत्मा तीर्थ, ऐसा कहना है। अकेला द्रव्य तो द्रव्य है। समझ में आया इसमें? तब वह विकल्प भाव स्मरण का, उसमें निमित्त तीर्थ, उसे व्यवहाररूप से कहा जाता है। कहो, एक तीर्थ की व्याख्या हुई।

अब गुरु। **उसके उपदेश-परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है।** गुरु की

व्याख्या है यह सब अब। समझ में आाय? जिसके उपदेश से परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ होता है। निमित्त है विकल्प, वह समझावे इतना, उपदेश, परन्तु उसे छोड़कर अन्दर में सिद्ध परिणति करे, तब मोक्ष का कारण होता है। उनके उपदेश की परम्परा से... विकल्प हुआ, यहाँ ज्ञान हुआ, ज्ञान, फिर यहाँ जब स्वभाव का ज्ञान हुआ, तब उस उपदेश को परम्परा निमित्त कारण कहा जाता है। **परमात्मतत्त्व का लाभ होता है।** दूसरे प्रकार से कहें तो गुरु परमात्मतत्त्व का उपदेश देते हैं, भाई! ऐसा कहा। देखो न, क्या कहा?

जिनके **उपदेश की परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ...** यहाँ परमात्मतत्त्व का लाभ उसकी परम्परा से, परन्तु उन्होंने कहा परमात्मतत्त्व। उन्होंने कहा परमात्मतत्त्व कि अरे! तू परमानन्दस्वरूप परमात्मा है। उसकी सेवना कर। उसका जो उपदेश मिला, उसे व्यवहार विकल्प कहा (जाता है)। व्यवहार विकल्प में वे गुरु निमित्त हैं, (इसलिए) व्यवहार गुरु कहने में आता है। समझ में आया? **इसलिए यद्यपि व्यवहारनयकर दीक्षा शिक्षा का देनेवाला...** इसलिए डालना चाहिए अन्दर। समझ में आता है न? **'यदुपदेशात्पारंपर्येण परमात्मतत्त्वलाभो भवतीति। व्यवहारेण शिक्षादीक्षादायको यद्यपि गुरुर्भवति'** ऐसा है न? **'यद्यपि'**। है न अन्दर **'यद्यपि'**। इसलिए **यद्यपि व्यवहारनयकर दीक्षा शिक्षा देनेवाला दिगम्बर गुरु होता है,...** समझ में आया? **'दायको यद्यपि गुरुर्भवति'**। समुच्चय बात है न। फिर स्पष्टीकरण डालकर दिगम्बर गुरु, ऐसा डाला। समझ में आया? आहाहा!

जिनके उपदेश से परम्परा से परमात्मतत्त्व का लाभ हो, इसका अर्थ कि उस परमात्मतत्त्व का उपदेश किया। उस परमात्म (तत्त्व का) उपदेश किया, उसमें विकल्प में, ज्ञान होने में वह निमित्त थे और उसमें से यहाँ जाकर अपना परमात्मा का ज्ञान करके परमात्मलाभ हो, उसमें वह परम्परा निमित्त कारण कहा गया है। इसलिए उन्हें व्यवहारनय से शिक्षा-दीक्षा के देनेवाले गुरु कहा जाता है। दिगम्बर गुरु है। समझ में आया? यह व्यवहार कहा। तो भी निश्चयनयकर... ऐसा होने पर भी यथार्थ दृष्टि से देखें, सत्, सत् के सत् के स्वभाव से देखें तो **विषय कषाय आदि समस्त विभावपरिणामों के त्यागने के समय...** उन परसन्मुख के विषय शुभाशुभभाव आदि। समझ में आया? कषाय और

परसन्मुख का लक्ष्य। **समस्त विभावपरिणामों के त्यागने के समय...** त्याग के काल में **निज शुद्धात्मा ही गुरु है,...** समझ में आया?

परमात्मप्रकाश में भी परमात्मा ही खड़ा किया है अकेला। निश्चयनय से अर्थात् सच्चे ज्ञान से सत् को देखें तो वह आत्मा स्वयं पर का लक्ष्य छोड़कर कषाय शुभाशुभ विकल्प को छोड़कर। पर का लक्ष्य छोड़कर और शुभाशुभ विकल्प का लक्ष्य, आश्रय छोड़कर। **समस्त विभावपरिणामों के त्यागने के समय...** ऐसा लक्ष्य और विकल्प शुभाशुभ छोड़कर आत्मा के अन्तर में, निज शुद्धात्मा ज्ञायक शुद्ध ध्रुवस्वरूप आत्मा ही उपादेय ऐसा जो परिणमन हुआ, उपादेय यह ऐसा जो परिणमन हुआ, वही आत्मा उसे गुरु कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

विकल्पात्मक में कहा परम्परा। निर्विकल्प समाधि शान्ति शुद्ध भगवान आत्मा महान प्रभु, उसकी जहाँ अन्तर में प्रतीति रुचि के परिणमन में आया, वह परिणमनवाला आत्मा, उसे गुरु कहा जाता है। वह गुरु है, गुरु। उसने आत्मा को समझाया, उस परिणति ने आत्मा को समझाया। आहाहा! समझ में आया? वह आत्मा पकड़ा और उसने जाना, वही गुरु परिणति, दूसरा कौन? वह विकल्प कहाँ पकड़ता है आत्मा को? शिष्य स्वयं। शिष्य यहाँ कहाँ, वह स्वयं का स्वयं शिष्य और स्वयं का स्वयं गुरु। वह स्वयं गुरु और स्वयं शिष्य। निश्चय में भेद है कहाँ? गुरु-शिष्य के भेद निश्चय में कहाँ से आये? आहाहा! गजब बात, भाई! वस्तु ही ऐसी है, है। वस्तु को वस्तुरूप से रखो, वस्तु को वस्तु से बदलो नहीं, बदलो नहीं, बदलो नहीं। समझ में आया? क्या वकील? कानून को कानून प्रमाण रखो। आहाहा! उसमें नहीं कहा? तीर्थ मन्दिर में देव नहीं। वहाँ नहीं देव, देव तो यहाँ है। कहा नहीं? वहाँ नहीं कहा? योगसार में (गाथा ४२) में कहा न। वहाँ तो मूर्ति-चित्राम व्यवहार है। बहुत वहाँ लगे नहीं रहना। वहाँ से कुछ मिले, ऐसा नहीं भगवान के पास, भगवान तो यहाँ बैठा है अन्दर। समझ में आया? यह शुभराग आवे। समझ में आया या नहीं? देव में आयेगा, हों! वह देव में आयेगा न वह तो? वह देव में आयेगा। अब आता है, देखो! समझ में आया?

उसी से संसार की निवृत्ति होती है। किससे? उन **विभावपरिणामों के त्यागने के समय निज शुद्धात्मा...** भगवान आत्मा, वीतराग परिणति से परिणमता आत्मा, वह

संसार के पार का निवृत्ति का कारण वह भाव है, वह भाव है, उदयभाव की निवृत्ति का वह परिणाम कारण है। उदयभाव संसार है न, उसे शुद्धात्म परिणति की निर्विकल्प स्थिरता, वह उदयभाव की निवृत्ति का इस संसार के टालने का उपाय है। समझ में आया? **संसार की निवृत्ति होती है।** उसमें तो विकल्प है। आहाहा! उदय है, बन्ध है, पुण्य-पाप है, अनात्मा है, साधक कहलाता है तो भी। आहाहा! वीतराग की शैली कोई अलौकिक मार्ग है! वीतराग जैसा कहीं (देव नहीं)। पदार्थ नहीं आत्मा जैसा, वीतराग जैसा कोई कथन और देव नहीं। समझ में आया?

ओहोहो! तीन काल, तीन लोक में छँटा हुआ अकेला भगवान आत्मा, वही महान पदार्थ है। उसे कहनेवाले पूर्ण हो गये, वह भगवान वीतराग ही है। दूसरे कोई इस बात को इस प्रकार से कह नहीं सकते। कहो, एक ओर उपदेश करे और कहे कि हमारे सामने देखना नहीं, हमारी सेवा करना नहीं। अरे, गजब प्रभु! तेरी बात वह यह वह! आहाहा! और ऐसा कहे कि सुन, वस्तु सुन! सुन, परन्तु हमारे सामने देखना नहीं। परन्तु क्या कहना है तुम्हारे? गजब की बात है कोई! आहाहा! ऐई!

अरे! वीतराग पूर्णानन्द का नाथ परमात्मा की ध्वनि आयी है न। कहते हैं, अरे! आत्मा सुन! परन्तु हमारे सामने देखना नहीं, परन्तु सुनने में तुम्हारे सन्मुख देखे बिना हमारे सुनना कैसे? परन्तु यह सुनने में ऐसा विकल्प तुझे आया, उसमें ऐसा ले कि, तेरे अन्तर में जाने का है, तुझे इस ओर रहना नहीं है। आहाहा! जमुभाई! आहाहा! यह वस्तु की स्थिति है, ऐसा बताते हैं। वाणी भी ऐसी ही आवे। आहाहा! वे कहे, दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता। अरे! भगवान! सुन तो सही। दिव्यध्वनि ऐसा कहती है कि हमारे सन्मुख देखने से तुझे लाभ नहीं होगा, ऐसा दिव्यध्वनि कहती है। आहाहा! समझ में आया? दिव्यध्वनि ऐसा कहती है, हमको सुनने के लक्ष्य से तुझे आत्मा का लाभ नहीं होगा। आहाहा! यह वह कुछ बात है! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसे सुन! '**सुणह**' आता है न? व्याख्या की है। दो गाथायें रखी हैं न? क्या कहलाता है? जयधवल। जयधवल में एक गाथा आती है। सुणो! एक शब्द का फिर बहुत विस्तार किया। मूल गाथा है न मूल गाथा। '**सुणह**' मूल ठेठ की परम्परा की ऊँची गाथा। '**सुणह**'! फिर इसकी व्याख्या कि यह बात सुन कि जो सुनाते हैं कि

वीतराग आत्मा में तू जा, ऐसा सुन। आहाहा! समझ में आया? ... है न भाई! नहीं गाथा? उसमें आता है। एक बड़ी गाथा है न। '**सुणह**' का फिर विस्तार किया है। मूल शब्द एक-एक का अर्थ किया है। जयधवल। समझ में आया? ओहोहो! भाई! करने का तो यह है, यह हमारे कहने का है, कहते हैं। आहाहा! कहने का है यह, करने का है वह कहने का है। समझ में आया? कहो, तीर्थ का आ गया, गुरु का आ गया। अब रहे देव।

यद्यपि प्रथम अवस्था में चित्त की स्थिरता के लिये... शुभ विकल्प अशुभ में से हटने के (लिये आता है)। जरा शब्द सुधारा हुआ था तब। '**तीर्थंकरपुण्यहेतुभूतं साध्यसाधकभावेन**' इतना शब्द डालना। इस शब्द का अर्थ ही पड़ा रहा है। समझ में आया? फिर बात रखी है किस प्रकार? विशिष्टता तो देखो एक! कि सविकल्प अवस्था प्राथमिक अवस्था में जब अभी विकल्प में वर्तता है, ऐसे निर्विकल्प अन्दर है दृष्टि और ज्ञान आदि, तथापि विकल्प उठा है, तब वह उसकी अवस्था। प्राथमिक अवस्था में अर्थात् सविकल्प अपेक्षा से '**चित्तस्थितिकरणार्थं**'। चित्त को स्थिर करने के लिये। परन्तु यह भी क्या? कि '**तीर्थंकरपुण्यहेतुभूतं**' भाई! क्या कहा? परन्तु वापस वह विकल्प भी यह है, तीर्थंकरपुण्य का हेतु। यह भाव यहाँ और... समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि, वह विकल्प जो उठा है, वह तीर्थंकरपुण्य का हेतु है। समझ में आया? वह '**साध्यसाधकभावेन**'। वह विकल्प है, वह साधक है, साधक है। व्यवहार साधक हों! '**परंपरया निर्वाणकारणं**' है न यह तो इसमें है। देखो! यह **व्यवहारनयकर जिनप्रतिमादिक देव कहे जाते हैं,...** यह '**तीर्थंकरपुण्यहेतुभूतं साध्यसाधकभावेन**' ऐसा। **और वे परम्परा से निर्वाण के कारण हैं,...** यह परम्परा से निर्वाण का कारण कहा जाता है। वह तीर्थंकर प्रकृति का हेतुभूत साधकभाव। तीर्थंकर प्रकृति नहीं ली, हों! यहाँ साधक में। समझ में आया भाई इसमें? तीर्थंकरपुण्य के भाव को साधक में लिया है। तीर्थंकर प्रकृति बँधती है, उसका जो विकल्प, उसे व्यवहार साधकरूप से गिना है। आहाहा! बात वह भी ऐसा कहते हैं विकल्प। उसका जोर कितना है! तीर्थंकरपुण्यहेतुभूत कहा है न? निमित्त साधकभावेन।

'**परंपरया निर्वाणकारणं**' परम्परा निर्वाण का कारण है। वह विकल्प, हों! और

फिर भले प्रकृति कहो। समझ में आया? सब परम्परा निमित्त कारण (कहलाते हैं)। जिनप्रतिमा आदि भी परम्परा निमित्तकारण, विकल्प परम्परा निमित्त कारण, प्रकृति बन्ध भी परम्परा निर्वाण। '**व्यवहारेण देवा भण्यते**' इस अपेक्षा से जिनप्रतिमा आदि... समझ में आया? व्यवहार से देव कहा जाता है। आहाहा! गजब व्यवहार और निश्चय की सन्धि है यह। अलौकिक बात है, अलौकिक बात! बापू! आहाहा!

पहली अवस्था, वापस ऐसा नहीं लेना पहली अवस्था अर्थात् चौथे, पाँचवेवाले का, बाद की अवस्था अर्थात् आठवेंवाला। परन्तु इसमें हेतु है हेतु। तीर्थंकरगोत्र पहले चौथे से बँधता है, ऐसा मेरा कहना है। आठवें में तो फिर बन्द हो जाता है। भाई! इसलिए तीर्थंकर प्रकृति के हेतुभूत लिया है, इसलिए कोई ऐसा कहे कि नीचे तो यह और ऊपर दूसरा कुछ, निश्चय ऊपर—ऐसा नहीं है। जहाँ तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध शुरु होता है चौथे से। आठवें के अमुक भाग तक, बस। फिर बन्द हो जाता है। समझ में आया? बहुत विशिष्टता से बात डाली है देव में। आहाहा!

कहते हैं, पहले विकल्प में शुभभाव में जो तीर्थंकर पुण्य का हेतु, उस साधकभाव से ऐसी प्रकृति की रागादि और जिनप्रतिमा आदि को देव कहा जाता है। क्योंकि वह तीर्थंकरप्रकृति का हेतु है, वह प्रतिमा आदि। निमित्त है न? विकल्प भी तीर्थंकरप्रकृति का हेतु है और वह भी निमित्त है। इसलिए उसे व्यवहार से प्रतिमा को, जिन को, मन्दिर को... समझ में आया? देव कहा जाता है। समझ में आया? उसमें डाला था न? दो डाले थे न? चैत्य चैत्यालय तीर्थ में डाला था। चैत्य चैत्यालय तीर्थ में डाला था। यहाँ उसे एक देवरूप से भी कहा जाता है, हों! देव आते हैं न? नौ देव बाह्य। नौ देव नहीं आते? नौ देव आते हैं, भाई! ऐसा यह चैत्यालय से (लेकर) सब देव हैं। देव कहलाते हैं न? पाँच परमेष्ठी, वाणी ... देव कहलाते हैं। वह देव व्यवहार से देव है। तीर्थंकरप्रकृति के पुण्य के हेतुरूप से, निमित्तरूप से है इसलिए। बहिरंग अर्थात् निमित्त साधन कहा जाता है। परन्तु कहा तो पुण्य का हेतु। बन्ध का कारण कहा न? बस! सिद्ध कर दिया वहाँ। वह साधक भाव है, वह बन्ध का कारण सिद्ध करना है यहाँ वापस। वहाँ आत्मा कहा था, यह अनात्मा कहा था, यहाँ बन्ध सिद्ध किया। वहाँ बहिरंग साधन कहा था,

उससे ऐसा होता है, ऐसा कहा था, साध्य-साधक कहा था। यहाँ उसे बहिरंग का यह बन्धभाव है, ऐसा सिद्ध किया है। व्यवहार भाव बन्धभाव है। समझ में आया?

और वह भी बात तीर्थंकरप्रकृति के हेतुभूत की पूरी बात ली है। ऊँचे में ऊँचा पुण्य, ऐसा। इतने पुण्य की तो क्या बात करनी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह विकल्प... निमित्त पड़ता है, इसलिए उसे भी देव कहा गया है और तीर्थंकरप्रकृति का निमित्त है, परन्तु वह बन्ध का निमित्त है, बन्ध का निमित्त है। उसे व्यवहार से साधक कहा जाता है। आहाहा!

तथापि... ऐसा। ऐसा होने पर भी, ऐसा हो तो भी, निश्चयनयकर वस्तुस्थिति से स्व के तत्त्व की दृष्टि से देखें तो **परम आराधन योग्य,...** परम सेवनयोग्य, परम आराधना (योग्य)। देव में आराधने (योग्य) कहा था न? देव में आराधन कहा था, गुरु में सेव कहा था, तीर्थ में रमण कहा था। ओहोहो! परन्तु गजब टीका की है! पाठ में जो देखा है न, वह बात की है। उसमें तो नकार किया है। **'अप्पा विमलु मुएवि'।** आत्मा निर्मलानन्द भगवान को छोड़कर अन्यत्र न जा। वे तो निषेध करते हैं। परन्तु है, उसका निषेध करते हैं। समझ में आया? उसमें रह नहीं सकता, इसलिए ऐसा भाव होता है, परन्तु वह जानेयोग्य नहीं। आहाहा! गजब बात है! वे कहे व्यवहार का निषेध हो जाता है, व्यवहार का निषेध (हो जाता है)। यहाँ तो व्यवहार का निषेध करते हैं, सुन न अब। इनकार ही किया, नहीं जाना। सुन न अब। **'तित्थु म जाहि अण्णु जि गुरुउ म सेवि अण्णु वि देउ म चिंति'।** तीन शब्द पड़े हैं न पाठ में, अलग-अलग शब्द पड़े हैं। अन्य तीर्थ में न जा, भगवान आत्मा के तीर्थ को सेव। अन्य गुरु को न सेव। समझे न? इसमें रमण कर। अन्य चिन्तवन नहीं कर अर्थात् दूसरे का आराधन न कर, आत्मा का आराधन कर। ले। यह तो किसे (कहते हैं)? यह पंचम काल के मुनि हैं, पंचम काल के जीव के लिये कहते हैं या चौथे काल के लिये कहते हैं? पंचम काल है न, यह तो मुनि पंचम काल के हैं। योगीन्द्रदेव। पंचम काल, यह पंचम काल है न, काल है। उसे तो कहते हैं। न जा। यह क्या कहते हो तुम? हाय... हाय! हमारा व्यवहार नाश हो जाता है। सुन न अब, व्यवहार नाश होगा तो अन्दर (निश्चय में) जायेगा। तुझे दिक्कत क्या है? चिल्लाहट किसलिए मचाता है? जो करने का है, वह होगा, व्यवहार नाश होगा तो

करने का यह होगा। चिल्लाहट मचाता है। यही सब मान लिया है न! आहाहा! ऐसी चीज़, वह चीज़ पूरी परन्तु पूरा नाथ अनन्त गुण का पिण्ड पूर्ण। अनन्त परमात्मा जिसके गर्भ में पड़े, ऐसा भगवान पूरा आत्मा, अनन्त परमात्मा का रूप, वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि वास्तव में तो **परम आराधने योग्य वीतराग निर्विकल्प परमसमाधि के समय...** देखो! वह विकल्प छूट जाता है न, इसलिए 'उस समय' लिया है। **निज शुद्धात्मभाव ही देव है,...** समझ में आया? भगवान आत्मा निर्विकल्प समाधि के काल में निज शुद्धात्मा देव, ऐसा। इसके बिना नहीं। परिणमन होकर ऐसे निर्विकल्प शान्ति, निर्विकल्प आनन्द के परिणमन काल में यह आत्मा देव है। दिव्य का देव तो तू है। ओहोहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करावे कौन? होता है। विकल्प होता है, परन्तु वह वास्तव में कर्तव्य नहीं। उसकी मर्यादा इतनी है। वह तो स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, इसलिए ऐसा भाव आता है। अब उसे करना है न, इसलिए खटकता होगा।

मुमुक्षु : वह कहाँ इसके करने से होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किया था कब कि होता होगा तुम्हारे यहाँ? सौ वर्ष से पड़ा है। कितने वर्ष हुए? सौ हुए या नहीं? १६ में। ... उसके रजकण का दल खड़ा होना होगा, उसे करे कौन और रोके कौन? सब बातें समझने जैसी हैं। भाव विकल्प हो, परन्तु इससे वहाँ होता है? आहाहा! वह विकल्प पुण्यबन्ध का कारण है। आता है पाप से बचने को, परन्तु वह निश्चय से सेवनयोग्य नहीं। यहाँ तो निश्चय से बात है या नहीं? व्यवहार से है, व्यवहार है, व्यवहार है। यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहार वह निषेध करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? मार्ग भाई! यह तो वीतरागी तत्त्व है आत्मा। उसका मार्ग ही वीतराग परिणति होता है, राग परिणति, वह मार्ग है ही नहीं। आहाहा! इस शुभराग से क्षायिक समकित। भगवान! परन्तु तूने किस प्रकार से मिलाया? किस प्रकार से मिलाया? कैसे बैठी उसे यह बात?

अन्य नहीं। ठीक! पाठ में है सही न! वह दूसरा देव नहीं। समझ में आया? जिनप्रतिमा से लिया है न। भगवान साक्षात् तो हैं नहीं अभी। साक्षात् देव भगवान है नहीं, इसलिए जिनप्रतिमा से बात ली है। वह भी व्यवहार लिया जिन, जिन तीर्थंकर हो ऐसा। अरे... गजब बात की है न! उस विकल्प में वह निमित्त कैसा? तीर्थंकर हो, ऐसा भाव। यह भगवान स्वयं वीतरागस्वरूप है आत्मा, उसमें रह नहीं सकता, इसलिए ऐसा भाव होता है, तथापि कहते हैं कि वह सेवनयोग्य नहीं। आहाहा! गजब बात है या नहीं? वह कहे कि तीर्थंकरगोत्र के भाव सेवनयोग्य हैं, भावना करनेयोग्य हैं। सोलह तीर्थंकर भावना, वह तो आस्रव है, बन्ध का कारण है। समझ में आाय?

इस प्रकार निश्चय व्यवहारनयकर... इस प्रकार से आये न छह बोल। तीर्थ, देव और गुरु, व्यवहार और निश्चय। दूसरी भाषा से कहें साधक और साध्य। बहिरंग कारण और अन्तरंग कारण। शुद्ध परिणति अन्तरंग कारण, विकल्प बहिरंग कारण। यह **निश्चय-व्यवहारनयकर साध्य-साधक-भाव से...** साध्य-साधक-भाव। साधक, वह विकल्प है निमित्त अथवा बाहर की चीज़। समझ में आया? **तीर्थ, गुरु, देव का स्वरूप जानना चाहिए।** तीर्थ, गुरु और देव का इस प्रकार से स्वरूप जानना चाहिए। कहो, परमार्थ धर्म नहीं, व्यवहार धर्म पुण्यरूप से है। मन्दिर-बन्दिर हो गये हैं न अब! अरे, भगवान! यह तो वस्तु तो वह की वह है। जब ... तो एक ही है। हो गये, नहीं हो गये यह कौन करता है उन्हें?

यहाँ तो कहते हैं, इस प्रकार से **निश्चय और व्यवहारनयकर साध्य-साधक भाव से तीर्थ, गुरु, देव का स्वरूप जानना चाहिए।** यह साधक को बहिरंग साधक कहा। समझे? अनात्मा कहा, व्यवहार कहा, उसे बन्ध का कारण कहा, उसे ही मोक्ष का साधक व्यवहारनय से कहा जाता है। बात वह बात, वीतराग के तत्त्व की (बात) लोगों को कठिन पड़ती है। वाद-विवाद करे सो अन्धा। वाद-विवाद क्या? यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है वहाँ। **निश्चयदेव, निश्चयगुरु, निश्चयतीर्थ निज आत्मा ही है,...** लो! सच्चा देव, सच्चा गुरु, सच्चा तीर्थ, वह आत्मा है। निश्चय अर्थात् सच्चा, ऐसा। वह उपचारिक व्यवहार।

वही साधने योग्य है,... भगवान आत्मा वह श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से सेवनयोग्य

है। **साधने योग्य है, और व्यवहारदेव जिनेन्द्र...** लो! **तथा उनकी प्रतिमा,...** अब इसमें लिया। उसमें प्रतिमा था। **व्यवहारगुरु महामुनिराज, व्यवहारतीर्थ सिद्धक्षेत्रादिक ये सब निश्चय के साधक हैं,...** निश्चय के निमित्तरूप से साधक, व्यवहार साधक, व्यवहार साधक कहा जाता है। उसके बदले यह साधक और वह साध्य हो गया, जाओ। **इसलिए प्रथम अवस्था में आराधने योग्य हैं।** अर्थात् वीतरागता न हो तब, वह विकल्प होता है, उसका नाम प्रथम अवस्था। वीतरागता हो, तब वह सेवनयोग्य नहीं। **तथा निश्चयनयकर ये सब पदार्थ...** वे सब पदार्थ कहे न पर। **उनसे साक्षात् सिद्धि नहीं है,...** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा से। '**ज्ञातव्य**' इतना है यहाँ तो। परम्परा फिर ऊपर आ गया। यहाँ '**निश्चयव्यवहाराभ्यां साध्यसाधकभावेन तीर्थगुरुदेवतास्वरूपं ज्ञातव्यमिति**' बस इतना है। इसकी व्याख्या की है इतना। **तथा निश्चयनयकर ये सब पदार्थ हैं, इनसे साक्षात् सिद्धि नहीं है, परम्परा से है।** ऐसा। सबका स्पष्टीकरण किया। साक्षात् नहीं। परम्परा का अर्थ निमित्त है, उसे व्यवहार से परम्परा कहा जाता है। क्योंकि उसका अभाव होकर फिर वीतरागता विशेष होगी।

यहाँ श्री परमात्मप्रकाश अध्यात्मग्रन्थ में निश्चयदेव, गुरु, तीर्थ अपना आत्मा ही है,... भगवान अपना आत्मा यह... परन्तु पहले से ... वह तो विकल्प होता है तब। ऐसे प्रथम अर्थात् विकल्प हो तब ... ऐसा कहते हैं। **उसे आराधनाकर अनन्त सिद्ध हुए...** उसका आराधन करके अनन्त सिद्ध हुए। समझ में आया? **और होवेंगे,...** भविष्य में भी इसी प्रकार से अनन्त सिद्ध होंगे। **ऐसा सारांश हुआ।** यह तात्पर्य निकाला इसमें से। समझे न? निकाले न। ... उसमें से तात्पर्य निकाला। भावार्थ निकालना चाहिए न। यह तात्पर्य है। लो! एक गाथा हुई, दूसरी गाथा आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ७, मंगलवार, दिनांक - ३०-११-१९६५
गाथा - ९६-९७ प्रवचन - ६४

गाथा - ९६

परमात्मप्रकाश-९६ गाथा। **आगे निश्चयनयकर आत्मस्वरूप ही सम्यग्दर्शन है—** देखो यह गाथा। आत्मा का स्वभाव ही, स्वरूप ही सम्यग्दर्शन है। एक सम्यक्, इसके अतिरिक्त सब व्यवहार है।

९६) अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु।
एक्कु जि जोइय झाइयइ जो तइलोयहँ सारु॥ ९६॥

अन्वयार्थ :- केवल (एक) आत्मा ही सम्यग्दर्शन है,... देखो! भगवान आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्दस्वरूप का अन्तर अनुभव में प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वरूप है। समझ में आया? आत्मा वस्तु से अनन्त गुण शुद्धस्वरूप, उसके सन्मुख का स्वआश्रय... सम्यग्दर्शन आत्मा कहा है न यहाँ? आत्मा जो स्व वस्तु अखण्ड पूर्णानन्द, उसके आश्रय से प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन, वह आत्मा ही स्वरूप से सम्यग्दर्शन है। उसे ही निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं और वही सम्यग्दर्शन है, ऐसा। दूसरा सम्यग्दर्शन नहीं। **दूसरा सब व्यवहार है...** समझ में आया? दूसरे प्रकार से सबको व्यवहार कहा जाता है। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, वह स्व-पर भेद करने की श्रद्धा, ऐसा। भेद है न विकल्प और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उन सबको व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया? यह तत्त्वार्थश्रद्धान जो कहा, वह इस आत्मा के सम्यग्दर्शन में आ जाता है। समझ में आया? निश्चय आत्मा का दर्शन, उसमें तत्त्वार्थश्रद्धान आ जाता है, निश्चय तत्त्वार्थश्रद्धान, हों! समझ में आया? **इसलिए हे योगी! एक आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** शुद्ध अनन्त आनन्दकन्द प्रभु का ही अन्तर्मुख ध्यान करनेयोग्य है। करनेयोग्य हो तो यह करनेयोग्य है। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, उसे भी यहाँ विकल्पात्मक गिनकर व्यवहार कहा। नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा विकल्पात्मक कहकर

व्यवहार कहा। समझ में आया?

पर की अपेक्षा से भिन्न पड़ा हुआ तत्त्व, ऐसी दो अपेक्षा आयी, इसलिए उसे भी यहाँ अपेक्षा से—भेद की अपेक्षा गिनकर उसे भी व्यवहार कहा। एक आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर में, अनुभव में, भान में उसके आत्मा के अन्तर ज्ञान में जो प्रतीति (हो), वह आत्मदर्शन, आत्म सम्यग्दर्शन एक ही है। समझ में आया? **'यः त्रैलोक्यस्य सारः' जो कि तीन लोक में सार (आत्मा) है।** तीन लोक में सार आत्मा है। समझ में आया? अन्य पदार्थ के विकल्पात्मक वह कुछ सार नहीं। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण वस्तु शुद्ध चैतन्य, वह त्रिलोकसार—तीन लोक का सार, उसका अन्तर में उसकी ओर का आश्रय करके निर्विकल्प शान्ति, श्रद्धा आदि प्रगट करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया? भावार्थ।

यह प्रश्न चर्चित हुआ है मोक्षमार्गप्रकाशक में ३२४ पृष्ठ पर है सब। ऐसा कि किसी जगह स्व-पर के (भेद श्रद्धान को) समकित कहा, कहीं आत्मा को कहा, कहीं तुम तत्त्वार्थश्रद्धा को कहते हो, कहीं देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को कहा। भाई! वहाँ तो ऐसा कहकर अकेला यह हो तो यह चारों यथार्थरूप से होते हैं। यथार्थ एक हो तो चारों उसमें होते हैं। वरना आत्मा की अपेक्षा से उसे निश्चय गिनकर, उसे सम्यग्दर्शन कहा है, बाकी दूसरे को व्यवहार कहा गया है।

भावार्थ :- वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव, आत्मतत्त्व का... एक शब्द। यह आत्मतत्त्व कैसा है, इसकी व्याख्या। यह भगवान आत्मा, यह आत्मा वस्तु वीतराग आत्मा है। उसमें बिल्कुल पुण्य-पाप का राग वस्तु में—आत्मतत्त्व में नहीं। जिसे आत्म पदार्थ कहते हैं, वस्तु कहते हैं, वह वीतराग है, उसमें कोई रागादि दोष वस्तु-पदार्थ में नहीं। और चिदानन्द है। वह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। समझ में आया? ऐसा अखण्ड स्वभाव, एक स्वभाव, ऐसा कहना है वस्तु। पदार्थ वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव, ऐसा कहकर आत्मतत्त्व ऐसा है—ऐसा वर्णन किया। समझ में आया?

एक अखण्ड अर्थात् एक वस्तु। उसमें खण्ड नहीं। निर्दोष भगवान चिदानन्द गुणसम्पन्न एक स्वभाव ऐसा आत्मतत्त्व, ऐसा आत्म पदार्थ, उसका **सम्यक् श्रद्धान...**

ऐसा भगवान आत्मा, उसका सम्यक् श्रद्धान, वह निश्चय सम्यग्दर्शन—सत्य दर्शन। सम्यग्ज्ञान ऐसा भगवान वीतराग आत्मा, हों! अपना वीतरागस्वभाव चिदानन्द एक स्वभावी प्रभु अखण्ड है न, उसमें खण्ड वस्तु में कहाँ है, उसका सम्यग्ज्ञान, उसे सच्चा ज्ञान कहा जाता है।

उसका **अनुभवरूप...** यह चारित्र। सम्यक् अनुभव—यह शुद्ध वीतराग चिदानन्द ज्ञानानन्द अखण्ड एक स्वभाव, उसका अनुभव—अन्दर में स्थिरता, उस स्वरूप को अनुसरकर स्थिरता, रमणता कि **जो अभेदरत्नत्रय...** जो अभेदरत्नत्रय है। आत्मा के साथ जो पर्याय अभेद है, एक है—ऐसा अभेदरत्नत्रय। वह रत्नत्रय, वह पर्याय है। पहले कहा वह तत्त्व, वह आत्मा है। **वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव, आत्मतत्त्व...** यह द्रव्य कहा। द्रव्य वस्तु, उसकी **वह सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुभवरूप जो अभेदरत्नत्रय वही जिसका लक्षण है,...** वह पर्याय है। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश है न, इसलिए आत्मतत्त्व अर्थात् परमात्मप्रकाश, परमात्मा, परमात्मा स्वयं द्रव्य। ऐसे परमात्मा की अन्तर्मुख निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान और निश्चय स्वरूप रमणता, वह अभेदरत्नत्रय, वह पर्याय जिसका लक्षण है, जिसका वह लक्षण है, ऐसी **मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तिरूप समाधि में लीन...** अर्थात् उस क्षण विकल्प, मन के सम्बन्ध को छोड़कर; वाणी, देह का लक्ष्य तो छूट गया परन्तु मन का सम्बन्ध छूटकर अर्थात् त्रिगुप्ति हो गयी। स्वरूपसन्मुख में वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव में एकरूप श्रद्धा, ज्ञान और चारित्ररूप परिणति अन्दर होना, वह त्रिगुप्ति सहित है। ऐसे मन, वचन और काया तीन गुप्त हो गये। समझ में आया? ऐसी शान्ति, ऐसी जो आत्मा की पर्यायरूप शान्ति, अभेदरत्नत्रयरूप निर्विकल्प अनाकुल शान्ति, उसमें जो लीन, वह **निश्चयनय से...** यह निश्चयनय अर्थात् यथार्थ—सत्य दृष्टि से, **निज आत्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,...** यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? देखो! यह अभेदरत्नत्रय मुनि को छठवें गुणस्थान में भी होता है। छठवें-सातवें में, छठवें-सातवें में। समझे न? यह मुनिपने की मुख्यता से बात की है न! और इस सम्यग्दर्शन को निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन चौथे में निश्चय है, परन्तु चारित्रवाला नहीं, इसलिए इसे अभेद निश्चय सम्यग्दर्शन चौथे का, है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,

स्वरूपाचरण मोक्ष का मार्ग, परन्तु उपचार से मोक्षमार्ग कहा वहाँ। क्योंकि अभी चारित्र की स्थिरता सम्मिलित नहीं, इतनी बात है। बाकी है तो वह भी निश्चय। यहाँ तीन की विशेषता चारित्रसहित की लेकर (कहते हैं कि).... समझ में आया?

निश्चयनय से निज आत्मा ही निश्चयसम्यक्त्व है,... भगवान आत्मा चिदानन्द निर्दोष स्वभाव का पिण्ड प्रभु परमात्मा वस्तु, उसकी अन्तर में अनुभूतिसहित की प्रतीति, सम्यग्ज्ञान और स्थिरता, यहाँ इतना अस्ति से कहा, वह त्रिगुप्ति कहा। मन, वचन और काया का विकल्प का गुप्तपना अर्थात् छूट गया है। समझ में आया? और शान्ति में लीन है, ऐसी अभेदरत्नत्रयरूपी परिणति वह शान्ति है। सम्यग्दर्शन निश्चय शान्ति है, सम्यग्ज्ञान आत्मा का, वह शान्ति है, चारित्र की अनुभव लीनता, वह भी शान्ति। उस शान्ति में लीन है, वह **निश्चयनय से निज आत्मा ही...** इस प्रकार आत्मा ही सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : प्रयोग हो तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : हो तब और क्या? तब कब? उस परिणतिरूप से परिणमे, तब सम्यग्दर्शन है। वस्तु तो वस्तु है अनादि से। समझ में आया? वस्तु तो अनादि की है, ऐसे पुण्य और पाप और ऐसे यह विकल्प और यह मेरे, उसमें माना, वह सब मिथ्यादृष्टिपना है। सम्यग्दर्शनपना पूर्णानन्द प्रभु अन्तर में सम्यक् श्रद्धा, निश्चय सम्यक् स्व के आश्रय से हुई अभेद श्रद्धा आत्मा की, अभेद ज्ञान, अभेद चारित्र—ऐसा शान्तिरूप परिणमन, ऐसा आत्मा ही निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें कहीं .... आवश्यकता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी की कुछ आवश्यकता है ही नहीं, किसी की कुछ आवश्यकता ही नहीं। हमारे कोई काम नहीं, उसमें आता है न, प्रवचनसार में आता है। नहीं आता? अन्य कुछ कार्य नहीं। नहीं? कुछ कार्य है ही नहीं, हमारे यही (काम है)। अन्य कुछ कार्य नहीं, ऐसा कहीं आता है। (प्रवचनसार गाथा) २०० में आता है। **मैं यह मोक्षाधिकारी ज्ञायकस्वभावी आत्मतत्त्व के परिज्ञानपूर्वक (और) ममत्व के त्यागरूप निर्ममत्व के ग्रहणरूप विधि द्वारा सर्व उद्यम से शुद्धात्मा में प्रवर्तता हूँ, शुद्धात्मा में प्रवर्तता हूँ। क्योंकि अन्य कृत्य का अभाव है अर्थात् दूसरा कुछ करनेयोग्य**

नहीं है। समझ में आया? लो! भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्दमूर्ति परमानन्द का नाथ परमात्मा, स्वयं परमात्मा, हों! वस्तु परमात्मा। उसका एकाकार अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक ही करनेयोग्य है। क्योंकि अन्य कृत्य का अभाव है, ऐसा कहते हैं। देखो! संस्कृत है यह। दूसरा कार्य करनेयोग्य है नहीं। यह पर का कब करना उसमें? पर का तो कर सकता नहीं, तीन काल में एक रजकण को बदल नहीं सकता। जड़ की पर्याय आत्मा तीन काल में नहीं कर सकता। यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प का कर्तृत्व नहीं और व्यवहार सम्यग्दर्शन आदि का भी कर्तृत्व नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

आत्मा, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं, लोग मानते हैं, वह सब नहीं। भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहा जो यह आत्मा, यह आत्मा अर्थात् कि निर्दोषस्वरूप भगवान चिदानन्द की मूर्ति आत्मा है। अकेला ज्ञान और आनन्द ही जिसमें परिपूर्ण भरा है और वह एकरूप वस्तु भगवान आत्मा है। ऐसा भगवान तीर्थंकर ने इस आत्मा को देखा है। सब आत्मा को ऐसा देखा है। वे भगवान ऐसा कहते हैं कि ऐसा जो आत्मा तेरा पूर्ण वीतरागस्वरूप है वस्तु, वस्तु, वर्तमान वस्तु वीतरागस्वरूप है। पर्याय में फिर। वस्तु में कब दोष अन्दर थे? वह अखण्डानन्द प्रभु आत्मा पूर्ण निर्दोष आनन्दकन्द प्रभु की अन्तर्मुख में अनुभव में उसका सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वह अभेदरत्नत्रय, उसमें परिणमित आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन है, ऐसा कहना है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : केवलज्ञान होने से पहले यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह केवलज्ञान की कहाँ बात है? यहाँ तो छठवें गुणस्थान, चौथे की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब समाहित हो गया। यह तो सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान श्रावक होने से पहले। यह वाड़ा के श्रावक की बात नहीं। वे श्रावक कब थे?

यह आत्मा वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो वीतराग चिदानन्द अखण्ड एक

स्वभाव यह वस्तु देखी है। वह यहाँ परमात्मा स्वयं ही परमात्मा है, वस्तु से, शक्ति से, सत्त्व से, तत्त्व से, द्रव्य से। ऐसा जो आत्मा परिपूर्ण भगवान उसके सन्मुख देह, वाणी, मन, क्रिया नहीं, दया, दान, विकल्प नहीं, व्यवहार नौ तत्त्व की व्यवहार के श्रद्धा के विकल्प नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग नहीं, वह सब पुण्य है, उससे रहित अन्दर स्वरूप सन्मुख में, अन्तर स्वरूप अनुभव कर स्थिरता में, ज्ञान में जो निश्चय वह आत्मा अनुभव, वह आत्मा है, ऐसी श्रद्धा होना, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा मोक्ष का मार्ग उसे कहते हैं। आहाहा! सुना न हो कभी कितनों ने तो। क्या होगा यह? भगवानभाई! वाडा में कितने वर्ष बिताये हों। मनसुखभाई! अनन्त भव... इस भव में तो अब सब बहुत ही... चला है न सब। आहाहा! कहते हैं, आत्मा... समझ में आया?

यह आत्मा, देखो! सर्वज्ञ परमात्मा भगवान कहते हैं, तत्प्रमाण यह सन्त कहते हैं। यह वस्तु आत्मा अर्थात् वस्तु अर्थात् कि ज्ञानानन्द अर्थात् कि निर्दोष ज्ञानानन्द ऐसी एकरूप आत्मा की वस्तु है, उसका अन्तर्मुख में अनुभव होकर जो आनन्दकन्द है, ऐसा अनुभव होना, समें उसका ज्ञान होना, उसमें लीनता होना, ऐसी अभेदरत्नत्रयरूप परिणति से परिणमित आत्मा, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? कहो, प्रेमकरणजी! सुना है कभी? धन्धा आदि में कहाँ निवृत्ति मिलती है? यह वीतराग ऐसा कहते हैं। बाहर से अकेला क्रियाकाण्ड करना और यात्रा, पूजा, व्रत, और नियम, यह सब विकल्प राग; वह सम्यग्दर्शन नहीं, वह धर्म नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह बराबर है, परन्तु यह करते-करते होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में करते-करते होगा? राग करते-करते होता होगा? समझ में आया? यहाँ तो पुण्य-पाप के विकल्प से पार जाकर, समझ में आया? गहरे... गहरे... गहरे... कल एक विचार नहीं कहा था वह? चिरोडी उड़े-उड़े पकती है न अच्छी? उसमें यह विचार आया था। यह कुण्डला में नहीं चिरोडी? बहुत ऊँची। बहुत उड़े जाये और ऊँची पकती है। चिरोडी समझते हो? चिरोडी पत्थर होता है, सफेद पत्थर चिरोडी का। सफेद पत्थर यहाँ कुण्डला में निकलता है। बहुत गहरा। इनका पुत्र निकालता है न, गहरा-गहरा करके। जैसे गहरे-गहरे जाये वैसे ऊँची-ऊँची निकलती है। हमने देखा है, हम गये थे न वहाँ। ऊँची निकले। सफेद। फिर उसका

आटा करके लश्कर के पुलिस को खिलावे। बहुत ऊँचे कसवाली चिरोडी। सफेद गोरे पत्थर। मक्खन जैसे टुकड़े हमको बताये थे, वहाँ हम गये तब। अब कहते हैं, गहरे गये हैं तो अधिक निकलती है। इसी प्रकार यहाँ गहरे जाये...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये तो धूल अब, वह तो नसीब में हो ऐसे आवे। कहो, समझ में आया? आवे उसमें आत्मा को क्या? धूल आवे पाँच, पच्चीस लाख, उसमें आत्मा को क्या? साहूकार कहलाये जगत में सोजिश का। मर जाने के लिये है। हम पैसेवाले और हम यह धूलवाले। तू पैसेवाला है? यहाँ तो कहते हैं कि तू आनन्द, ज्ञानवाला है। लो! यहाँ क्या कहा? कहा या नहीं? वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाववाला है, ऐसा कहा यहाँ तो। एक भगवान आत्मा, आहा! उसे कभी खबर (नहीं) वस्तु की (कि वस्तु) क्या है? उसे शरीरवाला और पैसेवाला (मान लिया है)। मनसुखभाई! क्या होगा यह?

मुमुक्षु : गहरे जाने की बात करते हैं, गहरे कैसे जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गहरा यह। यह शरीर, वाणी का लक्ष्य छोड़ दे, पुण्य-पाप का लक्ष्य छोड़ दे। और एक समय की अवस्था का लक्ष्य छोड़ दे, इसका नाम गहरे जाना, ऐसा कहना है यहाँ। वह दृष्टान्त रात्रि में दिया था न? उसके ऊपर से विचार आया था। गहरा-गहरा निकले, वैसे ऊँचा अच्छा पत्थर निकलता है। यहाँ गहरे जाये तो रत्न निकलता है पूरा। भगवान आत्मा जिसके तल में... तल में... तल में... अन्दर तल में भगवान के स्वभाव परमात्मा के तल में अन्दर में इस आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द का चोसला पड़ा है। समझ में आया? अतीन्द्रिय ज्ञान है, अतीन्द्रिय आनन्द है, अतीन्द्रिय शान्ति है, अतीन्द्रिय प्रभुता से भरपूर यह भगवान आत्मा है। कहाँ इसे खबर है आत्मा किसे कहना। यहाँ कहा नहीं?

वीतराग चिदानन्द अखण्ड स्वभाव वह आत्मा। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी गहराई में अर्थात् कि शरीर, वाणी, मन नहीं, ऊपर तिरे वह नहीं, विकल्प उठे पाप के वे नहीं, पुण्य के विकल्प उठें वे नहीं, एक समय की अवसथा वर्तमान दिखाई दे, वह

भी नहीं। एक समय का अखण्ड वीतराग चिदानन्दस्वरूप द्रव्य की अन्दर में दृष्टि करना, उसका नाम भगवान सम्यग्दर्शन कहते हैं, उसका ज्ञान, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं और उसमें रमणता होना, उसे सम्यक् चारित्र कहते हैं। बाकी सब थोथा है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : इसकी खबर नहीं हो तो गहरे कहाँ जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसे हित करना हो, उसे करना। भटकना हो, उसे क्या करना, वह तो कर रहा है। उसे क्या सीखना? समझ में आया?

अन्य सब व्यवहार है। देखो! समझ में आया? '**निश्चयनयेन स्वात्मैव सम्यक्त्वं**' है न? **अभेदरत्नत्रयलक्षणनिर्विकल्पत्रिगुप्तिसमाधिपरिणतो निश्चयनयेन स्वात्मैव सम्यक्त्वं अन्य सर्वोऽपि व्यवहारस्तेन कारणेन स एव ध्यातव्य**' आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? ध्यान अर्थात् ध्येय। ध्येय में लेकर एकाग्र होना, इसका नाम ध्यान। जो वस्तु है, निर्दोष ज्ञानानन्द से भरपूर भगवान आत्मा, उसे लक्ष्य में लेना, अर्थात् ध्येय में लेकर स्थिर होना, उसका नाम ध्यान। समझ में आया? जैसे ऐसे कोई लक्ष्य में लेकर वहाँ स्थिर होता है या नहीं? स्थिर होता है, ऐसा। यह अन्तर वस्तु भगवान शुद्ध ज्ञानानन्द भगवान आत्मा पूर्ण वस्तु आनन्द से भरपूर आत्मा है ऐसा। समझ में आया? उसका अन्तर में अन्तर्मुख में, बहिर्मुख से हटकर अन्तर्मुख में अन्तर आत्मरूप से परिणमकर जो अभेद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, ऐसा यह आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन है। यह तीनों इकट्ठे लिये हैं न इसलिए जरा... ऐसा कि तीन में परिणमे तो निश्चय सम्यक् हो। ऐसा कहते हैं न लोग। ऐसा लोग ले इसमें से। यहाँ तो तीन को अभेद गिनकर स्वआश्रयवाला सम्यग्दर्शन निश्चय से कहा जाता है। **अन्य सब व्यवहार है।** यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, वह भी व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण, वह सम्यग्दर्शन नहीं। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा भी सम्यग्दर्शन नहीं। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा भी मिथ्यात्व है। अकेला भेद का अनुभव मिथ्यात्व है। समझ में आया?

इस कारण आत्मा ही ध्यावने योग्य है। लो! इस कारण से आत्मा ही भगवान तीन लोक का सार (ध्यान करनेयोग्य है)। परमात्मा वीतराग हुए वे तो उनके परमात्मा हैं। उनका ध्यान करने जाये तो विकल्प होता है। समझ में आया? राग होता है। यह आत्मा ज्ञायकमूर्ति का ध्यान करनेयोग्य है। **जैसे दाख,...** दृष्टान्त देते हैं। तीनों इकट्ठा

डालना है न। **दाख, कपूर, चन्दन इत्यादि बहुत द्रव्यों से बनाया गया जो पीने का रस...** पीने का रस, पेय पेय नहीं बनाते गर्मी में? क्या कहलाता है? दूधिया। पीने का बनाते हैं न? दूधिया (ठण्डाई)। बादाम, पिस्ता, कपूर और द्राक्ष और चन्दन। **बहुत द्रव्यों से बनाया गया...** बहुत द्रव्य, बहुत वस्तु (डालकर बनाया हुआ) पीने का पेय। **यद्यपि अनेक रसरूप है,...** वह अनेक रस है। ठण्डाई गर्मी में बनाते हैं न ऊँची। **तो भी अभेदनयकर एक पानवस्तु कही जाती है,...** पेय कहा जाता है। दूधिया कहा जाता है न, दूधिया। तुम्हारे क्या कहते हैं? ठण्डाई, ठण्डाई कहते हैं। लो! यहाँ (गुजराती में) दूधियुं (कहते हैं)। यह क्या कहा? (दूध कोल्ड ड्रिंक)। बहुत मीठी चीज़ें अन्दर ठण्डी चीज़ डालकर एक पेय बनाते हैं। है उसमें अनेक चीज़, तथापि उसे पेय एकरूप कहा जाता है। समझ में आया?

उसी तरह शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप निश्चयसम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रादि... भगवान आत्मा शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप निश्चय सम्यग्दर्शन। देखो! शुद्ध आत्मा पवित्र भगवान अपना, उसका अनुभव, उसरूप निश्चय सम्यग्दर्शन। समझ में आया? है न? '**शुद्धात्मानुभूतिलक्षणैर्निश्चयसम्यग्दर्शन**' उसका ज्ञान, उसका चारित्र। **अनेक भावों से परिणत हुआ...** अनेक भाव हुआ न? दर्शन, ज्ञान, चारित्र अनेक पर्यायरूप से परिणमा। जैसे ठण्डाई में अनेक चीज़ें थीं, तथापि पेय एक कहा जाता है। समझ में आया? **आत्मा अनेकरूप है,...** इस प्रकार से आत्मा वस्तु से अखण्ड एक स्वरूप होने पर भी उसके परिणमन में, पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अनेक पर्यायरूप उसका परिणमन है। परिणमन अर्थात् पर्याय में तीन भेद हैं। समझ में आया? **तो भी अभेदनय की विवक्षा से आत्मा एक ही वस्तु है।** इन तीन के परिणमनरूपी आत्मा तो एक ही है, उसके तीन प्रकार नहीं। जैसे वह पेय एक है, भले उसमें अनेक वस्तु हो। समझ में आया? क्या कहते हैं यह? कितनों ने तो कभी बात सुनी नहीं हो। अगमनिगम की मूल की बात है। सब थोथा किया अभी तक। मजदूरी कर-करके मर गया मुफ्त का, ऐसा कहते हैं। जेचन्दभाई! यह मजदूरी की अभी तक। बड़े मजदूर हों सब। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, विकल्प और विकल्प पूरे दिन किया क्या? मजदूरी की। रतिभाई! क्या होगा दुकान में? मजदूरी की है। यह कागज-बागज की नहीं, हों! इस जड़ की नहीं।

भगवान इनकार करते हैं। पर का तो आत्मा कर सकता नहीं। यह राग किया और यह लिया और यह लिया और यह छोड़ा, यह राग और द्वेष, राग और द्वेष विकार की मजदूरी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह स्वयं आप मजदूरी करता है न किसी के लिये मुफ्त की। यह स्त्री के लिये करता हूँ और पुत्र के लिये करता हूँ और कीर्ति के लिये करता हूँ, लो न! यहाँ तो दूसरी बात है, कहते हैं, व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, वह भी आत्मा नहीं और उसे धर्म नहीं और उसे सम्यग्दर्शन कहते नहीं—ऐसा यहाँ तो कहना है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? वजुभाई! बराबर है कहते हैं। आहाहा!

'**अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु**' जोर तो दर्शन के ऊपर आया है परन्तु दर्शन के साथ फिर व्याख्या... समझे न? ज्ञान, चारित्र लिया है। आहाहा! यह तो वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण परमात्मा में अन्दर दृष्टि देने से जो निर्विकल्प श्रद्धा हो, उसका नाम सम्यक्-निश्चयसम्यग्दर्शन अथवा सच्चा सम्यग्दर्शन है। उसके साथ ज्ञान भी है और उसके साथ स्वरूप-आचरण थोड़ा है। यहाँ भले अधिक लिया। समझ में आया? यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणतिरूप तीन प्रकार पर्याय में होने पर भी उसे आत्मा के परिणामरूप से आत्मा कहा जाता है। आहाहा! कहो, मनसुखभाई! समझ में आया इसमें?

वे गये थे तुम्हारे यात्रा के लिये। सवेरे मिले थे। मोटर खड़ी थी। मनसुखभाई आये कि क्या ऐसा हो गया। तब वे कहे, हम यात्रा को जाते हैं। समझ में आया इसमें कुछ? यह यात्रा, यह आत्मा की यात्रा है, ऐसा कहते हैं। बाकी पर की भगवान आदि की यात्रा शुभभाव है। शुभभाव हो, पुण्यबन्ध पाप से बचने के लिये। यह यात्रा भगवान अखण्डानन्द का नाथ, अनन्त गुण का नाथ, उसके ऊपर क्रम-क्रम से चढ़ना, अन्दर रमना... जमुभाई! उसे भगवान, आत्मा कहते हैं। आहाहा! परन्तु अरूपी और अरूपी में भी अपार गुणरत्न भरे हुए, अपार... अपार... अपार। कहते हैं न, अभी रत्न के थर निकले हैं रत्न के थर। ऐसे थर। वह तो घिसना पड़े और टुकड़े हों। यह तो एकसाथ भगवान अनन्त गुण का (पिण्ड है)। चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द को मुख्य गिना है, बाकी अनन्त गुण इकट्ठे हैं। क्योंकि ज्ञान और आनन्द, ज्ञान असाधारण स्वभाव, आनन्द

सुखरूप दशा, सुखरूप स्वरूप। अर्थात् ज्ञानानन्द से भरपूर भगवान आत्मा। छलाछल आत्मद्रव्य में पूर्ण ज्ञान और पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द भरे हैं। कभी खबर नहीं होती। खोजने जाता है कहीं धूल में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भान कहाँ करता है! वहाँ वह प्रकाश कमावे तो ठीक पड़े अभी, ऐसा पड़ा है वहाँ अन्दर, शल्य अन्दर पड़ा है। समझ में आया? यह तुम्हारा लड़का ही कहता था, हों! मेरे पिता को यह एक शल्य पड़ा है अभी। छोटा कहता था। प्रकाश कहीं व्यवस्थित लग जाये तो फिर ठीक पड़े। अब यहाँ पड़े हो तुम्हारे रोटियाँ हैं यहाँ। तुम्हें क्या दिक्कत है? ऐसा कहता था हमको, हों! उन्हें भी कहता होगा। कौन चढ़े? किसका पुत्र, किसकी बहू, किसकी स्त्री? जगत के पदार्थ अन्य। यहाँ तो कहते हैं कि वह व्यवहार भी करनेयोग्य (नहीं), अन्य कार्य मुझे करनेयोग्य है नहीं, ऐसा कहा। नहीं आया प्रवचनसार में? २०० गाथा। आहाहा!

भगवान आत्मा, अरे! भूला हुआ भगवान स्वयं अपने को भूला अनादि से। ऐसे अन्तर स्वरूप में, अन्तर में पहिचान करके फिर अन्तर ध्येय करके दृष्टि करना, उसे ध्येय बनाकर उसका ज्ञान करना, उसे ध्येय बनाकर स्थिर होना, बस! यही निश्चयमोक्षमार्ग, यही करनेयोग्य है और यही सच्चा है, बाकी सब सच्चा नहीं। समझ में आया? वृद्ध क्यों नहीं आये? क्या हुआ? कुछ है? दर्द है? ठीक। रुपये में तुम्हारे वृद्ध याद आये। तुम्हारे पुत्र के उस भतीजे को रुपये दो करोड़। उसका पिता याद आया। धूल में भी नहीं वहाँ दो करोड़ में, दस करोड़ में। होली है वहाँ धूल के ढ़ेर हैं। चैतन्यरत्न तो यहाँ है आत्मा। कभी कीमत की नहीं। त्यागी नाम धराये, व्रतधारी हुए, मुँडाये परन्तु कहते हैं भगवान आत्मा कौन है, उसे वीतराग परमेश्वर कहते हैं कि तूने कभी पहिचाना नहीं। पहिचाने बिना तेरे सब धूल और धाणी है। चार गति में भटकने के रास्ते हैं। समझ में आया?

तो भी अभेदनय की विवक्षा से आत्मा एक ही वस्तु है। यही अभेदरत्नत्रय का स्वरूप जैन सिद्धान्तों में प्रत्येक जगह कहा है... लो! इसका स्वरूप अब यह ... गाथा यहाँ है न यह? '**अप्पा दंसणु केवलु वि अण्णु सव्वु ववहारु**' इसलिए पुरुषार्थसिद्धि

का दृष्टान्त (उद्धरण) दिया। २१६ गाथा है। पुरुषार्थसिद्धि की २१६ गाथा। देखो! दर्शन है न?

'दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिध्यते बोधः।
स्थितिरात्मन चारित्रं कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥'

अन्दर श्लोक है। **आत्मा का निश्चय वह सम्यग्दर्शन है...** लो, देखो यह निश्चय। आत्मा ही अखण्ड आनन्दरूपी उसका अनुभव करना, ज्ञान होकर अन्दर प्रतीति होना, वही निश्चयसम्यग्दर्शन है। देखो, इस गाथा के आधार से यह पुरुषार्थसिद्धि का दिया। समझ में आया?

आत्मा ही सम्यग्दर्शन है। अर्थात् आत्मा का निश्चय, वह सम्यग्दर्शन है। आत्मा का निर्णय ही। निर्णय अर्थात्? यह अखण्ड ज्ञायकमूर्ति आनन्दकन्द वीतरागस्वरूप परमात्मा मैं हूँ। ऐसी अन्तर में निर्विकल्प प्रतीति होना, वह आत्मा ही निश्चय सम्यग्दर्शन है। उस आत्मा का निर्णय, निर्णय। ओहोहो! समझ में आया? यह सच्चा सम्यग्दर्शन वह, यह मोक्ष का मार्ग, इस सम्यग्दर्शन को रत्न कहा जाता है। यह निश्चय सम्यग्दर्शन रत्न वह रत्न पका। उस रत्न से इसे मोक्ष मिलेगा। समझ में आया? बाकी सब धूलधाणी है।

आत्मा का जानना वह सम्यग्ज्ञान है,... देखो! भगवान आत्मा का अन्तर में स्वसंवेदन होना, ज्ञानानन्द का वेदन होना ज्ञान में, वह ज्ञान ही आत्मा का ज्ञान, वही ज्ञान है, बाकी दूसरे को ज्ञान नहीं कहते। कहो, भीखाभाई! क्या होगा? यह सब होशियारी, होशियारी का ज्ञान कहाँ गया होगा? यह संसार के चतुर और दुनिया कहते हैं न? बहुत होशियार। बड़ा शून्य है, कहते हैं। यहाँ तो शास्त्रज्ञान को ज्ञान नहीं कहते। वह तो पर की ओर का ज्ञान है। वह कहाँ ज्ञान था? समझ में आया? आहा! भगवान ज्ञान का पिण्ड प्रभु ज्ञायकसूर्य में से ज्ञान की किरण प्रस्फुटित हुई सम्यक्, वह आत्मा का ज्ञान, उसका ज्ञान, उसे ध्येय करके प्रगट हुआ ज्ञान, वह आत्मज्ञान, उसे ज्ञान कहते हैं। उसे भगवान ज्ञान कहते हैं, बाकी दूसरे को ज्ञान कहते नहीं। वह आत्मा का ज्ञान, वह रत्न है। वह सम्यग्ज्ञान रत्न, सम्यग्ज्ञान रत्न। आहाहा!

सम्यग्दर्शन रत्न और आत्मा का ज्ञान अन्तर का अनुभव, वह आत्मज्ञान, वह

सम्यग्ज्ञान रत्न, उस रत्न के मोल में मिले मुक्ति। समझ में आया? उससे मोल भरे, उसे मिले मुक्ति का सिद्धपद, सिद्धपद मिले उससे। आहाहा! आत्मा का जानना, देखो यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय। जो श्रावकाचार, चरणानुयोग का ग्रन्थ कहलाता है। परन्तु वस्तु तो वस्तु होगी या दूसरी वस्तु कहीं से आवे? वे कहे, श्रावकाचार वाँचते नहीं, चरणानुयोग वाँचते नहीं। छोटाभाई! यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय का दृष्टान्त दिया। इस सहित हो तो फिर व्रतादि के विकल्प पाँचवें गुणस्थान आदि में हो तो व्यवहार व्रत कहे जाते हैं। परन्तु इसके बिना व्रत कैसे और तप कैसा? बालव्रत और बालतप है मूर्खता से भरपूर। समझ में आया?

और आत्मा में निश्चल होना, वह सम्यक्चारित्र है,... कहो, समझ में आया? आत्मा जो पहले वर्णन किया अत्यन्त निर्दोष, आनन्द, ज्ञानानन्द का पिण्ड आत्म भगवान, उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसमें रमना, इसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। कहो, समझ में आया? वस्त्र-कपड़े बदले, नग्न हुए, वह चारित्र नहीं। यह पंच महाव्रत के विकल्प उठे अहिंसा, सत्य का, वह चारित्र नहीं। आहाहा! अब उसे चारित्र सिद्ध करना है, गजब करते हैं न! समझ में आया? वह पराश्रय भाव है, यह स्वाश्रय भाव है। स्वाश्रय निश्चय, पराश्रय व्यवहार। मुनि को भाव सन्त को पंच महाव्रत के विकल्प हो, परन्तु वह चारित्र नहीं, पराश्रय विकल्प है, वह अचारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा में निश्चल होना। यह ज्ञानानन्द भगवान आत्मा, उसमें स्थिर (होना)। स्वरूप का दर्शन, स्वरूप का ज्ञान, स्वरूप में लीनता। स्वरूप की श्रद्धा, स्वरूप का ज्ञान, स्वरूप की लीनता को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रत्न, तीन रत्न कहा जाता है। आहाहा! उस रत्न की क्या कीमत? अमूल्य, अमूल्य। कहो, अमुलखभाई! अमूल्य! आहाहा! **यह निश्चयरत्नत्रय साक्षात् मोक्ष का कारण है,...** समझ में आया? यह स्वयं ने डाला है। '**स्थितिरात्मन चारित्रं**'। यहाँ तो '**कुत एतेभ्यो भवति बन्धः॥**' ऐसा। उससे बन्ध कैसे हो? जितना बन्ध होता है, वह तो दूसरा विकल्प आदि पंच महाव्रत के परिणाम आदि हों व्यवहार श्रद्धा, उससे बन्ध होता है। यह निश्चय स्वआश्रय भगवान आत्मा का अन्तर दर्शन, ज्ञान और चारित्र से बन्ध कैसे (होगा)? उससे तो

मुक्ति होगी, ऐसा कहते हैं। उससे बन्ध नहीं होता, परन्तु उससे मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पुरुषार्थसिद्धि उपाय—पुरुषार्थ अपने वीर्य का उपाय इस भगवान आत्मा में दृष्टि, ज्ञान और रमणता करना, वह पुरुषार्थसिद्धि है। समझ में आया? यहाँ चारित्रसहित की अपेक्षा से बात ली है, परन्तु सम्यक् निश्चयदर्शन और सम्यग्ज्ञान तो चौथे से निश्चय होता है। और स्वरूप आचरण भी निश्चय आंशिक चौथे से होता है। परन्तु विशेष चारित्र मोक्ष का साक्षात् कारण है न। वीतराग पर्याय चारित्र अर्थात् चारित्रसहित जो दर्शन-ज्ञान है, उन्हें यहाँ अभेदरत्नत्रय कहकर से मुक्ति का कारण कहा गया है। समझ में आया? **इनसे बन्ध कैसे हो सकता है? कभी नहीं हो सकता।** लो! एक श्लोक हुआ।

★ ★ ★

गाथा - ९७

आगे ऐसा कहते हैं कि निर्मल आत्मा को ही ध्यावो, जिसके ध्यान करने से अन्तर्मुहूर्त में (तत्काल) मोक्षपद की प्राप्ति हो—लो! पंचम काल में ऐसी बात? सुन न अब। यह कहेंगे। देखो साक्षात् शुक्लध्यान का भाव है, ऐसा अभी नहीं परन्तु धर्मध्यान मोक्ष का कारण, ऐसा मोक्षमार्ग अभी है। समझ में आया?

९७) अप्पा झायहि णिम्मलउ किं बहुएँ अण्णेण।
जो झायंतहँ परम-पउ लब्भइ एक्क-खणेण॥ ९७॥

अन्वयार्थ :- (हे धर्मात्मा!) हे योगी! तू निर्मल आत्मा का ही ध्यान कर,... लो! हे योगी! स्वरूप में जुड़ान करनेवाले योगी! यह सम्यग्दृष्टि से योगी है। आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर फरमाते हैं, ऐसा सन्त फरमाते हैं। हे योगी! निर्मल भगवान... कहा था न ऊपर? वीतराग चिदानन्द एकस्वभावी निर्मल भगवान आत्मा। निर्मलानन्द का नाथ प्रभु पूर्ण आनन्दकन्द ऐसा आत्मा, (उसका) **ही ध्यान कर,...** उसे लक्ष्य में ले, उसे लक्ष्य में ले, उसे लक्ष्य में लेकर स्थिर होना, इसका नाम ध्यान कहा जाता है। समझ में आया? इस दूसरी चीज़ को लक्ष्य में लेकर स्थिर होता है, वह ध्यान है आर्त और रौद्रध्यान। यह कमाने में, विषय में, भोग में, कीर्ति में यह है या नहीं?

ध्यान नहीं? वह आर्त, रौद्रध्यान है, वह पापध्यान है। ऐसे लक्ष्य करके एकाकार (हो जाये)। कमाने में रुक जाये, खाने में, विषय में, भोग में एकाकार हो, वह सब पापध्यान है। एक लक्ष्य करके स्थिर हो जाना, इसका नाम ध्यान। ऐसे भगवान आत्मा को लक्ष्य में करके स्थिर होना, इसका नाम ध्यान, धर्मध्यान। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मध्यान जितना है, उसमें विकल्प है ही नहीं, उसे धर्मध्यान कहते हैं। विकल्प उठे, उसे व्यवहार धर्मध्यान (कहा जाता है), वह बन्ध का कारण। धर्म ऐसा आत्मा का स्वभाव पूर्ण, उसका ध्यान अर्थात् एकाग्रता, वह निर्मल पर्याय, उसे धर्मध्यान कहते हैं। कहा न पहले? धर्म ऐसा वीतरागस्वभाव आत्मा का स्वभाव। वीतराग निर्दोष आनन्दकन्द अनन्त गुण का पिण्ड स्वभाव, उसका ध्यान अर्थात् उसे लक्ष्य में लेकर एकाग्र होना, उसका नाम निर्विकल्प शान्तिरूपी श्रद्धा-ज्ञान की परिणतिरूप धर्मध्यान कहा जाता है। आहाहा!

धर्मध्यान के काउसग्ग में नहीं आता? आता था या नहीं? एक वीतराग की आज्ञा बिना ऐसा सब किया। नहीं? धर्मध्यान के काउसग्ग में आता था। परन्तु कहाँ इसे खबर है। पहाड़े बोले जाये। एक सम्यग्दर्शन बिना, ऐसा सब आता है धर्मध्यान में। अनन्त बार ऐसा किया, पंच महाव्रत पालन किये, व्रत पालन किये, फलाना किया, क्रिया करनी की, परन्तु कुछ आत्मा के काम नहीं आयी। धर्मध्यान के काउसग्ग में आता है। आता था या नहीं? इसी प्रकार यहाँ धर्मध्यान अर्थात् क्या? धर्म अर्थात् भगवान आत्मा का पूर्ण स्वभाव, उसका ध्यान अर्थात् एकाग्रता, ऐसी शुद्धपरिणति को धर्मध्यान कहते हैं। निर्विकल्प वीतरागी पर्याय आत्मा के स्वभाव के अवलम्बन से प्रगटे, उसे लक्ष्य में लेने से शान्ति प्रगटे। उसे लक्ष्य में लेने से सम्यक्श्रद्धा प्रगटे, उसे लक्ष्य में लेने से सम्यग्ज्ञान प्रगटे। ऐसी दशा को धर्मध्यान कहते हैं। उग्र एकाकार हो जाये, उसे शुक्लध्यान कहते हैं। भारी व्याख्या, भाई! एक-एक कठिन, इसलिए लोगों को मानो...

और बहुत पदार्थों से क्या? (ये सब) देश काल पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं,... क्या कहा? यह सब खेत, सब द्रव्य, सब भाव, विकल्प आदि सब तेरे स्वरूप से भिन्न है। ऊपर से डाला है। समझ में आया? '**किं बहुएं अण्णेण**' है न? '**शुद्धात्मबहिर्भूतेन**

रागादि-विकल्पजालमालापप्रपञ्चेन'। यह विकल्प पुण्य-पाप के दया, दान के विकल्प आदि राग का प्रपंच है। आहाहा! रागमाला। कल्प है न? **रागादिविकल्पजालमाला'** विकल्पजाल माला। पहले क्या करना? लोग ऐसा कहते हैं, हों! पहले क्या करना? वहाँ अगास में ऐसा कहते थे। तुम यह आत्मा आत्मा करते हो परन्तु पहले उसका करना क्या? परन्तु पहले ही यह करने का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिलते-चलते की क्रिया होती हो और अन्दर एकाग्रता वर्तती हो स्वभाव-सन्मुख और अन्दर ध्यान। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द सच्चिदानन्दस्वरूप सिद्धस्वरूप आत्मा है। वस्तु से सिद्ध न हो तो पर्याय में सिद्ध कहाँ से होंगे? सिद्ध भगवान हुए वे तो पर्याय से— अवस्था से सिद्ध हुए, दशा से। उस वस्तु में सिद्धपना न हो तो पर्याय में सिद्धपना आया कहाँ से? वह वस्तु स्वयं सिद्धस्वरूप ही वस्तु है यह आत्मा। सब अनन्त आत्मायें ऐसे सिद्धस्वरूपी भगवान आत्मा का अन्तर में पर्याय द्वारा ध्यान करना। इस दूसरे पदार्थ का तुझे क्या काम है? दुनिया दुनिया के घर में रही। वह दुनिया के खेत, कहते हैं, देश, काल आदि दूसरे, हों! प्रतिकूल देश, काल या अनुकूल मेरुपर्वत और सम्मेदशिखर और शत्रुंजय इत्यादि। दूसरे देश, दूसरे काल और दूसरे भाव, ऐसा ले लेना इसमें। दूसरा भाव अर्थात् संकल्प-विकल्प। वह तेरा देश असंख्यप्रदेशी, वह तेरा काल पूरा त्रिकाल स्वकाल पूरा द्रव्य और तेरा भाव अनन्त गुण का पिण्ड, वह तेरा भाव। समझ में आया?

'बहुए अण्णेण किं' अनेक प्रकार के बहुत पदार्थों से तुझे क्या काम है? ओहोहो! यह देव-गुरु-शास्त्र से तुझे क्या काम? और स्त्री-पुत्र से तो क्या काम? वह तो कहीं गया। समझ में आया? **उनसे कुछ प्रयोजन नहीं है,...** उन परपदार्थों से, भगवान! तेरे हित के लिये कुछ प्रयोजन नहीं। तेरा भगवान तेरे पास पूर्णानन्द विराजता है। उसके ऊपर नजर कर, लक्ष्य कर, नजर कर, ध्येय बना। बस! वही करने योग्य है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? **रागादि-विकल्पजाल के समूहों के प्रपंच से क्या फायदा,...** मूल तो व्यवहार के विकल्प के प्रपंच से तुझे क्या काम है अब? ऐसा

कहते हैं। व्यवहार के विकल्प शुभभाव के, ऐसे विकल्प से क्या काम है तुझे? भगवान पूरा स्थित है न, प्रभु। जिसकी नजरों से निहाल हो, ऐसी चीज़ है, जिसकी नजर करने से निहाल हो, ऐसा भगवान है न तू। ऐसे विकल्प के जाल से तुझे क्या काम है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो-दो घण्टे तो आते हैं, फिर कितने घण्टे ले? चौबीस चौबीस घण्टे तो पड़ा है भगवान इसके पास। आहाहा!

भाई! तुझे शुभ विकल्प का क्या काम है, बापू? जो बन्ध के कारण, प्रभु! तेरे हित के लिये उसमें क्या काम है? उसमें कहाँ तेरा हित था? आहाहा! संयोगी चीज़ का तो क्या काम है परन्तु संयोगी विकल्प के भाव से संयोगीभाव से तेरे स्वभाव में हित क्या है तुझे? निर्विकल्प का नाथ अनन्त-अनन्त हद नहीं, ऐसे गुण की शक्ति ऐसी अनन्त शक्तियों का तत्त्व, अनन्त शक्ति का तत्त्व, सत्त्व, सत्त्व पूरा तत्त्व। अहो! जिसके लक्ष्य से मोक्ष की पर्याय प्रगट होने का कारण प्रगटे, अब तुझे दूसरा क्या काम है? आहाहा! बड़े राजा के सहारे जाये तो एक बार में पूरी जिन्दगी का दे दे इसे, लो! लड़का-बड़का जन्में तो... क्या कहलाता है वह? बधाई। हमारे पण्डितजी हम तैयार हैं सब प्रकार से। बधाई दे उसे। ऐसा शास्त्र में आता है। बाई कहने आवे न, महाराज! आपको पुत्र (हुआ है)। ऊपर... आजीवन तुझे दासीपना करने का नहीं। इतनी लक्ष्मी दे देवे। ऐसा शास्त्र में आता है। बहुत पाठ आते हैं। समझ में आया? आजीवन। एक तो अपना हार हो करोड़ों का, वह पहले दे देवे। और ऊँचे में ऊँचे वस्त्र दे देवे (कहे), पूरी जिन्दगी अब इसे दासीपना नहीं। मेरे घर में पुत्र आया, उसकी बधाई कहने आयी, दसीपना नहीं जिन्दगी में। जो चाहिए वह ले जा। दे दिया। इसी प्रकार भगवान आत्मा के सहारे गया, वह अब संसार का सेवक, दास नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **जिस परमात्मा के ध्यान करनेवालों को क्षणमात्र में मोक्षपद मिलता है।** देखो! देखो! इस महा भगवान के सहारे (जाये तो) क्षणमात्र में केवल (ज्ञान प्राप्त हो)। ऐसा भगवान, उसका ध्यान और उसकी दृष्टि कर न, दूसरा तुझे क्या काम है? लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ९, गुरुवार, दिनांक - ०२-१२-१९६५
गाथा - ९७ से ९९ प्रवचन - ६५

परमात्माप्रकाश, पहले भाग की ९७ गाथा, इसका भावार्थ। यह परमात्मप्रकाश है। अर्थात् यह आत्मा वस्तु का स्वभाव ही परमात्मा है अपना स्वरूप। वस्तु, वस्तु है न, वस्तु? वह तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि पूर्ण स्वरूप वस्तु है, वह परमात्मस्वरूप ही है शक्ति से, द्रव्य से, स्वभाव से। उसका ध्यान करो, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- सब शुभाशुभ संकल्प-विकल्प रहित... शुभ और अशुभ जो संकल्प-विकल्प जो है भाव विकार, उससे रहित। **निज शुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान करने से...** अपना आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञानघन, उसका—निज स्वरूप का ध्यान करने से, ऐसी भाषा है। भगवान अरिहन्त हुए, परमात्मा हुए, उनका ध्यान नहीं। क्योंकि उनके ध्यान में तो पर का लक्ष्य जाये तो विकल्प होता है। समझ में आया?

यह आत्मा ही वर्तमान पूर्ण शुद्धस्वरूप, पूर्ण आनन्द ध्रुव परमात्मस्वभाव वह द्रव्य, उसका ध्यान शुभाशुभ संकल्प-विकल्प रहित। **निज शुद्ध आत्मस्वरूप के ध्यान...** यह पर्याय है। शुभाशुभ संकल्प और आस्रव और बन्धभाव है। शुभ-अशुभ परिणाम, वह आस्रव और भावबन्ध भाव है। उससे रहित शुद्ध ज्ञायकस्वभाव ध्रुव तत्त्व का ध्यान, वह वर्तमान निर्मल पर्याय है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द कहा। वस्तु है न, वस्तु? आत्मा पदार्थ है न, ध्रुव? वह ध्रुव है, उमसें परिणमन नहीं। उसमें संकल्प-विकल्प भी नहीं और उसमें शुद्ध परिणमन होना मोक्ष का मार्ग, वह कुछ वस्तु में—ध्रुव में नहीं। समझ में आया?

निज शुद्धात्मा कहा न? निज शुद्धात्मस्वरूप, निज शुद्धात्मस्वरूप। अपना त्रिकाल ज्ञानानन्द ध्रुव सत् चिदानन्द ध्रुव स्वरूप का ध्यान करने से। अर्थात् कि पुण्य-पाप के

भावबन्ध का भाव, उसे छोड़कर और शुद्धस्वभाव (का ध्यान करने से)। पुण्य-पाप के संकल्प-विकल्प, वे परलक्ष्यी विकार है, उन्हें छोड़कर अन्तर स्वभाव के लक्ष्य से जो ध्यान अर्थात् निर्मल पर्याय (हो), जिसे संवर-निर्जरा कहते हैं, शुद्धता कहते हैं, उस शुद्धता का ध्यान द्रव्य पर लगा। गजब बात! समझ में आया? **करने से शीघ्र ही मोक्ष मिलता है,...** अल्प काल में उसकी मुक्ति होती है।

इसलिए वही हमेशा ध्यान करनेयोग्य है। वह प्रतिदिन ध्यान करनेयोग्य हो तो यह है, कहते हैं। संसार के संकल्प-विकल्प तो पापबन्ध के कारण। समझ में आया? दूसरे शुभ परिणाम दया, दान आदि, वह पुण्यबन्ध के कारण। जिससे अन्तर में शुद्ध परिणाम द्वारा, शुद्ध आत्मा का ध्यान करना। वह वस्तु और ध्यान है, वह मोक्ष का मार्ग। पूर्णानन्द की प्राप्ति का वह शुद्ध पर्याय उपाय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर क्या करना है? पूर्णानन्द की प्राप्ति, पूर्णानन्द का अनुभव। यहाँ क्या कहते हैं हमेशा? यही कहा। यहाँ हमेशा क्या कहते हैं अनादि से? विकार का अनुभव। निरन्तर... निरन्तर... निरन्तर... विकार का अनुभव, एक बात। वह संसार। अब जब आत्मस्वभाव का अन्तर ध्यान करने से, निर्मल पर्याय द्वारा आत्मा को ध्याने से पूर्ण निर्मल पर्याय हो क्षण में या अल्प काल में, उसे पूर्णानन्द का अनुभव। ध्यान करने से अपूर्ण, अपूर्ण थोड़े आनन्द का अनुभव और ऐसा करने से पूर्णानन्द का अनुभव (हो)। वह पूर्णानन्द सदा ही रहे, इसका नाम मोक्ष। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

अभी क्या करते हैं अनादि से निगोद से लेकर अभी तक जीव अज्ञानी? समझ में आया? किसे अनुभव करते हैं? सुख-दुःख की कल्पनारूपी दुःख को अनुभव करते हैं। कल्पना, हों! वह कल्पना। शरीर, रोग की बात नहीं। बराबर ऐसा नहीं। सुख-दुःख की कल्पनारूप दुःखभाव, ऐसा। राग-द्वेष के विकाररूप भाव, शुभाशुभ विकाररूप भाव, उसे—विकार को अनादि से अनुभवते हैं। अब जब तुझे आनन्द लेना हो, सुखी होना हो तो निज शुद्धात्मा पूर्णानन्द भगवान स्वयं है, वहाँ दृष्टि लगा, उसका ध्यान कर। उसका ध्यान, वह निर्मल पर्याय अल्प आनन्द है। अनाकुलता की अवस्था द्वारा ध्यान होता है। क्योंकि वह वस्तु अनाकुल वस्तु है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह देह में से...

पूज्य गुरुदेवश्री : देह में से नहीं, आत्मा में से। देह में कहाँ था? देह कहाँ, वह तो मिट्टी जड़ है। वहाँ कहाँ इसे जागृत करना था। वह पर में पुण्य और पाप, काम और क्रोध, दया और दान, मिथ्या भ्रान्ति का जो करना और वेदना कर रहा है, कहते हैं कि वह पर का ध्यान है। उसमें संसार फलता है, भटकने को मिलता है। अब यदि तुझे स्वतन्त्र सुखी होना हो, स्वाधीनरूप से सुखी होने की दशा प्रगट करनी हो तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द अतीन्द्रिय आनन्द का सरोवर सागर आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप आत्मा है। वह निज स्वरूप। उसका ध्यान—उसमें एकाग्रता। जैसी ऐसे एकाग्रता है, वैसे ऐसे वस्तु में एकाग्रता कर। वह एकाग्रता करना, वह शुभाशुभ संकल्प-विकल्परहित दशा, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसका नाम संवर और निर्जरा, उसका नाम मोक्ष का मार्ग। समझ में आया?

शीघ्र ही मोक्ष मिलता है,... उसे अल्प काल में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होना, उसका नाम मोक्ष। आत्मा में पूर्ण आनन्द जो पड़ा है पूर्ण सत्त्व सत्त्व तेरा पूरा, उसके सत्त्व को अन्दर में सत्त्व अर्थात् शुद्धपर्याय से ध्याने से शुद्ध पूर्ण आनन्द की वर्तमान दशा में प्रगट दशा हो, उसे मोक्ष कहते हैं। वह मोक्ष फिर ऐसा का ऐस अनुभवे। यह संसार जैसे अनादि से अभी तक अनुभवता है, इसी प्रकार फिर मोक्ष की पर्याय वह पूर्णानन्द की दशा अनन्त काल तक अनुभव करे, उसका नाम मोक्ष। कहो, समझ में आया? द्रव्य तो ऐसा का ऐसा है। ध्रुव चिदानन्द वस्तु ज्ञानानन्द सत्त्व तत्त्व ऐसा का ऐसा है। उसे ऐसे बहिर्मुख दृष्टि से मिथ्याश्रद्धा, राग और द्वेष परिणाम का वेदन, वह संसार है। इस प्रकार आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द मेरा आनन्द मुझमें हैं, ऐसी अन्तर में दृष्टि करके उसमें एकाग्र होना, उसका नाम आत्मा का ध्यान अथवा आत्मा का मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आत्मा के ध्यान की ही पर्याय है। आत्मा सन्मुख की एकाग्रता की वह दशा है। समझ में आया? ऐसा बड़ा क्या करना इसमें? यह सब विहार करना, पूजायें, भक्ति, पंच कल्याणक करना... महावीर तारो रंग लाग्यो, लो, मलूकचन्दभाई आयेंगे तब... बड़े व्यक्ति हैं तो कुछ बड़ा करेंगे या नहीं? कहो, समझ में आया? शरीर से बड़े हैं और पैसे से बड़े, सब प्रकार से बड़े हैं। ... बड़ा है।

लड़के का समय बड़ा कहलाये। समय तो वह कहा नहीं शास्त्र में ? 'विट सो वखत माने।' आहाहा! धर्मी जीव तो समय अनुकूल बाहर के पैसे और इज्जत उसे विष्टा जैसा समय माने, विष्टा जैसा। आहाहा! अमृत का समय तो भगवान आत्मा है। समझ में आया ?

ऐसा आत्मा का ध्यान करने से। है न पाठ ऐसा है या नहीं ? इसलिए यह अधिक लिया। समझ में आया ? '**एक्क-खणेण**' ऐसा है न पाठ। एक क्षण में मोक्ष मिलेगा, ले, क्षण में मिलेगा। यह तो क्षण और अन्तर्मुहूर्त सब एक का एक है। **इसलिए वही हमेशा ध्यान करनेयोग्य है। ऐसा ही बृहदाराधना-शास्त्र में कहा है।** महा आराधन आत्मा का किया, उस आराधना का शास्त्र है। आत्मा के आराधन का—सेवन का शास्त्र, आत्मा के सेवन का शास्त्र, उसके अन्दर (ऐसा कहा है)।

सोलह तीर्थंकरों के... समझ में आया ? **एक ही समय तीर्थंकरों के उत्पत्ति के दिन...** भगवान को जब केवलज्ञान हुआ... ऋषभादि सोलह तीर्थंकरों के शिष्यगण केवलज्ञान उत्पन्न होने के दिन पहले ही नि:श्रेयस सम्पदा को प्राप्त हुए। समझ में आया ? ऋषभदेव भगवान से लेकर शान्तिनाथ भगवान सोलह तीर्थंकर। उनको केवल (ज्ञान) हुआ भगवान को, उसी समय में दूसरे साधु को तुरन्त केवलज्ञान (हुआ), साधुपद लिया और तुरन्त केवल (ज्ञान) हुआ। केवल (ज्ञान) होकर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष गये। समझ में आया ? तीर्थंकर नहीं, साधु। पहले तीर्थंकर से लेकर सोलहवें शान्तिनाथ भगवान। चौबीस तीर्थंकर में सोलह तीर्थंकर, उन भगवान को जब ऐसे ध्यान में केवलज्ञान हुआ, केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई, उस क्षण में ध्वनि निकली। उस समय में वहाँ कितने ही साधु हुए, साधु होकर कितने ही तो वहीं के वहीं केवल (ज्ञान) पाकर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष गये। आहाहा! भगवान का मोक्ष अभी बाद में होगा। मोक्ष ही हो गया केवल (ज्ञान) हुआ इसलिए। यह तो एक भावबन्ध... समझ में आया ?

वृषभदेव, अजितनाथ, सम्भवनाथ से लेकर शान्तिनाथ भगवान। सोलह भगवान को जब अन्तर ध्यान करने से केवल (ज्ञान) हुआ, उसी समय में ध्वनि खिरी, ॐ ध्वनि का उपदेश (सुनकर) साधु, सन्त अन्दर हुए कितने ही। वे साधु होकर उसी क्षण में वहाँ केवल (ज्ञान) प्राप्त हुए, उसी क्षण में मुक्ति पाये। ओहोहो! कहो, समझ में आया इसमें ? वे साधु छद्मस्थ थे, वे अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) और अन्तर्मुहूर्त में

मोक्ष (पाये)। इतनी आत्मा में सामर्थ्य है। रोना रोवे कि मुझे ऐसा होता है और ढींकणा, वह सब नहीं इसमें, ऐसा कहते हैं। फिर चार तीर्थंकरों के शिष्यगण... समझे न? ...चार हुए न चार दूसरे। चार को १, २, ३ और छह महीने... कोई एक महीने बाद, कोई दो महीने बाद, किसी को तीसरे (महीने के बाद) और चार तथा छह महीने बाद। साधु मोक्ष गये। नेमिनाथ आदि चार को एक वर्ष में, दो वर्ष में, तीन वर्ष में और छह वर्ष में निःश्रेयस पद को प्राप्त हुए। मोक्ष, निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष। समझ में आया? तिलोयपण्णत्ति में यह सब बहुत विस्तार है। सोलह तीर्थंकर के साधु तो कितने ही तुरन्त ही अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान और मोक्ष गये। दूसरे चार को और किसी को एक महीना, दो महीना, तीन महीना और छह महीना और आगे वाले को एक वर्ष, दो वर्ष... समझ में आया? ... मोक्ष गये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो समुच्चय बात है। साधु गये हैं। साधु सीधे केवल (ज्ञान) पाकर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष गये उग्रता से, इतना बतलाना है। समझ में आया?

पहले चारित्र ज्ञान की सिद्धि हुई... ओहोहो! क्या कहा? भगवान को केवलज्ञान हुआ और तुरन्त साधु को सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति हुई। **फिर अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया।** अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष हो गया। आहाहा! यह कहे कि ऐसा मोक्ष होता होगा? हमको क्यों नहीं होता? यह पूछेगा अभी? हों! समझ में आया?

यहाँ पर शिष्य प्रश्न करता है कि यदि परमात्मा के ध्यान से अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है, तो इस समय ध्यान करनेवाले हम लोगों को क्यों नहीं होता? ऐसा करके दो बातें करनी हैं। ध्यान तो हम करते हैं, ऐसा तो कहता है। समझ में आया? शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु की एकाग्रता तो हम भी करते हैं। साधु कहते हैं, ध्यान तो हम करते हैं अन्दर का, हों! बात। **तो इस समय ध्यान करनेवाले हम लोगों को क्यों नहीं होता? उसका समाधान...** समझ में आया? हम ध्यान तो करते हैं। शुभाशुभ विकल्परहित, हों! शुद्ध चैतन्य वस्तु का अन्तर में एकाग्रता ध्यान (तो करते हैं)। परन्तु हमारा ध्यान कम होगा? हमको क्यों मोक्ष नहीं होता? ध्यान तो हम भी करते हैं।

समाधान **कि जैसा निर्विकल्प शुक्लध्यान वज्रवृषभनाराचसंहननवालों को चौथे काल में होता है,...** चौथे काल में इस शरीर का संहनन बहुत मजबूत होता है। ऐसे जीव को ध्यान होता है, स्थिरता अन्दर जम जाती है। **वैसा अब नहीं हो सकता।** वैसा अभी पंचम काल में नहीं है। समझ में आया? **ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में कहा है...** तत्त्वानुशासन। **इसका अर्थ यह है कि श्री सर्वज्ञवीतरागदेव इस भरतक्षेत्र में इस पंचम काल में शुक्लध्यान का निषेध करते हैं,...** भगवान केवलज्ञानी परमात्मा ने अभी शुक्लध्यान का निषेध है, शुक्लध्यान, जिसके द्वारा केवल (ज्ञान) प्राप्त करे, उसका निषेध है। समझ में आया? **इस समय धर्मध्यान हो सकता है, शुक्लध्यान नहीं हो सकता।** धर्मध्यान होता है। यह धर्मध्यान अर्थात् यह ध्यान, हों! अन्दर शुद्धस्वरूप की एकाग्रता का नाम धर्मध्यान है। यह लोग शुभराग, शुभराग को धर्मध्यान कहे, ऐसा नहीं। शुभयोग धर्मध्यान है, शुभयोग धर्मध्यान है, ऐसा बहुत आता है इन लेखों में। भीखाभाई! उसमें भी लेख बहुत आया है। आहाहा!

यहाँ तो ध्यान की जाति में एकाग्रता में अन्तर है, यह बतलाना है। ध्यान तो आत्मा शुद्धस्वरूप की अन्तर एकाग्रता हम भी ऐसा तो ध्यान करते हैं, साधु कहते हैं। हमको क्यों मोक्ष नहीं होता? भाई! चौथे काल में पहले संहननवाले वह तो एक निमित्त कहा, हों! समझ में आया? निर्विकल्प शुक्लध्यान, वह उपादान कहा अन्दर। निर्विकल्प शुक्लध्यान उज्ज्वल, बहुत ही अभेद ध्यान उज्ज्वल जैसा वह हो, वैसा अभी नहीं होता। क्योंकि भगवान ने पंचम काल में शुक्लध्यान का निषेध किया है कि शुक्लध्यान हो नहीं सकता। परन्तु धर्मध्यान हो सकता है। समझ में आया? धर्मध्यान होता है।

उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी दोनों ही इस समय नहीं हैं, सातवाँ गुणस्थान तक गुणस्थान है,... अभी मुनि हो, सच्चा हो और किसी को सातवें गुणस्थान तक दशा हो सकती है। सातवाँ। आठवें से श्रेणी माँडे, वह अभी नहीं है। **ऊपर के गुणस्थान नहीं है। इस जगह तात्पर्य यह है कि जिस कारण परमात्मा के ध्यान से अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है,...** परमात्मा अर्थात् अपना निज स्वभाव पूर्ण, उसके ध्यान से अन्तर्मुहूर्त में मोक्ष होता है। **इसलिए संसार की स्थिति घटाने के वास्ते अब भी धर्मध्यान का आराधन करना चाहिए,...** समझ में आया... पाठ में तो इतना ही है वहाँ। **'येन कारणेन**

परमात्मध्यानेनान्तर्मुहूर्तेन मोक्षो लक्ष्यते... तदेव ध्यातव्य' ऐसा शब्द पड़ा है। '**तदेव**' '**इदापि तदेव**' ऐसा। '**तदेव**' अर्थात् ध्यान धर्मध्यानरूपी '**तदेव**' तो अभी भी करना चाहिए, इससे संसार की स्थिति बहुत घटी, थोड़ी सी रहेगी वह भविष्य में शुक्लध्यान होगा, तब नाश होगी। समझ में आया?

'**तदेव ध्यातव्य, तदेव ध्यातव्य**' '**तदेव**' अर्थात् धर्मध्यान, ऐसा। समझ में आया? शुभयोग, वह धर्मध्यान नहीं, शुभयोग को उपचार से, व्यवहार से धर्मध्यान कहते हैं। किसे? अन्तर में शुद्ध आत्मा की एकाग्रता दृष्टि प्रगटी है, ऐसे ध्यानी को शुभ विकल्प को व्यवहार धर्मध्यान कहते हैं, जो पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय धर्मध्यान तो आत्मा शुद्ध निर्विकल्प वस्तु की जो एकाग्रता की अल्पता, उसे धर्मध्यान कहते हैं, एकाग्रता की उग्रता को शुक्लध्यान कहते हैं। समझ में आया? बहुत उज्ज्वल अर्थात् यह फिर मैला, ऐसा नहीं। शुभयोग है, वह धर्मध्यान—ऐसा नहीं। निर्विकल्प शुक्ल। निर्विकल्प तो यह भी है, परन्तु इतना अधिक निर्मल नहीं। इसका नाम ध्यान कहा जाता है। अभी इसमें बड़ी गड़बड़ पड़ी है। अरे! आहाहा! धर्मध्यान सविकल्प ही होता है, शुभयोग वह धर्मध्यान, शुद्ध उपयोग वह शुक्लध्यान। ऐसी बातें करते हैं। अरे! भगवान! अभी तुझे पद्धति की खबर नहीं होती और उल्टी पद्धति से पकड़े, उसे कहाँ मार्ग हाथ आवे? समझ में आया?

स्थिति घटाने के वास्ते... संसार की बहुत स्थिति घटाने के लिये अर्थात् अल्प स्थिति रहे एकाध दो भव। समझ में आया? उसे अभी भी धर्मध्यान का आराधन करना चाहिए। **जिससे परम्परया मोक्ष भी मिल सकता है।** देखो! यह हों! उसका अर्थ यह करते हैं, यह परम्परा अर्थात् शुभयोग करो, फिर परम्परा से शुक्लध्यान होगा, मोक्ष होगा। ऐसा कहते हैं। परन्तु बहुत बदल डाला, मूल बात को ही बदल डाला। शास्त्र का जानपना सेठियों को प्रमुखों को रहा नहीं और ऐसे के ऐसे धन्धा-पानी में फँसे हैं। मुश्किल से घण्टे दो घण्टे जाये, ऊपर जो कहे वह सुनकर चले जायें। उसे रुचे न, वह तो अनुकूल पड़े। वहाँ पाप करते हों, यहाँ आकर कहे, तुम यह शुभभाव करो तो धर्म होगा। सीधा-सट्ट। ... परन्तु यह हो सके ऐसा। यह नहीं, भाई! शुभभाव है, वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है, व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य।

निश्चय से पुण्य, व्यवहार से धर्म। परन्तु किसे? निश्चय धर्मध्यान हो उसे। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बाद में ही आता है। धर्मध्यन बिना शुक्लध्यान कहाँ से आवे? थोड़ी एकाग्रता हो, तब संसार छिद गया, अल्प भाव रह गया। पूर्ण एकाग्रता हो तो केवलज्ञान पावे। ध्यान की जाति तो वह की वह है स्वरूप-सन्मुख के लक्ष्यवाली। ध्यान तो उसी जाति का। यहाँ '**तदेव**' शब्द में यह मूल है, भाई! '**तदेव**' शब्द पड़ा है न। है न शब्द यह? '**तदेव**' अर्थात् ध्यान तो यह परन्तु वह ध्यान यह। उस जाति का धर्मध्यान, वह उस जाति का शुक्लध्यान। स्वभाव शुद्ध में एकाग्रता में तारतम्यता। समझ में आया? तारतम्यता समझे? हीनाधिकता। वस्तु... गृहस्थाश्रम में यह हो सकता है। स्त्री-पुत्र हों, राजपाट हों। समझ में आया? चौथे गुणस्थानवाले हों, पाँचवें वाले हों, गृहस्थाश्रम में हो तो भले पाप के परिणाम होते हैं, परन्तु जितनी दृष्टि उघड़ी है, स्थिरता है, उतनी तो अन्दर एकाग्रता सदा ही है और उपयोगरूप भी किसी समय हो जाता है। समझ में आया? ओहोहो!

परम्परया मोक्ष भी मिल सकता है। परम्परा उसे, हों! समझ में आया? इन्होंने डाला है, इसमें कुछ लिखा नहीं। '**तदेव ध्यातव्य**' बस यहाँ इतनी ही बात है। भगवान आत्मा अकेला आनन्दकन्द का सागर पड़ा है पूर्ण, उसके ऊपर नजर लगा बस! उसकी एकाग्रता, उसका नाम धर्मध्यान। उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। अपूर्ण चारित्र, एकदम स्थिरता हो जाये, वह पूर्ण चारित्र। यथाख्यात, केवलज्ञान। समझ में आया? उसकी जाति के आश्रय से प्रगटे या कुछ और पर विकल्प से प्रगटे? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों आ गये। मात्रा में अधिकता हो गयी आगे बढ़कर चारित्र में, स्थिरता में अधिकता हो गयी। शुक्लध्यान में स्थिरता में वृद्धि हो गयी। ध्यान तो भले हो, है उतना ही है। श्रद्धा भी है वह है। क्षायिक ... स्थिरता बढ़ गयी। ध्यान है न। दृष्टि हुई, ज्ञान है, वह तो भले ऐसा रहा। स्थिरता बढ़ गयी। थोड़ी स्थिरता स्वरूप में, उसे धर्मध्यान; विशेष स्थिरता का नाम शुक्लध्यान। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : काल अर्थात् क्या? शुक्लध्यान का बहुत थोड़ा काल होता है, इसे अधिक होता है। निर्मलता थोड़ी है परन्तु काल अधिक लगता है। क्या कहा, समझ में आया?

परम्परा मोक्ष का अर्थ यह कि जब एक क्षण में मोक्ष होता है, ऐसी गाथा है, एक क्षण में मोक्ष होना अन्दर, निर्विकल्प शुक्लध्यान द्वारा हो सकता है और तब उसे वज्रनाराचसंहनन का निमित्त भी होता है। समझ में आया? ऐसा यहाँ निमित्त नहीं और यहाँ इतनी धर्मध्यान जितनी दशा है, शुक्लध्यान जितनी नहीं। दो बात। तो उन्होंने धर्मध्यान द्वारा भवकटी की है। एकाध-दो भव रहे बाकी, (फिर) परम्परा मोक्ष होगा। वहाँ से फिर शुक्लध्यान होकर मोक्ष होगा। कहो, समझ में आया? ९७ हुई। ९८ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ९८

९८) अप्पा णिय-मणि णिम्मलउ णियमेँ वसइ ण जासु।
सत्थ-पुराणइँ तव-चरणु मुक्खु वि करहिँ कि तासु॥ ९८॥

आगे ऐसा कहते हैं कि जिसके राग रहित मन में शुद्धात्मा की भावना नहीं है,... जिसे भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप, शुद्धस्वरूप आत्मा। समझ में आया? शुद्ध चिदानन्द आत्मा अखण्ड आनन्दकन्द आत्मद्रव्य की जिसे भावना नहीं, भावना अर्थात् एकाग्रता। कैसी? कि रागरहित। अर्थात् कि भावना वीतरागी पर्याय है। समझ में आया? शुद्धात्मा अखण्डानन्द प्रभु की भावना अर्थात् कि रागरहित शुद्ध परिणति, वह परिणति जिसे नहीं। **उनके शास्त्र, पुराण, तपश्चरण क्या कर सकते हैं?** उसे शास्त्र का ज्ञान क्या करे? उसे पुराण क्या करे? और उसके उपवास, क्रिया भी व्रतादि क्या करे? **अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकते**- समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जिसके निज मन में निर्मल आत्मा निश्चय से नहीं रहता,... जिसकी

अन्तर दृष्टि में भगवान शुद्ध चिदानन्द बसा नहीं, जिसे निर्मल अखण्डानन्द आनन्द प्रभु निर्विकल्प आत्मा, वह जिसे दृष्टि में आया नहीं। समझ में आया? निर्मल आत्मा वास्तव में जिसके ज्ञान में रहता नहीं, अर्थात् ज्ञान की निर्मलदशा में यह आत्मा, ऐसा बसा नहीं। शुभराग में नहीं। शुद्ध चिदानन्दमूर्ति प्रभु पूर्णानन्दस्वरूप, उस शुद्ध ज्ञान की पर्याय में यह आत्मा, ऐसा बसा नहीं, ऐसा भान जिसे हुआ नहीं। **उस जीव के शास्त्र के पुराण तपस्या भी क्या मोक्ष को कर सकते हैं?** उसके सब शास्त्र के पठन, यह पुराण आदि की कथाओं का ज्ञान और तपस्या, तपस्या अर्थात् मुनिपने की व्रत क्रिया। समझ में आया? **क्या मोक्ष को कर सकते हैं? कभी नहीं कर सकते।** कहो, समझ में आया? कभी नहीं कर सकते। इसका अर्थ कि शुद्ध चिदानन्द प्रभु दृष्टि में निर्विकल्प दृष्टि में लिया है, उसे मुक्ति होती है, इसके बिना ऐसे शास्त्र और पठन और तपस्या-बपस्या वह सब कुछ आत्मा के कल्याण के लिये नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जगत में सब होता है, अनादि से चला आता है। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप शुद्धभावना... देखो! व्याख्या की। निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप शुद्धभावना। आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु चैतन्यसूर्य, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द का मेरु भगवान आत्मा है। उसका जिसे रागरहित पुण्य के विकल्परहित निर्विकल्प शान्तिरूप, शान्तिरूप स्थिरतारूप शुद्धभावना। बस, यह शुद्धभावना की व्याख्या की, शुद्धभावना की व्याख्या। अर्थात् कि आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्थिरता, उसे यहाँ शुद्धभावना कहते हैं। वीतराग निर्विकल्प शान्ति। भगवान पूर्णानन्द प्रभु वीतराग निर्विकल्प शान्ति का पिण्ड आत्मा, उसकी यह तो पर्याय की बात है अब। समझ में आया?

यह आत्मपदार्थ भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं, स्वयं है अन्दर स्वरूप। निर्दोष अभेद शान्तिरूप, अकेला अभेद शान्ति का पिण्ड। उसे रागरहित अभेद शान्ति की पर्याय द्वारा जिसने आत्मा को उसमें—पर्याय में बसाया नहीं, उसकी भावना की नहीं, उसे शास्त्र, तपस्या सब व्यर्थ है। उसके शास्त्र के पठन सब व्यर्थ है, व्यर्थ पठन।

आहाहा! समझ में आया? शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति भगवान जिसने दृष्टि में बसाया नहीं, अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान जिसे आत्मा का प्रगट हुआ नहीं। ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना अकेले शास्त्र के पठन, पुराण की... पुराण लिया है, समझे न? पुराण की कथा में बड़ी बातें होती हैं न। ऐसे तीर्थंकर हो गये, ऐसे चक्रवर्ती हो गये और बलदेव ऐसे हो गये। इन सब बातों के कहनेवाले के ज्ञान सब व्यर्थ है, कहते हैं। समझ में आया? और तपश्चरण अर्थात् साधुपना। तपस्या का अर्थ साधुपना। समझ में आया? साधुपना लिया हो न? अहिंसा, सत्य, अचौर्य के कुछ परिणाम ऐसा आचरणरूप, वह सब व्यर्थ है, वह आत्मा के अन्तर सम्यग्दर्शन के अनुभव बिना, वे सब व्यर्थ हैं, कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि क्या बिल्कुल ही निरर्थक हैं? समझ में आया? बिल्कुल खोटा है सब? '**सर्वथा निष्फलानि**'।

उसका समाधान ऐसा है कि बिल्कुल तो नहीं है, लेकिन वीतराग सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावनासहित हो,... देखो! **तब तो मोक्ष के ही बाह्य सहकारीकारण है,...** देखो! क्या कहते हैं? पहले यह हो और फिर वह हो, ऐसा नहीं। ऐसा आया न इसमें? वस्तु शुद्ध चैतन्यमूर्ति का निर्विकल्प सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागी समकित उसका नाम। समझ में आया? और सम्यक्त्वरूप निज शुद्धात्मा की भावनासहित। ऐसा शुद्ध चैतन्य ज्ञायकमूर्ति के अनुभव का सम्यग्दर्शन, उस भावनासहित हो और फिर उसकी एकाग्रता अन्दर। **तब तो मोक्ष के ही बाह्य सहकारीकारण है,...** तब तो शास्त्र का पठन, पुराण और व्रत के परिणाम को बाह्य सहकारी निमित्त कहा जाता है, साथ में रहे हुए बाह्य निमित्त कहे जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? पहले शास्त्र के पठन और तपस्या और अपवास वह पहले धर्मध्यान और फिर शुक्लध्यान, ऐसा नहीं है। और पहले यह और उसके फलरूप से वीतरागी सम्यग्दर्शन और ज्ञान, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वस्तु परमानन्दस्वरूप, वीतरागस्वरूप आत्मा की सम्यग्दर्शन अनुभव, शुद्ध चैतन्य का अनुभव, उसकी भावना फिर आत्मा की। ऐसी दशा यदि निश्चय हो तो उसके बाह्यरूप से, बाह्यरूप से उस दशा से... बाह्यरूप वह दशा है, वस्तु है वह अन्तर अखण्डरूप, उसकी वीतराग सम्यग्दर्शन ज्ञान वह अन्तर परिणामरूप निर्मल, उसके

बाह्यरूप निमित्त शास्त्र का ज्ञान, पुराण और व्रतादि के भाव, वे बहिरंग सहकारी बाह्य निमित्तरूप से कहे जाते हैं। समझ में आया?

बाह्य सहकारी। कितना स्पष्ट किया है! तथापि कौन जाने क्या करते हैं? अरे! पूरे आत्मा को छोड़कर तू बात करे, शुभभाव से यह होता है और शुभभाव से यह होता है। शास्त्र के पठन से ज्ञान होता है और उस ज्ञान से फिर निश्चय समकित होता है। ...भाई! ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा को अन्तर अनुभव की दृष्टि प्रगट हुए बिना उन शास्त्रादि को निमित्त भी नहीं कहा जाता। निश्चयपूर्वक व्यवहार (हो) तो व्यवहार, ऐसा कहना है यहाँ। साथ में व्यवहार। समझ में आया? पूर्ण स्वरूप भगवान का सम्यग्दर्शन-ज्ञान अनुभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान और उसमें स्थिरता का अंश—एकाग्रता, ऐसी भावना, वह पर्याय। ऐसी निर्विकल्प वीतरागी पर्याय के साथ रहा हुआ शास्त्र के पठन का विकल्प, उस जाति का उघाड़ और पंच महाव्रत के विकल्प। समझ में आया? और व्यवहार श्रद्धा देव-गुरु-शास्त्र की, ऐसा बहिरंग सहकारी—साथ में रहे हुए को निमित्तकारण कहा जाता है। कहो, समझ में आया? है न? बाह्य सहकारी कारण अर्थात् बाह्य साथ में रहा हुआ कारण अर्थात् बाह्य निमित्तकारण। वह अन्दर शुद्ध उपादानकारण, वह अन्तरंग कारण। वह अन्तरंग कारण, यह बहिरंग कारण। वस्तु भगवान आत्मा की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि का रमणता और ज्ञान आदि, वह अन्तरंग परिणाम उपादानकारण मोक्ष के और उसके साथ यह विकल्प जो हो, यह साथ में हो तो उसे बाह्य सहकारी—साथ में रहा हुआ कारण—निमित्त कहा जाता है। साथ में रहा हुआ बाह्य, बाह्य, साथ में बाह्य रहा हुआ ऐसा। परिणाम में मिलता नहीं, अन्तरंग परिणाम में वह मिलता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धस्वभाव निर्विकल्प आनन्द का भान, उसकी श्रद्धा और रमणता का अंश, वह अभ्यन्तर कारणरूप परिणाम मोक्ष के हैं और साथ में साथ विकल्प यदि ऐसा हो, तब उसे बाह्य साथ में रहा हुआ निमित्त कारण कहा जाता है। परन्तु इस आत्मा का अनुभव और दृष्टि, ज्ञान सम्यक् नहीं, उसे तो यह सब व्यर्थ है, उसे निमित्त भी नहीं कहा जाता। किसे कहे परन्तु निमित्त? समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! वीतराग मार्ग अलौकिक मार्ग अनन्त काल से इसने लक्ष्य में लिया नहीं। बातें करे 'केवली

पण्णत्तो धम्मो शरणं' कितनी बार बोलते होंगे, नहीं? सामायिक करे, प्रतिक्रमण करे उसमें। कहना किसे केवली पण्णत्तो धम्मो? समझ में आया?

कहते हैं, पहले तो नकार ही किया। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की दृष्टि बिना शास्त्र, पुराण आदि के पठन और पंच महाव्रत के परिणाम आदि व्रतादि व्यर्थ है, उसका कुछ भी आत्मा को लाभ नहीं। तब कहे कि परन्तु कुछ नहीं? कुछ तो उसका प्रतिशत दो थोड़ा सा। तब कहे, भाई सुन! यदि ऐसा निश्चय सम्यक् आत्मा का भान निर्विकल्प शान्ति, दृष्टिसहित हो तो उसे बाह्य सहकारी कारण कहा जाता है। इतनी बात है। प्रतिशत एक निमित्त है इतना। समझ में आया? परन्तु किसे निमित्त कहना? माल डाले बिना बारदान कहना किसे? माल डाले तो बारदान कहलाये कि भाई! यह चावल की बोरी, यह दाल की बोरी। माल बिना बारदान किसे कहना? किसका बारदान कहना? बोरी... बोरी। कहते हैं कि भाई! माल हो तो ऐसा कहा जाये कि यह चावल की बोरी, यह ... इसी प्रकार आत्मा का शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की अन्तरदृष्टि-ज्ञान हो तो उस शुभराग को निमित्त बोरी-बारदानरूप से कहा जाता है। क्या कहा?

मुमुक्षु : माल भरने में काम आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, भरने-फरने की बात नहीं यहाँ। भरे भर तब माल माल में है, बारदान बारदान में है। कहाँ भरे और किसमें भरे? समझ में आया? बापू! मार्ग वह मोक्ष का मार्ग तो ऐसा है, वह कही ऐरा-गेरा पढ़ने से कुछ हो, ऐसा नहीं। ऐसा भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने (कहा हुआ है)।

परम परमात्मस्वरूप ही प्रभु तेरा है न, कहते हैं और वह परमात्मस्वरूप वस्तु से न हो तो पर्याय में कहाँ से आयेगा? अवस्था में प्रगटेगा कहाँ से? तो वह अवस्था में प्रगटने के लिये ऐसा पूरा परमात्मा, उसका निर्किल्प श्रद्धा, ज्ञान, ध्यान, वही वास्तव में मोक्ष का कारण है। उस काल में यह बाह्य में व्रतादि के विकल्प हो, शास्त्रज्ञान हो, व्यवहाररत्नत्रय उसे निमित्त सहकारी—साथ में निमित्त कहा जाता है। पंचास्तिकाय का अर्थ भी इस प्रकार से करे तो बैठे, वरना बैठे नहीं। साधन, साध्य और सब लाख बार कहे, चाहे जो कहे। ओहोहो! समझ में आया?

यदि वे वीतरागसम्यक्त्व के अभावरूप हों,... देखो! ... कहते हैं। आत्मा अखण्ड शुद्ध चिदानन्दमूर्ति भगवान का सम्यक् निश्चयदर्शन-सम्यक् वीतराग दर्शन न हो, सम्यक् वीतरागी सम्यग्दर्शन का अभाव हो और शास्त्र पठन हो, पुराण आदि का ज्ञान हो और व्रतादि के परिणाम हों (तो वह) पुण्यबन्ध का कारण होता है। पुण्य बँधता है, धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से कहलाये? यहाँ धर्म प्रगट हुए बिना पुण्य बँधे। इतना रखा, हों! कषाय मन्द। मिथ्यात्वसहित पुण्य बँधे, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्वसहित पुण्य। परिणाम वे शुभ हैं न। निश्चय नहीं, शुभ परिणाम हैं (तो) पुण्य बँधता है। समझ में आया? आहाहा! दो बोल कहे, अभी तीसरा बोल लेंगे।

यदि मिथ्यात्व और रागादिसहित हो। उसमें मिथ्यात्व तो था परन्तु शुभ परिणाम थे। पहले में आत्मा की शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान की रमणता ऐसी वीतरागी पर्याय साथ में था तो बहिरंग कारण कहा। एक बात। बस इतना। ऐसा आत्मभान न हो तो वह मिथ्यात्वसहित है, अर्थात् राग की मन्दता है, उसे पुण्यबन्ध कारण कहा। और तीसरी बात कि मिथ्यात्व और राग भी तीव्र हो, उसे और ऐसे साधुपने की क्रिया और बाहर में जानपना हो। समझ में आया?

और जो मिथ्यात्व, रागादि सहित हों, तो पापबन्ध के कारण है, जैसे कि रुद्र वगैरह विद्यानुवादनामा दसवें पूर्व तक शास्त्र पढ़कर भ्रष्ट हो जाते हैं। लो! यह पाप है न, परिणाम में पाप है। समझ में आया? कितने बोल बहुत लिये इसमें। चार लिये। समझ में आया? एक तो आत्मा शुद्ध चिदानन्द निर्विकल्प आनन्द की अन्तर दृष्टि और ज्ञान बिना ये सब पुराण आदि व्यर्थ कहा। एक बोल। दूसरे प्रकार से कहा कि ऐसा यदि शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की दृष्टि हो तो ऐसे बाहर को बाह्य सहकारी कारण कहा। दो बोल। तीसरा, अन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन का भान न हो और यह शुभभाव शास्त्र पुराण और व्रतादि के भाव हों तो पुण्य बँधता है। चौथा कहा कि मिथ्यादृष्टिसहित अशुभ परिणाम है, निदान आदि पाप और ऐसी बाह्य क्रियाकाण्ड आदि हो तो अकेला मिथ्यात्वसहित पाप ही बाँधे। समझ में आया? ओहोहो! इस परमात्मा को स्पर्शे बिना

सब खोटा है, ऐसा यहाँ कहते हैं। इस परमात्मस्वरूप को स्पर्शे, वेदन करे, अनुभव करे सम्यग्दर्शन से, तो फिर शुभभाव साथ में होता है, उसे बाह्य निमित्तकारण कहा जाता है। समझ में आया? इसके बिना तो उसे निमित्त भी नहीं कहा जाता। और अकेले आचरण, आचरण करे, परन्तु वापस अन्दर अभिप्राय में निदान हो, भोग की वांछा हो... समझ में आया? तब तो मिथ्यात्वसहित अकेला पाप ही बाँधे, उसे पुण्य बाँधने का भी ठिकाना नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ९९

आगे जिन भव्यजीवों ने आत्मा को जान लिया, उन्होंने सब जाना... आत्मा जाना, उसने सब जाना। भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति... समझ में आया? लोगों को बाहर की स्थिति में इतना सब... वह साधु-बाधु हुए हों न, शान्त हों, प्रकृति मन्द हो, वह साधु कहलाये। पुण्य की प्रकृति मन्द हो उसे, समझे न? वह तो पुण्य बाँधे, परन्तु मिथ्यात्व तो है। पुण्य, वह साधारण पुण्य, वहाँ वस्तु की कुछ खबर नहीं। प्रकृति का बन्ध हो।... परन्तु वह तो सरल प्रकृति हो, कषाय मन्द हो, हो, पुण्य बाँधे, परन्तु उसमें कुछ आत्मा को उसमें जरा भी लाभ नहीं मिलता। वस्तु अखण्डानन्द प्रभु कौन है, उसकी तो दृष्टि की खबर नहीं होती। या तो कोई कर्ता है और या तो कोई है न, या तो कुछ है, ऐसी मान्यता तो अन्दर महा मिथ्यात्व की पड़ी होती है, उसमें फिर जरा करे (उसका कुछ मूल्य नहीं है)।

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है, ऐसे भगवान ने जो आत्मा देखा, वैसा आत्मा जिसने जान लिया, वैसा यह आत्मा जान लिया अन्दर से। ज्ञान की मूर्ति आत्मा ज्ञानस्वरूप ही है। **उन्होंने सब जाना ऐसा दिखलाते हैं—** यह उन्होंने सब जाना। कहो, समझ में आया?

९९) जोइय अप्पें जाणिएण जगु जाणियउ हवेइ।
अप्पहँ केरइ भावउइ बिंबउ जेण वसेइ॥ ९९॥

अन्वयार्थ :- हे योगी... यहाँ तो योगी को लक्ष्य कर कहते हैं न। स्वरूप स्वरूप शुद्ध चैतन्य की एकाग्रता दृष्टिवाला। **एक अपने आत्मा के जानने से...** एक आत्मा जिसने जाना। **यह तीन लोक जाना जाता है,...** इसके चार बोल घटित करेंगे। समझ में आया? तीन लोक इसने जाना। क्योंकि उसे जहाँ जाना, उसके ज्ञान में सब आ गये। समझ में आया? 'सब आगम भेद सु उर बसे।' शास्त्र को क्या कहना है, वह सब बात इसके ज्ञान में आ गयी। आत्मा जाना उसने सब जाना। **क्योंकि आत्मा के भावरूप केवलज्ञान में 'आत्मनः संबन्धिनि भावे' यह लोक प्रतिबिम्बित हुआ बस रहा है।** भगवान आत्मा का ज्ञान होने पर अन्तर से केवलज्ञान हो तो प्रतिबिम्ब हुआ—लोकालोक केवलज्ञान में प्रतिबिम्ब होकर बसता है। समझ में आया? यह आत्मा के जाननेवाले को केवलज्ञान होगा और लोकालोक ज्ञात हो जायेगा और आत्मा के जाने बिना के नौ पूर्व पढ़े तो कुछ नहीं ज्ञात हुआ और धबो नमः हो जायेगा। निगोद में जायेगा, निगोद में। फिर यह उघाड़ भी चला जायेगा, यहाँ इतना है वह। वस्तु का कहाँ उघाड़ है। वह तो इन्द्रियजन्य ज्ञान है। समझ में आया? भगवान आत्मा का अन्तर ज्ञान प्रगट हुआ, भले उसे थोड़ा हो बाह्य, परन्तु उसे केवलज्ञान हो जानेवाला है, अर्थात् तीन काल-तीन लोक जिसमें प्रतिबिम्बित हो जानेवाले हैं। इसके चार बोल घटित करेंगे टीका में, हों! '**आत्मनः संबन्धिनि भावे**' शब्द है न। उसमें यहाँ अर्थ इतना किया और दूसरे बहुत घटित करेंगे।

भावार्थ :- वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से... हों! वापस इस प्रकार से जाना, ऐसा। यह वीतराग (अर्थात्) राग-विकल्प छोड़कर भगवान आत्मा ज्ञान में जिसने जाना, स्वसंवेदनज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान, ज्ञान से जाना। **समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है।** लो! यह उसे सब बारह अंग का ज्ञान हो गया अथवा जानेगा। उसे बारह अंग जानकर ध्यान करना है, ऐसा कहेंगे आगे। बारह अंग को कहना है कि शुद्धात्मा का ध्यान, ज्ञान, सम्यग्दर्शन कर, वीतराग दृष्टि कर, यह कहना था। वह जिसे प्रगट हुआ, बारह ही अंग का ज्ञान हो गया। जाओ! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... इस अपेक्षा से नहीं परन्तु उसे निश्चय श्रुतकेवली कहा जाता है, निश्चय श्रुतकेवली। व्यवहार ... बारह अंग जाने तब ... यह तो उसे होगा, इसे

हुआ जो कहा हुआ भाव प्रगट हुआ है। समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

क्योंकि जैसे रामचन्द्र, पाण्डव, भरत, सगर आदि महान पुरुष... रामचन्द्रजी, पाण्डव, भरत, सगर (आदि) महान पुरुष **जिनराज की दीक्षा लेकर...** मुनि हो गये थे ध्यान में। **फिर द्वादशांग को पढ़कर...** दीक्षा के बाद बारह अंग होते हैं न, इतना। मुनि को बारह अंग का ज्ञान होता है। ... **द्वादशांग को पढ़कर...** बारह अंग का ज्ञान किया। रामचन्द्रजी, पाण्डव, समझ में आया? भरत, सगर। **द्वादशांग पढ़ने का फल...** बारह अंग को पढ़ने का (फल) **निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्ध परमात्मा उसके ध्यान में लीन हुए तिष्ठे थे।** लो! समझ में आाय? बारह अंग का पढ़ने का फल निश्चय रत्नत्रयस्वरूप। यह तो छद्मस्थ की बात करते हैं, मुनिपने की बात करते हैं। ऐई! मुख्य में निश्चयरत्नत्रय आये। ... आये? ऐ... वजुभाई! वे कितने ही कहते हैं, वहाँ ऐसे सब हैं कि हाँ...हाँ... ही करनेवाले हैं, समझे बिना के। अरे भगवान! बापू! परन्तु किस प्रकार से? समझे बिना के बेचारे... ९५ प्रतिशत तो अनजान हैं, उन्हें खबर नहीं कि वह क्या भूल करते हैं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना और कैसा, वह तो मुनि थे। इतना उन्हें ज्ञान था, बड़े योद्धा थे परन्तु मुनि होने के बाद उन्हें ऐसा ज्ञान हुआ था। रामचन्द्रजी भी आत्मज्ञानी थे और फिर मुनि हुए, पश्चात् बारह अंग का ज्ञान किया। इतना कहा न? यह मैंने कहा। तुम अपना भूलते हो, इसलिए मैंने इतना कहा। अपने कहाँ से लाये और यह? उसे कुछ खबर नहीं। यह आत्मा का जो ज्ञान वह अपना या किसी का है? किसके घर का है वह? वे मुनि थे, धर्मात्मा थे, आत्मा का भान करके जो आत्मा हो, उसे ऐसा ज्ञान होता है। अपना और अर्थात् क्या? जैन वाडा का यह है? आत्मा थे, आत्मा थे, फिर प्रश्न (कहाँ)? जैन अर्थात् आत्मा, 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझले जिन प्रवचन का मर्म।' वे अपने ध्यान में तिष्ठते थे। बारह अंग पढ़कर भी किया तो यह, ऐसा कहते हैं। इसलिए आत्मध्यान करनेवाले को दृष्टि प्रगटी, उसे बारह अंग का ज्ञान हुआ, ऐसा कहा जाता है। और बारह अंग होंगे, इसलिए उसे बारह अंग का सार आ गया है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १०, शुक्रवार, दिनांक - ०३-१२-१९६५
गाथा - ९९, १०० प्रवचन - ६६

९९ गाथा पहले अध्याय की, परमात्मप्रकाश। इसका भावार्थ फिर से देखो! पाठ तो यह है कि आत्मा को जानने से जग को जान जाता है। पाठ इतना है। यह आत्मा जो है आत्मा, इस आत्मा का स्वभाव तो अकेला ज्ञान, चैतन्य और आनन्दस्वरूप है, इस आत्मा का स्वभाव। वह जिसने जाना, वह लोक जानेगा, लोकालोक जानेगा, ऐसे चार बोल लेंगे इसमें। आत्मा जाना, उसने सब जाना।

कहते हैं कि, **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से...** यह भाषा है। जरा सूक्ष्म बात है। आत्मा पूर्ण आनन्द और ज्ञान का अकेला सूर्य चैतन्य है वह तो। उसे अन्तर में शुभाशुभ विकल्प राग से भिन्न पड़कर अरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति द्वारा, निर्विकल्प भाव द्वारा अर्थात् राग के अभावभाव द्वारा आत्मा को स्व अर्थात् प्रत्यक्ष अपने से वेदन करे, इस प्रकार से आत्मा को जाने, वह **समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है।** ऐसा **निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान से शुद्धात्मतत्त्व के जानने पर...** सूक्ष्म व्याख्या। दुनिया को यह अभ्यास नहीं होता।

भगवान आत्मा तो अन्दर ज्ञान का अकेला पिण्ड है, ज्ञान का पुंज। ज्ञान अर्थात् समझ का... समझ का पूरा तत्त्व और आनन्दमूर्ति आत्मस्वभाव है। ऐसे आत्मा को नीचे, केवलज्ञानी की यहाँ बात नहीं, निचली दशा में अन्दर में आत्मस्वभाव-सन्मुख की दृष्टि, स्वभाव-सन्मुख का ज्ञान, स्वभाव-सन्मुख की शान्ति इस प्रकार से जो आत्मपदार्थ को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति में, शान्ति समाधि द्वारा आत्मद्रव्य को—वस्तु को (जानता है)। देखो! शुद्धात्मतत्त्व अर्थात् वस्तु और वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान अर्थात् पर्याय। पर्याय अर्थात् अवस्था, रागरहित अवस्था स्वसंवेदन की कही और शुद्धात्मतत्त्व पूरा पदार्थ भगवान है, उसे जानने पर, **जानने पर समस्त द्वादशांग शास्त्र जाना जाता है।** उसे बारह अंग का ज्ञान आ जाता है, बारह अंग का (ज्ञान) हो जाता

है अथवा एक जाना उसमें बारह अंग के ज्ञान का तात्पर्य अन्दर अनुभव में आ जाता है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? रतिभाई!

कौन आत्मा जो है वस्तु आत्मा? यह (शरीर) तो मिट्टी जड़, कर्म अन्दर मिट्टी, धूल, अन्दर पुण्य और पाप, दया, दान, काम, क्रोध के भाव हों, वह विकार। उससे रहित अन्दर चैतन्यघन है, आनन्दकन्द आत्मा है। कौन जाने कहाँ होगा ऐसा? कभी कहाँ सुना है? दरकार कब की है? काल प्रश्न किया कि अपना ज्ञान उसे? अपना अर्थात् क्या परन्तु? जेचन्दभाई! रामचन्द्रजी आदि धर्मात्मा मुनि हुए थे। अपना अर्थात् क्या? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आत्मा वीतरागी निर्दोष आनन्दकन्द आत्मा है। परन्तु भान कहाँ? यह पूरे दिन इस शरीर की होली एक ही करता है। या कमाना और पैसा, इज्जत और कीर्ति और यह धूलधमाका। धुएँ को पकड़ने जाने पर हाथ आवे नहीं और धुँआ रहे नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी जिन्दगी नहीं, अनन्त काल से। और पूरी जिन्दगी तुमने इतने का माना, इतने ही वर्ष। अनादि काल से एकेन्द्रिय के भव, दो इन्द्रिय के भव, त्रीइन्द्रिय के भव, नारकी के भव सब, यह इसने—आत्मा ने किये हैं या किसने किये हैं? उस भव में कष्ट से ही मरा है अनादि से। समझ में आया?

कहते हैं, जिसने एक क्षण भी यह आत्म वस्तु... शुद्धात्मतत्त्व यह वस्तु कही, शुद्धात्म वस्तु। एक समय का जो विकार और कर्म का सम्बन्ध, वह दृष्टि छोड़कर वस्तु जो शुद्ध चिदानन्द आत्मा भगवानस्वरूप अपना है, उसे अन्दर में रागरहित, राग को एक ओर छोड़कर अन्तर दृष्टि में स्वभाव के स्वसंवेदन द्वारा 'यह आत्मा', ऐसा जिसने जाना, उसने बारह अंग जाने। ऐसा लक्ष्य छोड़ देना। छोड़े कहाँ? यह राग विकल्प हो, उसका लक्ष्य छोड़कर अन्तर चिदानन्द में लक्ष्य करना। कौन जाने कभी हुआ नहीं।

मुमुक्षु : मिलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोजा है कब कि मिलता नहीं? खोजे तब मिलता नहीं, ऐसा कहलाये न। कहो, खोजे बिना मिलता नहीं, ऐसा कहना है? जेचन्दभाई! यहाँ तो भाई! सब तोल हो ऐसा है। क्यों मोहनभाई! खोजा नहीं और मिलता नहीं। ऐसे आँखें

मींचकर (कहे), यह मेरा मोती खो गया, परन्तु मिलता नहीं। आँखें उघाड़कर शोधता, खोजता तो नहीं। इसी प्रकार यह आत्मा वस्तु क्या है, ऐसी इसने सुनी नहीं बराबर। इसलिए बाहर की कितनी सिरपच्ची (करके) मर-मर जाये। मशीन के लिये, इसके लिये, दुकान के लिये... क्या कहलाता है वह ? पगड़ी देकर। कितने रुपये... दो व्यक्ति हैरान हो गये थे। फिर भिन्न पड़े, लो! धूल में कुछ है नहीं, मुफ्त के हैरान... हैरान (होते हैं)। कैसे होगा ? मलूकचन्दभाई! आहाहा! उसे क्या है, अभी भाग (हिस्सा) है दुकान में। लड़के कहते थे। छोटे लड़के कहे, बापू का हिस्सा है इसमें। जयन्ती कहता था। रखे, पराधीन न पड़ जाये। धूल में भी नहीं, वह तो मिलने का हो वह मिलेगा और आनेवाला होगा (वह) आयेगा। आत्मा को जाने बिना सब थोथा शून्य है। समझ में आया ? जगत का सब जानपना किया। एल.एल.बी. डिग्री और एम.ए. की, डॉक्टर की और वकालात की (डिग्री)। बड़ा शून्य था, रामजीभाई की वकालत में, क्या वहाँ था अन्दर में ? मलूकचन्दभाई! क्या था ? पैसा तो बहुत पैदा करते थे। रामजीभाई की छाप बहुत थी। धूल में कुछ नहीं मिलता। कहो, समझ में आया ? आहाहा!

एक चिदानन्द से भरपूर भगवान अन्दर ज्ञानानन्द भरपूर प्रभु। आहाहा! जैसे कोठी में घी भरा हो न, ऐसे ठसाठस, वह कोठी नहीं, यहाँ तो घी भरी हुई चीज़ पूरी। इस आत्मा का ज्ञान और आनन्द से स्वरूप ही वह स्वयं। भरपूर और एक चीज़ और उसमें (दूसरी चीज़), ऐसे दो नहीं। अकेला ज्ञान का पुंज, सूर्य का अकेला तारा, ध्रुव तारा चैतन्यसूर्य जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द से भरचक भरा भगवान आत्मा है। उसे अन्तर में निर्विकल्प दृष्टि द्वारा अर्थात् कि राग को छोड़कर अरागी दृष्टि द्वारा, अरागी ज्ञान द्वारा, अरागी अंश की स्थिरता द्वारा यह आत्मा ऐसा जो जाने, उसने सब जाना, उसने बारह अंग जाना। समझ में आया ? बारह अंग पढ़कर भी वापस ध्यान करना था और कहना है भी यह। दोनों बातें की। यह कहेंगे यहाँ। कहो, समझ में आया इसमें ?

क्योंकि रामचन्द्रजी सम्यग्दृष्टि थे। धर्मात्मा पुरुषोत्तम पुरुष थे, फिर दिगम्बर मुनि हुए थे। समझ में आया ? नग्न मुनि हुए थे, पाण्डव—पाँचों पाण्डव भी मुनि हुए थे नग्न दिगम्बर। उन पाँचों पाण्डवों (में) तीन मोक्ष पधारे यहाँ शत्रुंजय से। दो स्वर्ग में गये हैं, पाँच पाण्डव यहाँ... समझ में आया ? रामचन्द्रजी कहाँ ? मांगी-तुंगी, मांगी-

तुंगी है न बड़ा पर्वत, वहाँ रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे हैं। पहले थे सम्यग्दर्शन, ज्ञान था, बलदेव थे, वासुदेव लक्ष्मण स्वयं थे, फिर लक्ष्मणजी गुजर गये। दोनों भाईयों को प्रेम (था इसलिए) छह-छह महीने तक उठाया। ज्ञानी तो थे। अन्त में वैराग्य हो गया और मुनि हो गये, नग्न दिगम्बर मुनि। कहते हैं, ऐसे रामचन्द्र, पाण्डव, भरत, भरत चक्रवर्ती, ऋषभदेव भगवान के पहले पुत्र जिनके नाम से यह भरतक्षेत्र, छह खण्ड का राज, छियानवें हजार जिनके घर में पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ। वे सब छोड़कर आत्मा का ध्यान करने के लिये प्रयासरत हुए।

सगर आदि महान पुरुष भी जिनराज की दीक्षा लेकर... इन सबने वीतरागी सन्त केवलज्ञानी परमात्मा के पंथ में दीक्षा ली थी। समझ में आया? **फिर द्वादशांग को पढ़कर...** यहाँ तो दूसरा कहना है। ऐसा कि ऐसा करके बारह अंग का ज्ञान किया मुनिपने में। **द्वादशांग पढ़ने का फल...** परन्तु क्या? उसमें कहना है क्या और करना है क्या? **निश्चयरत्नत्रयस्वरूप जो शुद्ध परमात्मा उसके ध्यान में लीन हुए...** आनन्द भगवान में लीन हुए, बारह अंग पढ़कर लीन तो उसमें हुए। समझ में आया? इसलिए अब सार कहते हैं। **इसलिए...** अब सार कहते हैं। **वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर अपने आत्मा का जानना ही सार है,...** प्रथम ही आत्मा आनन्दकन्द अन्दर भावश्रुतज्ञान के उपयोग द्वारा, भावश्रुतज्ञान। शब्द शास्त्र नहीं। अन्दर निर्मल उपयोग भावश्रुत द्वारा 'यह आत्मा है', ऐसा जाननेयोग्य और सार में यह जगत की चीज़ सार है। समझ में आया?

आत्मा के जानने से सबका जानपना सफल होता है,... जिसने आत्मा इस प्रकार से जाना, उसका सब सफल है। यह जाने बिना सब सफल होता नहीं। **इस कारण जिन्होंने अपनी आत्मा जानी उन्होंने सबको जाना।** एक बोल, एक बोल। जिसने आत्मा को जाना, उसने सब जाना। एक बोल। समझ में आया? चार बोल लेंगे चार। दूसरा, **अथवा निर्विकल्पसमाधि से उत्पन्न हुआ...** अन्तर में दृष्टि अनुभव करके निर्विकल्प दृष्टि से उत्पन्न हुआ अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द, वह आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा **जो परमानन्द सुखरस उसके आस्वाद होने पर...** उस निर्विकल्प वस्तुस्वरूप की अनुभव दृष्टि करने से निर्विकल्प आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उस आनन्द का स्वाद आवे। समझ में आया? वह **आस्वाद होने पर...** आनन्दस्वरूप आत्मा है, ऐसा

अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव भरपूर भगवान। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आने पर, **ऐसा जानता है, कि मेरा स्वरूप जुदा है,...** देखो, ध्यान रखो। क्या कहते हैं? यह दूसरा बोल चलता है। पहला बोल ऐसा कहा कि यह आत्मा जाने, वह सब जाने। एक बात। दूसरा ऐसा कि, यह आत्मा आनन्दमय है, ऐसा जहाँ सम्यग्दृष्टि में अनुभव हुआ, आनन्दमय है, वह मैं और यह रागादि मैं नहीं। समझ में आया?

मेरा स्वरूप जुदा है, और देह, रागादिक मेरे से दूसरे हैं,... अर्थात्? पहले बोल में ऐसा कहा कि यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप जो जानने में आवे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, उसने सब जाना, एक बोल। दूसरे में (ऐसा कहा कि) यह आत्मा आनन्दमय है, ऐसा आनन्द का अन्तर दृष्टि-ज्ञान में स्वाद आया, आनन्द का स्वाद आया सम्यग्दर्शन होने पर, सम्यग्ज्ञान होने पर। उस द्वारा जाना कि आनन्द, वह आत्मा; यह देह और रागादि, वह आत्मा नहीं, (ऐसा) दो को भिन्न जाना, उसने यह आत्मा जाना, उसने दूसरे भिन्न को भी जान लिया। समझ में आया? **मेरा स्वरूप जुदा है,...** आनन्दस्वरूप अनाकुल आनन्द अतीन्द्रिय आत्मा है, उसका स्वाद अन्तर अनुभव होकर यह आनन्द अतीन्द्रिय आनन्दमय आत्मा, वह मैं। **और देह रागादिक मेरे से दूसरे हैं,...** मुझसे, यह राग-विकल्प उठते हैं न दया, दान, काम, क्रोध की वृत्ति उठती है, वह आकुलता है और आनन्दमय आत्मा से भिन्न चीज़ है। ऐसा जिसने आनन्दमय आत्मा को जाना, उससे भिन्न चीज़ भी बराबर जानने में आ गयी। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान से लेकर बात है, हों! सम्यग्दृष्टि से लेकर बात है। ... '**जो पस्सदि अप्पाणं**' और वह क्या है? समझ में आया? कहो, समझ में आया इसमें? दो बोल हुए।

इसलिए आत्मा के (अपने) जानने से सब भेद जाने जाते हैं,... ऐसा। यह दूसरा बोल। आत्मा प्रथम आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! यह दुनिया के आनन्द नहीं, वह तो दुःख है। यह पैसा और स्त्री, पुत्र, मकान और हजीरा, हजीरा अर्थात् मकान और इज्जत, यह मुझे ठीक है—ऐसा भाव है, वह तो राग है, दुःख है। समझ में आया? उस दुःख के भावरहित आत्मा के अन्तर के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होने पर, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय है, ऐसे आनन्द का भान होने पर आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय, वह मैं और उससे भिन्न जो विकल्प उठते हैं दया, दान, व्रतादि का राग,

शरीर जड़, वे सब मुझसे भिन्न। समझ में आया?

जिसने अपने को जान लिया, उसने अपने से भिन्न सब पदार्थ जाने... क्योंकि यह आनन्द, वह मैं, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आवे सम्यग्दर्शन-ज्ञान में, वह मैं। इसके अतिरिक्त विकल्प आदि वह सब पर, सब भिन्न। यह जानने से सब भेद ज्ञात हो गये, यह जानने से सब भेद ज्ञात हो गये। '**अप्पे जाणिएण**' भिन्न जाना यह इसके चार अर्थ किये, चार अर्थ किये। एक आत्मा को जानने से सब जानना सफल होगा, सब जानेगा। एक (बात)। आनन्द को जानने से सब भेद यह भिन्न है, ऐसा जानेगा। इसलिए आत्मा को जानने से सब ज्ञात हो जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? **सब भेद जाने जाते हैं,...** भगवान आत्मा यह गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी जाना जा सकता है, ऐसा कहते हैं। यह दृष्टान्त साधु का उत्कृष्ट देते हैं। समझ में आया? दृष्टान्त देंगे न, ... में देंगे। यह और ... इसकी बात है।

मुमुक्षु : इसमें वीतरागचारित्र की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात। वीतरागचारित्र अर्थात् स्वरूप की दृष्टि हुई, वहाँ वीतरागचारित्र का अंश आया। आगे बढ़ते हुए अधिक स्थिरता (हो), उसका दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? दो बात हुई।

तीसरा। **अथवा आत्मा श्रुतज्ञानरूप व्याप्तिज्ञान से...** आत्मा भावश्रुतज्ञान से जहाँ आत्मा ज्ञात हुआ, उस ज्ञान के कारण से **सब लोकालोक को जानता है,...** भावश्रुतज्ञान में सब लोकालोक का ज्ञान उसमें आ जाता है, परोक्ष। समझ में आया? आत्मा अपने अन्तर शुद्ध, भावश्रुतज्ञान से आत्मा जाना तो भावश्रुत की व्याप्ति द्वारा अर्थात् उस ज्ञान का ही ऐसा स्वभाव है कि लोकालोक उसमें परोक्ष रीति से ज्ञात हो जाते हैं। समझ में आया? ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि लोकालोक को जाने। आत्मा को जानते हुए, भावश्रुतज्ञान से (आत्मा) जाना, उस भावश्रुतज्ञान में लोकालोक जानने की शक्ति है। समझ में आया? इसलिए आत्मा को जानने से... समझ में आया? **लोकालोक को जानता है, इसलिए आत्मा के जानने से सब जाना गया।** आत्मा को जानने से सब ज्ञात हो गया, यह तीसरा बोल हुआ।

चौथा। **अथवा वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से...** भगवान आत्मा शुद्ध निर्विकार आनन्दकन्द की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि और स्थिरता की शान्ति द्वारा केवलज्ञानरूपी, देखो! **वीतरागनिर्विकल्प परमसमाधि के बल से केवलज्ञान को उत्पन्न (प्रगट) करके...** वापस केवलज्ञान कैसे प्रगट हो, यह भी साथ ही बतला दिया। कोई पंच महाव्रत के परिणाम और क्रियाकाण्ड से केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। वह तो शुद्ध चैतन्यदल अखण्ड आनन्द का कन्द भगवान है। यह आत्मा अभी, हों! सदा ही। उसमें निर्विकल्प ध्यान की स्थिरता द्वारा... समझ में आया? सब लोकालोक केवलज्ञान से जानने में (आ जाता है), केवलज्ञान उत्पन्न होता है। उस द्वारा केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

जैसे दर्पण में घट-पटादि पदार्थ झलकते हैं,... दर्पण में जैसे घट-पटादि पदार्थ झलकते हैं, **उसी प्रकार ज्ञानरूपी दर्पण में सब लोक-अलोक भासते हैं।** आत्मा के अन्तर अनुभव की दृष्टि द्वारा और शान्ति द्वारा केवलज्ञान जो प्रगट हो, उसमें लोकालोक झलकते हैं, लोकालोक ज्ञात हो जाते हैं। जैसे दर्पण में घट-पटादि ज्ञात होते हैं, वैसे इसमें (आत्मा में) सब ज्ञात हो जाते हैं। **इससे यह बात निश्चय हुई, कि आत्मा के जानने से सब जाना जाता है।** इस आत्मा को जानने से सब जानने में... यह चार बोल कहे चार। चार हुए न? **इससे यह बात निश्चय हुई, कि आत्मा के जानने से सब जाना जाता है। यहाँ पर सारांश यह हुआ कि इन चारों व्याख्यानों का रहस्य जानकर...** उत्कृष्ट बात करते हैं न। **बाह्य-अभ्यन्तर सब परिग्रह छोड़कर...** मुनि-मुनि **सब तरह से अपने शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए। ऐसा ही कथन समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने किया है।** वहाँ लगा दो वापस, हों! ... यह तो उत्कृष्ट अपेक्षा से बात की है। भावश्रुतज्ञान से यह बारहवें की बात है? चौथे की है यहाँ तो। समझ में आया? चार व्याख्यान हुए। समझ में आया?

एक तो यह आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप को अन्तर दृष्टि से, अन्तर ज्ञान से जानने पर सब ज्ञात हो जाता है। इसलिए एक जानने पर सब जाना। एक बोल। दूसरा, आत्मा को निर्विकल्प आनन्द के स्वाद द्वारा जानने से, 'यह आनन्दमय वह आत्मा, राग और आकुलता और शरीर, वह आत्मा नहीं; ऐसे आत्मा को जानने से सब भेद ज्ञात हो जाते हैं। तीसरा, आत्मा को भावश्रुतज्ञान द्वारा जानने से, यह दूसरे प्रकार से बात की। पहले

एक को जानने से सब जाने, दूसरे, आनन्द को जानने से (सब भेद जाने), यहाँ भावश्रुत (द्वारा) जानने से भावश्रुत में सब ज्ञात हो, ऐसी बात की। भावश्रुतज्ञान द्वारा विकल्परहित ज्ञान, दृष्टि द्वारा आत्मा को जानने से उस भावश्रुतज्ञान में लोकालोक को जानने की सामर्थ्य है। इसलिए आत्मा को जानने से भावश्रुतज्ञान द्वारा व्याप्ति से अर्थात् यह सब ऐसा होना चाहिए, ऐसे लोकालोक उसमें ज्ञात हो जाये। चौथा, निर्विकल्प आनन्द की दृष्टि के स्वभाव की स्थिरता द्वारा केवलज्ञान हो, तब लोकालोक झलकेगा। इसलिए आत्मा को जानने से सब जानने में आता है। चार बोल कहे। समझ में आया? **ऐसा ही कथन समयसार में श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने किया है।**

जो पस्सइ अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सइ जिणसासणं सव्वं॥ १५॥

१५वीं गाथा है समयसार की। **इसका अर्थ यह है कि जो निकट-संसारी जीव...** अल्पकाल में जिसे केवलज्ञान प्राप्ति की योग्यता हुई है, ऐसा **निकट-संसारी जीव स्वसंवेदनज्ञानकर...** अपने आत्मा को ज्ञान में ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का वेदन स्वसंवेदन प्रत्यक्ष... **अपने आत्मा को अनुभवता,...** है। आत्मा को अनुभवते हैं। **सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है,... 'पस्सइ'** का अर्थ किया यह। सम्यग्दर्शन से अपने आत्मा को श्रद्धा में, प्रतीति में लेता है और देखता है। **वह सब जैनशासन को देखता है,...** उसने सारा (—पूरा) जैनशासन देखा। समझ में आया? जिनशासन अर्थात् भावश्रुतज्ञान उपयोग। रागरहित भावश्रुतज्ञान उपयोग, उस द्वारा आत्मा को जाना, उसने जैनशान जाना। और जैनशासन भावश्रुतज्ञान रागरहित अवस्था, वह जैनशासन है। समझ में आया? ... घर में चले नहीं, बाहर में जाये तो सुनने को मिले नहीं, ऐसी कभी मिले, उसमें क्या होगा कुछ पता लगे नहीं। आहाहा! अरे! इसने थोथा ही किया है अनादि से, जहर को बिलोया। आत्मा के आनन्द को कभी इसने अनुभव नहीं किया। यह कहते हैं कि एक बार भी यदि आत्मा को जाना, उसने यह चार बोल कहे और उसने जैनशासन जाना, ऐसा पाँचवाँ कहा, उसके साथ मिलाने को। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भान कहाँ है उसे जहर है या नहीं? उत्साह उत्साह करके

जहर खाता है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, विकारभाव जहर है। उत्साह करके जहर को पीता है, अनुभव करता है अनादि से। आनन्द कौन है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया? हर्ष... हर्ष... हर्ष... हर्ष... दाँत निकाले। अरे! परन्तु क्या है उसमें? धूल का पकड़ने जाना जड़ मिट्टी-धूल शरीर, पैसा, इज्जत, कीर्ति, मकान। यह शरीर माँस का लोचा, हड्डियाँ धूल राख।

मुमुक्षु : धर्म का साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म के साधन कब थे वे? धर्म का साधन तो आत्मा में स्वभाव साधन है, वह धर्म साधन है।

मुमुक्षु : सहकारी करण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सहकारी कारण है, वह तो निमित्त हुआ। शरीर को कहाँ... शरीर को निमित्त कहा जाता है। वह तो निमित्तकारणरूप से ज्ञान करने के लिये। समझ में आया? यह सब बातें उपचार से कथन है। वस्तु, वस्तु अखण्डानन्द प्रभु के ऊपर दृष्टि देने से उसके स्वभाव साधन का परिणमन होता है। उस परिणमन में सब जानने में आ जाता है। 'सब आगम भेद सु उर बसे।' आता है न? किसके लिए? मुनि के लिए बात है? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की क्या कीमत है, (खबर नहीं)। देव-गुरु-शास्त्र को माने, वह धर्मध्यान श्रावक को। और उस धर्मध्यान से क्षायिक समकित होता है और धर्मध्यान से निर्जरा होती है, लो! ऐसा लिखा है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वही उसका धर्मध्यान, परद्रव्य की भक्ति, उसका धर्मध्यान। आहाहा! विषय पर। स्व विषय आत्मा कौन है, खबर नहीं। भारी गप्प चली है न। चिल्लाहट मचाते हैं, भाई! धीर हो। ऐसा प्रभु चिदानन्द, भाई! भगवान! तू एक बार धीरज से, धीरज से सुन तो सही। महाप्रभु अनन्त गुण की राशि का पिण्ड प्रभु आत्मा है। जितने गुण की दशा सिद्ध भगवान को प्रगटी, वे सब गुण तेरे स्वभाव में भरे हैं। आहाहा! केवलज्ञानी ने यह कहा है। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं।' यह केवलज्ञानी परमात्मा ने... नहीं कहा?

जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण केवली बोले अेम,
प्रगट अनुभव आपका निर्मल करो सप्रेम
ऐ चेतन प्रभु चेतन संपदा रे तेरे धाम में।

तेरे असंख्य प्रदेश, उस धाम में तेरी सम्पदा पूरी पड़ी है। खबर नहीं होती, खबर नहीं होती 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' सवेरे-शाम बोले जाये पहाड़े, हाँके जाये। एक भी अक्षर का भान नहीं होता। भगवानजीभाई! आहाहा!

भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर परमात्मा इन्द्र और गणधरों के समक्ष में दिव्यध्वनि में ऐसा कहते, भाई! जहाँ चैतन्य, वहाँ अनन्त गुण हैं। जहाँ चैतन्यता है, जहाँ चैतन्यता है—जानने-देखने का जहाँ भाव है, उस भाव में अनन्त गुण हैं। जहाँ चैतन्य वहाँ अनन्त गुण केवली बोले ऐम। भगवान के (ज्ञान) में ऐसा भासित हुआ था, वैसा वाणी में आया। आहाहा! भाई! यह जहाँ जानने-देखने का भाव जो सत्तारूप से अस्तिरूप से ज्ञात होता है, जानने-देखने का भाव जो अस्तिरूप से ज्ञात होता है, वहाँ अनन्त गुण भगवान ने देखे हैं। आहाहा! समझ में आया? अपरम्पार अनन्त, ऐसा। अपरम्पार अनन्त। समझ में आया? उसकी दृष्टि कर और अनुभव कर, तो कहते हैं, उसने पूरे जैनशासन को जाना। वीतराग को कहना था, जैनशासन का भाव था, वह सब उसे आ गया। आहाहा! परन्तु लोक को यह आत्मा क्या, इसकी कीमत नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : कीमत आवे कहाँ से सुने बिना?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। पिचहत्तर वर्ष तक सुना नहीं था, कहते हैं। यह सब ऐसा का ऐसा गया हमारे। ...में नहीं था, भावनगर में नहीं था। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! परन्तु बड़ा... ....! दुनिया के हीरा और माणेक की कीमत करे और यह बड़ा हीरा भगवान अन्दर स्वयं पड़ा है, जिसमें केवली ने अनन्त गुण देखे हैं। कितने गुण? कि आकाश के प्रदेश अमाप, उससे अनन्तगुणे गुण भगवान ने देखे। आहाहा! यह वह कहीं वस्तु! समझ में आया? आकाश ऐसे का ऐसा चलता जाता है, कहीं अन्त है आकाश का? आकाश कहाँ पूरा होता होगा जगह? आकाश ऐसा का ऐसा चलता जाता है न खाली भाग? तो उस खाली भाग का अन्त कहाँ आता होगा? ऐसे चारों दिशाओं में चलता ही जाता है, चलता ही जाता है। खाली... खाली... खाली... खाली... आकाश। भगवान कहते हैं, उस आकाश का कहीं अन्त है नहीं। अन्त हो तो फिर क्या? अमाप। उसके अंश प्रदेश गिने जाते हैं प्रदेश, हों! इतना एक, ऐसे-ऐसे अनन्त। उससे एक जीव

में अनन्तगुणे गुण हैं। आहाहा! ऐसा गुण का धारक गुणी आत्मा, ऐसे गुण का धारक गुणी आत्मा, उसे जिसने अन्तर से जाना, स्वसंवेदनज्ञानकर जाना। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टिपने से अपने को देखता है,... भाषा ऐसी की, देखो '**जो पस्सइ अप्पाणं'। वह सब जैनशासन को देखता है, ऐसा जिनसूत्र में कहा है।** ऐसा भगवान वीतराग की वाणी में कहने में आया है। है या नहीं उसमें? कभी सुना है? शान्तिभाई! वह है उसमें लेखन में? पुस्तक ली है? किसी दिन तो लो। वहाँ वह मशीन... मशीन... इस जिनसूत्र में कहा है। है इसमें? भगवान सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग तीर्थंकर ने कहे हुए शास्त्र में ऐसा आत्मा कहा है। कहो, जैचन्दभाई! इतने वर्ष में ऊँचा लगता है अभी? आहाहा! 'परख्या माणेक मोतिया, परख्या हेम कपूर, परन्तु एक न परख्यो आत्मा वहाँ रहा दिग्मूढ़।' डेढ डाह्यो दुनिया का सबका मशीन, फशीन और यह और यह, हो हा, हो हा। तू कौन? कि हमको खबर नहीं हमारी। दीपक तले अन्धेरा। यहाँ कहते हैं कि उसे जिसने जाना, सारा जैनशासन जाना, लो! उसने बारह अंग को जाना, उसे केवलज्ञान होनेवाला है, लोकालोक जानेगा। समझ में आया? और उस आनन्दमय को जानने से आनन्द से दूसरे भिन्न सभी पदार्थ ज्ञान में आये कि यह मेरी चीज़ नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के बाद करे ही नहीं। जानता है कब? जाना नहीं। जाना हो तो... क्या रहे? विकल्प आदि हो, शरीरादि हो, वह भिन्न रहते हैं। समझ में आया? भिन्नरूप से जानता है। सम्यग्दृष्टि हो, युद्ध भी हो, छियानवें हजार स्त्रियों के साथ विवाह भी हो। क्या है? भिन्नरूप से जानता रहता है वह। मेरे रूप से मानकर वहाँ खड़ा नहीं। जहाँ हो, वहाँ वह स्वयं आनन्द में ही खड़ा है, ज्ञान में खड़ा है। हो राग, क्रिया हो देह की, पर हो। भिन्न है, उसमें मैं नहीं, मुझमें वह नहीं। समझ में आया? आहाहा!

बात ही यह है कि पूरा पहलू बदला नहीं इसने। समझ में आया? जिस पहलू में खड़ा है, वहाँ तो राग-द्वेष, पुण्य-पाप और यह सब शरीर, वह है। वह पहलू बदलकर इस पहलू में जाये तो खबर पड़े कि वह आत्मा यह है। वह आत्मा आनन्दमय है, ज्ञानमय ऐसा जानते हुए सब भिन्न है, ऐसा ज्ञात हो। फिर जहाँ तक रहे, वहाँ तक ऐसे

भिन्न रहे, स्थिरता पूरी हो (तो) छूट जाये और केवलज्ञान में भिन्नरूप से जाने। मैं आत्मा यह हूँ और यह सब भिन्न है। समझ में आया?

कैसा वह आत्मा है? रागादिक ज्ञानावरणादिक से रहित है,... अभी, हों! कैसा है आत्मा? वह विकल्प उठते हैं पुण्य-पाप के, उनसे भिन्न तत्त्व है आत्मा अन्दर। पुण्य-पाप तो आस्रवतत्त्व है, ज्ञानावरणादि अजीवतत्त्व है। उनसे रहित भगवान अभी आत्मा अन्दर है। ऐसे आत्मा को अन्दर जानने से सारे जैनशासन के मर्म को जान लिया, उसने जैनशाासन जाना। समझ में आया? **अन्यभाव जो नर नारकादि पर्याय उनसे रहित है,...** यह मनुष्य आदि का अन्दर उदयभाव। वह देह से पर्याय से, इनसे भी आत्मा रहित है अभी, हों! ऐसा दृष्टि में भान होने से उनसे आत्मा रहित है। **विशेष अर्थात् गुणस्थान मार्गणा जीवसमास इत्यादि सब भेदों से रहित है।** लो! गुणस्थान, मार्गणा। पहला गुणस्थान (आदि) सब चौदह गुणस्थान है न? भेद भेद। मार्गणा। पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान, ऐसे सब भेद और जीवसमास एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय आदि पर्याप्त (अपर्याप्त)। **सब भेदों से रहित है।** आहाहा! कलश टीका में आता है न, यह १५वीं। हो उसमें वह तो जो अपेक्षा लागू करके करे, वह अपेक्षा, उसमें क्या? उसमें कुछ विशेष स्पष्टीकरण....

भगवान आत्मा अभेद है। एक समय में भगवान चिदानन्द प्रभु की अन्तर दृष्टि अनुभव होने पर उससे यह सब भेदवाली चीज़ भेद-भिन्न है। अखण्ड अभेद में वह आती नहीं। ऐसा जिसने भाव जाना, उसने भेद को जाना, अभेद को जानते हुए भेद को जाना, आत्मा को जानते हुए अन्य को जाना, आत्मा को जानते हुए जग को जाना, आत्मा को जानते हुए लोकालोक को जाना। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे आत्मा के स्वरूप को जो देखता है, जानता है, अनुभवता है, वह सब जिनशासन का मर्म जाननेवाला है। देखो! जिनशासन का मर्म जाननेवाला है। ऐसा मर्म जाने बिना शास्त्र के अर्थ करे समझे बिना। जैनशासन तो आत्मा की वीतरागी पर्याय है न। जैनशासन कहीं बाहर होता नहीं। आत्मा वीतरागस्वरूप है, अनन्त गुणरूप वीतरागस्वरूप आत्मा की वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति की पर्याय, वह वीतरागभाव है, वह वीतरागभाव जैनशासन है। आहाहा! यह जाना, उसे सब ज्ञात हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं। यह बात सच्ची। पुराने अनुभवी हैं न। सब जाना अभी तक (वह) थोथा है। उसमें कुछ है नहीं। प्राणभाई! यह हमारे प्राणभाई वहाँ के प्रमुख थे। जैतपुर में। यह उनके पिता भी वहाँ थे न। नाग्नेश। थे तो प्रमुख, अब प्रमुख कहाँ रहे? जीवित है परन्तु वहाँ। कहो, समझ में आया?

आहाहा! अरे! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर... श्रीमद् एकबार ऐसा कहते हैं कितनों को कि तुम निवृत्ति में, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु की माला गिनना, माला गिनना। एक बार कहते हैं। सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञदेव परमगुरु। इसका अर्थ भी यह है न। सर्वज्ञदेव परमगुरु—सर्व का जाननेवाला आत्मा, वह स्वयं अपना गुरु है। वे सर्वज्ञदेव व्यवहार गुरु। बड़े में बड़ा सर्वज्ञदेव एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, वह आत्मा है या नहीं? वह परमगुरु सर्वज्ञदेव। ऐसा ही यह आत्मा, यह सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है, अपने स्वभाव में सर्वज्ञपना अन्दर पड़ा है। ऐसे सर्वज्ञस्वभाव को जानने से वह आत्मा ही सर्वज्ञदेव परमगुरु हो गया। उसमें तो सर्वज्ञ की शक्ति की प्रतीति अनुभव का जोर है उसमें। समझ में आया? बहुत परन्तु परमात्मप्रकाश में अलौकिक बातें की हैं सब! लो! यह गाथा ९९ हुई। अब १००, १००।

★ ★ ★

गाथा - १००

१००) अप्प-सहावि परिट्ठियह एहउ होइ विसेसु।
दीसइ अप्प-सहावि लहु लोयालोउ असेसु॥ १००॥

इसी और इसी का विशेष स्पष्टीकरण अधिक (करते) हैं।

अन्वयार्थ :- आत्मा के स्वभाव में लीन हुए पुरुषों के... 'आत्मस्वभावे प्रतिष्ठितानां' है न? भगवान आत्मा का जो स्वभाव। है न? आत्मस्वभाव—आत्मा वस्तु का स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण स्वभाव। उस स्वभाव में स्थिर होता, प्रतिष्ठा पाता, उसमें एकाकार होता हुआ, उसकी **'एष विशेषः भवति'** उसकी एक विशेषता होती है कि **प्रत्यक्ष में जो यह विशेषता होती है कि आत्मस्वभाव में उनको**

समस्त लोकालोक शीघ्र ही दिख जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा का स्वभाव, स्वभाव अर्थात् त्रिकाली शक्ति का स्वरूप। वस्तु आत्मा का त्रिकाली स्वभाव ज्ञान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आनन्द, शान्ति, प्रभुता, स्वच्छता—ऐसे अनन्त गुणरूप जो स्वभाव, उसमें जो स्थिर होता है, दृष्टि देकर स्थिर होता है, वह आत्मस्वभाव में लीन होता है। उसे समस्त लोकालोक अल्पकाल में दिख जाता है। उसे अल्पकाल में लोकालोक का ज्ञान हो जायेगा, लोकालोक ज्ञात हो जायेंगे। समझ में आया?

भावार्थ :- अथवा इस जगह ऐसा भी पाठान्तर है, 'अप्पसहाव लहु'... अपना लिया। **इसका अर्थ यह है कि अपना स्वभाव शीघ्र दिख जाता है,...** जो आत्मा के स्वभाव में दृष्टि करके स्थिर हुआ, उसे सब स्वभाव जानने में आ गया। अपना स्वभाव सब जानने में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूर्ण स्वभाव वर्तमान में ज्ञात हो और उसमें लीन होने पर पूर्ण स्वभाव, पूर्ण केवलज्ञान में अपना स्वभाव ज्ञात हो जाता है।

जिसने यह आत्मद्रव्य वस्तु का स्वभाव अनन्त ज्ञान—सर्वज्ञ ज्ञान, सर्वज्ञ दर्शन, सर्वज्ञ-पूर्ण, पूर्ण स्वच्छता, वह पूर्ण स्वच्छता। उस पूर्ण स्वच्छता का अर्थ पूर्ण। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता, पूर्ण शान्ति वह सब पूर्ण शब्द में लागू पड़ता है, यहाँ सर्व शब्द है, परन्तु वह सब एक का है। ऐसा जो आत्मस्वभाव, उसमें जो स्थिरता करके लीन होता है, उसे सब स्वभाव जानने में आ जाता है। पूर्ण रीति से, प्रत्यक्षरूप से सब जानने में आ जायेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह इसी क्षण हो, ऐसा है इसमें। परन्तु उसके प्रमाण में उसका प्रयत्न चाहिए या नहीं? वस्तु अनन्त गुण की खान, उसका पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से स्थिर होने से, कहते हैं कि आत्मा के सब स्वभाव प्रत्यक्ष ज्ञात हो जायेंगे, ऐसा कहते हैं, सब ज्ञात हो जायेंगे। समझ में आया? **अपना स्वभाव शीघ्र दिख जाता है,...** आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है? उसके सामने एकाकार होना यह। यह कैसे होना? जाप करना है कुछ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक यह यहाँ? लौकिक तो सब किया है तुमने। भगवान आत्मा तो लोकोत्तर चीज़ है। शरीर को कम (रद्द) करो, पुण्य-पाप को रद्द करो, अल्पज्ञ अवस्था उतना वह नहीं, (इसलिए)उसे भी रद्द करो। तो पूरा आत्मा पूर्णानन्द अनन्त गुण का धाम, वह रद्द करने से बाकी रह जाता है। समझ में आया? शेष करने से कुछ रहता है या नहीं वापस? रद्द करते नहीं रहता यह योगफल करे उसमें? यह नामा के लिखनेवाले को, होशियार मनुष्य। श्रीमद् ने कहा न अनुभव, क्या कहा? 'अबाध्य अनुभव जो रहे, वह है जीव स्वरूप' ऐसा कहे, शरीर नहीं, यह रद्द करो, वाणी नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, कर्म नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प नहीं। अबाध्य। रद्द करते-करते जो बाकी रहे, वह आत्मा। परन्तु कभी शेष करना आया है कब इसे? धूल का शेष करे, यह रुपये मिले, इस वर्ष पच्चीस हजार पैदा किये और पाँच लाख में पच्चीस हजार मिले, ढींकणा, फीकणा। योगफल मांडा जहर का। ओहोहो!

परमात्मप्रकाश है न यह। परमात्मस्वरूप ही तू है, कहते हैं। परम-आत्म अर्थात् स्वरूप। परम स्वभाव, परम स्वभाव, अनन्त गुणरूप परम स्वभाव। उसे जिसने जाना उसे शीघ्र परम स्वभाव पूर्ण ज्ञात हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? **और स्वभाव के देखने से समस्त लोक भी दिखता है।** ले! दो बात। अपना शक्तिरूप स्वभाव पूर्ण अनन्त पहले देखा, श्रद्धा की, अनुभव किया, उसे पूर्ण स्वभाव ज्ञान में प्रत्यक्ष दिख जायेगा और उसे लोकालोक भी ज्ञात हो जायेगा। समझ में आया? **यहाँ पर भी विशेष करके पूर्व सूत्रकथित चारों तरह का व्याख्यान जानना चाहिए,...** पूर्व में चार कहे थे न? वह यहाँ भी ले लेना। **क्योंकि यही व्याख्यान बड़े-बड़े आचार्यों ने माना है।** देखो! **'यस्मात्तस्यैव वृद्धमतसंवादरूपत्वादिति'। 'वृद्धमत'।** महा आचार्य वृद्ध उन्हें—आचार्य को। जो कोई भगवान आत्मा को जाने, वह सब जाने। एक बोल।

भगवान आत्मा को अतीन्द्रिय आनन्द से अनुभवकर जाने, उससे सब भेद भिन्न हैं, ऐसा जाने। भगवान आत्मा को भावश्रुतज्ञान से जाने, वह श्रुतज्ञान की सामर्थ्य व्याप्ति की है लोकालोक ज्ञात हो ऐसी, पश्चात् लोकालोक को जाने। भगवान आत्मा को जाने, उसे अतीन्द्रिय केवलज्ञान प्रगट होकर लोकालोक को जाने। ऐसे प्रत्येक में चार बोल

इस जगह भी ले लेना। आहाहा! यह बहियों का जाने तो कितना हो, ऐसा इसमें कुछ नहीं आया। लोग तो ऐसा कहते हैं कि पन्ना फिरे और सोना झरे। बातें नहीं करते? तुम्हारे बनिया में बातें तो करते हैं या नहीं? बहिया फिरावे। पन्ना फिरे और सोना झरे, कहते हैं। अर्थात् क्या? कहीं किसी की उगाही हो, लेना-बेना रह गया हो तो याद आ जाये, ऐसा। यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान का पन्ना फिरा साथ में अन्दर ज्ञान झरे। सोना झरे एक ओर उसके घर में रहे। आहाहा! भगवान ज्ञान का पन्ना बड़ा महा अन्दर पड़ा है। जिसमें केवलज्ञान एक पर्याय, एक शक्ति, एक शक्ति, हों! एक ही शक्ति में इतना केवलज्ञान सत्ता, सत्त्व, सत्त्व। एक केवलदर्शन, एक दर्शन में केवल अनन्त सत्त्व। एक आनन्द का पासडा पूरा ऐसा पड़ा हो, उसमें अनन्त आनन्द, एक स्थिरता का—चारित्र का एक पासड़ा पूरा प्रत्यक्ष पड़ा है प्रत्यक्ष। यह है एक साथ में, हों! उसमें तो कागज हो एक दूसरा।

ऐसा भगवान परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप, परम स्वरूप अर्थात् परम स्वभाव, परम स्वभाव अर्थात् एक-एक गुण की अनन्त शक्तिवाला ऐसे अनन्त स्वभाव। ऐसे एक भगवान को जिसने अन्तर ज्ञान से जाना, उसे यह चारों बोल जानने में आ गये। चारों व्याख्यान भगवान वृद्ध सन्तों ने कहे हैं, इसलिए इसमें यह चार ले लेना। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा जाना, उसने सर्व जाना। 'ऐगं जाणई सव्वं जाणई।' आता है न? श्रीमद् में आता है यह तो आचारांग सूत्र का, परन्तु अपने आता है न प्रवचनसार में, ४८-४९ गाथा। आत्मा जाना, उसने सर्व जाना; सर्व जाना, उसने आत्मा जाना। ऐसा इकट्ठा। यह जाना उसने यह जाना। एक आत्मा, ओहोहो! तीन काल की पर्यायवाला, अनन्त गुणवाला। एक समय में अनन्त गुणवाला और एक गुणों के अंश त्रिकल रहे, ऐसे त्रिकाल पर्यायें और गुणरूप एक स्वरूप, ऐसा आत्मा जिसने जाना, उसने सब जाना। समझ में आया? उस ज्ञान में सब समा जाता है। बारह अंग हो जायेंगे उसे, उसे केवलज्ञान हो जायेगा, सब स्वभाव प्रत्यक्ष ज्ञान में हो जायेंगे। पहले इतने हुए प्रतीति में, अनुभव में आये, उसे सब ज्ञान प्रत्यक्ष हो जायेंगे। एक जाना, उसने सब जाना, ऐसा अभी भी कहा जाता है, लो! ऐसा कहा। आहाहा!

परमात्मप्रकाश। यह तो समयसार कहो या परमात्मप्रकाश। समयसार वह आत्मा

है। यह भी परमात्मप्रकाश है। भाषा दूसरी है। समझ में आया? अरे! जैन परमेश्वर ने वीतरागदेव ने कहा हुआ आत्मा, हों! अज्ञानी कहे, ऐसा नहीं। अज्ञानी को खबर नहीं कि आत्मा कैसा और कितना है और कैसे है। यह तो वीतराग परमेश्वर अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ ने केवलज्ञान में देखे हुए आत्मा, उसका एक आत्मा इतना है। समझ में आया? ऐसा एक को जो अन्तर (में) जाने, वह सबको जाने। इस प्रमाण जाने कि मेरा आत्मा ऐसा है, ऐसे सब अनन्त आत्मा हैं, ऐसा भी ख्याल में आ गया। है या नहीं? मेरा ऐसा आत्मा, ऐसे सब आत्मा अनन्त आनन्दमय है। सब आत्मा अनन्त आनन्दमय है। विकार है, वह क्षणिक आस्रवतत्त्व में है, वस्तु में उसकी वस्तु में तो नहीं। सब आत्मा ज्ञात हो गये और आत्मा सब ज्ञात होने से उनसे भिन्न परमाणु आदि भी ज्ञात हो गये। परद्रव्यों से अत्यन्त भिन्न जिसमें आनन्द और ज्ञान नहीं, वे भी ज्ञात हो गये। जिसमें ज्ञान और आनन्द है, वे भी ज्ञात हो गये और ज्ञान-आनन्द बिना के भी ज्ञात हो गये। आहाहा! कभी कहाँ विचार किया है? यह तो अपना। उसे ऐसा होगा कि अपना। अपना अर्थात्? वह तो जैन साधु थे। ....भाई!

मुमुक्षु : अपने थे या दूसरे के थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे अपने की कैसे? यह तो आत्मा का स्वभाव ही जैनदर्शन है। जैन वीतराग कोई वाडा नहीं। आत्मा, जैसे अनन्त आत्मायें हैं, वैसा स्वरूप भगवान ने जाना। भगवान ने जाना, ऐसा कहा, वह तो वस्तु का स्वरूप है। जैन अपने और पर, ऐसी कहीं दो चीज़ नहीं। अज्ञानी को खबर नहीं, इसलिए बातें की हैं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने जैसा जीव स्वभाव है, (उससे) जीता राग और अज्ञान को, उसे जिन कहा जाता है। पूर्ण दशा प्रगट हुई, उसे जिनवर कहा जाता है। यह तो वस्तु की स्थिति है। उसमें फलाना और फलाना का प्रश्न कहाँ है? क्योंकि आत्मा ही वीतरागस्वरूप है और वीतराग, वह निर्दोष गुणस्वरूप है। निर्दोष गुणस्वरूप को निर्दोष गुण की पर्याय द्वारा जानना, वह जैनशासन है। बस! उसे जो प्राप्त करे, वह सब जैनशासन है। ऐसे एक आत्मा को जाने, वह सब जाने—ऐसा इसमें चार बोल से कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल ११, शनिवार, दिनांक - ०४-१२-१९६५
गाथा - १०१ से १०३ प्रवचन - ६७

गाथा - १०१

आगे इसी अर्थ को दृष्टान्त-दार्ष्टान्त से दृढ़ करते हैं—यह चार कहे न, चार बोल, उसे विशेष यहाँ दृष्टान्त देकर समझाते हैं।

१०१) अप्पु पयासइ अप्पु परु जिम अंबरि रवि-राउ।
जोइय एत्थु म भंति करि एहउ वत्थु-सहाउ॥ १०१॥

चोर बोल कहे थे वहाँ कि जो आत्मा को जाने, वह सबको जाने। कहा था न? आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप स्वसंवेदनज्ञान से जाने, वह सबको जाने। दूसरा बोल ऐसा कहा था कि आत्मा अपने में निर्विकल्प शान्ति से अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हुआ, यह अनुभव, वह आत्मा, इसके अतिरिक्त का सब रागादि, वह पर। ऐसे एक आत्मा को जानने से पर सब भेदों को जानता है। ऐसा आया था। समझ में आया? तीसरा बोल ऐसा आया था कि आत्मा भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जानने से, भावश्रुतज्ञान से आत्मा को जानने से, भावश्रुत में अनुमान से लोकालोक आदि परोक्ष ज्ञान उसमें ज्ञात हो जाता है, लोकालोक ज्ञात हो जाता है। चौथे में ऐसा कहा कि, आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का ध्यान करने से प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाये, उसे पूर्ण लोकालोक ज्ञात हो जाता है। ऐसे चार बोल कहे थे।

आगे इसी अर्थ को दृष्टान्त-दार्ष्टान्त से दृढ़ करते हैं—

अन्वयार्थ :- जैसे आकाश में... यह दृष्टान्त दिया। **'रविरागः'** रवि अर्थात् सूर्य का प्रकाश, राग अर्थात् प्रकाश। **अपने को और पर को प्रकाशित करता है,...** सूर्य का प्रकाश अर्थात् रवि का राग—प्रकाश उसे प्रकाशित करता है और दूसरे को भी प्रकाशित करता है। **उसी तरह आत्मा अपने को, (और) परपदार्थों को प्रकाशता है,...** आत्मा अपने को जानते हुए, यह चार बोल आये थे न, उनका ही यह दृष्टान्त देते हैं। आत्मा

अपने स्वरूप में स्वसंवेदनज्ञान से जानते हुए... समझ में आया ? अपने को और परपदार्थ को प्रकाशित करता है। **सो हे योगी! इसमें भ्रम मत कर।** ऐसा कहते हैं। ऐसा ही उसका स्वभाव है चिदानन्दस्वरूप, ज्ञानानन्द भगवान आत्मा पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव से भरपूर आत्मा, उसका जहाँ चौथे गुणस्थान से स्वसंवेदनज्ञान हुआ, तब से वह अपने को जानते हुए सबको जानता है। आनन्द से जानते हुए भिन्न रागादि को भी जानता है। विशेष श्रुतज्ञान द्वारा व्याप्ति अनुमान करके सब परोक्ष लोकालोक को भी जानता है और पूर्ण होने के पश्चात् तो लोकालोक को प्रत्यक्ष जानता है। **इसमें भ्रम मत कर।** भ्रमणा न कर, सन्देह न ला (कि) ऐसा आत्मा होगा ? ऐसा। एक समय में उसका भान होने पर सबको जाने ? चार प्रकार हैं, उसमें अन्तिम लोकालोक आदि इन सबको जाने, ऐसा आत्मा का एक समय का पर्याय धर्म है। समझ में आया ? इतना एक आत्मा लोकालोक को जाने ? वह एक समय की दशा में ? इतना बड़ा आत्मा कहाँ छिप गया ? छिपा कहाँ, है ऐसा का ऐसा पड़ा है पूरा। समझ में आया ? यह कहते हैं कि उसका भान होने पर उसकी दशा प्रमाण और पूर्ण में लोकालोक को जाने, उसमें सन्देह नहीं कर। क्यों ? **ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है।** देखो ! यह वस्तु भगवान आत्मा का ही ऐसा स्वभाव है। समझ में आया ?

भावार्थ :- दृष्टान्त देते हैं, **जैसे मेघरहित आकाश में सूर्य का प्रकाश...** बादल रहित **सूर्य का प्रकाश अपने को और पर को प्रकाशता है,...** सूर्य अपने को प्रकाशित करता है और परपदार्थ को भी प्रकाशित करता है। **उसी प्रकार वीतरागनिर्विकल्प समाधिरूप कारणसमयसार में लीन होकर...** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा अपना पूर्ण शुद्ध आनन्दस्वरूप वस्तु है, उसमें रागरहित अभेद शान्तिरूप कारणसमयसार मोक्षमार्ग निश्चय। समझ में आया ? शुद्ध भगवान द्रव्यस्वभाव वस्तु के अन्तर में निर्विकल्प सम्यग्दर्शनरूप श्रद्धा, निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, निर्विकल्प शान्ति स्थिरता, ऐसा वीतराग निर्विकल्पसमाधिरूप कारणसमयसार, वह पर्याय है। समझ में आया ?

लीन होकर... वस्तु स्वरूप तो कारणसमयसार त्रिकाल है, परन्तु इस लीनता को भी यहाँ कारणसमयसार कहा है। यहाँ तो तीन प्रकार ही उसी और उसी के। समझ में आया ? वस्तु, वह द्रव्य; द्रव्य अर्थात् पदार्थ, वह कारणसमयसार। वस्तु, वस्तु त्रिकाल वस्तु ज्ञानानन्द का कन्द अकेला पूर्णानन्द का रस, वह वस्तु, वह कारणसमयसार द्रव्य।

उसमें रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता, वह पर्यायरूप मोक्ष के कारणरूप समयसार (-मोक्षमार्ग पर्याय इसलिए), कारणसमयसार। समझ में आया?

मोहरूप मेघसमूह का नाश करके... जैसे उसको (आकाश को) बादल का नाश, उसी प्रकार पर में सावधानीरूपी मेघ का नाश कर। **यह आत्मा मुनि अवस्था में...** मुनि अर्थात् मूल पाठ में छद्मस्थ अवस्था है। समझ में आया? छद्मस्थ अवस्था में यहाँ उत्कृष्ट बात ली है जरा मुनि की भले, परन्तु 'छद्मस्थ अवस्था में' ऐसा है मूल तो पाठ में। **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को...** यह मुनि छद्मस्थ शब्द प्रयोग किया है टीका में है। मूल टीका में छद्मस्थ है। छद्मस्थ का मुनि शब्द प्रयोग किया है। संस्कृत में छद्मस्थ है। छद्मस्थ चौथे से बारहवें (गुणस्थान तक) लेना है। यहाँ से जरा... समझ में आया? यहाँ अपने २१ पृष्ठ पर आ गया था, २१ पृष्ठ पर आ गया था। चौथे गुणस्थान से आत्मा को चन्द्र का द्वितीया का भाग ऐसा स्वसंवेदनज्ञान प्रगट होता है। २१ पृष्ठ पर है। ... समझ में आया?

यह आत्मा ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति वस्तु आत्मा का सम्यग्दर्शन में स्वसंवेदन आत्मा ज्ञान का ज्ञान करे, वह राग की अपेक्षा बिना... २१ पृष्ठ पर है न? यहाँ है मेरे इस पृष्ठ में आया। २१ पृष्ठ पर। १२ गाथा, ऐसा न? यहाँ तो पृष्ठ लिखा है, इसलिए आ गया उसमें बस। २१ है, देखो न। **चतुर्थ गुणस्थान में (अविरति) सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबन्धी के अभाव होने से सम्यग्ज्ञान तो हो गया,...** स्वसंवेदनज्ञान, हों! शास्त्रज्ञान हो, वह व्यवहार। समझ में आया? पर आदि का विकल्प हो, वह व्यवहार। पंच महाव्रत आदि, यहाँ तो नीचे भक्ति आदि वह व्यवहार, परद्रव्य का विकल्प आदि विचार, वह सब व्यवहार। **परन्तु कषाय की तीन चौकड़ी बाकी रहने से द्वितीया के चन्द्रमा के समान विशेष प्रकाश नहीं होता,...** श्रावक तो (पाँचवें) गुणस्थान में, **वीतरागभाव बढ़ गया, इस कारण स्वसंवेदनज्ञान भी प्रबल हुआ,...** पाँचवें गुणस्थान में दूसरी कषाय (चौकड़ी) गयी, इसलिए स्वसंवेदनज्ञान स्थिरता विशेष हुई ज्ञान और वेदन। समझ में आया? वे कहे, एक ही बात करते हैं। देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति, वह धर्मध्यान। वह तो परद्रव्य का विकल्प है। वह तो पहले विकल्प होता है ध्येय, चित्त स्थिर करने के लिये, परन्तु वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। समझ

में आया? यह ज्ञान अन्तर में होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! भले सब बात आयी हो। धवल में आती है न बहुत। कल निकाली थी। कहाँ बुलाना तुमको। परद्रव्य है न, परद्रव्य ध्येय। वह तो आता है, द्रव्यसंग्रह में नहीं आता? आता है न? उस ध्यान के विषय में बहुत बोल आते हैं बहुत। ओम और, क्या कहा है? पंच परमेष्ठी और सब भरा है न। बहुत डाले हैं। चित्त स्थितिकरण करने के लिये पहले परद्रव्य का ध्येय होता है। वह तो ज्ञानार्णव में नहीं डाला? वह जल क्या कहलाती है? जल धारणा और पृथ्वी धारणा और सब क्या? विकल्प है। ऐसा हो परन्तु वह कहीं वस्तु का मूल स्वरूप नहीं। वह तो अशुभ से हटने के लिये वह आता है। वह मूल ज्ञान नहीं, मूल श्रद्धा नहीं, मूल शान्ति नहीं। समझ में आया? समझ में आया? भीखाभाई!

भगवान आत्मा स्व चैतन्यमूर्ति अखण्डानन्द प्रभु का अन्दर ध्येय बनाकर... समझ में आया? जो ज्ञान का ज्ञान में वेदन होना, ज्ञान में प्रत्यक्षपना अन्दर होना, ज्ञान प्रत्यक्ष अपने को वेदे, ऐसा अंश तो चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। बाकी जितनी बातें की हों, वह सब परद्रव्य का पहले विकल्प होता है स्थिरता के लिये, उसमें क्या हो गया? इसलिए वह वस्तु हो गयी? कहो, धर्मचन्दजी! वह तो वस्तु वह हुई अभी तो। ऐसे के ऐसे गप्प मारते हैं। वस्तु वह पूरी, पदार्थ कहा न, भ्रम न कर। तेरा स्वभाव ऐसा है। वह ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में भी वेदन होता है। सम्यक् चैतन्य स्वतः स्वतः राग बिना, पर बिना, परद्रव्य के ध्येय बिना, स्वद्रव्य का ध्येय। वह तो परद्रव्य का विचार आवे, पहले आवे जरा अशुभ टालने को, णमो अरिहंताणं (ऐसा) विचार करे। ओम और ३५ अक्षर नहीं आते? सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय सब उसका आता है। उसमें क्या है? समझ में आया? यहाँ तो छद्मस्थ अवस्था की बात ली है। उस छद्मस्थ में सब आ गया।

आत्मा छद्मस्थ **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को और पर को कुछ प्रकाशित करता है,...** समझ में आया? यह पहले से आत्मा छद्मस्थ अवस्था में वह केवलज्ञान अवस्था बाद में लेनी है न, इसलिए यह ली। चौथे गुणस्थान से अपना ज्ञान ज्ञान को जानता हुआ पर को जाने, ऐसा भाव चौथे से प्रगट होता है। मुनि को विशेष है। इसलिए

यहाँ जरा मुनि डाले। **वीतराग स्वसंवेदनज्ञानकर अपने को और पर को कुछ प्रकाशित...** कुछ प्रकाशित, यह शब्द रहा, थोड़ा प्रकाश है। **पीछे...** अब, पहले और बाद में। चौथे से बारहवें तक स्वसंवेदनज्ञान के प्रकार शुद्धता के अंश बढ़े। समझ में आया? परन्तु उसमें कुछ पर को जाने। स्व को और पर को कुछ जाने। समझ में आया? पूरा सब न जाने। भले पूरा अपेक्षा से कहा व्याप्ति ज्ञान से। ... समझ में आया?

पीछे अरहन्त अवस्थारूप... भगवान आत्मा अपने आनन्द में, ज्ञानानन्द में लीन होकर जो कारणसमयसार जो प्रगट किया, उसमें से विशेष लीन होकर **कार्यसमयसार स्वरूप परिणमन करके...** लो! अब उसका फल यह आया। **कार्यसमयसार स्वरूप परिणमन...** कार्य अर्थात् केवलज्ञान, वह कार्यसमयसार। कारणसमयसार स्वरूप का मोक्षमार्ग, वह कारणसमयसार। वह द्रव्य कारण, वह यहाँ नहीं लेना। समझ में आया? वस्तु तो भगवान कारणपरमात्मा त्रिकाली।

परमात्मप्रकाश है न। द्रव्य जो है, वह तो कारणपरमात्मा त्रिकाली। भगवान आत्मा एक समय में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, विभुता—ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड पूरा तत्त्व द्रव्य, वह तो कारणप्रभु, कारणपरमात्मा। उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की स्थिरता, वह कार्यसमयसार केवलज्ञान, उसका कारणरूप समयसार पर्याय, वह पर्याय। उस पर्याय का फल कार्यसमयसार परिणमन करके। पूर्ण स्वरूप, देखा? कार्यसमयसार(रूप) परिणमन करके। समझ में आया? '**कार्यसमयसाररूपेण परिणम्य**' ऐसा है पाठ।

भगवान आत्मा ऐसे ज्ञान-केवलज्ञानमय तो है, परन्तु उसका ध्यान करने से, स्थिरता करने से, प्रथम थोड़ा पर को जाने, स्व को जाने, पश्चात् एकदम पूर्ण दशा स्थिर होने से यह आत्मा ही स्वयं तीन काल-तीन लोक को कार्यसमयसार का परिणमन करके केवलज्ञान में जाने। भ्रान्ति न कर, ऐसा कहते हैं। यह वस्तु का ऐसा स्वभाव है। यहाँ देखो न, चौथा पद तो यह लिया। भाई! तू भ्रान्ति न कर, यह वस्तु ऐसी ही है। अकेला निःसहाय, पर की सहाय बिना। भगवान आत्मा पूर्णानन्द के स्वसंवेदनज्ञान की स्थिरता द्वारा पूर्ण कार्यसमयसार परिणमे। सब तीन काल, तीन लोक को जाने, ऐसा उसका सर्वज्ञ जो स्वभाव शक्ति में था, वह ध्यान से व्यक्त पर्याय में प्रगट हुआ। उसमें

सन्देह न कर कि ऐसी चीज़ होगी ? ऐसा होगा ? आहाहा ! समझ में आया ?

'**वस्तुस्वभावः एष वस्तुस्वभावः**'। आहाहा ! **केवलज्ञान से निज और पर को...** आचार्य ने स्वयं डाला। **सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रकाशता है।** यह स्पष्टीकरण किया है, पाठ में नहीं। समझ में आया ? स्व परम प्रकाशित है न, इसलिए सब स्पष्ट कर दिया। आत्मा, यह आत्मा अर्थात् लोगों ने श्रुतम् श्रुतम्—सुना नहीं। ऐसा कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने ? समझ में आया ? जेचन्दभाई ! सुना नहीं, कहते हैं। 'श्रुत परिचित अनुभूता' सब सुना है, वह सब पर। परन्तु भगवान आत्मा कैसा इसने सुना नहीं। आहाहा ! स्व से एकत्व और पर से भिन्न, ऐसा भगवान आत्मा अन्दर कौन है, इसने बात सुनी नहीं। सुनी नहीं तो परिचय किया नहीं, आदत पड़ी नहीं और आदत पड़ी नहीं तो अनुभव किया नहीं। यह जगत के उल्टे किये सब। काम भोग—राग करना और राग को भोगना, राग करना और राग को भोगना, ऐसा सुना, वेदन किया, परिचय किया और वेदन किया। यह नहीं, व्यर्थ यह तो ... लेकर। फिर अच्छा हो, तब तो वहाँ नहीं होता। कहो, समझ में आया इसमें ? ऐ... ...भाई ! यह तो शरीर काम नहीं करता, इसलिए खेद होता है, इसकी अपेक्षा वह... ऐसा नहीं। यह तो इन्द्र के अवतार—भव हों, सुविधा का पार न हो तो भी वह दुःखदशा है। करोड़ों अप्सरायें, दो सागर की स्थिति शकेन्द्र की। समझ में आया ? बत्तीस हजार विमान का स्वामी, एक-एक विमान में असंख्यात देव कितने ही विमानों में। समझ में आया ? वह भी दुःखी है। क्योंकि परसन्मुख के लक्ष्य की आकुलता में दुःखी है। ऐसा दुःख देखकर जो विमुख हो, उसे सच्चा कहा जाता है। ऐसे शरीर की अनुकूलता न हो वहाँ... समझ में आया ? वह सातवें नरक का नारकी उत्कृष्ट प्रतिकूलता और बीच की प्रतिकूलता यह तो साधारण। और उत्कृष्ट अनुकूलता स्वर्ग में। अपने यह लो न स्त्रीवाला देव। शकेन्द्र, जिसे बत्तीस लाख तो विमान है। एक-एक विमान में असंख्य देव, उनका साहेबा अर्ध लोक का नाथ, करोड़ों अप्सरायें, कभी रोग नहीं, कभी क्षुधा नहीं, तृषा नहीं बाहर की कहीं उसे रोटियाँ-पानी चाहिए हो। अमुक ऐसी तृषा लगे, वहाँ अमृत झरे। वह जीव भी दुःखी है। चिमनभाई ! क्यों ? कि परद्रव्य के दासता की वृत्ति है। उसे स्वद्रव्य शुद्ध चिदानन्द मूर्ति कौन है, उसकी खबर नहीं। भले खबर हो तो भी जितनी अस्थिरता, उतनी (आकुलता) है। वह तो

ज्ञानी है, शकेन्द्र तो समकिती है, भान है। उसे आनन्द के समक्ष सब रागादि, इन्द्रिय, अप्सरायें सब पर लगते हैं। यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। उनके प्रति के राग का, भोग का विकल्प उठे, वह सब दुःखदायक भासित होता है। इन्द्र को वह दुःखदायक भासित होता है। आहाहा! दो सागर। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम और एक पल्योपम के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष, इतना आयुष्य। परन्तु उसे रागादि यह सब दुःखदायक भासित होते हैं। शास्त्र में आता है न, वह अंगारों से सुलगता है। पुण्य परिणाम के फलरूप से आये अंगारे हैं, सुलगता है अन्दर। यह प्रतिकूलता नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय बिना जितना पर का आश्रय लेता है, विकल्प उठता है, वह अंगारों में सिंकता है। इतने पुण्य के फल में भी, पुण्य के फल में पूरा विमान यह बड़ा देवलोक जितना लगे। उसे तो बड़ा हो न। बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान में असंख्य देव, उनका साहेबा। दो सागर की स्थिति, करोड़ों अप्सरायें। उनकी ओर की वृत्ति की लगनी अंगारे सिंकते हैं, दुःख... दुःख... दुःख... वह दुःख भासित होकर अन्दर में गया है, उसे आनन्द आता है। ऐसे अकेले नरक के दुःख भासित हुए, शरीर प्रतिकूल हुआ; इसलिए दुःख (लगे), वह तो द्वेष किया उसके ऊपर। समझ में आया? आहाहा! एक व्यक्ति कहता था, पुण्य के फल उसे भोगने तो दो। नागलपुर। ... भोगने तो दो सुख उसे पहले, फिर और मोक्ष जायेगा। धूल में भी नहीं जायेगा, सुन न! जो देवलोक में सुख मानता है, वह तो मूढ़ जीव है। ऐसी सुविधा को सुख माने, वह महा पाखण्डी मिथ्यादृष्टि जीव है। चिदानन्द भगवान आनन्द का कन्द, उसमें आनन्द छोड़कर बाहर में (आनन्द माने), वह पदार्थ का स्वरूप है? वह पदार्थ का स्वरूप है? वह राग में, इन्द्राणी में सुख मानना, वह पदार्थ का स्वरूप है? वह तो विरुद्ध है। पदार्थ तो भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसा पदार्थ, उसकी प्रतीति और उसमें आनन्द है, ऐसा मानना। इस प्रकार जैसा है, वैसा पदार्थ, ऐसा माना कहलाता है। समझ में आया?

यह राग उठे तो आस्रव है, दुःखदायक है। यह पदार्थ का स्वरूप (नहीं)। उसमें आनन्द है? बाहर संयोग मिले, वह अजीवतत्त्व है, उसमें आनन्द है? वह पदार्थ

का स्वरूप है ? समझ में आया ? अजीव के ढ़ेर अनुकूल, वे सब दु:ख के निमित्त, उनके (ओर की) वृत्ति (उठे वह) अशुद्ध उपादान अकेला दु:ख। अकेला (आत्म) पदार्थ आनन्दमय वस्तु है। ऐसा आनन्द का आश्रय छोड़कर और जितना आश्रय पर में ले, दु:ख है। ऐसा देखकर वापस हटकर आत्मा का ज्ञान करे, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। ऐसे उकताकर करे, वह कहाँ था ? वह तो द्वेष हो गया। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं, देखो न ! स्वसंवेदनज्ञान। आहाहा !

पर को जानते हैं... और इस कार्यसमयसार में तो सर्व द्रव्य... भगवान जहाँ आत्मा अपने स्वरूप में स्थिर हो और जहाँ कार्यसमयसार केवलज्ञानरूप से हो (तो) सब द्रव्य, सब क्षेत्र, सब काल लिया इसमें (वह ज्ञात हो जाता है)। वह कहे, सर्वज्ञ हो, परन्तु त्रिकाल को नहीं जानते। अरे, भगवान ! क्या करते हैं यह जीव ? अरे ! परन्तु किस प्रकार चला यह काल ? ओहोहो ! ऐसा महान पदार्थ जिसकी शक्ति के सत्त्व का अपारपना, उसकी प्रगट की पर्याय अपार एक समय में प्रगटी, तथापि पूरा पिण्ड तो पड़ा है ऐसा का ऐसा। आहाहा ! जिसकी खान में से केवलज्ञान बहा ही करे, केवलज्ञान खान में एक-एक समय में निकला ही करे। कहो, ...भाई ! भगवान आत्मा इतना पदार्थ खान है। वह कहे, सौ वर्ष तक निकले तो हमारे कम पड़े ऐसा नहीं। यहाँ तो अनन्त काल केवलज्ञान निकले तो कम पड़े ऐसा नहीं, ऐसा यह द्रव्य है। चिमनभाई ! शान्तिलाल है न, वह कहता है न हमारे। गोवा गोवा। कहाँ गये प्रेमचन्दभाई ? उनके मामा के पुत्र हैं न। चालीस करोड़ रुपये। कम नहीं हमारे, लाख-लाख प्रतिदिन के। एक दिन के लाख। एक दिन के लाख। कितनी पीढ़ी ? कि, सौ वर्ष तक कम नहीं पड़े। क्योंकि बाईस, कितने मील में जगह ली है, (उसमें से) मैगनीज निकला। क्या कहलाता है वह ? ऐसा कुछ निकला, धूल निकली। ऐसी बातें करे। परन्तु तुझे कितना जीना है यहाँ ? ऐसा कि ... मेरी पीढ़ी खाये तो भी निकले। क्योंकि इतनी जमीन है। ... अधिक कहता था। उसका बहनोई है न। पोपटभाई लीमड़ीवाला, नहीं ? ... पीढ़ी की पीढ़ी (खाये)। उसके मन में... कौन जाने क्या होगा ? है तो भी अभी कहाँ सुख है ? वह लाख, लाख पैदा करे एक दिन के लाख, पचास हजार जाये मजदूरी में और पचास हजार नगद रहे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : डाले, पैसे बढ़ गये तो डाले। ....

यहाँ तो कहते हैं कि वह कम नहीं हो जमीन की खान। कहते हैं, परन्तु यह तो ऐसी खान है आत्मा की, कि जिसमें से केवलज्ञान एक समय का रत्न ऐसे प्रगट हो (वह) सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जाने। ऐसा केवलज्ञान दूसरे समय में वापस आवे, तीसरे समय में आवे। सादि-अनन्त काल उसका द्रव्य रहे, तब तक निकला ही करेगा। ऐसी आत्मा की खान है। आहाहा! इसे जँचता नहीं। ऐसा आत्मा होगा? इसलिए आचार्य ने कहा, भाई! यह वस्तुस्वभाव है, शंका न कर। आहाहा! समझ में आया? धूल में भी नहीं बाहर में। सब दुःख के, दुःख के सरदार सिंकते हैं दुःख से। इन्द्र सिंकते हैं तो अब यह सब धूल, यहाँ चालीस करोड़, पचास करोड़, अरब क्या है? धूल। चिमनभाई! क्या होगा? प्रतिकूलता की बात नहीं, हों! यह प्रतिकूलता आवे और वह पकड़ में आये, यह नहीं। यह तो अनुकूलता की लहर चलती जाती हो। मोहनभाई! ऐ मोहनभाई! अनुकूल, अनुकूल। कराची में भागना पड़े, ऐसा नहीं। ऐसे अनुकूल से, अनुकूल, अनुकूल से अनुकूल चोसला चला ही करता हो, निकला ही करता हो। परन्तु उसकी ओर का आश्रय भाव, वह अकेला सिंकता है। दुःख से सिंकता है, आनन्द की लूट पड़ती है। आहाहा! समझ में आया?

यह भगवान आत्मा... यह परद्रव्य का विचार और विकल्प, वह भी राग और विकार है। ले! वह तो अपेक्षा से बात की है। समझ में आया? आहाहा! तेरा स्वभाव, कहते हैं कि, वह वस्तु स्वभाव ऐसा वर्णन करते हैं आचार्य, देखो न! '**एष वस्तुस्वभावः**' '**म भंति करि**'। भ्रान्ति न कर, भ्रम न कर, भगवान! तेरा स्वरूप तो, आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त-अनन्त ज्ञान से भरपूर पूरा पदार्थ अरूपी स्वभाव भरपूर, उसकी खान में से केवलज्ञान निकला ही करे, निकला ही करता है। वह केवलज्ञान कितना? सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल और सर्व भाव को जाने, ऐसा तेरा स्वभाव, उसकी तू खान आत्मा, उसका अनुभव कर और उसका आश्रय कर, इसके अतिरिक्त सब थोथे थोथा है। समझ में आया? आहाहा!

सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से प्रकाशता है। सर्व जाने, उसमें और काल बाकी कौन सा रह गया होगा? एक समय स्वभाव, स्वभाव की प्रगटता की एक समय की

हद, अप्रगटता त्रिकाली, अप्रगट स्वभाव की त्रिकाल, प्रगट की एक समय की हद। हद का माप क्या? उसके बेहद स्वभाव का माप तो अपार परन्तु ऐसे एक समय की पर्याय प्रगट अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... ऐसा जिसका स्वभाव है, वह वस्तु का स्वरूप है, सन्देह न कर, निर्भ्रान्त हो, निःसन्देह हो और आत्मा को इस प्रकार अनुभव कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आश्रय वसतु ही ऐसी है, उसमें क्या? वस्तु ही ऐसी है, उसका माप क्या? स्वभाव को हद क्या? आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं होती। यह तो अमुक चीज़ मिली, पाँच-पचास लाख या राज्य मिला, या धूल मिली, यह मिला (तो) ... ओहोहो! क्या मिला परन्तु तुझे? धूल मिली है। समझ में आया? अग्नि में सिंकता है। ऐसे देखे... आहा! आहा! यह क्या है? यह विकार का भाव उठा, उसमें सुलगता है वह।

यह आत्म-वस्तु का स्वभाव है,... लो! **इसमें सन्द्रह नहीं समझना। इस जगह ऐसा सारांश है कि जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यरूप कार्यसमयसार है,...** है न? पर्याय कही। **वही आराधनेयोग्य है।** प्रगट करनेयोग्य है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अकेला दर्शन, अकेला ज्ञान, अकेला आनन्द, अकेला वीर्य, वह प्रगट करनेयोग्य है। प्रगट करनेयोग्य है अर्थात् द्रव्य में एकाग्र करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? लो! मोक्षमार्ग प्रगट करनेयोग्य नहीं, वह प्रगट करनेयोग्य। प्रगट किया उसमें इतने में अटक नहीं। प्रगट करनेयोग्य ठेठ तक। १०१ (गाथा हुई)। लो!

★ ★ ★

गाथा - १०२

आगे इसी अर्थ को फिर भी खुलासा करने के लिये दृष्टान्त देकर कहते हैं— लो! यह वह कहा था न सूर्य का प्रकाश, अब और तारा (कहते हैं)।

१०२) तारायणु जलि बिंबियउ णिम्मलि दीसइ जेम।
अप्पए णिम्मलि बिंबियउ लोयालोउ वि तेम॥ १०२॥

अन्वयार्थ :- जैसे ताराओं का समूह ताराओं का समूह। एक चन्द्र, एक सूर्य, उसके साथ अट्ठासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र, छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। एक चन्द्र और एक सूर्य के साथ छयासठ हजार... क्या कहा? नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी तारे। यह तो खामणा में आता है। किया होगा या नहीं? पहाड़ा किया था न। किया था तुमने प्रतिक्रमण किया था मुखाग्र या नहीं किया होगा? छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ीक्रोडी तारे। एक चन्द्र और एक सूर्य का इतना परिवार। इतने ऐसे-ऐसे असंख्य चन्द्र और असंख्य सूर्य। ढाई द्वीप के बाहर है न बहुत। एक-एक चन्द्र के साथ एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अट्ठासी ग्रह, छयासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी; अकेले करोड़ नहीं, क्रोड़ाक्रोड़। घर में एक हांडी दो-चार देखी हो, दीपक देखे तो ओहोहो! दो-चार दीपक किये हो, बड़ा बँगला हो तो एक ऐसे रखे... यहाँ फूट गया लगता है। एक ऐसे रखे, एक ऐसे रखे। यह तो लोक में, कहते हैं कि, असंख्य असंख्य चन्द्र और असंख्य सूर्य। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान में ज्ञात नहीं हो? केवलज्ञान में बाकी है? यह क्या कहा? सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जाने, उसमें बाकी क्या रहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तेरे ज्ञान में जितनी संख्या हो, वह ज्ञात हुए बिना रहे? गिनना कहाँ था? अनन्त-अनन्त द्रव्य, अनन्त-अनन्त क्षेत्र, अनन्त-अनन्त काल, अनन्त-अनन्त भाव एक समय में ज्ञात होता है। ज्ञान स्वभाव वह तो इसीलिए कहा है। भाई! वस्तु का स्वभाव (है, उसमें) सन्देह न कर। संख्या उसे... सब ऐसे एक समय में हस्तामल की भाँति प्रत्यक्ष ज्ञात हो, प्रत्यक्ष ज्ञात होता है, प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। आहाहा! एक द्रव्य के एक ज्ञान की एक पर्याय का इतना स्वभाव! समझ में आया?

एक द्रव्य के एक ज्ञानगुण की एक समय की पूरी पर्याय का इतना स्वभाव। सब द्रव्य, सब क्षेत्र, पूरा काल, पूरा क्षेत्र, सब द्रव्य, सब शक्तियाँ, एक-एक द्रव्य की वापस ऐसी अनन्त शक्तियाँ, सबको एक समय में जाने। अरे! ज्ञान, वह किसे कहें! और

जिसका स्वभाव जहाँ प्रगट हो गया। आहाहा! ऐसी-ऐसी पर्याय अनन्त, ऐसी-ऐसी अनन्त, अनन्ता-अनन्त, अनन्त को गुणन कर अनन्त वर्ग करे, वह सब पिण्ड पड़ा है, ऐसा गुणवान। उसका वेदन कर, उसमें एकाग्र हो, केवलज्ञान होगा। समझ में आया? यहाँ तो यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है न! और क्या कहते हैं?

जैसे ताराओं का समूह निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुआ प्रत्यक्ष दिखता है,... क्या कहते हैं? ऐसे जल को देखने से वे तारे जितने हैं, ऐसे दिखाई दें अन्दर, हों! तारों के सन्मुख देखना नहीं पड़ता। ऐसे जल को देखने से सब तारे उसमें ज्ञात हों। यह ज्ञान की पर्याय प्रगट निर्मल, उसे जानते हुए लोकालोक ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह राग-द्वेष का तेरा स्वभाव नहीं, शरीर-फरीर तेरे नहीं। तेरा तो ऐसा स्वभाव है।

मुमुक्षु : इसी भव में हो ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भव में होता है, हुआ है और होगा। समझ में आया?

केवलज्ञान को प्रगट करने का स्वसंवेदनज्ञान तो होता है न। वह केवलज्ञान भी हुआ श्रद्धा में, ज्ञान में केवलज्ञान हुआ, श्रद्धा में ज्ञान हुआ, इच्छा से केवलज्ञान हुआ, मुख्य निश्चयनय की अपेक्षा से केवलज्ञान वर्तता है, ऐसा भी कहा जाता है। सुन न! आहाहा! परन्तु रंक होकर बैठा है न! इसे ऐसा बड़ा आत्मा (जँचता नहीं)। इसलिए आचार्य को कहना पड़ा, सन्देह न कर। यह वस्तु की स्वभाव की जाति ही ऐसी है। '**एष वस्तुस्वभावः**' देखो! ऐसा वस्तु का स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? इसे जहाँ पाँच-पचास लाख हो जाये और उसमें सब कपड़े-बपड़े और गहने और मान जहाँ हो, वहाँ ओहोहो! मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो जाये, लो! कितने मकान... क्या होता होगा तुम्हारे पूनमचन्द को? कितना किया! ओहोहो! दो, ढाई करोड़ रुपये। अभी चालीस वर्ष की उम्र और अभी बाप और बाप के वृद्ध बैठे हैं। सबसे बढ़ गया यह तो। किसमें? धूल में। आहाहा! बापू! यह बढ़ना, यह बढ़ना, वह बढ़ना नहीं। श्रीमद् ने नहीं कहा?

'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये
परिवार और कुटुम्ब है या वृद्धिनय पर तौलिये,
संसार का बढ़ना अरे नर देह की यह हार है।

इतना मिला तो भी नरदेह को हार जाना? परिवार बढ़ा, लक्ष्मी बढ़ी, अधिकार बढ़ा, बड़े लक्ष्मीवाले को बड़ा पद दे। देते हैं या नहीं? चन्दुभाई! क्या कहलाता है तुम्हारे वहाँ? मुम्बई में बड़ा मेयर कहे, फलाना, ढींकणा और मेयर बढ़ा मणका। यह सब पाप के करने में बड़ा। लक्ष्मी, अधिकार बढ़ने पर क्या (बढ़ा)? कुटुम्ब या परिवार बढ़ा। एक वृद्ध और पाँच सौ मनुष्य घर में। लड़के दस और उनके लड़के और उनके लड़के और उनके लड़के पाँच पीढ़ी में। ओहोहो! यह क्या है परन्तु? और सब अच्छे और समान। रूपवान और लम्बे और बड़े योद्धा जैसे। 'नरदेह की यह हार है' यह नर देह को हार जाने के सब लक्षण हैं। 'नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।' चिमनभाई! आहाहा! परन्तु यह भगवान ऐसे स्वभाववाला वैभव तुझे बैठा नहीं। यह वैभव तुझे बैठता है, कहते हैं।

भगवान वैभव का भण्डार है, देखो! कुन्दकुन्दाचार्य लिखते हैं न, मैं मेरे वैभव से कहूँगा। यह तो पर्याय का वैभव, वह तो पर्याय का वैभव, हों! द्रव्य के वैभव का क्या कहना! ओहोहो! वह दहेज बिछावे न जब कुछ उसमें लड़की को पचास हजार का, लाख का दहेज देते हों तो, ओहोहो! ऐसे पंखे और क्या कहलाते हैं वे? मोती के भरे हुए हों और वह लकड़ी ऊपर मोती भरी हुई हो। लकड़ी होती है न जाली की? उसमें मोती हों। ऐसे लटकते हों न। दस-दस यह है, पच्चीस यह, पाँच सौ साड़ियाँ हैं और ढींकणा यह है और इतना यह है और यह एक लाख... (इतना) तोला सोना देनेवाले हैं, फलाना, ढींकणा। सबको बुलावे पूरे परिवार को। विमलचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तब बड़ा लगे। पाँच-पाँच करोड़ के आसामी को लाखों का देना, उसमें क्या है? इतना न दे लड़की को? आहाहा! ... देखो तो! क्या है? होली है वहाँ सब। यह तेरा वैभव है। देखो! यह भगवान तेरा दहेज बताते हैं। तेरे द्रव्य के वैभव की क्या बात करना, कहते हैं। समझ में आया? वह तो एक पुण्य के, एक क्षण के शुभभाव, उसका साधारण शुभ, उसका यह सब ढेर दिखता है, कहते हैं। तो तेरे शुद्धभाव के परिणाम में जो पूरा आत्मा ज्ञात हो, उसके फलरूप से केवल, उसके वैभव की क्या बात करना! आहाहा! वह तो एक शुभभाव जरा किया हो पुण्य का, निगोद में

से हुए हों शुभ, हों! उसका यह सब मिले करोड़ का, अरबोंपति का तो राजा हो। निगोद में से निकला, लो! वहाँ कहाँ दान देने का है। कुछ पैसा-बैसा नहीं, शुभभाव हुआ। ... शुभभाव की इतनी सम्पदा तुझे बहुत लगे तो जो शुद्धभाव, उसकी सम्पदा और शुद्ध जिसमें से निकले, उसी सम्पदा का—वैभव का क्या तुझे माहात्म्य नहीं आता? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, निर्मल जल में प्रतिबिम्बित हुए। उस जल में तेरे जो प्रतिबिम्बित हुए हैं न, वह जल देखने से वे दिख जाते हैं, ऐसा कहते हैं। **उसी तरह मिथ्यात्व, रागादि विकल्पों से रहित स्वच्छ आत्मा में समस्त लोक-अलोक भासते हैं।** लो! यह ज्ञान की पर्याय निर्मल हुई, उसमें सब भासित होता है। आहाहा! चार बोल कहे थे न, उन्हीं और उन्हीं का यह सब अधिक दृष्टान्त है। वह दृष्टान्त दिया था और यह दृष्टान्त....

भगवान आत्मा एक को जानने से '**जगु जाणियउ**'। यह इस गाथा का सब विस्तार है। एक जीव को जानने से, आत्मा को जानने से जगत को जाना। जगत के प्रकार किये चार। भगवान आत्मा का ज्ञान होने से पर सब वस्तु क्या है, वह भी सब जानने में आयेगी। एक जाना, उसने सब जाना। आनन्दमय जानने से उससे विरुद्ध, आनन्द से विरुद्ध सब भाव, भेद तेरे ख्याल में आ जायेंगे कि आनन्द से यह सब जाति अलग है। ज्ञान में अनुभव शुद्ध होने पर उसके व्याप्तिज्ञान से यह सब लोकालोक ऐसा होना चाहिए, ऐसा अनुमान ज्ञान में ज्ञात हो जायेगा, केवलज्ञान में पूर्ण जानेगा। एक जाना उसने सब जाना, उसमें यह चार बोल लिये। परन्तु यहाँ कहते हैं कि तेरी ज्ञानपर्याय ज्ञात हुई, उसमें यह ज्ञात हो जाता है। समझ में आया? देखो! यहाँ से लिया है न? मिथ्यात्व, रागादि विकल्पजालरहित। समझ में आया? भ्रमणारहित, अस्थिरतारहित, विकल्परहित। देखा, स्वच्छ आत्मा। '**आत्मनि निर्मले, आत्मनि निर्मले।**' .... उसमें लोकालोक **समस्त लोक-अलोक भासते हैं।**

भावार्थ :- इसका विशेष व्याख्यान जो पहले कहा था, वही यहाँ पर जानना,... यह तो सब चार का कहा था न? उसका दृष्टान्त समझ लेना सबमें। **जो सबका ज्ञाता दृष्टा आत्मा है, वही उपादेय है।** वही अंगीकार करनेयोग्य है। **यह सूत्र भी पहले कथन**

को दृढ़ करनेवाला है। पहला कथन चार किया था न। उसे ही यह कथन दृढ़ करता है। गजब भाई परमात्मप्रकाश! दो गाथायें हुईं।

★ ★ ★

गाथा - १०३

आगे जिस आत्मा के जानने से निज और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं, उसी आत्मा को तू स्वसंवेदन ज्ञान के बल से जान,... 'स्वसंवेदनज्ञानबलेन जानीहीति।'

१०३) अप्पु वि परु वि वियाणइ जें अप्पें मुणिएण।
सो णिय-अप्पा जाणि तुहुँ जोइय णाण-बलेण॥ १०३॥

अन्वयार्थ :- जिस आत्मा को जानने से... जानने से अर्थात् स्वसंवेदनज्ञान। यह जानना है, दूसरा जानना कौनसा था? जात की भात पड़े स्वसंवेदनज्ञान। **जिस आत्मा को जानने से आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** लो! एक को जानने से सब ज्ञात हो जायेगा, बापू! ... वे दो दृष्टान्त दिये न। यह तू तेरा जान, सब ज्ञात हो जायेगा। सब जानने जायेगा तो नहीं ज्ञात होगा और सब जानना नहीं रहे, यह जाने बिना। समझ में आया? जो आत्मा को, आत्मा भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु को जानने से **आप और पर सब पदार्थ जाने जाते हैं,...** स्वयं भी ज्ञात हो और पर शास्त्र आदि, द्रव्य आदि, दूसरे गुण-पर्याय आदि सब जानने में आ जाये। एक जाना, उसने सब जाना, उसमें सब आ गया। समझ में आया?

'तं निजात्मनं' वापस देखो! **उस अपने आत्मा को...** अपने आत्मा को। भाषा भी कितनी की वापस। भगवान का आत्मा, अरिहन्त का आत्मा, वह तो उनके पास रहा। **'निजात्मनं'** तेरा आत्मा, भाई! आहाहा! मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान, नहीं आता था? वह सेठिया ने वह लड़का मर गया, तब नहीं गवाया? मेरा ज्ञान, मेरा ज्ञान। अर्थात् ज्ञान, वह आत्मा। अकेला समझण का पिण्ड चैतन्यसूर्य, वह मेरा आत्मा, वह मेरा ज्ञान। वह मेरा, बाकी सब मेरा नहीं। लड़के कहाँ से आये, स्त्री कहाँ से आयी और पैसा, मकान कहाँ से आये? आहाहा! यह सब ढींचण और यह कोळीया और हड्डियाँ सब कैसे रच गये

हैं। सुलगकर राख होगा सब। यह तो मिट्टी है तो इसमें दूसरा क्या होगा? परन्तु इसमें क्या हो? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहता हूँ, रच गये, यह इसे अच्छे लगते हैं, ऐसा मेरा कहना है। ऐसे चले और ऐसे हो और ऐसे हो। बापू! यह तो जड़ की मशीन चलती है। आहाहा! रजकण-रजकण स्वयं से वहाँ काम कर रहा है, हों! तुझसे जरा भी नहीं। तेरे ज्ञान से तो नहीं, परन्तु तुझे इच्छा हो, उससे भी नहीं। ऐसा देह से भगवान भिन्न है, उसे देह के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, कुछ सम्बन्ध नहीं। कहीं की हड्डियाँ परमाणु होकर हड्डियाँरूप यहाँ आये, वे चले जायेंगे। ... आँखें, मेरी आँखें, ऐसा कहते हैं न? कैसी आँख तेरी? कहाँ आयी? वह तो मिट्टी का पिण्ड रजकण का धूल का। ... क्या कहलाता है? पनिहारा के ऊपर नहीं करते वह, क्या कहलाता है? काका-बळीया। कपासिया की आँखें नहीं रखते? छाण छाण का रखे और फिर कपासिया रखे ऐसे जरा। हमारे सब रखते थे वहाँ, सब देखा है। पनिहारा था न उस ओर कोने में। तब की सब खबर है, हों! इस कोने में पनिहारा रहता। मंजिल पर जहाँ चढ़ें वहाँ पनिहारा था। वहाँ काका-बळीया करे। पाँखें। ऐसे यह काका-बळीया मिट्टी का पुतला ऐसी यह आँखें। उसकी जाति की आँखें माँस की।

भगवान! तेरी आँखें तो चैतन्यमूर्ति की अन्दर ज्ञान चक्षु, वह तेरी आँख है। उसे यहाँ अभिमान वापस, हों! मेरी आँखें ऐसी। भाई! तेरा तो आत्मा है न, भाई! तेरी तो ज्ञानचक्षु खुली हुई, वह तेरा आत्मा है, वह तेरी आँख है। आहाहा!

जिसने आत्मा जाना, उसने सब जाना। आहाहा! **उस अपने आत्मा को हे (धर्मी) योगी...** किससे जान? **आत्मज्ञान के बल से जान।** ऐसा कहा, देखा! यह कहीं विकल्प से और शरीर से, गुरु से, देव से और शास्त्र से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह कषाय की मन्दता करने से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है, विकल्प से ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। ऐसी बात कौन जाने कैसे लेते होंगे? ऊपर लेते होंगे। अरे! अब ऊपरी, यह चौथे से ही ऊपरी है, सुन न। **आत्मज्ञान के बल से जान।** योगी तो, शिष्य है उसे लक्ष्यकर बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा चिदानन्दमूर्ति, उसे तू तेरे ज्ञानबल से जान। देखो! ज्ञानबल

भाषा प्रयोग की है। '**ज्ञानबलेन**'। शुभराग बलेन, विकल्प बलेन, निमित्त बलेन, देव-गुरु-शास्त्र बल से जान, ऐसा नहीं, ऐसे नहीं ज्ञात होता। तेरे अन्तर के ज्ञान के सम्यग्ज्ञान के बल द्वारा जान। सम्यग्ज्ञान के बल द्वारा आत्मा को जान।

भावार्थ :- यहाँ पर यह है कि रागादि विकल्प-जाल से रहित... लो! शुभाशुभ विकल्प जो राग है, उससे (रहित)। जाल है, वह तो सब। **सदा आनन्द स्वभाव...** देखो! सदा आनन्द स्वभाव। समझ में आया? वीतराग सदा आनन्द एक स्वभाव, ऐसा है न। सदा आनन्द एक स्वभाव। **सदा आनन्द स्वभाव जो निज आत्मा...** उसमें 'एक' शब्द पड़ा रहा। **उसके जानने से...** एक स्वभाव निज और पर को जानने का एक स्वभाव। सदा अनन्त स्वभाव जो निज एक स्वभाव उसका। ऐसा है न? वीतराग सदा आनन्द एक स्वभाव उसका। **निज और पर सब जाने जाते हैं,...**

भगवान आत्मा **आनन्द स्वभाव जो निज आत्मा, उसके जानने से निज और पर सब जाने जाते हैं, इसलिए हे योगी! हे ध्यानी! तू उस आत्मा को...** विशेष लिया वापस। **वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान की भावना से...** देखो! भगवान आत्मा को वीतराग अर्थात् विकल्प की कषाय, उससे रहित निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान की भावना से—रागरहित निर्विकल्प ज्ञान की एकाग्रता द्वारा। भावना अर्थात् एकाग्रता। निर्विकल्पस्व-संवेदनज्ञान अपना ज्ञान, उसकी एकाग्रता से **उत्पन्न परमानन्द सुखरस के आस्वाद से जान,...** देखो! भाषा यह ली वापस। समझ में आया?

'**ज्ञानबलेन**' कहा था न? उसमें तो कहा था, अपने को जानने से पर को जान। आनन्दस्वभाव की जाति से .... ऐसा लिया। अब '**ज्ञानबलेन**' लिया। ज्ञानबल की व्याख्या की। निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान, वह ज्ञानबल। उससे उत्पन्न हुआ, **परमानन्द सुखरस के आस्वाद से जान,...** उस ज्ञान के बल में अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय इकट्ठी है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान सम्यक् होकर जहाँ एकाग्र हुआ, वह इकट्ठा आनन्द भी साथ आया। अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान, ज्ञान और आनन्द। ऐसा '**ज्ञानबलेन**' अर्थात् वह राग का साथ में था, वह आकुलता थी। अकेला '**ज्ञानबलेन**' नहीं, साथ में अनाकुलता का आनन्द (भी है)। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के ज्ञानबल से आत्मा को जान। आहाहा! कषायरहित बताना है। विकल्प उठता है, वह आकुलता है न, वह

दु:ख है। तब ज्ञान में साथ में आनन्द इकट्ठा है। समझ में आया? ऐसा ज्ञान। रागरहित अभेद स्वयं अपने को स्व-प्रत्यक्ष वेदन ज्ञान की एकाग्रता से उत्पन्न परमानन्द सुखरस के आस्वाद से जान। लो! '**परमानन्दसुखरसास्वादेन जानीहि**' लो! गजब अर्थ।

अर्थात् तन्मयी होकर अनुभव कर। यह अन्दर आनन्द में तन्मय होकर अनुभव कर। यह आत्मा के आनन्द का स्वाद लेकर आत्मा को जान, ऐसा कहते हैं। आकुलता से तो तूने अनन्त काल व्यतीत किया, कहते हैं। शुभाशुभ विकल्प और आकुलता से तो (अनन्त काल व्यतीत किया)। वह कहीं उससे आत्मा ज्ञात नहीं होता। उससे कदाचित् वह पर का उघाड़ हो और उसमें से जाने, वह कहीं वस्तु ज्ञान नहीं। वह आकुलता और पर का ज्ञान, वह कहीं वसतु नहीं, ऐसा कहते हैं मूल तो। शुभाशुभ विकल्प से जानपने का उघाड़ दिखाई दे पर का ज्ञान, वह कहीं भी सच्चा नहीं और वह आकुलतारहित भाव भी नहीं; वह तो राग आकुलता है। इसलिए आत्मा की ओर रागरहित, अनाकुल होकर जो ज्ञान स्व के जानने की ओर ढला, ऐसे आनन्द से आत्मा में तन्मय होकर आत्मा को जान। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानबल में यह आया। वह जो ज्ञान था पर का, उस ज्ञान में आकुलता थी। वह ज्ञान भी नहीं और वह आकुलता भी नहीं। भगवान आत्मा... प्रत्येक गाथा में कुछ न कुछ नयी बात करते हैं। ऐसे के ऐसे नहीं। लगे कि ऐसा का ऐसा है, परन्तु कुछ अन्तर है जरा। समझ में आया? भगवान आत्मा का ज्ञान, उसका ज्ञान अर्थात् कि उसके ज्ञान के साथ, जैसे पर का ज्ञान था, वहाँ राग साथ में था... समझ में आया? यह उसका ज्ञान उसके साथ अनाकुलता है। समझ में आया?

ऐसे **तन्मयी होकर अनुभव कर। स्वसंवेदनज्ञान (आपकर अपने को अनुभव करना) ही सार है।** देखो! स्वसंवेदनज्ञान... '**तन्मयो भूत्वा सम्यगनुभवेति भावार्थः**' ऐसा है। स्वसंवेदनज्ञान—भगवान आत्मा का ज्ञान अपने से अपने में होना, वही पूरा सार है। वह ज्ञान का सार, वह धर्म का सार। **ऐसा उपदेश श्री योगीन्द्रदेव ने प्रभाकरभट्ट को दिया।** लो! ऐसा उपदेश प्रभाकरभट्ट द्वारा सबको दिया और सबको यही करने का है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १२, रविवार, दिनांक - ०५-१२-१९६५
गाथा - १०४ से १०६ प्रवचन - ६८

गाथा - १०४

परमात्मप्रकाश, पहले भाग की १०४ गाथा। **अब प्रभाकरभट्ट...** देखो! शिष्य पूछता है कि मुझे एक आत्मा ही जानना है। देखो! धर्मार्थी अथवा मोक्षार्थी प्रश्न में यह रखते हैं कि हमको तो आत्मा कैसे ज्ञात हो एक क्षण में नियत काल में? वह क्या, उसका स्वरूप कैसे प्राप्त हो, यह हमारे काम है, हमारे दूसरा कोई काम नहीं। **महान विनय से...** इसमें से निकाला गाथा में से। ... निकाला। **ज्ञान का स्वरूप पूछता है—**

१०४) णाणु पयासहि परमु महु किं अण्णेँ बहुएण।
जेण णियप्पा जाणियइ सामिय एक्क-खणेण॥ १०४॥

अन्वयार्थ :- हे भगवान! जिस ज्ञान से... जिस ज्ञान द्वारा एक क्षणभर में, नियत क्षणकाल में **अपनी आत्मा जानी जाती है, वह परम ज्ञान मेरे प्रकाशित करो,...** देखो प्रश्न। जिस ज्ञान द्वारा, 'ज्ञान द्वारा' प्रश्न है, हों! यहाँ। प्रश्नकार का प्रश्न ही यह है। किसी विकल्प द्वारा या निमित्त द्वारा या संयोग द्वारा, ऐसा प्रश्नकार का प्रश्न ही नहीं। समझ में आया? जिस ज्ञान द्वारा, ऐसा प्रश्न है। जिस ज्ञान—अन्तर ज्ञान द्वारा एक नियत क्षण में... संस्कृत में नियत काल पड़ा है। '**नियकालेनैकक्षणेनेति**'। है, एक क्षण की व्याख्या की, नियत काल। अल्प काल। नियत अर्थात् अल्प काल में हमारे तो आत्मज्ञान हो, यह बात करो, दूसरी बात छोड़ दो। ठीक! समझ में आया? आहाहा! दूसरी बातें भले यह छहकाय की दया और फलाना और व्रत और फिर, यह बात करो पहले। कहो, वल्लभभाई! जिस ज्ञान द्वारा, ऐसा शब्द है न? '**ज्ञानेन**' ऐसा। जिस ज्ञान द्वारा। प्रश्न ही इस शिष्य का यह है। यह क्षणभर, नियत क्षणभर में अपना आत्मा, वह भी अपना आत्मा जिस ज्ञान द्वारा जानने में आवे, ऐसा परम ज्ञान मुझे प्रकाश करो। मुझे वह ज्ञान बताओ। निर्विकल्प ज्ञान जिससे आत्मा प्राप्त हो, वह क्या चीज़ है? समझ में आया?

'**अन्येन बहुना किं**'—दूसरे सब विकल्पों से हमारे क्या काम है? समझ में आया? दूसरे प्रकार के अनेक शुभाशुभ विकल्प—राग, उससे क्या फायदा है? इसलिए साथ में सब कह दिया। ऐसा ज्ञान बताओ कि जिस ज्ञान द्वारा आत्मा प्राप्त हो। दूसरे शुभाशुभ विकल्पों से हमारे क्या काम है? इसलिए दोनों निषेध कर दिये। समझ में आया? देखो! यह शिष्य की प्रश्नकार में पूछने की योग्यता कितनी है। समझ में आया? इसलिए विनय, ऐसा (अर्थ) निकाला स्वयं अर्थकार ने। **क्या फायदा? कुछ भी नहीं।** भगवान आत्मा जिस ज्ञान द्वारा प्राप्त हो, वह ज्ञान ही बताओ, हमारे दूसरा कुछ काम नहीं। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- प्रभाकर भट्ट श्रीयोगीन्द्रदेव से पूछता है,... मुनि दिगम्बर सन्त है भावलिंगी, योगीन्द्रदेव। छठवें, सातवें गुणस्थान भूमिका में परमेष्ठीपद में, आचार्यपद में विराजमान हैं। भावलिंगी सर्वज्ञ परमेश्वर ने स्वीकार किया हुआ ऐसा जो छठवें, सातवें गुणस्थान की दशा में विराजमान योगीन्द्रदेव मुनि आचार्य हैं। उनसे पूछते हैं कि **हे स्वामी...** प्रभाकर भट्ट पूछते हैं। **जिस वीतरागस्वसंवेदन ज्ञानकर...** देखो! यह '**ज्ञानेन**' शब्द में से यह निकाला। हमें तो आत्मा जिस वीतरागी ज्ञान द्वारा ज्ञात हो, वह ज्ञान बताओ। समझ में आया? क्योंकि रागवाले ज्ञान से और राग से कुछ आत्मा ज्ञात नहीं होता। इतना तो इसने निर्णय किया है। आहाहा! यह आत्मा सच्चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं ज्ञान की मूर्ति जिस ज्ञान द्वारा, ऐसा पूछा। उसकी व्याख्या की कि वीतरागस्वसंवेदन ज्ञानकर। ऐसा वापस। वह ज्ञान कैसा? रागरहित, विकल्परहित ज्ञान। जो ज्ञान की पर्याय है, परन्तु वह पर्याय कैसी? कि रागरहित वीतरागी ज्ञान पर्याय। ऐसा स्वसंवेदन कि जो ज्ञान—वीतरागी ज्ञान विकल्परहित, उससे स्वसंवेदन आत्मा प्रत्यक्ष हो, ऐसा। समझ में आया?

क्षणमात्र में... देखो! वीतरागस्वसंवेदनज्ञानकर। रागरहित। सीधा प्रश्न ही इस प्रकार का है इनका। रागवाला ज्ञान, पर के लक्ष्यवाला ज्ञान, वह सब ज्ञान नहीं, वह मुझे काम नहीं, यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? शशीभाई! आहाहा! कहते हैं, वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की व्याख्या ही यह व्याख्या की। '**येन ज्ञानेन**' उसकी व्याख्या की। भगवान... क्योंकि वस्तु स्वयं वीतरागस्वरूप, वीतरागी ज्ञान का कन्द है। आत्मा वीतराग

अर्थात् निर्दोष ज्ञान की मूर्ति है। तो उस निर्दोष पर्याय के ज्ञान द्वारा ही ज्ञात हो। ऐसा क्या निर्दोष ज्ञान है, वह हमको कहो। प्रश्न में ही इसका... है। आहाहा! जो निर्दोष अर्थात् रागरहित स्वसंवेदन जिससे आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसे ज्ञान द्वारा क्षणमात्र में, नियत क्षणमात्र, एक क्षण में आत्मा ज्ञात हो, वह ज्ञान मुझे बताओ। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह जाना हुआ इतना तो जाना है, इतना जाने बिना प्रश्न कहाँ से होगा? यह क्या है? कैसा आत्मा अब? यह तो ऐसा वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान कहा। अब कैसा आत्मा ज्ञात होता है उसके द्वारा? उसके द्वारा कैसा आत्मा ज्ञात होता है? उस आत्मा की व्याख्या अब करते हैं। समझ में आया? निजात्मा ऐसा शब्द पड़ा है न। निजात्मा '**ज्ञानेन**' ज्ञात हो। '**ज्ञानेन**' यह पर्याय है, निजात्मा यह द्रव्य हुआ, वस्तु हुई, वस्तु। समझ में आया?

वह कैसा आत्मा? कि **शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव...** 'एक' शब्द पड़ा रहा है अन्दर। **शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव अपनी आत्मा...** बस! यहाँ आत्मा की व्याख्या इतनी है। समझ में आया? यह सब अर्थ कहाँ से फिर व्यवस्थित हों? हिम्मतभाई जैसा सब कहाँ से लावे? कहो, समझ में आया इसमें? देखो! शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव। यह किसकी व्याख्या है? आत्मा की। निजात्मा, यह शब्द पड़ा है, इसकी व्याख्या। यह आत्मा कैसा है निज आत्मा—अपना आत्मा? कि शुद्ध, बुद्ध। शुद्ध है और बुद्ध है—अकेला ज्ञान का पिण्ड है और एक स्वभाव है अर्थात् एक स्वरूपी है, एक स्वभाव है। अभेद वस्तु है न। समझ में आया? शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव। शुद्ध, निर्दोष, वीतराग, पवित्र और बुद्ध अकेला ज्ञान का पिण्ड। ज्ञान के साथ अनन्त गुण आ गये। शुद्ध, बुद्ध और वह एक स्वभाव वस्तु है न। एक स्वभाव, अभेद एक स्वभाव, उसे आत्मा कहते हैं, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! ऐसी अपनी आत्मा, वह वीतरागस्वसंवेदन ज्ञानकर जानी जाती है। आहाहा! समझ में आया? जानी जाती है, यह तो हिन्दी की भाषा है न। जाना जाता है। समझ में आया? ऐसा वीतराग संवेदन स्वसंवेदनज्ञान से शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव भगवान जिससे जाना जाये, वह ज्ञान क्या, मुझे बताओ। ऐसा है। समझ में आया? दूसरे शास्त्र के पठन

और यह छह द्रव्य का दूसरा हो और मुझे लोकालोक ज्ञात हो और दुनिया को समझाना आवे, ऐसा कुछ बताओ, यह बात नहीं पूछी। और दूसरे को समझा सकूँ, ऐसा मुझे सीखना। यह मुझे मेरा आत्मा उस द्वारा ज्ञात हो, यह मुझे कहो, बस एक ही बात है। आहाहा! समझ में आया?

वह ज्ञान मुझको प्रकाशित करो,... कहा न, यह है न? '**महु**', '**महु**' अर्थात् मुझे। मुझे वह प्रकाशित (करो)। वापस मुझे, ऐसा। मुझे वह कहो, बस एक ही बात। निज आत्मा शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव वीतरागी ज्ञान द्वारा ज्ञात हो, वैसा ज्ञान भगवान मुझे कहो। बस, लो! समझ में आया? मुझे यह कहो, मुझे यह धर्म प्राप्त करना है, मुझे दूसरा कुछ काम नहीं। आहाहा! कहो, बल्लभदासभाई!

दूसरे विकल्प-जालों से कुछ फायदा नहीं है,... साथ के साथ प्रश्न में ही है यह सब, हों! विकल्प शुभाशुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध, पूजा—ऐसे विकल्प, इन विकल्प से क्या काम? इनसे कुछ हमारा आत्मा ज्ञात नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ-अशुभ जो विकल्प है दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का राग, वह शुभ विकल्प राग है। ऐसे विकल्प से क्या प्रयोजन है? उस विकल्प से कुछ आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं। उससे आत्मा का ज्ञान और धर्म नहीं हो सकता। आहाहा! प्रश्नकार की भूमिका में ही ऐसा भूमिका सुधारकर प्रश्न किया है। समझ में आया?

दूसरे विकल्प-जालों से कुछ फायदा नहीं है, क्योंकि ये रागादिक विभावों के बढ़ानेवाले हैं। शुभ-अशुभ जो विकल्प वृत्तियाँ हों, वह तो राग को बढ़ानेवाली हैं। भगवान आत्मा का ज्ञान करके शान्ति बढ़ानेवाले नहीं। समझ में आया? इतना सब चलने के बाद वापस यहाँ प्रश्न हुआ। १०३ (गाथा) तक तो कहा। शिष्य ऐसे हों समझनेवाले और उन्हें समझने की यही धगश हो, ऐसी उनकी पात्रता का वर्णन करते हैं। दूसरा मन में रोग नहीं होता ऐसा आता है न श्रीमद् में? 'दूजा नहीं मन रोग'। कुछ सीखेंगे और दूसरे का करना आयेगा, दूसरे को जवाब देना आवे और दूसरे के साथ वाद-विवाद करके हम अधिक हैं। यह सब हमारा काम नहीं, हमारे कुछ काम नहीं। ले! भीखाभाई! हम तो हमारा आत्मा जिस प्रकार से शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव है। जिस ज्ञान से पावें, उस ज्ञान की बात करो, बाकी दूसरी बात का हमारे काम नहीं। आहाहा!

कहो, शशीभाई! वह ध्रुव भगवान शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव जो ज्ञान की पर्याय द्वारा, निर्विकल्प पर्याय द्वारा, स्वसंवेदन पर्याय (द्वारा) ज्ञात हो, वह स्वसंवेदनज्ञान किस जाति का होता है, यह हमको बतलाओ। एक ही बात है। समझ में आया? दूसरे विकल्प शुभ-अशुभराग विभाव के—विकार के बढ़ानेवाले हैं।

सारांश यह है कि मिथ्यात्व, रागादि विकल्पों से रहित... भगवान आत्मा भ्रमणा और राग की अस्थिरता के भाव से रहित **निज शुद्ध आत्मानुभवरूप...** निज शुद्ध आत्म-अनुभवरूप। **जिस ज्ञान से...** निज शुद्ध आत्मा के अनुभवरूप, अनुभवरूप निज ज्ञान ऐसा, अनुभवरूप निज ज्ञान। समझ में आया? मिथ्याभ्रान्ति और राग से रहित, विकल्प से रहित निज शुद्ध आत्मानुभवरूप। क्या? निज ज्ञान। शुद्ध भगवान आत्मा का अनुभव, ऐसा जो निज ज्ञान, उससे **अन्तर्मुहूर्त में ही परमात्मा का स्वरूप जाना जाता है,...** परमात्मा अर्थात् अपना शुद्धस्वभाव, हों! वह अन्तर्मुहूर्त में उस ज्ञान से आत्मा जानने में आता है। आहाहा! अकेला मक्खन माँगा है। समझ में आया? लो! बल्लभदासभाई! सब रविवार को आवे तो तुम्हारे ऐसा आता है।

अकेला वीतरागघन आत्मा। शुद्ध, बुद्ध एक स्वरूप प्रभु आत्मा विराजमान है। वह परमात्मा तो इस वीतरागी ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है। यह ज्ञान, अन्तर्मुहूर्त में उस ज्ञान द्वारा परमात्मा—आत्मा ज्ञात हो, वह ज्ञान कहो। **वही ज्ञान उपादेय है।** देखो! वह प्रगट करने की अपेक्षा से उपादेय (कहा)। द्रव्य तो ठीक, परन्तु यह स्वसंवेदनज्ञान, वही आदरणीय है, बाकी दूसरा कोई आदरणीय है नहीं। **ऐसी प्रार्थना शिष्य ने श्रीगुरु से की।** ऐसी प्रार्थना शिष्य ने गुरु से की। यह तो प्रश्न हुआ १०४ (गाथा)। समझ में आया? आहाहा! गजब धर्म, भाई! धर्म, धर्म लोग पुकार करते हैं न। धर्म हो गया, धर्म हो गया। अरे! भगवान! सुन बापू! भाई! तू तो ज्ञान की मूर्ति है, वह ज्ञान ज्ञान से प्राप्त हो या ज्ञान कोई विकल्प, निमित्त और संयोग से प्राप्त होगा? ऐसा यहाँ प्रश्न में ही प्रश्न ऐसा उठाया है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १०५

आगे श्रीगुरु चार दोहा-सूत्रों से ज्ञान का स्वरूप प्रकाशते हैं—श्रीगुरु कहते हैं, कि—हे प्रभाकर भट्ट,... '**उर्ध्व**' शब्द है, देखो! उसमें है न। '**उर्ध्व**' इसलिए अब बाद में। उसमें आया था न तुम्हारे पंचास्तिकाय में।

१०५) अप्पा णाणु मुणेहि तुहुँ जो जाणइ अप्पाणु।
जीव-पएसहिँ तित्तिडउ णाणेँ गयण-पवाण॥ १०५॥

बात तो आ गयी है, परन्तु बीच में वास्तविक असंख्यप्रदेशी भगवान का ज्ञान अन्दर इतना स्पष्ट करने के लिये यह प्रश्न उठाकर ऐसा ही जवाब देना है। लोक प्रमाण असंख्यप्रदेशी है, ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होता। आत्मा असंख्यप्रदेशी वस्तु है। उसमें ज्ञान अनन्त शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव पूरा आत्मा व्याप्त है। शरीर प्रमाण व्यवहार से। समझ में आया? निश्चय से लोक प्रमाण उसके असंख्यप्रदेश हैं। वे असंख्यप्रदेश यहाँ व्याप्त हैं। इतना बतलाने के लिये उसका शिष्य का प्रश्न में यह कहते हैं कि इस जगह रहा हुआ ऐसा आत्मा, ऐसा। समझ में आया? उसका स्थल बतलाकर बात करते हैं। वे कितने ही कहे कि, ज्ञान हमको बताओ तो उसका स्थल कितना लम्बा होगा? व्यापक पूरा आत्मा, पूरा लोकालोक ऐसा उसका स्थल होगा? शशीभाई! द्रव्य शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव कहा। उसका स्थल असंख्यप्रदेश कहते हैं यहाँ। उसका भाव शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायक वीतरागस्वभावभाव और स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय है, वह काल है। समझ में आया? नियत काल, ऐसा कहा था न? वस्तु, वस्तु द्रव्य, गुण-पर्याय का पिण्ड वस्तु। देखो, यह सर्वज्ञ में ही ऐसा होता है, अन्यत्र हो नहीं सकता, ऐसा सिद्ध करने के लिये चतुष्टय सिद्ध करते हैं। वस्तु, गुण-शक्तियाँ और अवस्था का पिण्ड एक वस्तु, उसका क्षेत्र असंख्यप्रदेश। है न? जीव प्रदेशे, देखो!

आत्मा को ही ज्ञान जान, जो ज्ञानरूप आत्मा अपने को अपने प्रदेशों से लोक-प्रमाण... देखो! स्वयं असंख्य प्रदेश लोक के जितने प्रदेश, उतने प्रदेश हैं यह। उन असंख्य प्रदेश में स्वयं व्याप्त है। उसका स्थल और क्षेत्र सिद्ध किया है। समझ में आया? प्रत्येक गाथा में कुछ दूसरी बात कहने के लिये गाथा उठायी है। वह तो पहला

प्रश्न आ गया है कि फलाना यह सब टीका। यह द्रव्य, क्षेत्र, भाव त्रिकाल उसका। भाव कौन? शुद्ध, बुद्ध, एक ज्ञायक आनन्द आदि स्वभाव। उसे वर्तमान उसकी स्वसंवेदन ज्ञानानन्द की जिस पर्याय द्वारा वह ज्ञात हो, वह स्वसंवेदनज्ञान... एक क्षण में प्राप्त हो जाये आत्मा, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान कौन? समझ में आया? द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चार हो गये। हुए या नहीं? क्या हुए? नहीं बोल सके। ... बोलने का शुरु ही बन्द कर दे, इसलिए न बोले वह ठीक न। कहो, समझ में आया इसमें? दो बातें तो हो गयी।

शिष्य के प्रश्न में यह प्रश्न था कि जो वीतराग शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव वस्तु, वह भाव, भाववाली चीज़। हुआ। अब वह भाववाली चीज़, उसे गुरु उत्तर में ऐसा देते हैं कि भाववाली चीज़ असंख्यप्रदेश में है यहाँ। समझ में आया? देखो! '**जीवप्रदेशेः तावन्मात्रं**'। बस! इतने में रहा हुआ है। कोई दूसरा कहे कि ऐसे बाहर में है और ऐसे सर्वत्र व्यापक है और ऐसा है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? क्योंकि मुझे भावज्ञान द्वारा यह जानना है। तब कितने क्षेत्र में उसे एकाग्र होना? समझ में आया? वस्तु स्वयं, उसका भाव शुद्ध, बुद्ध वीतराग ज्ञानघन आदि अनन्त गुण। अब वह भाव कितने में है कि जिसमें ऐसे एकाग्र होऊँ? क्योंकि वह काल की पर्याय, स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय, उस पर्याय को कितने में ऐसे झुकाना? कितने क्षेत्र में ऐसे झुकाना? भाव में झुकाना परन्तु उसका क्षेत्र कितना है? समझ में आया? ओहोहो!

अपने प्रदेशों से लोक-प्रमाण 'ज्ञानेन गगनप्रमाणम्' ज्ञान से व्यवहारनयकर आकाश-प्रमाण जानता है। अर्थात् जानना, यह लोकालोक को जाने। ज्ञान रहा असंख्यप्रदेश में, परन्तु ऐसे जाने लोकालोक को, इस अपेक्षा से व्यवहार से सर्वव्यापक कहा जाता है। वह क्षेत्र से सर्वव्यापक, निश्चय से सर्वव्यापक यहाँ है। समझ में आया? यह वेदान्त से पृथक् करने के लिये तत्त्व का एक-एक द्रव्य कैसा, यह सिद्ध करना चाहते हैं। आत्मा आत्मा तो सब बहुत कहते हैं। आत्मा को ज्ञान से प्राप्त हो और फलाने से प्राप्त हो... समझ में आया? **ज्ञान से व्यवहारनयकर आकाश-प्रमाण जानता है।** ज्ञानस्वरूप भगवान अपने ज्ञान से, रहता है अपने यहाँ असंख्यप्रदेश में, परन्तु वह ज्ञान द्वारा लोकालोक जाने। ज्ञान ज्ञेय प्रमाण, ज्ञान ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेयप्रमाण को जाने, इसलिए ज्ञेयप्रमाण कहा गया है, वह व्यवहार से कहा गया है। वस्तु तो यहाँ ज्ञान है, उतने में ही

स्वयं असंख्यप्रदेश में व्यापक है। समझ में आया? अथवा देह समूह ऐसा भी पाठ है, तब ऐसा समझना निश्चयनय से लोकप्रमाण है असंख्य प्रदेश, तो भी व्यवहारनय से संकोच-विस्तार स्वभाव होने से शरीरप्रमाण, देहसमूह है। शरीरप्रमाण, यहाँ शरीरप्रमाण है। समझ में आया?

शरीरप्रमाण जो असंख्य प्रदेश में व्यापक है। एक प्रदेश बाहर आगे आत्मा क्षेत्र से नहीं, तो भाव से भी नहीं। जितने में क्षेत्र है, उतने में अनन्त भाव बसे हुए हैं। आहाहा! अभी उसे... आत्म वस्तु, उसके असंख्य प्रदेश, उसमें एक अनन्त गुण (बसे हुए हैं)। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे अनन्त गुणों का, एक-एक गुण में अनन्त सामर्थ्य, ऐसे अनन्त गुण असंख्य प्रदेश में व्यापक भाव भरा है। व्यापकरूप से भाव भरा है। वह ज्ञान ऐसे देह प्रमाण भी कहलाता है, व्यवहार से। ऐसे असंख्य प्रदेश की अपेक्षा से लोकप्रमाण भी कहलाता है। परन्तु है यहाँ। लोकप्रमाण कहो तो लोक के प्रदेश से इतने प्रमाण में। लोक के प्रमाण में व्याप्त हो जाये, ऐसा कुछ है नहीं।

संकोच-विकास स्वभाव होने से। है न? पर्याय में संकोच, विकास है न संसार में? हाथी में जाये तो हाथी जितना ऐसा चौड़ा हो, चींटी में जाये तो चींटी जितना हो। संकोच, विकास... क्षेत्र के असंख्य प्रदेश में प्रदेश उतने के उतने रहे। प्रदेश छोटा-बड़ा नहीं होता, प्रदेश संकोच-विकास नहीं होते। प्रदेश ऐसे चौड़े हों, वे ऐसे हों। ऐसा उनका पर्याय का संकोच-विकास... स्वभाव है। इसलिए छोटे शरीर में संकोच होकर, बड़े में विकास होकर रहे, ऐसा उसका पर्याय का स्वतः स्वरूप है, ऐसे असंख्य प्रदेश हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- निश्चयनयकर... सत्य दृष्टि से देखें तो, निश्चय अर्थात् सत्य दृष्टि। **मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल इन पाँच ज्ञानों से अभिन्न...** क्या कहते हैं? आत्मा ज्ञानस्वरूपी भगवान पूर्णानन्द तो एकरूप स्वभाव। अब उसकी पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था; अवस्था के पाँच भेद लो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्यय, केवल—इन पाँच पर्यायों से ज्ञान से अभिन्न आत्मा है। पर्यायों से, इन पाँच पर्यायों से भिन्न आत्मा नहीं। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मनःपर्यय, केवल से अभिन्न आत्मा है, अभिन्न आत्मा

है। असंख्य प्रदेश में वह सब पर्याय से अभिन्न भाव है उसका। पूरा भाव जो ज्ञानगुण का त्रिकाल, उसकी पाँच पर्याय से वह गुण अभिन्न है। क्या कहा और यह? समझ में आया?

केवलज्ञान हो तो ऐसा कि और कुछ बड़ा हो गया बड़ा, इसलिए ज्ञानगुण से उसकी कुछ भिन्नता रहती होगी। वह केवलज्ञान हो तो ज्ञानगुणरूपी भगवान त्रिकाल असंख्य प्रदेश में उस ज्ञानगुण की पर्याय से अभिन्न है। समझ में आया? मतिज्ञान हो, श्रुतज्ञान हो, अवधि हो। अवधिज्ञान से असंख्य द्वीप, समुद्र आदि बहुत दिखाई दे, असंख्य लोक दिखाई दे, तथापि उस ज्ञान की पर्याय से आत्मा अभिन्न है। ऐसा भिन्न करके कहीं वहाँ देखने जाता है, ऐसा ज्ञान नहीं। समझ में आया या नहीं? अवधिज्ञान में ऐसे दिखाई दे नरक और स्वर्ग ऐसे ज्ञान में। इसलिए वह ज्ञान की पर्याय कुछ वहाँ चली जाती है, यहाँ से भिन्न पड़ जाती है? वह असंख्य प्रदेश में ज्ञानगुण स्वभाव त्रिकाल, उसकी जो अवधिज्ञान पर्याय साथ में वहाँ क्षेत्र में अभिन्न है। समझ में आया? ऐ लड़कों! ध्यान रखो, बातें (करोगे तो) यह नहीं समझ में आयेगा, हों! यह तो सूक्ष्म बातें हैं, बातें करो तो नहीं समझ में आयेगा। समझ में आया इसमें? एक तो सूक्ष्म बात, मुश्किल से समझ में आये। उसमें कुछ डालिया और खजूर हो तो समझ में आये झट। सस्ते की बात हो तो। है तो सस्ते की बात यह। आहाहा! अरे भगवान!

कहते हैं कि यह तेरा मति का कण जगे अन्दर से, तो भी वह गुण आत्मा के साथ अभिन्न है। यह श्रुतज्ञान थोड़ा या बारह अंग का जगे तो वह पर्याय क्षेत्र में असंख्य प्रदेश में ऐसे गुण के साथ अभिन्न है, ऐसा कहते हैं। एक है। अवधिज्ञान की पर्याय हो इतने क्षेत्र में, हों! इतने क्षेत्र में। असंख्यप्रदेशी क्षेत्र में अकेला ज्ञान का पिण्ड आत्मा, वह तो गुण शुद्ध, बुद्ध, एक स्वभाव। उसमें से प्रगट हुआ अवधिज्ञान जिसमें असंख्य लोक जितने मानो, कि अलोक का जाने, तथापि वह पर्याय तो आत्मा से ऐसे असंख्य प्रदेश में, असंख्य प्रदेश में गुण के साथ अभिन्न है। समझ में आया? जमुभाई!

मुमुक्षु : ऊपर-ऊपर....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर-ऊपर तैरती है पर्याय, है तो ऊपर-ऊपर तैरती है, अन्दर घुस नहीं गयी। हमारे हिम्मतभाई कहे कि तर्क किया परन्तु आया नहीं। भाई! यह तो अभी अभ्यास कहाँ किया है? यह तो ऊपर से सब मारा ... सब। शशीभाई!

यहाँ तो कहते हैं कि तिरती है तो पर्याय ऊपर ही वह। परन्तु ऊपर है वह एक समय की पर्याय अपना क्षेत्र छोड़कर आगे नहीं गयी। समझ में आया? ऐसे असंख्यप्रदेशी भगवान आत्मा चौड़ा शरीर प्रमाण भिन्न, उसमें एकरूप गुण जो त्रिकाली ज्ञानानन्द प्रभु शुद्ध स्वभाव बुद्ध एकरूप, उसकी प्रगट हुई पर्याय है तो एक समय में ऊपर, कहीं गुण में घुस नहीं जाती, परन्तु उस पर्याय में बहुत विकास हुआ और बहुतों को जाने, इसलिए वह पर्याय यहाँ से भिन्न पड़ जाती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्रत्येक गाथा में कुछ नयी बात कहने के लिये नयी गाथा उठते हैं, ऐसी की ऐसी कहीं बात नहीं है। समझ में आया इसमें? ऐसे मन:पर्यय। मन:पर्ययज्ञान सामनेवाले के मन की बात जाने। समझ में आया? ढाई द्वीप के मनुष्य और तिर्यंच के मन की। परन्तु कहते हैं कि वह पर्याय तो यहाँ है। वह मन:पर्यय ज्ञानगुण की वर्तमान प्रगट अवस्था असंख्यप्रदेश में और उस गुण के साथ अभिन्न है, ऐसे अभिन्न है। ऐसा जाने इसलिए आगे चली गयी है यहाँ एक क्षेत्र के प्रदेश छोड़कर, ऐसा है नहीं। ओहोहो! ऐसे केवलज्ञान अन्तिम। यह केवलज्ञान लोकालोक को जाने। भगवान आत्मा का केवल जो अकेला त्रिकाली ज्ञान, वह नहीं। अकेला त्रिकाली ज्ञान असंख्यप्रदेश में ध्रुवरूप से व्याप्त, वह तो एकरूप ज्ञान शुद्ध बुद्ध स्वभाव, उसमें प्रगट हुई केवलज्ञान, पर्याय प्रगटी हुई, प्रगटी हुई पर्याय भी व्यापक तो असंख्यप्रदेश में ही है। समझ में आया? वह पर्याय लोकालोक को भले जाने, परन्तु अपना—पर्याय का क्षेत्र जो असंख्य प्रदेश है, वहाँ से अभिन्न है गुण के साथ, वह ऐसे चली नहीं गयी। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? जयन्तीभाई! ऐसे तो पाँच बोल यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान बोल जाये न। भगवानजीभाई! गुण की व्याख्या नहीं की? गुण अर्थात् किसे कहना गुण? ऐई! लड़कों! सीखे हो या नहीं? गुण, (जो) द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और सर्व अवस्थाओं में रहे, उसे गुण कहते हैं। यह उसकी व्याख्या चलती है। पहाड़े सीख गये। गुण उसे कहते हैं कि वह सर्व भाग में और सर्व हालत में (रहे)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बोल गये नहीं परन्तु अब इसका भाव समझो, वह तो भाषा हो गयी। अब लागू करो। समझ में आया? गुण... यह आत्मा एक वस्तु, इसमें

ज्ञानगुण असंख्य प्रदेश में व्यापक, अब वह गुण सर्व क्षेत्र में रहा हुआ है असंख्य प्रदेश में। अब सर्व हालत में अर्थात् उसकी मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल (ज्ञान) सबमें गुण की अवस्था में वह गुण रहा हुआ है। वह पर्याय गुण के साथ अभेद है। उस गुण से पर्याय प्रगट विशेष हुई या कम, परन्तु है स्वयं स्वयं गुण की पर्याय, गुण के साथ अभेद है। एक क्षेत्र के प्रदेश को छोड़कर आगे जाता नहीं। आहाहा!

लोकालोक ज्ञात हो ऐसे पर्याय से, तो कहते हैं कि गुण सर्व हालत में अर्थात् केवलज्ञान की हालत में रहा गुण, परन्तु पर्याय से हुई उसकी हालत। उस पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो गया। तथापि पर्याय का क्षेत्र तो इतने में ही है। समझ में आया? आहाहा! पर्याय का और क्षेत्र क्या होगा? वह पर्याय अर्थात् गुण जितने में रहा है असंख्य प्रदेश में... समझ में आया या नहीं? देखो न, यह है न? उसका गुण है न अन्दर गुण, हों! यह तो ऊपर्याय है ऊपरी तो। गुण जो कायम अन्दर स्पर्श गुण है, स्पर्श गुण, वह पूरे शीशपेन में व्याप्त है और यहाँ पर्याय है, वह भी पूरे में व्याप्त है। देखो! यहाँ भले रहे थोड़ा काल, परन्तु व्याप्त है सबमें। ऐसे केवलज्ञान रहे भले एक समय, दूसरे समय में दूसरी। मति, श्रुत, अवधि प्रत्येक पर्याय तो एक समय ही रहती है, परन्तु वह व्याप्त है पूरे असंख्य प्रदेश में, असंख्य प्रदेश में व्याप्त है। समझ में आया?

गुण अनादि-अनन्त द्रव्य में व्याप्त है और पर्याय एक समय की, परन्तु व्याप्त है पूरे असंख्य प्रदेश में है। यह किसलिए कहते हैं? कि ऐसा ही तत्त्व है, इससे दूसरे प्रकार से कोई कहता हो तो वैसा तत्त्व है नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ ने देखा हुआ पदार्थ और उस पदार्थ का स्वरूप ऐसा है, है वैसा देखा है न! है, वैसा देखा है; है, वैसा कहा है; है, वैसा जान। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान द्वारा ऐसे आत्मा को जान, तब तुझे आत्मा जानना कहलाये, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? तब इसे धर्म होगा। दूसरे प्रकार से धर्म-बर्म होगा नहीं। आहाहा! कठिन भाई! इतना अभी तो धर्म सरल हो गया। अभी तक तो करते थे सब जयन्तीभाई और भगवानजीभाई। नहीं करते थे? नहीं? व्रत पाले और संयम पाले, सामायिक करे और प्रौषध करे और प्रतिक्रमण करे। वे तो सब विकल्प—राग थे। धर्म कहाँ था वह? यही चलता है।

यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय से देखो तो पाँचों पर्यायें ज्ञान से अभिन्न है। भगवान

आत्मा द्रव्य, उसका ज्ञानगुण, ऐसे अनन्त व्यापक असंख्य प्रदेश में। इसकी प्रत्येक पर्याय उस गुण से अभिन्न वहाँ एक क्षेत्र में ही है। बाहर आगे नहीं। थोड़ी उघड़ी हुई हो या पूरी उघड़ी हुई हो। पूरी उघड़ी हुई अर्थात् कोई ऐसे क्षेत्र लम्बा हो जाये, थोड़ी उघड़ी हुई हो तो क्षेत्र थोड़ा हो जाये, ऐसा है नहीं। वह तो भावना विकास के माप की शक्ति का अचिन्त्यपना है। परन्तु है केवलज्ञान, परन्तु अपने असंख्य प्रदेश में ज्ञानगुण के साथ अभिन्न व्यापक है। समझ में आया? अरे.. अरे..! ऐसा! वीतरागी केवलज्ञानी ने कहा हुआ आत्मा ऐसा है। अब उस आत्मा की कभी खबर भी न हो, लो! और हम धर्म करते हैं। धूल में धर्म कहाँ से होता था? जयन्तीभाई! बात सच्ची है। यह बात ही नहीं, बात ही पूरी उल्टे रास्ते चढ़ गयी है। इसलिए यह बात सुनकर ऐसा कहे, सोनगढ़ ऐसा कहता है। सोनगढ़ नहीं, भगवान ऐसा कहते हैं, सुन न! भगवान केवली तीर्थंकर ने कहा, वह यह कहा जाता है। खबर नहीं कभी सुना नहीं, कभी किया नहीं। समझ में आया? आहाहा! व्यवहारनय से... क्या कहा? सुगनचन्दजी!

अब कहते हैं कि **व्यवहारनय से ज्ञान की अपेक्षारूप देखने में...** व्यवहार से, हों! ऐसे अभिन्न कहा यहाँ। पाँच ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ अभिन्न है। तथापि व्यवहार से **नेत्रों की तरह लोक-अलोक में व्यापक है।** आँख जैसे ऐसे दिखाई दे न, जैसे आँख से ऐसे मानो सर्वत्र व्याप्त हो गयी हो, ऐसा कहा जाता है न? आँख तो यहीं की यहीं है। इसी प्रकार व्यवहारनय से **लोक-अलोक में व्यापक है। अर्थात् जैसे आँख रूपी पदार्थों को देखती हैं,...** आँख ऐसे। **परन्तु उन स्वरूप नहीं होती, वैसे ही आत्मा यद्यपि लोक-अलोक को जानता है, देखता है, तो भी उन स्वरूप नहीं होता, अपने स्वरूप ही रहता है, ज्ञानकर ज्ञेयप्रमाण है,...** ज्ञान से ज्ञेयप्रमाण कहा जाता है।

यद्यपि निश्चय से प्रदेशोंकर लोक-प्रमाण है,... देखो! निश्चय से तो यह लोकप्रमाण जो असंख्य प्रदेश आत्मा के हैं... लोकप्रमाण। समझ में आया? आकाश के प्रदेश लोक है, पूरा चौदह ब्रह्माण्ड, उसके—आकाश के प्रदेश असंख्य हैं। इतने ही प्रदेश एक जीव के यहाँ हैं। पूरा लोक है न चौदह ब्रह्माण्ड, चौदह राजू, उसमें आकाश है न व्यापक एक-एक प्रदेश, ऐसे असंख्य प्रदेश, उस पूरे लोक के जितने प्रदेश हैं, उतने एक जीव के हैं। एक जीव के उतने ही प्रदेश हैं, भले इतने में रहा परन्तु प्रदेश

असंख्य उतने ही हैं, संख्या से तो उतने ही हैं। समझ में आया? **यद्यपि निश्चय से प्रदेशोंकर लोक-प्रमाण है,...** लोकप्रमाण अर्थात् लोक के प्रदेश जितने। लोकप्रमाण ऐसे व्यापक, ऐसा नहीं। **असंख्यात प्रदेशी है, तो भी व्यवहारनयकर अपने देह-प्रमाण है,...** लोकप्रमाण होने की योग्यता है उसकी, परन्तु अभी तो देह प्रमाण है।

ऐसे आत्मा को जो पुरुष... अब ऐसी आत्मा की व्याख्या करते हैं। ऐसा जो आत्मा, जो कोई आत्मा; पुरुष अर्थात् आत्मा वापस, पुरुष अर्थात् पुरुष और स्त्री, ऐसा नहीं। **आहार, भय, मैथुन परिग्रहरूप चार वांछाओं स्वरूप...** आहार की संज्ञा, मैथुन संज्ञा, परिग्रह संज्ञा, समझ में आया? और भय संज्ञा। इन **आदि समस्त विकल्प की तरंगों को...** अब इन द्वारा ज्ञात हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा असंख्य प्रदेशी भगवान अनन्त गुण का पिण्ड ऐसे स्वसंवेदन ज्ञान से ज्ञात हो। वे सब विकल्प के तरंग जो शुभाशुभ विकल्प है, उन्हें छोड़कर जो कोई आत्मा को जानता है, आत्मा को जानता है। उस ओर की भोग की संज्ञा को छोड़कर इस ओर आत्मा के अनुभवज्ञान द्वारा इस आत्मा को जानता है। **वही पुरुष ज्ञान से अभिन्न होने से ज्ञान कहा जाता है।** वह पुरुष ज्ञान से अभिन्न। जो दशा वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से आत्मा जानने में आया, वह ज्ञान अभिन्न है। वह पुरुष ही ज्ञान से अभिन्न, इसलिए पुरुष ही ज्ञानमय कहा जाता है। **आत्मा और ज्ञान में भेद नहीं है, आत्मा ही ज्ञान है।** समझ में आया?

यहाँ सारांश यह है कि निश्चयनयकर के पाँच प्रकार के ज्ञानों से अभिन्न आपने आत्मा को जो ध्यानी जानता है,... देखा? ध्यानी अर्थात् अन्तर में एकाग्र होकर जाने। उसकी व्याख्या यह लोग कहाँ की कहाँ करते हैं, यह सब समझे न। आठवें गुणस्थान की और सातवें गुणस्थान की और फलाने की बात है। यहाँ तो निचले की बात है। जिससे आत्मा ज्ञात हो, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान ध्यान काल में ज्ञात होता है, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। समझ में आया? **निश्चयनयकर के पाँच प्रकार के ज्ञानों से अभिन्न...** भगवान ऐसे आत्मा को ध्यानी अन्तर एकाग्र होकर वीतरागी संवेदन ज्ञान द्वारा अन्दर आत्मा को जानता है। समझ में आया?

उसी आत्मा को तू उपादेय जान। वह आत्मा अंगीकार करनेयोग्य मान। असंख्य प्रदेश में ज्ञान से व्यापक द्रव्य, अनन्त गुण हैं, ऐसा जो आत्मा पाँच ज्ञान की पर्याय से

अभिन्न ऐसा जो भगवान वस्तु, उसे अन्तर में, दूसरे विकल्पों को छोड़कर अन्तर में अरागी स्वसंवेदनज्ञान द्वारा ध्यान में 'यह आत्मा' ऐसा जान, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जैसे शुभ और अशुभराग का ध्यान किया है, ध्यान अर्थात् एकाग्रता। शुभ और अशुभ परिणाम की एकाग्रता, (वह) आस्रव का ध्यान कहलाता है, वह आत्मा का नहीं। वह आस्रव का ध्यान। शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम या हिंसा-झूठ के भाव, दोनों आस्रव है। उनका ध्यान—एकाग्रता, वह अकेला आस्रव मलिन परिणाम की एकाग्रता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बन्धरूप है। बैठता है अब? तुम्हारी अपेक्षा अधिक समय यह बहुत लेता है यहाँ। पुनातर! आत्मा वस्तु जो है निर्दोष वीतरागस्वभाव एकरूप, उसका जो ध्यान अर्थात् वह जो आस्रव का ध्यान था, उसे कहा न, इसलिए (कि) समस्त विकल्प को छोड़ दे। समझ में आया? ऐसे पुण्य-पाप के विकल्प में एकाग्र था, वह अब इस आत्मा में एकाग्र हो, वहाँ वह पुण्य-पाप विकल्प आत्मा में एकाग्र होने पर नहीं आते। समझ में आया?

उसी आत्मा को तू उपादेय जान। जो आत्मा ज्ञानमय वस्तु शुद्ध-बुद्ध स्वभाव, वह ऐसे जो पुण्य-पाप के विकल्प में एकाग्र होकर रहता था, उसने तो आत्मा जाना ही नहीं और आत्मा क्या है, उसकी खबर नहीं। अब किस प्रकार जानना? कि, इन विकल्पों से रहित होकर अर्थात् कि संवर-निर्जरारूपी वीतराग स्वसंवेदन पर्याय द्वारा 'यह आत्मा है' ऐसा जान। आहाहा! समझ में आया? क्या कहते हैं, यह पकड़ना कठिन। ऐसा विषय अभी आत्मा का चला गया न, जो विद्या मूल चीज़ थी। वीतराग मार्ग की, सर्वज्ञ परमेश्वर जैन देव की मूल विद्या सम्यग्ज्ञान और आत्मज्ञान, वह तो मानो कुछ नहीं होता। यह सब हो गया बाहर का। समझ में आया?

ऐसे सब विकल्प की वांछारहित कहा न इस ओर में, अब इस ओर ढल। वस्तु, वह वांछारहित निर्विकारी पर्याय द्वारा, रागरहित स्वसंवेदनज्ञान द्वारा 'यह आत्मा है' ऐसा जान। अर्थात् इसका अर्थ कि उसमें एकाग्र हो। यहाँ जो एकाग्र है, वह ऐसे हो। तब आत्मा क्या है, वह ज्ञात होगा। आहाहा! आस्रव जाना है या नहीं? कहते हैं कि वह

जाना इसलिए उसमें एकाग्र होकर रहा है न! आता है न समयसार में। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**' राग को जानता हुआ, ऐसा कुछ आता है न? एकरूप परिणमता हुआ। बात यह है। जानता हुआ क्या जानना था? ... है न। एकरूप एक काल में जानता हुआ और रागादिरूप परिणमता हुआ। लो! उसे जानता हुआ और उसमें रागादिरूप परिणमता, वह परसमय है—मिथ्यादृष्टि है। यह आत्मा एक ही समय में जानता, अपने स्वरूप की एकतारूप से... जानता और परिणमता हुआ स्वसमय प्रतीति किया जाता है। यह बात इसकी स्पष्ट की है। समझ में आया? यह वस्तु शुद्ध चिदानन्दघन में एकाग्र होना और उसे जानते हुए एकाग्र होकर जो दशा होना, उसे स्वसमय आत्मा कहा जाता है। शुद्धात्मा जाना, वह स्वसमय हुआ। अपने में रहा, अपने में रहा, वह स्वसमय हुआ; राग-द्वेष में रहा, वह परसमय हुआ। आहाहा! ... परन्तु यहाँ पहले से बात है। सुन न! समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्येय में अन्तर है। ध्यान में कहाँ था वहाँ? आत्मध्यान कहाँ था? उसमें राग का ध्यान है और इसमें आत्मा का ध्यान है, दोनों में अन्तर है। उसमें आत्मा का ध्यान कहाँ आया वहाँ? उसमें राग का ध्यान है, यहाँ आत्मा का ध्यान है। राग में एकाग्रता है, यहाँ आत्मा में एकाग्रता है। राग में एकाकार होकर रहा है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है और आत्मा में एकाग्र होकर रहा, वह सम्यग्दृष्टि जीव है—ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया?

उसी आत्मा को तू उपादेय जान। लो! यह पूछा उसका उत्तर दिया थोड़ा सा। **ऐसा ही सिद्धान्तों में हरएक जगह कहा है**—समयसार की २०४ गाथा है।

आभिणिबोहिय सुदोधिमणकेवल च तं होदि एकमेव पदं।
सो एसो परमट्ठो जं लहिदुं णिव्वुदिं गादि॥२०४॥

समयसार की २०४ गाथा, निर्जरा अधिकार की, उसका आधार दिया। **इसका अर्थ यह है कि मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, ये पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान एक आत्मा के ही स्वरूप हैं,...** रागादि, पुण्यादि, विकल्पादि नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध

ज्ञानघन तो त्रिकाली, उसकी यह पर्याय पाँच हो—मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल, वह सब आत्मा का ही स्वरूप है। **ये सम्यग्ज्ञान एक आत्मा के ही स्वरूप हैं,...** समझ में आया? यहाँ तो पर्यायसहित की बात लेनी है न। एक स्वरूप त्रिकाली है, वह अलग वस्तु है। त्रिकाली कहने से आत्मस्वरूप निश्चयनय से तो एक ध्रुव है, वही आत्मा का स्वरूप है। परन्तु यहाँ प्रगट हुई पर्यायसहित लेना है, इसलिए उसे भी आत्मा का स्वरूप कहा है। अपेक्षा से जानना चाहिए न! किसी जगह कहीं कहा हो। एक जगह तो आया था कि परिणति, वह आत्मा का स्वरूप ही नहीं। शशीभाई! वह तो एक समय की पर्याय है, इस अपेक्षा से। त्रिकाल वह एकरूप ध्रुव स्वरूप वह आत्मा का, वह जीव स्वरूप है। यहाँ प्रगट हुई निर्मल पर्याय का अंश, उसके साथ अभेद होता है, वह विकार रहित है, इसलिए उसे आत्मा का स्वरूप कहा है। समझ में आया? आहाहा!

वीतरागमार्ग को समझने के लिये लोग दूसरे रास्ते चढ़ गये, यह बात पड़ी रही। फिर ऐसा कहे... पुकार करो परमात्मा के पास या परमात्मप्रकाश के पास। विरोध है रे विरोध है। एकान्त है रे एकान्त है। बीच में किंचित् विकल्प आवे, उससे भी आत्मा को लाभ होता है और आत्मा की एकाग्रता से आत्मा को लाभ होता है, (ऐसा कहो) तो अनेकान्त कहलाये। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जो स्वरूप से शुद्ध चिदानन्द है, उसकी दृष्टि और ज्ञान की स्थिरता हुई, उससे ही मोक्ष होता है। एक ही प्रकार, दूसरा प्रकार है नहीं। उसे सम्यक् अनेकान्त और पर से नहीं (होता), उसका नाम अनेकान्त कहलाता है। बहुत विवाद उठाया लोगों ने, हों! अरे! अन्तर की वस्तु इसके घर में पड़ी परन्तु उसकी इसे खबर नहीं होती, खोजने गया बाहर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के पास फरियाद करे नहीं। आहाहा!

आत्मा के बिना ये ज्ञान नहीं हो सकते,... इस अपेक्षा से। आत्मा बिना रागादि हो सकते हैं। आत्मा बिना है न रागादि पुण्य, पाप, विकल्प तो, आत्मा बिना हैं वे तो, आस्रव तो भिन्न है। और यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान यहाँ तो आत्मा बिना बाहर नहीं हो सकते, वे तो अभिन्न हैं, इसके साथ हैं। आहाहा! आस्रवतत्त्व तो बहिर्तत्त्व है। अजीव और पुण्य-पाप के भाव, वे तो बहिर्तत्त्व हैं, वे आत्मतत्त्व नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा वीतरागी घन ज्ञानस्वरूप, उसके अन्दर में एकाग्र होने से जो मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय हुआ, वह तो आत्मा का स्वरूप है, वह आत्मा का तत्त्व है, एकरूप से इकट्ठा एक हुआ है। वह कहाँ भिन्न पड़ गया है? समझ में आया? ओहोहो! कितनी पर्यायों के अंश घटे-बढ़े तो भी एकरूप है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय बढ़ी परन्तु अभिनन्दन एक को ही सहारा देती है, सामान्य को सहारा देती है या खण्ड-खण्ड हो जाती है? निर्मलता बढ़े, वह सब अभेद हो जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भेद के ऊपर उसका लक्ष्य नहीं। वे जो निर्मल अंश प्रगट हुए वे सामान्य स्वभाव के साथ एकत्व को पाते हैं। समझ में आया?

आत्मा के बिना ये ज्ञान नहीं हो सकते,... यह पाठ। मति, श्रुत, अवधि आदि आत्मा के बिना कहीं बाहर, बाहर क्षेत्र में (नहीं) एक समय के काल में अपने में है, वे बाहर में कुछ नहीं। **वह आत्मा ही परम अर्थ है,...** ऐसा भगवान परमार्थ पदार्थ है। पाँच ज्ञान की पर्याय अन्तर में प्रगटे, उन पर्यायवाला यह आत्मा ही परमार्थ पदार्थ है। **जिसको पाकर वह जीव निर्वाण को पाता है।** लो! ऐसे आत्मा को सम्यग्ज्ञान द्वारा इस मति-श्रुतज्ञान के सम्यक् द्वारा पाकर वही आत्मा मोक्ष के पद को सम्यग्ज्ञान द्वारा पाता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? मति, श्रुत आदि जो ज्ञान स्वसंवेदन, वह ज्ञान का स्वरूप, आत्मा का है। इसलिए उसके अभेदपने को पाकर यह आत्मा मति-श्रुतज्ञान से वेदन कर ज्ञात होते हुए आत्मा ही उस ज्ञान द्वारा मुक्ति को पाता है। कोई विकल्प बीच में आवे, उसके द्वारा पाता है, निमित्त द्वारा पाता है—ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? लो! इतना उत्तर दिया पहले। यहाँ दूसरे में ऐसा कहते हैं। १०६। इसी और इसी का विस्तार (करते हैं)।

★ ★ ★

गाथा - १०६

१०६) अप्पहँ जे वि विभिण्ण वढ ते वि हवंति ण णाणु।
ते तुहुँ तिण्णि वि परिहरिवि णियमिँ अप्पु वियाणु॥ १०६॥

आहाहा! **अन्वयार्थ :- हे शिष्य! आत्मा से जो जुदे भाव हैं, वे भी ज्ञान नहीं हैं,...** भगवान आत्मा से भिन्न जो पुण्य का, दया, दान, व्रत का, मुनिपने के विकल्प का, पंच महाव्रत के परिणाम का (विकल्प), वह आत्मा नहीं, वह ज्ञान नहीं। **जुदे भाव हैं, वे भी ज्ञान नहीं हैं, वे सब भाव ज्ञान से रहित जड़रूप हैं,...** शरीरादि और मैं '**त्रीणि अपि**' लिये तीन—धर्म, अर्थ और काम। धर्म अर्थात् मुनिपने के आचरण की क्रिया, पंच महाव्रत आदि वह ज्ञान नहीं, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? आत्मा कहना है न यहाँ तो। ज्ञान कहना है न ज्ञान, तो ज्ञानस्वरूपी भगवान का जो स्वसंवेदनज्ञान, वह ज्ञान। यह मुनिधर्म का आचरण का विकल्प अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का, वह ज्ञान नहीं, वह आत्मा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कहो, बल्लभभाई! पाठ में तीन है। यह बाद में स्पष्टीकरण आयेगा, १०७ में स्पष्टीकरण (आयेगा)। समझ में आया? क्योंकि गाथा समयसार का आधार देंगे न। '**अपरिग्गहो अणिच्छो भणितो णाणी य णिच्छदे धम्मं।**' इसलिए यहाँ इन्होंने उतार लिया। धर्म अर्थात् पुण्य। उसमें से यहाँ उतारा इन्होंने। धर्म, अर्थ और काम। उसमें दृष्टान्त देंगे बाद में। धर्म अर्थात् पुण्य, पुण्य अर्थात् शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि शुभभाव। वह आत्मा का ज्ञान नहीं, वह ज्ञान नहीं, वह ज्ञान नहीं, वह राग आस्रवतत्त्व, आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **उन धर्म, अर्थ, कामरूप तीनों भावों को छोड़कर...** अर्थ अर्थात् पैसा, काम अर्थात् विषयवासना, पुण्य अर्थात् व्यवहार क्रिया महाव्रत मुनि आदि की। उसे छोड़कर तू आत्मा को जान। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १३, सोमवार, दिनांक - ०६-१२-१९६५
गाथा - १०६ से १०८ प्रवचन - ६९

परमात्मप्रकाश, पहला भाग है।

भावार्थ :- गुरु शिष्य को कहते हैं। **हे प्रभाकर भट्ट...** देखो! यह शिष्य ने बहुत पूछा कि प्रभु! ऐसा मुझे बताओ कि जिससे मुझे शीघ्र आत्मज्ञान हो। दूसरी सब बात विकल्प और मुझे अधिक कुछ काम नहीं। मुझे तो आत्मा की प्राप्ति हो, वही धर्म और वही सुख का कारण है, वह मुझे बताओ। तो कहते हैं कि **हे प्रभाकर भट्ट...** है? न्यालभाई! भावार्थ। **मुनिरूप धर्म,...** अर्थात् क्या? पुण्यभाव मूल तो कहना है। पुण्यभाव है न, मुनि का व्यवहार कर्म है, व्यवहार आचरण पंच महाव्रत आदि, वह सब पुण्यभाव है। उस पुण्यभाव को छोड़ दे दृष्टि में से, ऐसा कहना है। **मुनिरूप धर्म,...** अर्थात् कि पुण्यभाव और **अर्थरूप संसार के प्रयोजन,...** लक्ष्मी, लक्ष्मी के लिये जो विकल्प हो पाप का। समझ में आया? यह कमाने का भाव हो न पाप का, वह पापभाव है। पापभाव होगा? गुलाबचन्दभाई! कमाने का भाव? भाव है, परन्तु पाप होगा? और **काम (विषयाभिलाष)...** भोग की अभिलाषा विषय की, वह पापभाव है। दो कहे पाप और एक कहा पुण्य। मुनि का व्यवहार आचरण है या श्रावक का व्यवहार आचरण बारह व्रत आदि, वे सब विकल्प शुभराग है, पुण्य है। लक्ष्मी के लिये विकल्प उठना, वह पाप है और विषयभोग की वृत्ति उठना, वह पाप।

ये तीनों ही आत्मा से भिन्न हैं,... यह विकल्प जो शुभ-अशुभराग। यह तीनों अर्थात् अशुभ के दो और शुभ का एक, ऐसा। तीनों आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द से भिन्न हैं। समझ में आया? **ज्ञानरूप नहीं है।** ये तीन, ज्ञानस्वरूप चैतन्यस्वरूप जो है... ये तीन बोल उस ज्ञानस्वरूप नहीं, अर्थात् कि आत्मस्वरूप नहीं। बराबर है? नेमिदासभाई! यह लक्ष्मी का विकल्प, यह सब कर आये न भाव का, वह भाव क्या होगा? पाप होगा या नहीं? पाप। और विषयवासना खाने-पीने की सब अनुकूलता की वृत्तियाँ पापभाव

और यह दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति और पंच महाव्रत के भाव, बारह व्रत के भाव, वह सब शुभभाव है, पुण्यभाव है। वह पुण्य और पाप दोनों आत्मा का ज्ञानस्वरूप नहीं। वह अज्ञानस्वरूप है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान का अंश नहीं। शुभ और अशुभराग विकल्प में ज्ञान (नहीं)। ऐसा कहा न? वह ज्ञानरूप नहीं। उसमें चैतन्यप्रकाश—ज्ञानस्वरूप, उसका—ज्ञान का प्रकाश का अंश, वह विकल्प शुभ-अशुभ में नहीं, इसलिए वह धर्म का कारण नहीं। वह धर्म है नहीं और धर्म का कारण भी नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

निश्चयनय करके... वास्तविक दृष्टि से देखें तो **सब तरफ से निर्मल...** 'एक' शब्द रह गया है अन्दर। **सब तरफ से निर्मल एक...** 'एक' डालते ही नहीं ये, कौन जाने। बहुत जगह जो खास मुद्दे की रकम है, वह डालते नहीं। उसमें डाला है अन्दर संस्कृत में। '**सकलविशदैकज्ञानस्वरूपात्**' ऐसा पाठ है संस्कृत। 'एक' खास है न। यहाँ ऐसे अनेक अर्थात् एक, ऐसा सिद्ध करना है। परन्तु वह तो अन्दर है। '**सकलविशदैक-ज्ञानस्वरूपात्**' अर्थात् विशद निर्मल है न। विशद, सकल विशद, ऐसा है न? सकल सब तरफ से विशद—निर्मल। वह तो विशद में आ गया। स्पष्ट में, विशद में आ गया न वह तो। एक सब तरफ से। सकल है न, (उसका) सब तरफ से लिया और विशद है निर्मल में लिया। 'एक' रह गया। एक ज्ञान स्वरूप है न, उसके बदले फिर केवल डाल दिया, ऐसा डाल दिया, परन्तु केवल अर्थात् एक। समझ में आया? क्या कहा?

शिष्य ने पूछा, उसका उत्तर दिया। मुझे तो ऐसा बताओ कि जिससे मुझे आत्मा की प्राप्ति हो अर्थात् कि मुझे धर्म हो। तो कहा कि, मुनिरूप धर्म अर्थात् पंच महाव्रत, (श्रावक के) बारह व्रत का विकल्परूपी पुण्यभाव, वह धर्म नहीं। शुभभाव—दया, दान, भक्ति, पूजा और मुनि के पंच महाव्रत और (श्रावक के) बारह व्रत, वह सब शुभभाव, वह धर्म नहीं, वह पुण्य है। व्यवहार पुण्य है। अर्थरूप संसार के प्रयोजन—लक्ष्मी का कमाने का भाव, वह विकल्प पाप है। और काम की अभिलाषा, भोग की अभिलाषा का विकल्प, वह पाप। तीन हुए। तीन से आत्मा भिन्न है, वे तीन आत्मा से भिन्न हैं। समझ में आया? शुभभाव दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत, वह सब शुभभाव, वह आत्मा से अत्यन्त भिन्न जाति है, वह आत्मा की जाति है नहीं। कठिन बात, भाई!

आत्मा से भिन्न हैं,... क्योंकि वे आस्रवतत्त्व हैं, भगवान ज्ञानतत्त्व है। समझ में आया? चिदानन्द ज्ञानस्वरूप, वह आत्मतत्त्व ज्ञानमूर्ति और यह पुण्य-पाप के विकल्प जितने, वह सब ज्ञानतत्त्व से भिन्न तत्त्व है अर्थात् अज्ञानतत्त्व है। अज्ञानतत्त्व अर्थात् चैतन्य का प्रकाश उसमें नहीं, इसलिए वह आस्रवतत्त्व है। समझ में आया?

ये तीनों ही निश्चयनय करके सब तरफ से निर्मल... एक ज्ञानस्वरूप अर्थात् केवल ज्ञान—एक ही ज्ञान है, ऐसा कहना है। केवल वह केवल नहीं, वह केवलज्ञान पर्याय नहीं। एक स्वरूप, एक ही ज्ञान स्वरूप ऐसे वस्तु एक ही है। केवलज्ञान अर्थात् पर्याय की बात नहीं, (परन्तु) वस्तु। **निर्मल केवलज्ञानस्वरूप...** अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ऐसे **परमात्मपदार्थ से...** ऐसा। यहाँ तो वस्तु द्रव्य लेनी है। उससे **भिन्न तीनों ही धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों को छोड़कर...** लो! पहला यह कहा वापस, उस शिष्य ने पूछा और पहले यह कहा। पहले यह करना पुण्य और थोड़ा व्यवहार करना, दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रत पालना और फिर यह करना, ऐसा यहाँ नहीं कहा। अमरचन्दजी! भारी कठिन बात जगत को। बीच में भले आवे, परन्तु वह आदरनेयोग्य चीज़ नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तीनों ही धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों को छोड़कर... देखो, पुरुषार्थ तो है यह, कहते हैं। समझ में आया? पुरुषार्थ है, वीर्य है न इतना। शुभ और अशुभ में पुरुषार्थ है परन्तु वह अधर्म पुरुषार्थ है। धर्म कहा है, वह व्यवहार से, निश्चय से (अधर्म है)। व्यवहार से धर्म कहा है न, मुनिरूप धर्म। इसीलिए तो दृष्टान्त देंगे। निर्जरा (अधिकार की) समयसार की गाथा। उसे इसके आधार में देंगे। समझ में आया? इन **तीनों ही धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थों को छोड़कर...** जो वीर्य पुण्य में जुड़ता है, पैसे के कमाने में जुड़ता है, भोग में जुड़ता है, उन सब तीनों पुरुषार्थ को छोड़कर। **वीतरागस्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूप...** भगवान आत्मा अत्यन्त वीतराग शुद्धात्मस्वरूप, शुद्धात्मरूप ज्ञान में। यह पर्याय है, यह पर्याय है। वह था निश्चय से सब तरफ से निर्मल केवल ज्ञान एकस्वरूप परमात्मपदार्थ द्रव्य था, वह द्रव्य था, द्रव्य। वस्तु ज्ञायक चैतन्यभाव वस्तु। पुण्य-पापभाव आस्रवतत्त्व था। और यह **वीतरागस्वसंवेदनस्वरूप शुद्धात्मानुरूपज्ञान...** यह संवर-निर्जरातत्त्व है। समझ में आया? उसमें रहकर इसे जान, ऐसा कहते हैं यहाँ तो।

विकल्प में रहकर यह ज्ञात नहीं होता। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक स्वरूपी प्रभु पूरा, उसे, पुण्य-पाप के विकल्प जो अनेक हैं, उन अनेक को छोड़कर एक स्वरूप में वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरूप शुद्धात्मानुभूतिरूप भाव, वह पर्याय है। वीतराग (पर्याय है)। उस एक पर्याय को छोड़कर, एक पर्याय द्वारा इसे लक्ष्य में लेकर उस पर्याय में स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! शशीभाई! भारी कठिन बात! सीधे पूछा उसका उत्तर ही यह।

मुमुक्षु : यह चौथे की बात है या सातवें की?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे की, चौथे से शुरु है सब यह। यह मुनि की प्रधानता से बात की है, मुनि की प्रधानता से बात की है। मुनि को ही वीतरागस्वसंवेदनज्ञान है? विशेष वीतरागस्वसंवेदनज्ञान है। समझ में आया? ऐई! वीतरागस्वसंवेदनज्ञानस्वरूप। यह पहले आ गया है २१वें पृष्ठ पर, वीतरागस्वसंवेदनज्ञान चौथे में होता है, पाँचवें में होता है, पहले आ गया है इसमें।

शुद्धात्मानुरूपज्ञान... देखा! यह पर्याय है। शुद्धात्मानुभवरूप। शुद्ध वस्तु जो कही परमात्म पदार्थ शुद्ध आत्मा, उसका अनुभव, उसका अनुभव—उसे अनुसरकर होना, ऐसा जो ज्ञान। उसमें **रहकर आत्मा को जान।** उसमें रहकर आत्मा को जान, ऐसा। समझ में आया? संक्षिप्त में तो सब बहुत कहा, अजीव की तो बात भी की नहीं यहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प वह तो। अर्थ का विकल्प, वह पापतत्त्व में आ गया। अर्थ का विकल्प, पैसे का विकल्प, भोग का विकल्प, वह अशुभभाव और यह शुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यह शुभभाव। इन दोनों को छोड़कर, दृष्टि में से दोनों को छोड़कर। आहाहा! एक परमात्मस्वरूप, एक परमात्मस्वरूप ऐसा वजन है यहाँ। एकरूप त्रिकाल द्रव्यस्वरूप। इन तीन से पुरुषार्थ छोड़कर वीतरागस्वसंवेदनज्ञान-स्वरूप। यह किसकी उपमा है? शुद्धात्मानुरूप ज्ञान, ऐसा। शुद्धात्मानुरूप ज्ञान कैसा है? कि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानस्वरूप। समझ में आया? पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव के विकल्परहित अरागी स्वसंवेदनज्ञानरूप शुद्धात्मा के अनुभवरूप ज्ञान में रहकर, यह आत्मा

है, ऐसा जान। रतिभाई! समझ में आया? अकेले शास्त्रज्ञान से जाना या विकल्प से जाना, ऐसा नहीं। वह उसने आत्मा जाना ही नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग परमात्मस्वरूप त्रिकाल एकस्वरूपी ज्ञान निर्दोष एकस्वरूपी, उसे वीतरागस्वसंवेदन ऐसा शुद्धात्मानुरूप जो सम्यग्ज्ञान, ऐसे सम्यग्ज्ञान अर्थात् शुद्धपर्याय, वीतरागीपर्याय द्वारा आत्मा को जान। इसके अतिरिक्त किसी प्रकार से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। जमुभाई! यह ६ हुई, १०६। १०७।

★ ★ ★

गाथा - १०७

आगे आत्मा का स्वरूप दिखलाते हैं—विशेष।

१०७) अप्पा णाणहँ गम्मु पर णाणु वियाणइ जेण।
तिण्णि वि मिल्लिवि जाणि तुहुँ अप्पा णाणेँ तेण॥ १०७॥

अन्वयार्थ :- आत्मा नियम से ज्ञान के गोचर है,... भगवान वह तो ज्ञान की निर्मल पर्याय से ही अनुभवगम्य है। बाकी कोई विकल्प आदि, निमित्त आदि से गम्य अनुभव हो नहीं सकता। समझ में आया? भगवान आत्मा नियम से। 'पर' शब्द प्रयोग किया। पर अर्थात् उत्कृष्ट, नियम से, निश्चय से पर का (अर्थ), ऐसा। **ज्ञान के गम्य है,...** गोचर अर्थात् गम्य। वह तो ज्ञान की निर्मल पर्याय वीतरागी पर्याय द्वारा ही आत्मा गम्य है, बाकी किसी प्रकार से गम्य है नहीं। ओहोहो! कहाँ का कहाँ कर डाला है लोगों ने। कहो! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह धर्मध्यान। अर्थात् इसका अर्थ हो गया न कि उसके धर्मध्यान में आत्मा गम्य हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : जान लिया कि आत्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आत्मा है? आत्मा है, ऐसा यह आत्मा जैसा है, वैसा वीतरागी पर्याय में स्थिर होने से 'यह आत्मा है' ऐसा जाने, वह जानना कहलाता है। समझ में आया? ऐसे (धारणा से) जानना नहीं कहलाता। कहो, भीखाभाई! आहाहा! इसीलिए तो यह श्लोक लिया है। '**आत्मा ज्ञानस्य गम्यः परः**'। परम अर्थात् नियम से,

निश्चय से, वास्तव में, निश्चित। भगवान आत्मा, वह तो ज्ञान की मूर्ति है। प्रकाश चैतन्यसूर्य, आनन्दस्वभाव आदि सब चैतन्यसूर्य वस्तु है वह तो। वीतराग निर्दोष स्वभाव वस्तु है, उसे ज्ञानगम्य, पुण्य-पाप विकल्प कहीं ज्ञान नहीं। शुभाशुभराग, वह कहीं ज्ञान नहीं। वह तो अज्ञान; अज्ञान अर्थात् विकार है, उसमें अ-ज्ञान अर्थात् ज्ञान का प्रकाश नहीं। समझ में आया? भारी कठिन।

मुमुक्षु : .... सब व्यर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कब की थी सच्ची? कहा न, उल्टा पुरुषार्थ कहा था, उल्टा कहा था, वह तो कहा था। शुभाशुभभाव का पुरुषार्थ सही, (परन्तु) उल्टा। क्या हुआ परन्तु उस तीस वर्ष के रस के त्याग का? क्या कहते हैं इसमें? धर्म में मुफ्त गया? ऐसा पूछते हैं वे। समझ में आया? आहाहा! इस परमात्मा में यह विकल्प कैसे? यह तो एक समय की अपराध धारा है। एक समय की अपराध धारा। निरपराध परमात्मा स्वरूप अखण्डानन्द ज्ञानस्वरूप है। वह तो निरपराधी पर्याय द्वारा ही गम्य हो, ऐसा है, कहते हैं। यह ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अभी तो बाहर में विवाद तकरार उठे। वह कहे मूर्ति का ऐसा है और वह कहे फलाना... ढींकणा। विवाद वह विवाद बाहर में। अन्दर की मूल बात तो पड़ी रही नीचे।

क्योंकि ज्ञान ही आत्मा को जानता है,... देखो! है? क्या विकल्प जाने? राग जाने? दया, दान, पाँच महाव्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प है, वह आत्मा को जाने? राग में जानने की सामर्थ्य है? राग तो अन्ध है। अमरचन्दजी! अन्धा है शुभभाव। जिससे तीर्थंकर गोत्र बँधे, वह भाव भी अन्धा है। भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु, कहते हैं वह तो आत्मा को जानता है, **ज्ञान ही आत्मा को जानता है,...** भाषा ऐसी है न? **इसलिए हे प्रभाकर भट्ट! तू धर्म, अर्थ, काम इन तीनों ही भावों को छोड़कर...** ले! तीन के विकल्प छोड़ दे। **ज्ञान से निज आत्मा को जान।** भगवान ज्ञानस्वरूपी अन्दर राग-विकल्प से रहित ज्ञान की पर्याय के द्वारा ऐसा जान। ज्ञान-स्वसंवेदनज्ञान से (जान कि) यह आत्मा। उसमें स्थिर हो, तब यह ज्ञात हो, इसके अतिरिक्त ज्ञात नहीं होता। आहाहा!

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा ज्ञान के ही गोचर (जाननेयोग्य) है,... जाननेयोग्य

उससे है। ज्ञान अर्थात् निर्मल पर्याय। पुण्य-पाप के विकल्प बिना, राग बिना ज्ञान की निर्मल पर्याय द्वारा वह गम्य है। इसके अतिरिक्त लाख-करोड़ क्रिया, कष्ट करे, मर जाये तो भी उसे आत्मा गम्य हो सके, ऐसा नहीं है। समझ में आया? कितने मन्दिर बनावे तो यह आत्मा गम्य हो? अभी बाकी है न तुम्हारे सब। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! वह तो शुभभाव हो और बनने का हो, तब बने। वह कहीं शुभभाव से बनता है, ऐसा नहीं। शुभभाव होता है अशुभ से बचने के लिये उस काल में, परन्तु वह कहीं धर्म है और उससे आत्मा गम्य हो सकता है, उससे सम्यग्दर्शन हो, इस बात में कुछ माल नहीं। अमरचन्दजी! ... अन्तिम में शाम को। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **मतिज्ञानादि पाँच भेदों रहित...** यहाँ तो और वापस। **जो परमात्म शब्द का अर्थ परमपद है,...** देखो! वह तो निकाल दिया, शुभाशुभ विकल्प तो निकाल दिये परन्तु पाँच के भेद भी नहीं, ऐसा अभेद तत्त्व। ऐसा है, देखो! शब्द पाठ में ऐसे हैं। '**मतिज्ञानादिकपञ्चविकल्परहितं**' ऐसा वापस। उसे भी निकाल दिया। '**यत्परमपदं परमात्मशब्दवाच्यं साक्षान्मोक्षकारणं तद्रूप योऽसौ परमात्मा**' क्या कहते हैं? यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, ऐसे पाँच भेद नहीं, जो भेदरहित अकेला अखण्डानन्द भगवान आत्मा। ऐसा परम-आत्म शब्द का अर्थ है, उसे परम पद कहा जाता है। **वही साक्षात् मोक्ष का कारण है,...** कहो, समझ में आया?

उस स्वरूप परमात्मा को... ऐसा जो परमात्मा स्वभाव **वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदन ज्ञान के बिना दुर्धर तप के करनेवाले भी बहुत से प्राणी नहीं पाते।** वीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञान। विकल्परहित निर्विकल्प ज्ञान, निर्विकल्प श्रद्धा, निर्विकल्प शान्ति, इसके बिना दुर्धर तप करके मर जाये पाँच-पाँच महाव्रत पालन करके, बारह प्रकार के अनेक प्रकार के अनशन, ऊनोदर, व्रत, तप, तपस्या करके... समझ में आया? परन्तु **वीतरागनिर्विकल्प-स्वसंवेदन ज्ञान के बिना दुर्धर तप के करनेवाले भी बहुत से प्राणी नहीं पाते।** उससे आत्मा को अर्थात् आत्मा को धर्म नहीं होता। ओहोहो! **इसलिए ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर।** भगवान आत्मा को ज्ञान की निर्मल पर्याय द्वारा अनुभव कर। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... भगवान एकरूप, उसे सम्यग्ज्ञान द्वारा अनुभव कर। उस द्वारा ही अनुभव हो सकता है, बाकी अनुभव नहीं हो सकता। समझ में आया?

(अज्ञानी को) ऐसा लगे यह सब एकान्त... एकान्त हो जाता है। **इसलिए ज्ञान से ही अपना स्वरूप अनुभव कर। ऐसा ही कथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने समयसारजी में किया है।** लो!

णाणगुणेण विहीणा एवं तु पदं बहू वि ण लहंते।
तं गिण्ह णियहमेदं जदि इच्छसि दुक्खपरिमोक्खं॥२०५॥

२०५, समयसार की २०५। २०४ आ गयी है, यह २०५। **इसका अर्थ यह है कि सम्यग्ज्ञाननामा निज गुण से रहित...** देखा? जो सम्यग्ज्ञान निज गुण अर्थात् पर्याय निर्मल, यह उसे गुण कहा है। सम्यग्ज्ञान आत्मा का शुद्ध त्रिकाल स्वभाव, उसका जो सम्यग्ज्ञान—निर्मल ज्ञान, पुण्य-पाप के विकल्परहित ज्ञान, ऐसे **निज गुण से रहित पुरुष इस ब्रह्मपद को बहुत कष्ट करके भी नहीं पाते... 'णाणगुणेण विहीणा'** है न? सम्यग्ज्ञान बिना, ऐसा कहना है। समझ में आया? यह अन्तर निर्मल सम्यग्ज्ञान बिना तपस्या करके सूख जाये, मर जाये अपवास करके तो भी ब्रह्मपद को बहुत कष्ट (करके भी नहीं पाते)। ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा के पद को प्राप्त नहीं कर सकते। समझ में आया?

मुमुक्षु : निर्मल ज्ञानपद.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। कहाँ आया? कहाँ आया निर्मल? किसके साथ मेल? निर्मल पहले आया कहाँ? यहाँ तो कहा परमात्मा कहा न? अर्थात् परमात्मा कहा स्वयं वस्तु। उसके ज्ञान बिना नहीं पाता। निर्मल अर्थात् सम्यग्ज्ञान, ऐसा। यह जो कहा न, सम्यग्ज्ञाननामा निज गुण से निर्मल, ऐसा। यह कहा जाता है न? **सम्यग्ज्ञाननामा निज गुण से रहित...** अर्थात् उसे निर्मल कहा। किसलिए कहा? कि वह राग है, वह मल है। विकल्प है, वह मल है, उससे रहित सम्यग्ज्ञान अन्दर शुद्ध चैतन्य को पकड़ने की दृष्टि और ज्ञान, ऐसा जो ज्ञानरहित पुरुष, वह ब्रह्मपद को कष्ट करके नहीं पाते। **अर्थात् जो महान दुर्धर तप करो तो भी नहीं मिलता।** समझ में आया? दुर्धर तप करे, तप करे तो... तप तो धर्म है। यह तप अर्थात् शुभराग की क्रिया इच्छा मन्द राग आदि ऐसी तपस्या, ऐसा। वह तप नहीं, स्वरूप में स्थिरता की तपस्या, उस तप की यहाँ बात नहीं। अपवास और ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग और देव-गुरु-शास्त्र का बहुत विनय, भक्ति और यात्रा और... समझ में आया? रसपरित्याग और दूध, दही, खाण्ड बिल्कुल खाना

नहीं, छाछ लेना, ऐसा विकल्प। ऐसे-ऐसे दुर्धर तप करे तो भी भगवान आत्मा का ज्ञान उस द्वारा होता नहीं। समझ में आया?

इसलिए जो तू दुःख से छूटना चाहता है,... यदि तू दुःख अर्थात् आकुलता के पुण्य-पाप के विकार के दुःख से छूटना चाहता हो, **सिद्धपद की इच्छा रखता है, (पूर्णानन्द की इच्छा हो) तो आत्मज्ञानकर निजपद को प्राप्त कर।** लो! **आत्मज्ञानकर निजपद को प्राप्त कर।** आत्मा के ज्ञान से ही निजपद की प्राप्ति होती है, पुण्य-पाप के विकल्प से होती नहीं। आत्मज्ञान के साथ मुक्ति की शुरुआत होती है और उसके द्वारा उसी ज्ञान की स्थिरता द्वारा मुक्ति होती है। समझ में आया? आत्मज्ञानकर एक आ गया न, बस! एक ही बात। वह आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द उसका ज्ञान। उस ज्ञान में श्रद्धा, स्थिरता तीनों आ गये। आत्मज्ञान से ही आत्मा की सिद्धि होती है। समझ में आया?

यहाँ सारांश यह है कि जो धर्म-अर्थ-कामादि... धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् उसे पैसे की इच्छा, कामादि इच्छा (अर्थात्) भोग की वासना। **सब परद्रव्य की इच्छा को...** देखो! वह परद्रव्य की इच्छा है, वह तीनों परद्रव्य की इच्छा है। पुण्य भी इच्छा है, अर्थ की इच्छा और काम की इच्छा। **परद्रव्य की इच्छा को छोड़ता है...** देखो! **वही निज शुद्धात्मसुखरूप अमृत में तृप्त हुआ...** समझ में आया? यह शुभ-अशुभभाव की पकड़ है, वही परिग्रह है। उससे रहित, परद्रव्य की इच्छारहित भगवान निज शुद्धात्मा का सुखरूप अमृत, अतीन्द्रिय आनन्द का सुखरूप अमृत में तृप्त हुआ। ओहोहो! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में तृप्त हुआ। पुण्य-पाप की इच्छा का स्वाद, वह आकुलता का दुःख स्वाद। उससे (रहित) आत्मा का स्वाद, पुण्य-पाप की आकुलता का स्वाद, स्वाद तो वह है, दुःखरूप स्वाद। उससे रहित भगवान आत्मा का स्वाद अतीन्द्रिय शान्त आनन्द के स्वाद में तृप्त होता हुआ उसमें तृप्त होता हुआ। **सिद्धान्त में परिग्रह रहित कहा जाता है,...** उसे पर की ममतारहित कहा जाता है। उसे पर की ममतारहित कहा गया है।

मुमुक्षु : यह तो जंगलवासी की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! जंगल में ही है आत्मा, जंगल ही है। जंगलवासी आत्मा जंगल में पर से रहित ही है। कहाँ जंगल में कोई दूसरे क्षेत्र में है? राग में भी नहीं, शरीर में नहीं, पर में नहीं। आत्मा कहाँ है? आत्मा तो अनन्त गुण में है। बस! वह जंगल में

ही है जहाँ हो वहाँ। 'चाहे बसो घर में और चाहे बसो वन में', आता है न यह? बनारसीदास में आता है, बनारसीदास में आता है। देखा है? 'चाहे बसो वन में...' ऐसा आता है, हों! कहाँ होगा? किस प्रकार खबर पड़े? कहाँ से निकलेगा? अपने को कहीं याद है सब? ऐसा लिखा है कहीं। मन्दिर अर्थात् घर, वन अर्थात् जंगल। यह तो परक्षेत्र की बात हुई। स्वयं तो असंख्य प्रदेश में, क्षेत्र में अनन्त गुण का पिण्ड अपने क्षेत्र में है, वह परक्षेत्र में कभी गया नहीं, स्पर्शा भी नहीं परक्षेत्र को। समझ में आया? उसे परिग्रहरहित कहा गया है, परिग्रह अर्थात् ममतारहित, ऐसा। है न? '**अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो तेण सो होदि।**' परिग्रहरहित अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्प की पकड़ छोड़कर जिसने आत्मा के ज्ञान की पकड़ करके स्थिर हुआ, उसे ममतारहित और परिग्रहरहित कहा गया है। समझ में आया?

और निर्ग्रन्थ कहा जाता है,... निर्ग्रन्थ भी उसे कहा जाता है। **और वही अपने आत्मा को जानता है।** पश्चात् छठवे गुणस्थानवाला जाने, ऐसा यहाँ नहीं। आत्मा निर्ग्रन्थ स्वरूप ही है। नियमसार में आता है। '**णिग्गंथो**' आता है न? है न, उसमें क्या? निर्ग्रन्थस्वरूप ही आत्मा है। निर्ग्रन्थ अर्थात् पुण्य-पाप की गाँठ, रागरहित स्वरूप है। उसकी दृष्टि और स्थिरता वह निर्ग्रन्थ भाव ही है, वह निर्ग्रन्थ भाव है। समझ में आया? ग्रन्थ अर्थात् पुण्य-पाप के भावरहित भाव, वह निर्ग्रन्थ भाव है। वस्तु भी निर्ग्रन्थ है और सम्यग्दर्शन और ज्ञान भी निर्ग्रन्थ भाव है। वह ग्रन्थ भाव नहीं, ग्रन्थ अर्थात् पुण्य-पाप की गाँठ, वह उसमें नहीं। शुद्ध चैतन्य के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भाव, वह निर्ग्रन्थ भाव है।

वही अपने आत्मा को जानता है। ऐसा ही समयसार में कहा है... देखो! इस गाथा का आधार देते हैं। **कि निज सिद्धान्त में परिग्रहरहित और इच्छारहित ज्ञानी कहा गया है,...** परिग्रहरहित अर्थात् पुण्य-पाप की पकड़ रहित और उनकी इच्छारहित। **जो धर्म को भी नहीं चाहता है,...** आहाहा! धर्म अर्थात् पुण्य, धर्म अर्थात् महाव्रत के भाव, व्रत के भाव—ऐसे पुण्यभाव को भी जो चाहता नहीं। **जिसके व्यवहारधर्म की भी कामना नहीं है,...** देखो! स्पष्टीकरण किया। जो धर्मी को व्यवहार धर्म विकल्प आवे, परन्तु उसकी कामना नहीं, उसकी भावना नहीं होती। राग की भावना होगी? भारी काम, भाई! समझ में आया? वे कहे, व्यवहारधर्म से निश्चयधर्म प्राप्त हो ऊपर जाकर।

यहाँ कहे, व्यवहार... समझे न? उसमें से निकाला है इतना। '**ण णिच्छदे धम्मं**' कहा न, '**अपरिग्गहो दु धम्मस्स जाणगो**' '**अपरिग्गहो दु धम्मस्स**' इसमें से निकाला। धर्म अर्थात् पुण्य का भी परिग्रह नहीं, अर्थात् व्यवहार धर्म की भी पकड़ नहीं, पकड़ नहीं। पकड़ ज्ञानानन्द शुद्धस्वरूप की दृष्टि और स्थिरता, इसमें आत्मा की पकड़ है। समझ में आया? अपरिग्रह का दृष्टान्त निर्जरा का दिया है। निर्जरा का अधिकार चौथे, पाँचवें, नहीं लिया? वह परिग्रहरहित है, स्थिरतावाला अधिक परिग्रहरहित है। **उसके अर्थ तथा काम की इच्छा कहाँ से होवे?** जिसे व्यवहारधर्म की इच्छा नहीं, उसे अर्थ और काम की कहाँ से होगी? ऐसा कहते हैं। जिसे शुभभाव की भावना नहीं, उसे और अशुभ की भावना कहाँ से होगी? आहाहा! आत्मा में आनन्द है, ऐसी दृष्टि और तृप्ति हुई, उसे और अशुभभाव की भावना होगी? भोग की वासना की भावना है? आ जाये, वह अलग बात है, भावना नहीं। समझ में आया? शुभभाव आवे, परन्तु उसकी भावना नहीं। एकाग्र होकर बढ़ाना, ऐसी भावना नहीं। आहाहा!

वह आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है,... यह मानो छठवें, सातवें की सभी बातें। यहाँ तो चौथे से ही लेकर बात है। अभिलाषा कैसी? ऐसी वस्तु की दृष्टि हुई, वस्तु आनन्दकन्द भगवान उसके ज्ञान में आया। भावना अर्थात् उसकी ओर (एकाग्रता है)। वहाँ दूसरा भाव ही नहीं, भाव कैसा? होवे उसका भाव नहीं। ओहोहो! **सब अभिलाषाओं से रहित है,...** निःशंक, निःकांक्ष आता है न दूसरा गुण? भाई ने बहुत लिया है पंचाध्यायी में। अभिलाष की व्याख्या में बहुत लिया है। निःकांक्ष में बहुत लिया है, बहुत विस्तार किया है। ज्ञानी को किसी प्रकार की अभिलाषा नहीं। निःकांक्ष में ही ... इसके ऊपर से याद आया था। वे कहे, (ऊपर के गुणस्थान की बात है)। यहाँ चौथे गुणस्थान से लेकर सब बात। अभिलाषा। आचार्य का हृदय है। आर्ष ग्रन्थ नहीं, ऐसा कहते हैं न? यह टोडरमल और राजमलजी के। आर्ष ग्रन्थ का हृदय है। तुझे क्या खबर पड़े? वस्तु आत्मा आर्ष अर्थात् वस्तु का स्वरूप जो बतावे दृष्टि, ज्ञान से वे सब आर्ष के ही वाक्य हैं। समझ में आया? **वह आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है,...** पूर्णानन्द भगवान जहाँ सम्यग्ज्ञान में अनुभव में आया, अब उससे क्या कमी रही कि दूसरे की अभिलाषा करे? समझ में आया?

जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है,... धर्म शब्द से पुण्य। जिसे पुण्य का भाव आवे व्यवहार, उसकी भी पकड़ नहीं, तो अन्य परिग्रह कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ... समझ में आया? धर्मी जीव को तो एक शुद्ध आत्मा के आनन्द की ही भावना है। उसे पुण्य-पाप, व्यवहार धर्म की भावना नहीं। देखो, कहा है। **आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है,...** सम्यग्दृष्टि एक आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञानानन्द के वेदन के भाव में उसकी ही भावना एकाग्र होने की है। बीच में शुभ-अशुभभाव व्यवहाररत्नत्रय या व्यवहारधर्म, उसकी भावना ज्ञानी को है नहीं। क्योंकि पुण्य और पाप दोनों विकल्प हैं। व्यवहार धर्म की भी कामना जहाँ सम्यग्दृष्टि को नहीं, वहाँ अर्थ और काम की इच्छा कहाँ से होवे? उसे लक्ष्मी और भोग की वासना (नहीं।) आत्मा के आनन्द की जहाँ पिपासा है, सम्यग्दृष्टि तो आनन्द—आत्मा के आनन्द के पिपासु हैं। ऐसे सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा को देखा, जाना, अनुभव किया, ऐसे समकिती को पुण्य-पाप की भावना होती नहीं। व्यवहार धर्म की भावना नहीं तो फिर अर्थ और काम की कहाँ से आयी?

आत्मज्ञानी सब अभिलाषाओं से रहित है,... ओहोहो! इच्छा ही जहाँ स्वरूप में नहीं, उसे इच्छा की भावना कैसे हो? **जिसके धर्म का भी परिग्रह नहीं है,...** शुभभाव का ही परिग्रह नहीं। पकड़ नहीं कि आवे तो ठीक, रखूँ। वे तो उत्साह करे कि शुभभाव रहे। पकड़ नहीं, आवे उसे ज्ञाता में ज्ञान की ओर जानकर जानते हैं। समझ में आया? आहाहा! जगत को भारी कठिन पड़े। **तो अन्य परिग्रह कहाँ से हो? इसलिए वह ज्ञानी परिग्रही नहीं है,...** समकिती को परिग्रह नहीं कहा जाता। पुण्य के विकल्प की पकड़ नहीं तो फिर दूसरी पकड़ कहाँ है? समझ में आया?

वीतरागबिम्ब भगवान, उसे वीतराग परिणति ने स्वसंवेदनज्ञान से जाना, उसे दूसरी भावना क्या हो? पुण्यादि विकल्प बीच में आओ, हो, उसे जाननेवाले-देखनेवाले (रहते हैं)। उसकी भावना करके बढ़ाने का भाव है नहीं। बढ़ाऊँ तो स्वरूप की एकाग्रता, वह बढ़ाने की है। समझ में आया? **इसलिए वह ज्ञानी परिग्रही नहीं है, केवल निजस्वरूप का जाननेवाला ही होता है।** यह चौथे से लेकर बात है, यह हों! कोई कहे, निर्ग्रन्थ मुनि और छठे गुणस्थान में, वह तो बात कहीं आगे रह गयी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय का व्यवहार है, इसलिए वह तो भेद जानना, वह व्यवहार है। वस्तु की दृष्टि में अभेद है, वह तो त्रिकाल अभेद एकरूप वस्तु है।

केवल निजस्वरूप का जाननेवाला ही होता है। लो! यह शिष्य ने पूछा, प्रभु! मुझे ऐसा एक बताओ। मुझे दूसरे सब विकल्प का काम नहीं नाथ, हों! ऐसा प्रभाकर ने पूछा। मुझे तो आत्मा जैसे प्राप्त हो, वह शीघ्र बताओ, मुझे तो एक ही काम है। उसके उत्तर में गुरु कहते हैं, भाई! यह शुभ-अशुभ विकल्प जो पुण्य-पाप के भाव छोड़कर भगवान वीतराग परमानन्द एकस्वरूपी प्रभु को वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से जान। बस! यही तुझे करने का है। कहो, समझ में आया? कहो, भीखाभाई! क्या करना इसमें? अब इसमें यहाँ डालते हैं कि कर्ता क्या और कर्म क्या, वह सब १०८ गाथा में डालते हैं। कर्ता करना किसे और क्या करना?

★ ★ ★

गाथा - १०८

आगे ज्ञान से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं—१०८।

१०८) णाणिय णाणिउ णाणिएण णाणिउँ जा ण मुणेहि।
ता अण्णाणिं णाणमउँ किं पर बंभु लहेहि॥ १००॥

हे '**ज्ञानिन्**' है न शब्द। **अन्वयार्थ :- हे ज्ञानी...** (हे धर्मी) **ज्ञानवान अपना आत्मा...** यह कर्ता, यह करनेवाला। **ज्ञानवान अपना आत्मा...** है न बोल? यह कर्ता करनेवाला। करनेवाला ज्ञानवान आत्मा। अपना आत्मा, वापस दूसरे का आत्मा नहीं। हे '**ज्ञानिन्**' सम्बोधन करके कहते हैं। **ज्ञानवान अपना आत्मा...** वह छह तो टीका में है भाई! परन्तु यह पाठ में तीन है। अभी भाई ने कहा, यह तीन है, वह किस प्रकार? पाठ में क्या है? है न? '**णाणि**' यह पहला शब्द सम्बोधन। फिर ज्ञानी। '**णाणिउ**' का नीचे संस्कृत है ज्ञानी। यह ज्ञानी अर्थात् कर्ता। **ज्ञानवान अपना आत्मा...** वह कर्ता, कर्ता—करनेवाला। पश्चात् '**ज्ञानिना**' यह करण। तीसरा बोल है न? '**णाणिएण।**' संस्कृत मूल पाठ '**णाणिएण**' है। उसमें '**ज्ञानिना**' यह करण है।

सम्यग्ज्ञान करके... सम्यग्ज्ञान से ऐसा, दूसरे विकल्प आदि से नहीं। कर्ता ज्ञानी आत्मा। समझ में आया? और सम्यग्ज्ञान द्वारा, सम्यग्ज्ञान द्वारा, वह करण है। व्यवहार द्वारा, विकल्प द्वारा, ऐसा नहीं। समझ में आया? हे ज्ञानी! ऐसा सम्बोधन किया। फिर ज्ञानी अर्थात् ज्ञानवान अपना आत्मा, वह कर्ता। ज्ञानवान आत्मा वह कहीं रागवान, पुण्यवान आत्मा नहीं, आस्रववान वह आत्मा नहीं। ज्ञान जिसका रूप ज्ञानवान है न। ज्ञानरूप ऐसा भगवान आत्मा, वह कर्ता, ज्ञानवान भगवान कर्ता। राग कर्ता नहीं, पुण्य कर्ता नहीं, ज्ञानी अर्थात् ज्ञान करके। सम्यग्ज्ञान द्वारा, पुण्य विकल्प द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं। सम्यग्ज्ञान करके, यह करण हुआ।

'ज्ञानिनं' कर्म **ज्ञान लक्षणवाले आत्मा को...** ज्ञान लक्षण आत्मा को, यह कार्य हुआ। समझ में आया? कार्य यह, कर्ता यह, साधन यह। यह सब कहाँ गये बाहर के साधन? सब ज्ञान में परज्ञेयरूप से जानने में रह गये। आहाहा! समझ में आया? **'ज्ञानिनं'** है न? मूल पाठ में **'णाणिउँ'** है। **'णाणमउँ','णाणमउँ'।** यह **'णाणिउँ'** अर्थात् **'ज्ञानिनं'** संस्कृत। यह न? संस्कृत **'ज्ञानिनं'।** ज्ञान लक्षणवाला आत्मा, यह कार्य हुआ, कर्म, कर्म। यह कर्म, आत्मा का यह कर्म। यह आठ कर्म वे आत्मा का कर्म है या नहीं? राग, राग, पुण्य, व्यवहार विकल्प, वह आत्मा का कर्म है या नहीं? समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूपी वीतरागबिम्ब वह स्वयं ज्ञानवान कर्ता, सम्यग्ज्ञान द्वारा वह साधन और ज्ञान को आत्मा ज्ञान लक्षणवाले को जानना, वह कर्म।

इस प्रकार **जब तक नहीं जानता,...** इस प्रकार जब तक नहीं जानता। **तब तक अज्ञानी होने से...** यहाँ तो भाई! अज्ञानी लिया है, देखो! इसें वह नहीं, ऐसा न जाने, तब तक चौथे, पाँचवेंवाला है। ऐई! यही है इसमें। ऐसा कि ऐसा न जाने तो चौथे, पाँचवेंवाला, ऐसा जाने वह सातवेंवाला, आठवेंवाला है। यहाँ स्पष्ट पाठ है न देखा न। **'ता अण्णाणिं णाणमउँ किं पर बंभु लहेहि'।** १०८ में स्पष्ट शब्द है यह तो। समझ में आया? ... प्रवचनसार में कहा न? तीन अभेद न हो तब तक... वहाँ तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि लिया है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? जब तक कर्ता ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान करण द्वारा, ज्ञानस्वरूपी लक्षणवाले आत्मा को न जाने, तब तक अज्ञानी है। समझ में आया? तब तक मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूपी

आत्मा कर्ता होकर अपने ज्ञान के साधन—करण द्वारा, अपने ज्ञान लक्षणवाला जो आत्मा, उसे कर्म करके न जाने, तब तक वह अज्ञानी चाहे जैसे शुभाशुभभाव करे, वह धर्म नहीं। समझ में आया?

अज्ञानी होने से... अब न्याय देते हैं। **ज्ञानमय अपने स्वरूप को क्या पा सकता है?** ऐसा कहते हैं। देखा? ज्ञानमय भगवान आत्मा कर्ता, ज्ञानमय करण और ज्ञान कार्य। इस प्रकार न जाने तो ऐसा, ज्ञानमय भगवान, इस प्रकार न जाने तो अज्ञानी ज्ञानमय को किस प्रकार जानेगा? क्योंकि आत्मा तो ज्ञानमय है। ज्ञानमय निर्विकल्प बिम्ब है। वीतरागी बिम्ब आत्मा आत्मा है, ज्ञानमय स्वरूप है, वह तो ज्ञान का स्वरूप है अकेला। उसे अपने सम्यग्ज्ञान करण द्वारा कर्ता सम्यग्ज्ञानी स्वयं और सम्यग्ज्ञानवाला आत्मा, उसे न जाने, तब तक अज्ञानी ज्ञानमय ऐसा भगवान किस प्रकार जानेगा? किस प्रकार पायेगा? ऐसा यहाँ लिया। '**किं लभसे**' ऐसा है न? समझ में आया?

कभी नहीं पा सकता। जो कोई आत्मा को पाता है, तो ज्ञान से ही पा सकता है। लो! जो कोई अनन्त काल में सम्यग्ज्ञान द्वारा पाये तो सम्यग्ज्ञान द्वारा ही आत्मा को पाये। कोई दूसरे तीन काल, तीन लोक में दूसरे प्रकार से पाते नहीं। आहाहा! किसकी बात है यह? सातवें (गुणस्थान) की? इसीलिए तो आचार्य ने अज्ञानी डाला। स्पष्ट किया। वस्तु वीतराग ज्ञानमय बिम्ब प्रभु आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प का स्पर्श भी जिसे नहीं। ऐसा ज्ञानमय भगवान, ज्ञानमय करण और कर्ता और कर्म द्वारा वह ज्ञात हो ऐसा है। तो वह जानने का कार्य होता है। इसके अतिरिक्त किसी अज्ञानभाव से विकल्प द्वारा तीन काल-तीन लोक में ज्ञात नहीं होता। समझ में आया?

जब तक यह जीव... यह कर्ता आया। जब तक यह जीव, वह कर्ता। करनेवाला, **अपने को...** यह कर्म आया, कार्य आया। अपने को, कर्ता अपने को। कर्ता जीव। राग कर्ता नहीं। वह व्यवहार विकल्प कर्ता और फिर यह काम हो, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। कषाय की मन्दतारूपी काम, वह कर्ता और फिर काम हो, ऐसा नहीं। कर्ता आत्मा और काम भी अपना ज्ञानरूपी काम। **अपने को आपकर...** यह करण आया, करण... करण। व्यवहारकर नहीं परन्तु आपकर, ज्ञानमयकर, ज्ञानमय के करण—साधन द्वारा। आत्मा में करण नाम का गुण है, तो वह स्वयं ही अपने करण द्वारा।

अपनी प्राप्ति के लिये... यह सम्प्रदान आया। समझ में आया? अर्थात् स्वयं अपने ज्ञान का कर्ता होकर, करण द्वारा काम हुआ और स्वयं ने लिया। स्वयं ने दिया और स्वयं ने लिया। भगवान ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा, वह कर्ता होकर, करण द्वारा कार्य करके स्वयं ने रखा। स्वयं ने दिया और स्वयं ने लिया एक समय में। लो! यह दान। गजब बात, भाई! यह दान ही दान है, कहते हैं, वह दान दान ही नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! भगवान ने अन्दर से माल निकाला, कहते हैं। पूँजी-माल निकाला अन्दर से और वापस स्वयं ने रखा। कर्ता होकर, करण अर्थात् साधन द्वारा कार्य किया, वह कार्य रखा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं अपना दानी और स्वयं देनेवाला, दोनों एक का एक है। लेनेवाला भी स्वयं और देनेवाला भी स्वयं। आहाहा! व्यवहार चला जाता है इसमें, लोग चिल्लाहट मचा जाते हैं। परन्तु व्यवहार व्यवहार के स्थान में हो, जान। वह चीज़ तो जाननेयोग्य रह गयी। समझ में आया? आहाहा!

अपनी प्राप्ति के लिये... क्या कहा? अपनी प्राप्ति। वह राग प्राप्ति, पुण्य की प्राप्ति, तीर्थंकरगोत्र की प्राप्ति (नहीं कही)। सोलह (कारण) भावना उसे तीर्थंकरगोत्र की प्राप्ति मिले। लो! तीर्थंकरगोत्र की प्राप्ति। यह कहते हैं कि वह नहीं। यहाँ तो अपनी प्राप्ति के लिये। वह तो विकल्प था, विकल्प की प्राप्ति यहाँ कहाँ है आत्मा में? आहाहा! समझ में आया? **अपनी प्राप्ति के लिये...** देखो, अपनी प्राप्ति, अपनी प्राप्ति के लिये, वह पुरुषार्थ करता है, दूसरे के लिये कुछ है नहीं। राग के लिए तो और दूसरों के लिये प्रश्न कहाँ आया? आप से। 'थी' पाँचवीं (विभक्ति) आवी थकी—अपने से। ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा, ज्ञानमूर्ति, ज्ञानस्वरूपी भगवान आप से स्वयं। ज्ञान द्वारा, ज्ञान से, थकी—उससे प्रगट होता है। अेथी—उससे प्रगट होता है। राग और विकल्प से (ज्ञान में) आता नहीं। समझ में आया?

अपने में... अधिकरण आया। अपने में रहकर। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा... षट्कारक आ गये षट्। पाठ में तीन रखे थे। समझे न? गाथा में तीन—कर्ता, करण और कर्म (थे)। पाठ में तीन रखे, इसलिए (बाकी के) आ गये। टीकाकार ने छह निकाले।

इसमें संक्षेप सूत्र है, इसलिए विस्तार से टीका में कहा। **अपने में तिष्ठता नहीं जान ले,...** ऐसे छह कारक द्वारा स्वयं अपने को न जाने, **तब तक निर्दोष शुद्ध परमात्मा सिद्धपरमेष्ठी को क्या पा सकता है?** स्वयं सिद्ध परमेष्ठी, हों! आहाहा! **तब तक निर्दोष...** निर्दोष अर्थात् उसमें—वस्तु में विकार कहाँ है? वस्तु है, वह वीतराग है। वीतराग अर्थात् रागरहित; रागरहित अर्थात् दोषरहित। वस्तु है, वह तो दोषरहित त्रिकाल अखण्डानन्द आनन्दकन्द वीतराग परमात्मस्वरूप है। निर्दोष अनन्त गुण का पिण्ड एक द्रव्य, वह निर्दोष है। उसमें दोष कैसा? वीतरागभाव कहो, निर्दोष कहो, ज्ञानानन्द कहो। ऐसा निर्दोष शुद्ध परमात्मा, ऐसा। निर्दोष शुद्ध। निर्दोष—दोषरहित। नकार किया, हकार में शुद्ध परमात्मा। शुद्ध परमात्मा ऐसा आत्मा, ऐसा स्वयं सिद्ध परमेष्ठी ऐसे कर्ता, कर्म, करण न करे, तब तक किस प्रकार (सिद्धपद को) पा सके? समझ में आया? **कभी नहीं पा सकता।**

जो आत्मा को जानता है, वही परमात्मा को जानता है। ऐसा आत्मा जाना, उसने अपने परमस्वरूप को जाना और परमात्मा को जाना। बाकी इस प्रकार न जाने, तब तक अज्ञानी चाहे जितना क्रियाकाण्ड रागादि व्यवहार करे, उससे आत्मा की प्राप्ति नहीं है। प्राप्त हुए वे इस प्रकार से प्राप्त हुए हैं। प्राप्त हुए वे इस प्रकार से प्राप्त हुए हैं, पायेंगे वे इस प्रकार से पायेंगे। दूसरा इसका कोई रास्ता है नहीं। यह परमात्म शब्द है न ऊपर। परमात्मप्रकाश अर्थात् परमात्मप्रकाश द्रव्य वस्तु, उसे ऐसे कर्ता होकर कर्म द्वारा करण द्वारा अपने को अपने में रखकर अपने से अपने आधार से स्वयं प्राप्त करता है तो इस प्रकार से प्राप्त करता है। परमात्मा ज्ञान के अतिरिक्त रागादि परमात्मा नहीं कुछ, वे तो पर स्वरूप हैं। उस द्वारा प्राप्त नहीं होता। वह कर्ता होकर प्राप्त हो या साधन होकर प्राप्त हो या कर्म होकर प्राप्त हो या राग की मन्दता का व्यवहार का आधार था, वह प्राप्त हो, ऐसा वस्तु में है नहीं। प्राप्त हुए, वे इस प्रकार से प्राप्त हुए, दूसरे प्रकार से प्राप्त नहीं होते।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर शुक्ल १४, मंगलवार, दिनांक - ०७-१२-१९६५
गाथा - १०९ से ११० प्रवचन - ७०

गाथा - १०९

१०९ (गाथा), परमात्मप्रकाश—पहला भाग। **परलोक शब्द की व्युत्पत्तिकर परलोक शब्द से परमात्मा को ही कहते हैं—** चार गाथा ज्ञान की गयी, अब परलोक की व्याख्या करते हैं।

१०९) जोइज्जइ तिं बंभु परु जाणिज्जइ तिं सोइ।
बंभु मुणेविणु जेण लहु गम्मिज्जइ परलोइ॥ १०९॥

अन्वयार्थ :- उस कारण से उसी पुरुष से (आत्मा ने) शुद्धात्मा नियम से देखा जाता है,... क्या कहते हैं? जिसे यह शक्तिरूप परमेश्वर आत्मा निर्विकल्प ज्ञान द्वारा लोकन अन्दर अवलोकन होता है। वस्तु स्वयं परमब्रह्म, परमब्रह्म। परमब्रह्म शुद्ध शक्ति परमेश्वर, स्वयं परमेश्वर को **देखा जाता है,...** जिस सम्यग्ज्ञान निर्विकल्प शान्ति और निर्विकल्प दृष्टि द्वारा, स्वसंवेदनज्ञान द्वारा **देखा जाता है, उसी पुरुष से निश्चय से वही शुद्धात्मा जाना जाता है,...** समझ में आया? यह परलोक की व्याख्या है। पर अर्थात् पर—उत्कृष्ट परमात्मा अपना स्वभाव। एक समय का शुद्ध ध्रुव जो निश्चय स्वरूप, उसका परमेश्वरपद है। एक समय की पर्याय, वह तो व्यवहार है। निश्चय वस्तु जो परमेश्वरपद जो अनन्त गुण का रूप एक, उसे अन्तर में निर्विकल्प शान्ति, ज्ञान द्वारा लोके-अवलोके, पर अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा को, वह जीव परलोक को प्राप्त हुआ और उसने आत्मा को जाना कहलाता है। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

उसी पुरुष से निश्चय से वही शुद्धात्मा जाना जाता है, जो पुरुष जिस कारण अपना स्वरूप जानकर परमात्मतत्त्व में शीघ्र ही प्राप्त होता है। भगवान यह उसका कर्तव्य और यह उसकी क्रिया। भगवान परमेश्वर स्वयं स्वरूप से ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... अनादि-अनन्त शुद्ध अनन्त गुण का एकरूप ऐसा ध्रुव परमेश्वर, उसे जो अन्तर निर्विकल्प

ज्ञान के स्वसंवेदनज्ञान द्वारा उसको जो अवलोके, उसे परलोक कहा जाता है। समझ में आया? पर अर्थात् प्रधान। उत्कृष्ट लोक ही वह अपना आत्मा है।

परमात्मप्रकाश है न, इसलिए परमात्मा वस्तु स्वयं ही परमात्मा द्रव्यस्वरूप से है। इसे जो कोई देखता है, ऐसा कहा न? '**दृश्यते**', '**जोइज्जइ**'। '**जोइज्जइ**' अर्थात् देखता है। '**परु जाणिज्जइ**'—वही परमात्मा को जानता है, दूसरा जान नहीं सकता। ओहोहो! समझ में आया? उसमें विकल्प, वाणी और शरीर का कुछ काम ही नहीं, कहते हैं। वह तेरी चीज़ ही नहीं। वाणी या विकल्प, वह आत्मा नहीं। यह बाद में कहेंगे, चार श्लोक के बाद। निजात्म द्रव्य से परवस्तु है, उसे काम लेना, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं। समझ में आया? शुभाशुभ विकल्प से काम लेना, वह कहीं जीव का स्वरूप नहीं। आहाहा! वाणी वह जड़ की पर्याय है। शुभाशुभ विकल्प, वह आस्रवतत्त्व है, वह कहीं जीवस्वरूप नहीं कि उससे तू काम ले सके और आत्मा को लाभ हो। क्यों जुगराजजी! विकल्प से लाभ नहीं होता, वाणी से यह दूसरे को प्ररूपणा करना, उससे कुछ लाभ होगा या नहीं जीव को? वह तो विकल्प से पुण्य बँधता है, प्ररूपणा से? वह तो भाषावर्गणा है।

यहाँ तो कहते हैं, जो देखा जाता है शुद्धात्मा नियम से। जो स्वसंवेदनज्ञान द्वारा स्व ज्ञानानन्द मूर्ति पुण्य-पाप के आस्रवरहित, विकल्परहित, शरीर-अजीवरहित अकेला अनन्त पूर्ण स्वरूपसहित ऐसा जो परमात्मा स्वयं, उसे अन्तर स्वसंवेदनज्ञान से देखे, वह पुरुष परलोक को प्राप्त होता है। वह परलोक अर्थात् प्रधान आत्मा, उसे प्राप्त करता है। समझ में आया? ओहोहो! प्राप्त करना है न कुछ इसे, प्राप्त करना है न, कहते हैं। क्या पुण्य-पाप प्राप्त करना है? वह तो विकार है, विकार से तो बन्ध की प्राप्ति होती है। अजीव है यह वाणी, शरीर, वह तो परपदार्थ है, उससे तो कुछ बन्ध की प्राप्ति भी नहीं, वह तो स्वतन्त्र पदार्थ है।

भगवान आत्मा परमब्रह्म, परमब्रह्म—ऐसा कहा न? परमब्रह्म आनन्दमूर्ति निर्विकल्प आनन्दकन्द वस्तु। **देखा जाता है,...** जो निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान द्वारा जो वस्तु को अन्दर देखता है, वह पुरुष आत्मा को जानता है और वह पुरुष परमात्मतत्त्व में शीघ्र ही अर्थात् अन्तर परलोक, पर अर्थात् प्रधान लोक, उसे अवलोकता है, अर्थात् उसमें प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया इसमें? रतिभाई! सब निपटा दिया बाहर का

इसमें तो कुछ। जुगराजजी! क्या करना अब? मन्दिर-मन्दिर करना या क्या करना? कहते हैं। हाँ करना या न करना, क्या करना इसमें? कर कहाँ सकता है? वह तो उसके कारण से होता है। वाणी कौन बोल सकता है? वह तो जड़ के कारण से वाणी (निकलती है)। विकल्प कौन ला सकता है? वह तो कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में विकल्प उत्पन्न होते हैं। समझ में आया?

यह ला सकता है, ऐसा कहते हैं यहाँ भाई! परलोक प्राप्त करता है न, कहते हैं, प्राप्त, यह प्राप्त कर कता है। यह (पर) प्राप्त क्या कर सके? भगवान परमेश्वर परमब्रह्मस्वरूप स्वयं है। उसे कहाँ प्राप्त करना था, विकल्प को क्या प्राप्त करना था, वाणी को क्या प्राप्त करनी थी, फलाना को प्राप्त (क्या करना था?) समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, वह पुरुष ब्रह्मा '**ब्रह्म मत्वा**' है न? '**परः ब्रह्म दृश्यते**'—वह परमब्रह्मा जाना जाता है। उस पुरुष से परमब्रह्म भगवान अन्तर (में) जानने में आता है। **जिस कारण अपना स्वरूप जानकर 'परलोके लघु गम्यते'। 'लघु'**—उग्र। परमात्मतत्त्व जो परमस्वरूप आनन्दतत्त्व पूर्ण ध्रुव, उसे **शीघ्र ही प्राप्त होता है।** वह परलोक अर्थात् आत्मा का प्राप्त होता है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो कोई शुद्धात्मा... इतना तो शब्दार्थ किया। **अपना स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर...** अपना स्वरूप वास्तविक पिण्ड भगवान परमात्मा पिण्ड स्वयं है। एक समय का उत्पाद-व्यय है, वह तो परिणति-पर्याय है, वह कहीं निश्चय आत्मा नहीं। समझ में आया? उत्पाद-व्यय की एक समय की पर्याय है, वह निश्चय आत्मा नहीं। भले राग हो या शुद्ध परिणति हो, परन्तु वह कहीं निश्चयतत्त्व नहीं, वह तो व्यवहारतत्त्व है। समझ में आया? निश्चयतत्त्व **शुद्धात्मा अपना स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर शक्तिरूप से...** जो सत्त्व, सत्त्वरूप। **केवलज्ञान केवलदर्शन स्वभाव है,...** लो! आया देखो! यह चिल्लाहट मचाते हैं न, सर्वज्ञ भगवान... सर्वज्ञ भगवान। अरे, भाई! सर्वज्ञ भगवान ने देखा, ऐसा निर्णय करने जा तो सर्वज्ञ पर्याय जिसमें से निकले, ऐसे शक्तिरूप केवलज्ञान, केवलदर्शन का निश्चय हो जाता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? केवलज्ञान, केवलदर्शन। वह केवल अर्थात् एक ज्ञान, एक दर्शन शक्ति त्रिकाल की बात है यह, हों! समझ में आया? '**शक्तिरूपेण केवलज्ञानदर्शनस्वभावः**'। शक्तिरूप अकेला ज्ञान।

अकेला ज्ञान अर्थात् ध्रुवरूप। अकेला दर्शन ध्रुवरूप। ज्ञ, ऐसा स्वभाव, ऐसा स्वभाव एकरूप पूर्ण... पूर्ण स्वभाव। ऐसा स्वभाव, **वही वास्तव में (असल में) परमेश्वर है।** वह स्वयं परमेश्वर है। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा ज्ञान केवल अकेला ज्ञान, ऐसा। केवल अर्थात् उस पर्याय की बात नहीं अभी। केवलज्ञान पर्याय भी वह तो व्यवहार आत्मा है। केवलज्ञान पर्याय भी व्यवहार आत्मा; निश्चय आत्मा वह नहीं। यह केवल, केवलदर्शन स्वरूप जो है, वह निश्चय आत्मा है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में अकेला पिण्ड जिसमें ऐसे अनन्त परमात्मा आवे। केवलज्ञान की पर्याय, वह परमात्मदशा। ऐसी परमात्म सादि-अनन्त दशा, ऐसे अनन्त परमात्मा, अनन्त परमात्मा हुए न? जुगराजजी! अनन्त पर्याय है, वह अनन्त परमात्मा, वह अनन्त परमात्मा। वह अनन्त परमात्मा जिसके पेट में शक्तिरूप से रहा, वह निश्चय आत्मा। समझ में आया? आहाहा! एक समय का परमात्मा तो व्यवहार परमात्मा है। यह कहेंगे उसमें, स्वर्ग-मोक्ष व्यवहारनय से है। व्यवहारनय से स्वर्ग-मोक्ष को परलोक कहते हैं। ऐसे व्यक्तिरूप से सिद्ध कहेंगे। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में अकेला ज्ञानस्वरूप का तत्त्व, दर्शनरूप का तत्त्व अर्थात् शक्ति, वह स्वयं ही परमेश्वर है। पूरा परमेश्वर वह। समझ में आया? और पूरा परमेश्वर, वह क्या होगा? केवलज्ञानी प्रगट पर्याय वह तो एक समय का परमात्मा है। समझ में आया? यह भगवान शुद्धस्वरूप ध्रुव एक समय की पर्याय उत्पाद-व्यय को गौण कर दो। अकेला भगवान पूरा परमेश्वर है। समझ में आया? आहाहा!

वह परमेश्वर, **परमेश्वर में और जीव में जाति-भेद नहीं है,...** वह परमेश्वर और जीव दोनों में कोई जातिभेद नहीं। **जब तक कर्मों से बँधा हुआ है,...** पर्याय में एक समय की पर्याय में ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है कर्म के साथ। एक समय की पर्याय में कर्म की पर्याय को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वस्तु में वह कुछ है ही नहीं। एक समय की पर्याय में कर्म की, उदय की एक समय की पर्याय, कर्म के उदय की पर्याय, दोनों को निमित्तसम्बन्ध है। वह तो व्यवहार हो गया अकेला। वस्तु स्वरूप में वह सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? ओहो..!

जब तक कर्मों से बँधा हुआ है, तब तक संसार में भ्रमण करता है। अर्थात् एक समय की पर्याय कर्म की पर्याय के साथ सम्बन्ध रखती है, तब तक उसका नाम परिभ्रमण। एक समय की (जीव की) पर्याय, एक समय की कर्म के उदय की पर्याय के साथ... क्योंकि, वह भी एक समय की पर्याय है उदय की, दोनों साथ में है, तब तक संसार है। एक समय की पर्याय का लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय द्वारा... वह पर्याय। समझ में आया? एक समय की पर्याय, अवस्था, पूरा ध्रुव तत्त्व भिन्न अखण्ड एकरूप। उसकी एक समय की पर्याय अर्थात् अवस्था कर्म के एक समय की अवस्था के साथ जुड़े, बस! इसका नाम संसार, इसका नाम व्यवहार। उस पर्याय का लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय द्वारा परमेश्वर को अवलोकना, इसका नाम परलोक और परमेश्वर कहा जाता है। समझ में आया? वह सम्बन्ध ऐसा (पर की ओर) था, वह सम्बन्ध ऐसा (अन्तर में) किया। सूक्ष्म बहुत परन्तु इसमें। कुछ करना हो न, तब तो समझ में भी आये। भक्ति-बक्ति में बोलना हो तो लोग समझे सही कि कुछ करते हैं। ऐई... राजमलजी! इसमें क्या करना और क्या करना, यह कुछ दिखता नहीं बाहर में। कहते हैं कि भाई! यह करने की क्रिया तो जड़ की, वह तो उसके साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। विकल्प उठे, वह भी सम्बन्ध कर्म के साथ सम्बन्ध करती है पर्याय, तब विकल्प उठते हैं। ऐसे सम्बन्ध करे तो विकल्प उठता नहीं। वस्तु ऐसी है जरा कठिन है। लोगों को जैनदर्शन क्या है, यह समझना कठिन पड़ता है। क्योंकि उन्हें सुनने को मिला नहीं।

जैनदर्शन अर्थात् क्या? वस्तु का सत्त्व पूरा है, वह परमेश्वर ही है। वह जैनदर्शन अर्थात् वस्तुस्वरूप वीतराग है। वस्तु स्वयं निर्दोष वस्तु वीतरागस्वरूप ही आत्मा है, परमेश्वर है। उसे अन्तर में जो वर्तमान अवस्था ऐसे जुड़ती है, उसे निर्विकल्प संवेदनज्ञान द्वारा इस आत्मा को अवलोकना। बस! यह उसने परमेश्वर को अवलोकन किया। उसे परमेश्वर की भेंट हुई, वह परमेश्वर को प्राप्त हुआ, वह परलोक को प्राप्त हुआ। पर अर्थात् प्रधान लोक, प्रधान लोक, प्रधान लोक। एक समय की पर्याय, राग और निमित्त भी नहीं, प्रधान लोक यह। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लोक-परलोक कहाँ था? कहते हैं। यह परलोक तो प्रधान लोक—यह उत्कृष्ट (लोक है), पर अर्थात् उत्कृष्ट। दो अर्थ किये है जरा इसमें। उत्कृष्ट, भाई! है न देखो अन्दर, ऐई! पर अर्थात् ब्रह्म शब्द शुद्धात्मा और '**परः उत्कृष्टः। अथवा पर इति पाठे नियमेन।**' ऐसे दो शब्द किये। नियम से वह परलोक है, ऐसा। संस्कृत में दो शब्द है। '**पर इति पाठे नियमेन।**' पर अर्थात् नियम से। पर अर्थात् उत्कृष्ट और पर अर्थात् नियम से। दो अर्थ किये हैं, भाई! संस्कृत में है। क्या किया? पर अर्थात् उत्कृष्ट और पर अर्थात् नियम से, ऐसे दो अर्थ किये संस्कृत में। समझ में आया?

'**परु ब्रह्मशब्दवाच्यः शुद्धात्मा। कथंभूतः। परः उत्कृष्टः। अथवा पर इति पाठे नियमेन।**' पर अर्थात् नियम से। पर प्रधान नियम से, निश्चय से। भगवान शुद्ध स्वरूप ध्रुव, वही परमेश्वर और वही तेरा परलोक है। परन्तु तुझे परलोक कब हो? कि, पर ऐसा उत्कृष्ट लोक लोकयन्ते—निर्विकल्प ज्ञान द्वारा लोक कर तो वह परलोक कहलाये तेरे लिये, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वरना तो है वह है। समझ में आया? क्या कहा? वस्तु तो है, वह है परलोक। उत्कृष्ट लोक कहो या पर अर्थात् निश्चय से लोक है, वह है। परन्तु उसे परलोकरूप से कब कहलाये? कि तू निर्विकल्प लोकयन्ते—ऐसे लोक को निर्विकल्प ज्ञान द्वारा लोक—देख तो वह परलोक कहलाता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

कहते हैं, वह परमेश्वर वास्तव में है परन्तु वह नियम से परमेश्वर का परलोकपना तेरा, परलोक पर को लोकयन्ते, अवलोकयन्ते इति परलोकः। वस्तु सर्वोत्कृष्ट निजपद परमेश्वर, वह नियम से उत्कृष्ट लोक है। उसे लोक, परलोक लोकयन्ते—अवलोकन। वर्तमान स्वसंवेदनज्ञानपर्याय द्वारा उसे अवलोकन करना, उसमें देखना, तब उसे परलोक कहा जाता है। देखो! यह बात आगे लेंगे, हों! इस चौथे गुणस्थान में है यह बात। वापस कोई ऐसा कहे (ऊपर के गुणस्थान की है, ऐसा नहीं)। इसीलिए ११०वीं गाथा में लेंगे, भाई! '**मुनिवरवृन्दानां हरिहराणां**'। वापस कोई ऐसा कहे कि, यह और ऊँची बात होगी। इसलिए दसवीं में लेंगे। मुनिवरों के समूह और इन्द्र, वासुदेव, रुद्र के मन में बसता है ऐसा परमात्मा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा कि ऐसा परमात्मा किसे अवलोकन में आवे? यह चौथे गुणस्थान में इन्द्रों को, मुनिवरों को उनके गुणस्थान प्रमाण में, वासुदेव को। समझ में आया? वासुदेव कहा न हरि। आदि... उनके मन में अर्थात् ऐसे अन्तर में अवलोकन में यह आत्मा बसता है, इसलिए उसे परलोक और परमात्मा कहा जाता है। ओहोहो! समझ में आया इसमें?

सूक्ष्म बादर एकेन्द्रियादि जीवों के शरीर में जुदा-जुदा तिष्ठता है... भगवान आत्मा तो प्रत्येक एकेन्द्रिय आदि शरीर में अलग-अलग भगवान परमेश्वर पूरा विराजता है। वे अनन्त परमेश्वर हैं। ओहोहो! **और जब कर्मों से रहित हो जाता है, तब सिद्ध कहलाता है।** सिद्ध कहलाते का अर्थ ऐसा नहीं (कि) भिन्न हैं, वे वापस एक हो जायें। ऐसा इसका अर्थ नहीं। समझ में आया? उसमें थे न कि भाई! जब कर्मसहित थे तो भिन्न-भिन्न है और कर्मरहित हो तो हो जाता है तब सिद्ध कहलाता है। इसका अर्थ कि संसारी जो कहलाता था वह सिद्ध कहलाता है, बाकी है तो भिन्न के भिन्न। समझ में आया?

ओहोहो! परमात्मप्रकाश है। अकेला परमात्मा पूर्णानन्द भगवान स्वयं परमात्मा, एक समय में पूरा प्रभु, उसका अवलोकन करना, तब उसे परलोक और उसे आत्मा जानना कहा जाता है। समझ में आया? इसमें तो ऐसा भी कहा कि शास्त्र का ज्ञान और फलाने का ज्ञान, वह इसमें कुछ काम नहीं करता। ऐई! आहाहा! शास्त्रज्ञान तो परलक्ष्यी है, वह कहीं आत्मा में काम नहीं करता। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा उस परलक्ष्यी का लक्ष्य छोड़कर स्वलक्ष्यी के लक्ष्य से स्वसंवेदनज्ञान द्वारा लक्ष्य करे, देखे तो वह निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान से उस परलोक की प्राप्ति होती है। परलोक अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त किसी उपाय से उसकी प्राप्ति दूसरी है नहीं। लोग चिल्लाहट मचाते हैं, एकान्त हो जाता है। कोई व्यवहार से प्राप्त होगा या नहीं? भक्ति, पूजा, व्रत, दान, यह सब भाव हैं, वे क्या हैं? उस भाव से कुछ न कुछ थोड़ा प्राप्त होने का सरल पड़ता होगा या नहीं? अमरचन्दजी! नहीं? तो फिर करना किसलिए? लाना किसलिए? उस भूमिका में ऐसा विकल्प होता है, वास्तव में तो कर्ता भी नहीं। करना, यह बुद्धि भी मिथ्यात्व है। तथापि वह विकल्प है, वह आत्मा को

समझने या अनुभव के लिये जरा भी सरलता करता है या हल्का हुआ, इसलिए अब उसे (प्राप्त होगा, ऐसा नहीं)। परन्तु बात आती है उसमें कि, शुभ उपयोगवाले को शुद्ध उपयोग में जाना (सरल है)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसका अभाव करता है, उससे क्या होता था? धूल होता होगा? समझ में आया? यहाँ तो एक ही बात सीधी परमात्मा परलोक स्वयं उसे लोकयन्ते—लोकने का उपाय निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान, बस एक ही बात। समझ में आया? यह तो बाहर की सिरपच्ची के कारण निवृत्त नहीं होता।

भगवान आत्मा, आहाहा! लौकिक क्रिया तो बाहर रह गयी, उसका राग शुभ रह गया, शुभ क्रिया भी कहीं रह गयी, शास्त्र का पठन कहीं रह गया। कहते हैं कि परलोक प्रभु आत्मा परमेश्वर स्वयं, हों! यह परलोक की प्राप्ति, उसकी प्राप्ति लोकयन्ते जब निर्विकल्प समाधि शान्ति द्वारा (हो), तब उस परलोक की प्राप्ति हुई, ऐसी मति, वैसी गति हो गयी उसकी। समझ में आया? फिर आगे श्लोक लेगें भाई! (जैसी) मति वैसी गति। ऐसा कि मति है अन्तर में तो गति हो गयी परमेश्वर की। समझ में आया? स्वसंवेदनज्ञान द्वारा आत्मा की प्राप्ति और पूर्ण हुआ, उसे सिद्ध कहा जाता है।

संसार-अवस्था में शक्तिरूप परमात्मा है,... देखो! सत्त्वरूप है, सत्त्वरूप है, शक्तिरूप पूरा सत्त्वरूप है। **और सिद्ध-अवस्था में व्यक्तिरूप है।** प्रगटरूप पर्यायपने, हों! पर्यायपने व्यक्ति। पर्याय सिद्ध अवस्था कही न यह। **संसार-अवस्था में...** अवस्था अर्थात् एक समय की दशा संसार अर्थात्। ऐसे यह शक्तिरूप भगवान है। सिद्ध अवस्था में वह भगवान पर्याय में व्यक्तरूप हुआ। समझ में आया? यह तो व्यवहार से कुछ लाभ न हो, ऐसा यहाँ कहते हैं। व्यवहार से पुण्य बँधता, उसमें अबन्ध परिणाम नहीं आये, ऐसा कहते हैं। निर्विकल्प जो अबन्ध परिणाम द्वारा प्राप्ति हो वर्तमान और उसका पूर्ण पद प्राप्त भी निर्विकल्प पर्याय द्वारा ही प्राप्त होता है। विकल्प आदि जो है या पर का ज्ञान है, उससे वर्तमान भी प्राप्त नहीं होता और उससे पूर्ण पर्याय को भी वह मदद करके प्राप्त नहीं होता। बीच का एक भाव रह गया, बन्ध भाव का, बस। समझ में आया? निश्चय का वेदन है, वहाँ ऐसा एक विकल्प बीच में व्यवहार एक ऐसा खड़ा हुआ, बन्धभाव

खड़ा हुआ, इतनी बात है। समझ में आया इसमें? आहाहा! परलोक कहकर ऐसा कहना चाहते हैं यह।

यह आत्मा परब्रह्म... कहा जाता है। यह आत्मा ही, हों! स्वयं वस्तु। पर्याय प्रगटरूप वह नहीं। परमब्रह्म स्वयं भगवान आत्मा है, **परमविष्णु...** परन्तु स्वयं ही आत्मा है। परम शिव निरुपद्रव कल्याण की मूर्ति पूरा अखण्ड ध्रुव स्वयं ही परम शिव है। पर्याय में वह। समझ में आया? **शक्तिरूप (स्वयं भगवान) है, और प्रगटरूप से भगवान अर्हंत अथवा मुक्ति को प्राप्त हुए सिद्धात्मा...** लो! ओहोहो! उन बिचले रागादि व्यवहार की तो बात भी कहीं नहीं की। थोड़े प्रतिशत तो दो व्यवहार को थोड़े। निकाल डालने के दिये। आहाहा! कठिन बात है जगत को। दो मार्ग कहे हैं न? निश्चयमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग। यहाँ तो व्यवहारमोक्षमार्ग, व्यवहार वह मार्ग ही नहीं, ऐसा कहते हैं। बन्धमार्ग को मोक्षमार्ग किस प्रकार कहना? कहते हैं। बात ही सम्हाली नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। शक्तिरूप की सम्हाल की दृष्टि से, ज्ञान से, बस! परलोक हो गया, पूर्ण दशा प्रगट हो गयी, उसे वर्तमान व्यक्तिरूप से परमेश्वर कहो। समझ में आया? **यह निश्चय से जानो।** है न इसमें? **'बंभु मुणेविणु जेण लहु गम्मिज्जइ परलोई।' ऐसा कहने से अन्य कोई भी कल्पना किया हुआ जगत में व्यापक परमब्रह्म, परमविष्णु, परमशिव नहीं।** तू ही स्वयं परमब्रह्म, परमविष्णु, परमशिव स्वयं अन्दर है। कहो, जमुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात् अन्ध। अन्धा कहाँ से देखे उसे? क्या कहा? यह निर्विकल्प ज्ञान, यह देखता, यह देखता ज्ञान अपने लोक को अवलोके। ओहो! क्या है कहो?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अन्धे को आँखें नहीं होती, क्या देखे वह? विकल्पात्मक जितना देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र के ज्ञान के विकल्प, बारह अंग के विकल्प, वह सब अन्ध है। वह अन्ध इसे किस प्रकार देखे? समझ में आया?

जो ज्ञानस्वरूप भगवान परमेश्वर स्वयं उसकी उसके किरण की निर्मल किरण जो जाननेवाली किरण—निर्विकल्प स्वसंवेदन, उसके द्वारा वह जाने। क्योंकि, आँख निर्मल है, वह तो अन्ध है। समझ में आया? कठिन लगता है लोगों को कठिन। व्यवहार का लोप (होता है)। व्यवहार हो तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। अब अनेकान्त आया। यह अनेकान्त ऐसा नहीं, यह निश्चय से प्राप्त हो और व्यवहार से न प्राप्त हो, इसका नाम अनेकान्त है। निश्चय से भी प्राप्त होता है और व्यवहार से भी प्राप्त होता है, यह तो एकान्त है। आहाहा! अनेकान्त और एकान्त की सब बात को बदल डाला। ऐ... न्यालभाई! आहाहा!

स्वयं ही भगवान परमब्रह्म, विष्णु, शिव है। **सारांश यह है कि जिस लोक के शिखर पर अनन्त सिद्ध विराज रहे हैं,...** देखो! अब उसे परमधाम कहेंगे। निश्चय से परमधाम असंख्यप्रदेशी स्वयं ही है। परन्तु पर्याय प्रगट हुई, **लोक के शिखर पर अनन्त सिद्ध विराज रहे हैं, वही लोक का शिखर परमधाम...** लो! भाई! उसे परमधाम कहा। अब यहाँ से उन्हें हटाना है सिद्ध को। अर्थात् ऐसा कि धर्मास्ति नहीं; इसलिए आगे नहीं जाते, ऐसा। धर्मास्ति नहीं, इसलिए आगे नहीं जाते। उन्हें आगे हटाना है। धर्मास्तिकाय नहीं इसलिए आगे खिसकते नहीं, ऐसा नहीं, भाई! तू सुन भाई! वे स्वयं वहाँ धाम विराजते हैं, अपने धाम में हैं। लोक शिखर कहना, वह तो व्यवहार। समझ में आया? स्वयं वहाँ अपने अनन्त गुण के, अनन्त परिणति के धाम में विराजते हैं, उन्हें यहाँ परमधाम कहा जाता है, उसे शिवलोक कहा जाता है, विष्णुलोक कहा जाता है, लो! उसे बैकुण्ठ कहा जाता है। आहाहा! सब उसके बहुत कहेंगे अभी। समझ में आया?

वही लोक का शिखर परमधाम ब्रह्मलोक, वही विष्णुलोक और वही शिवलोक है,... कहो, आहाहा! **अन्य कोई भी ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिवलोक नहीं है, ये सब निर्वाणक्षेत्र के नाम हैं,...** लो! यह निर्वाणक्षेत्र का नाम है। निर्वाण पूजा आती है न, निर्वाण पूजा आती है। बड़ी वृहद निर्वाण पूजा। **और ब्रह्मा, विष्णु, शिव ये सब सिद्धपरमेष्ठी के नाम हैं।** लो! यह धाम का नाम, निर्वाणक्षेत्र के नाम, ब्रह्मा, विष्णु परमेश्वर आत्मा विराजे, वह परमेष्ठी सिद्ध का नाम। **भगवान तो व्यक्तिरूप परमात्मा हैं,...** सिद्ध भगवान प्रगट पर्यायरूप से परमात्मा हुए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव वे हैं। **तथा वह**

जीव शक्तिरूप परमात्मा है,... भगवान स्वयं यह आत्मा शक्तिरूप से पूर्ण परमात्मा है। **इसमें सन्देह नहीं है।** यह पहले आ गया, यहाँ विशेष बात (करते हैं)। भ्रान्ति न कर, भ्रान्ति न कर। तेरे स्वरूप में परमेश्वरपद ही तू विराजता है, भ्रान्ति न कर। समझ में आया? यह पहले आ गया है पाठ में। **जितने भगवान के नाम हैं, उतने सब शक्तिरूप इस जीव के नाम हैं।** देखो! शक्तिरूप आत्मा को तू कहे कि शिव कहा, ब्रह्मा कहे, विष्णु कहे जो कुछ आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... **यह जीव ही शुद्धनयकर भगवान है।** लो! भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप विराजमान स्वयं ही भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... उस भगवान को भज। उस भगवान को भज, निर्विकल्प समाधि द्वारा भज। समझ में आया? उस भगवान का भजन निर्विकल्प समाधि द्वारा होता है, निर्विकल्प ज्ञान द्वारा होता है।

अब कहते हैं, देखो! यह स्थिति कहाँ हो, ऐसा जरा कहने के लिये नाम दिये हैं। कोई कहे कि और ऐसी स्थिति तो कोई आठवें गुणस्थान में हो और आगे हो और फलाना होता है और उसे ऐसा ज्ञात होता है।

★ ★ ★

गाथा - ११०

आगे ऐसा कहते हैं कि भगवान का ही नाम परलोक है—

११०) मुणि-वर-विंदहँ हरि-हरहं जो मणि णिवसइ देउ।
परहँ जि परतरु णाणमउ सो वुच्चइ पर-लोउ॥ ११०॥

'**वुच्चइ**' चाहिए साथ में। अलग कर डाला। नहीं? अलग किया है इसमें? ऐसा नहीं, '**वुच्चइ**' चाहिए। '**सो वुच्चइ पर-लोउ**' छापनेवाले को खबर नहीं होती कि यह शब्द इसका है या इसका है। वह तो अलग-अलग फिर नये में भी अलग छापा होगा, किसलिए सुधारे? **मुनिश्वरों के वृन्दों में।** देखो! सन्तों के ज्ञान में परमेश्वर विराजते हैं। सन्तों के ज्ञान में राग और व्यवहार और निमित्त विराजता नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह भगवान पूर्णानन्द सन्तों के ज्ञान में विराजता है। पंच

महाव्रत आदि विकल्प सन्तों के ज्ञान में नहीं विराजते, सन्तों के ज्ञान में परमेश्वर विराजते हैं। कहो, समझ में आया?

जिसकी सम्यग्ज्ञान पर्याय में परमात्मा विराजते हैं। इन्द्र के ज्ञान में भी परमात्मा विराजते हैं, लों! ऐसा लिया। कहो, इन्द्र तो चौथे गुणस्थान में हैं न। परन्तु उसकी ज्ञानपर्याय में भगवान परमात्मा विराजते हैं। इन्द्र का पद और राग उसके ज्ञानपद में नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह दूसरे विकल्प हैं, वे तो जानने के उसमें रह गये, उसके ज्ञानपद में तो भगवान विराजते हैं। आहाहा! सम्यग्ज्ञान की पर्याय के पद में तो परमेश्वर विराजते हैं। विकल्प आदि, व्यवहार आदि पद सब बाहर रह गया। वह तो ज्ञान जानता है इतना। ज्ञानपद में वह तो जानता है, उसके पद में वे नहीं। उसके पद में उन सम्बन्ध का ज्ञान और आत्मा उसमें—ज्ञानपद में विराजता है। समझ में आया? इन्द्र के ज्ञानपद में परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! कहते हैं न कि, बड़ी इतनी इन्द्राणियाँ और बत्तीस लाख विमान और... समझ में आया? नहीं, उसके ज्ञान में वे स्थापित नहीं। वह ज्ञान उन्हें जाने भले, परन्तु स्थापित नहीं। ज्ञान में स्थापित भगवान आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि सम्यग्ज्ञानी को ज्ञान में परमात्मा विराजता है, ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा!

परमात्मप्रकाश है न। ऐसी ढंग से बात ली है न! सम्यग्ज्ञान, मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान में परमेश्वर यह है, ऐसा विराजता है। उसका लक्ष्य वहाँ है, वह उसमें विराजता है। मति-श्रुतज्ञान में राग, व्यवहार, निमित्त उसके ज्ञान में है ही नहीं। आहाहा! दूसरे ढंग से बात की है यह। इसका अर्थ कि व्यवहार विकल्प आदि का ज्ञान वर्ते, उस सम्बन्धी का ज्ञान, परन्तु ज्ञान तो अपना है उस सम्बन्धी का। समझ में आया? उस सम्बन्धी का ज्ञान तो अपना है। उस ज्ञानपद में परमेश्वर विराजते हैं। ज्ञानपद में रागादि विराजते नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! समझ में आया? लो, वे कहे, मुनि पंच महाव्रत पाले। ऐई! कहाँ गया उसमें? पाँच महाव्रत पाले, श्रावक बारह व्रत पाले, उसकी ऐसी प्रतिमायें पाले। ऐई! अमरचन्दजी! उसे ऐसा विकल्प हो और ऐसा पाले। यहाँ कहते हैं कि पाले परमात्मा को। ज्ञान में—सम्यग्ज्ञान में परमेश्वर बसा है। समझ में आया? एक म्यान में दो बसते नहीं। भले हो साथ में, परन्तु बसा है ज्ञान में, उस सम्बन्धी का ज्ञान

और यह आत्मा उसमें। समझ में आया? आहाहा! समझ में आता है? जुगराजजी!

मुमुक्षु : राग का स्वामी नहीं होता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामी नहीं। स्वामी तो नहीं, राग का स्वामी नहीं, राग ज्ञान में विराजता ही नहीं। ज्ञान में परमेश्वर विराजता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और पूरी चीज़, परन्तु यह वर्तमान ज्ञान की पर्याय में (परमेश्वर) विराजता है, ऐसा यहाँ कहना है। यहाँ तो स्वसंवेदनज्ञान में ऐसा कहना है न, उसके मन में कहना है न, मन शब्द से यहाँ निर्विकल्प ज्ञान लेना है। स्वयं पूरा स्वरूप है वह अलग, यहाँ तो उसकी पर्याय में, मन में शब्द पड़ा है न, देखो! **चित्त में बस रहा है,...** अर्थात् मतिज्ञान स्वसंवेदनज्ञान में भगवान बसता है, ऐसा। पूर्ण स्वरूप ज्ञान में बसता है। समझ में आया?

वह पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप है, वह तो ध्रुवस्वरूप है, परन्तु कहते हैं, यहाँ लोकयन्ति से लेना है न। परलोक शब्द पड़ा है न। ...लोकयन्ते—लोकता है—जो पर्याय देखती है, उसमें वे पर बसता है, परमेश्वर बसा है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान की वर्तमान पर्याय है, उसे अवलोकन करनेवाली, अवलोकन करनेवाली। परलोक है न। लेंगे अन्दर, कहाँ आया? आया न वह, उसमें ही आयेगा देखो यह, इसमें ही आयेगा। **लोक, अवलोकन निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना...** यह परलोक, इसमें टीका में आयेगा। समझ में आया? भाई! यह तो ऐसी बात है, मूल मुद्दे की रकम की बात है। भगवान आत्मा ऐसे परमेश्वर पूरा अन्तर के मतिज्ञान की पर्याय, श्रुतज्ञान की पर्याय, उस द्वारा अवलोकन किया तो उस पर्याय में परमेश्वर ही बसता है। विकल्प आदि उस पर्याय में बसते ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारा परमेश्वर कहाँ खो गया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं खो गया है। ऐसा का ऐसा है, परन्तु नजर नहीं करता न, ऐसा कहते हैं। क्या? नळिया तो ऐसे हुए सोने के, परन्तु आँख मींचकर (कहे) कहाँ गये सोने के नळिया? दिखते नहीं। परन्तु आँख उघाड़, तब दिखाई दे न,

ऐसा कहते हैं। यहाँ लोक, परलोक की बात चलती है। उत्कृष्ट भगवान परन्तु लोकयन्ते अवलोकन कर तो दिखाई दे न! अवलोकन किये बिना किस प्रकार दिखाई दे? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... उघाड़ता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उघाड़ता नहीं, उघड़ती नहीं क्या? उघाड़ता तो है परन्तु पर को देखने के लिये उघाड़ी है। परमेश्वर को देखने के लिये कहाँ उघाड़ी है इसने। समझ में आया? ज्ञान का क्षयोपशम राग को और पर को, उसे देखने में अटक गया है। वह अपने परमेश्वर को देखता ही नहीं, वह तो। पामरता को, विकार को, निमित्त को देखे वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं। समझ में आया? जो ज्ञान की पर्याय पामरता को, अल्पज्ञता को, राग को, निमित्त को देखती है, वह पर्याय आत्मा की पर्याय नहीं, वह तो पामर पर्याय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो! जो पर्याय लोकयन्ते—वस्तु को अवलोके। समझ में आया? भगवान आत्मा परमेश्वरपद स्वयं पूरा। ज्ञान का पिण्ड कहो, अनन्त गुण का एकरूप कहो। उसे जो ज्ञान पर्याय अवलोके, उस पर्याय को लोक (देख), वह लोक उसे इसने अवलोकन किया। यह नेत्र द्वारा भगवान नेत्र में बसे हैं। इस ज्ञान की पर्याय में भगवान बसा है। है पर्याय, बसा भगवान। आहाहा! जो पर्याय ज्ञान की, उसमें राग, पुण्य, दया, दान विकल्प बसे हैं, वह पर्याय आत्मा की नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसमें भगवान बसे, उस पर्याय को पर्याय—अवलोकन पर्याय कहते हैं। आहाहा! यह पूरी पद्धति ही अलग प्रकार की है। समझ में आया?

परमेश्वर पूरा भगवान आत्मा है, एक-एक, एक अंश में (भी) खण्ड नहीं। ऐसा भगवान अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु अनन्त केवलज्ञान की राशियाँ प्रगटे, अनन्त राशि ढ़ेर प्रगटे, उसका पिण्ड अकेला तत्त्व है। उस सम्यग्ज्ञान के, शुद्ध ज्ञान के, मतिज्ञान के अवलोकन द्वारा अवलोकन हो सकता है। उस निर्विकल्प शान्ति और ज्ञान द्वारा अवलोकन (हो सकता है)। यह चौथे गुणस्थान से बात है, हों! इसीलिए तो यहाँ मुनिवर और इन्द्र दो लिये हैं। और किसी को ऐसा हो जाये कि ऐसा कहाँ होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा किसका था? कीर्ति दुनिया में कहाँ थी यहाँ, उसकी कीर्ति दुनिया में कहाँ थी? आहाहा! समझ में आया? जिसे अपना ही आत्मा मति-श्रुतज्ञान की पर्याय द्वारा अवलोके, परमेश्वर जहाँ विराजे, उसे दूसरे को कहने का कहाँ रहा कि मैं कुछ हूँ? मैं कुछ हूँ, यह तो तेरे ज्ञान में तुझे ज्ञात हुआ, अब पर को कहाँ जनवाने का रहा इसे? समझ में आया? मुझे कोई माने तो ठीक तो ठीक, ऐसा कहाँ इसमें? स्वयं जहाँ मति-श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को बसाया है, अब उसे परमेश्वर की भेंट हुई उसे दूसरे से क्या लेना है उसको? दुनिया मुझे जाने, दुनिया मुझे ठीक कहे तो मुझे ठीक (पड़े)। तो वह तो मूढ़ हो गया। न्यालभाई! आहाहा! समझ में आया? जिसे मति और श्रुतज्ञान में परमेश्वर बसे, ऐसी चीज़ तो बाहर है नहीं। अब कहीं उसे बसानी है? किससे उसे अधिकपना लेना है कि भाई मैं बढ़ा हुआ, यह तुमको समझाऊँ, इसलिए बड़ा, मैंने तुमको आमद कहा, इसलिए गुरुरूप से स्वीकार करो तो मैं बड़ा। मूढ़ है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो परलोक शब्द की व्याख्या में लोकयन्ते दशा में प्रभु आये। ... तेरी मति हो गयी वहाँ, गति हो गयी वहाँ, हो जायेगा परमात्मा, व्यक्तरूप से परमात्मा हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। राग में और विकल्प में तेरा बसना ही नहीं। जहाँ बसा है, वहाँ परमेश्वर बसाये हैं। जा, पूरा हो गया। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है, हों! झवेरभाई! बहुत सूक्ष्म भाई! मुश्किल-मुश्किल से सुनने कभी आवे, उसमें ऐसा आवे वापस। बालुभाई के भाई हैं, बड़े भाई। बालुभाई गुजर गये न। क्यों प्रफुल्लभाई! आहाहा! यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में यह स्वरूप आया है। इन्दों के समक्ष में समवसरण के मध्य में भगवान की वाणी ऐसा फरमाती थी। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, जिसने इन्द्र... देखो! यहाँ तो इस प्रकार से भाई! वे दृष्टान्त दिये न इन्द्र, वासुदेव, उनकी पदवी-पदवी से इसकी महत्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। इन्द्र के पद बड़े, बत्तीस लाख विमान, करोड़ों अप्सरायें। धूल गयी, वह तो बाहर गयी। बड़े असंख्य देव माने गद्दी पर बैठा हो तो। असंख्य देव होते हैं न। बत्तीस लाख विमान, एक-एक विमान असंख्य देव का है। ... असंख्य। खम्मा अन्नदाता! वह कहे कि, मेरे ज्ञान में परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं बस सकता अब। दूसरे से महत्ता-बहत्ता मुझे

भासित नहीं होती। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो जरा सा जहाँ दो-चार शब्द आये, फलाना आया या यह आया या यह आया तो लोग कहे मानने लगे। अपने कुछ अब बाहर आये, हों! प्रसिद्ध तो हुए थोड़े। तू प्रसिद्ध किसका हुआ? किस प्रकार? वह तो राग पुण्य और बाहर की प्रसिद्धि है, उसमें आत्मा की कहाँ आयी? समझ में आया?

कहते हैं, अहो! यह भगवान आत्मा **मुनिश्वरों के समूह के तथा इन्द्र वा वासुदेव रुद्रों के चित्त में बस रहा है, वह उत्कृष्ट से भी उत्कृष्ट ज्ञानमयी परलोक कहा जाता है।** लो! आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- परलोक शब्द का अर्थ ऐसा है कि पर अर्थात् उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव आत्मा... अब लोक की व्याख्या करेंगे जरा। परलोक शब्द है न भाई दो। पर उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव भगवान स्वयं निर्दोष। यह वीतराग शब्द लिया है अर्थात् पर्यायवाचक शब्द नहीं यह। यह वीतराग अर्थात् राग और विकाररहित अकेला तत्त्व जो निर्दोष तत्त्व अखण्डानन्द, वह वीतरागस्वरूप ही वस्तु है। वस्तु स्वयं वीतराग त्रिकाल वस्तु वीतरागस्वरूप ही त्रिकाल है। वीतराग चिदानन्द अकेला ज्ञान और आनन्द का पूर है, ऐसा शुद्धस्वभाव, ऐसा आत्मा।

उसका लोक... पर उसका लोक, पर उसका लोक, पर वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव आत्मा, वह पर। **लोक अर्थात् अवलोकन निर्विकल्पसमाधि में...** अवलोकन। वह तो अकेला परलोक ऐसा नहीं लेना, भाई! उसकी पर्यायकाल में अवलोके तो उसे परलोक हुआ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। नहीं तो परलोक तो है, वह है। हर समय आता है न कि, उस काल में आत्मा जाना जाये, काल में आत्मा (जाना जाये), ऐसा करके यहाँ बात लेते हैं। भगवान आत्मा पर—वीतराग चिदानन्द उत्कृष्ट स्वभावस्वरूप प्रभु स्वयं। वह तो पर की व्याख्या है। लोक अर्थात् अवलोकन... अवलोकन... अवलोकन... निश्चय अवलोकन, निश्चय अवलोकन, कैसा? किस प्रकार से?

निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना... रागरहित स्वसंवेदनज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा को अनुभव करना, इसका नाम परलोक कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! यह कहीं, कहीं से मिले ऐसा नहीं और कहीं आत्मा का स्वरूप है, वह कहीं चला गया

नहीं। मात्र उसकी मति और श्रुतज्ञान की निर्मलता द्वारा वह अवलोकन होता है। विकल्प नहीं, पर से नहीं, अपने ज्ञान से (अवलोकन होता है)। समझ में आया इसमें? अवलोकन, समझ में आया? '**लोकोऽवलोकनं**' है न शब्द संस्कृत में है। '**निर्विकल्प-समाधौ वानुभवनमिति परलोकशब्दस्यार्थः**' आहाहा! कहो, समझ में आया? जमुभाई! वह पर भगवान आत्मा। लोक उसे कैसे कहना? उसे परलोके लोकयन्ते—अवलोकन करे निर्विकल्प ज्ञान द्वारा। यह चौथे गुणस्थान से बात है, हों! यह सब इसलिए इन्द्र और वासुदेव लिये हैं। मुनिश्वरों को पहले लिया, मुनिश्वरों को पहले लिया। महा मुनि को विशेष स्थिरता है। चौथे गुणस्थान में देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह उसका धर्मध्यान। गप्प ही गप्प। कुकर्म कर डाले हैं न। ऐसे वीतरागमार्ग को उखाड़कर ऐसे बदल डाला, ऐसे बदल डाला पूरा। अलग करते हैं, भाई! उसकी पर्याय की इतनी योग्यता है, वहाँ वह होता है। उसे तो उसके आत्मा को तो कुछ माने, वह चाहे जिस प्रकार से, परन्तु दुःखरूप है न, वस्तु तो दुःखरूप है न। वह दुःखरूप है। उसे कहाँ... जो अवस्था विरुद्ध करती है, वह तो आत्मा को दुःखरूप है, दुःखरूप की तो किस प्रकार से उसका तिरस्कार हो? दया हो। आहाहा!

अरे! भगवान! ऐसा भगवान विराजता है प्रभु, उसे अन्दर अवलोकन की पर्याय द्वारा निर्विकल्प पर्याय द्वारा अवलोकन किया जाता है। उसे तू शुभ—अकेले शुभराग से धर्मध्यान हो, शुभराग से आत्मा ज्ञात हो और ध्यान होगा? बहुत उल्टा भाई! यह आत्मा का बहुत अनादर हो जाता है। ऐसा आत्मा महान प्रभु, वह उसकी निर्मल पर्याय द्वारा ज्ञात होता है। उसे शुभभाव से ही उसकी प्राप्ति हो सम्यग्दर्शन की, ऐसी बात तो बहुत उल्टी है। ऐसे अपनी दृष्टि को अन्दर नुकसान है, वह नुकसानरूप नुकसान वेदे, उसका ऐसे अपने तिरस्कार हो नहीं। किसी व्यक्ति के लिये बात नहीं है, यह तो वस्तु की स्थिति बतलानी होती है। समझ में आया? कि भाई! मुनिपना ऐसा होगा या ऐसा (होगा)। ऐसा बतलाने पर, कोई मुनि नहीं उसे दुःख हो, इसके लिये यह बात नहीं, भाई! समझ में आया? इसके लिये बात नहीं। क्योंकि जिसे अपनी दृष्टि की विपरीतता से अन्दर आकुलता वेदन में आ रही है, इसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया? अब उस आकुलतावाले को ऐसा कहे कि अरे! तू ऐसा खोटा। भाई! समझाने की पद्धति

कोई दूसरी है, समझ। दूसरा क्या हो? समझ में आया? श्रीमद् कहते हैं न, देखो न, 'कोई क्रिया जड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, माने मार्ग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' जुगराजजी! अरेरे! यह क्या करते हैं? अरे! भाई! तू दुःख के पंथ में पड़ा और तू सुख के पंथ में हूँ, (ऐसा मानता है), भाई! यह रास्ता ऐसा नहीं होता, बापू! समझ में आया? भाई! किसी व्यक्ति का अनादर करने का भाव होता नहीं, बापू! यह कहे, निन्दा करते हैं। बापू! निन्दा किसकी करे? समझ में आया? भगवान ऐसा स्वभाव परमेश्वर ने विराजमान है, उसका आदर करने की दृष्टि और ज्ञान है, उसे तू पहचानता नहीं। समझ में आया? और दूसरे प्रकार से माने, वह नुकसान स्वयं अपना करता है। कौन किसे नुकसान करे? कौन किससे नाश हो? कौन किससे निन्दित हो? कौन किसकी निन्दा करे, नहीं आता? योगसार में नहीं आता? कौन करे? भाई! कौन किसे पूजे? बापू!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! आहाहा! विष्णु अथवा हरिहर अथवा ब्रह्मा इन्द्र जिसके ज्ञान में प्रभु विराजता है, उसे परलोक कहते हैं, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं, बाकी तो वस्तु न जाने, उसके मिथ्याज्ञान द्वारा आत्मा जाना और आत्मा प्राप्त होगा, उसे तो नुकसान होगा, विशेष निगोद की दशा की प्राप्ति है। इसे सिद्ध की प्राप्ति है। यह तो उसके परिणाम प्रमाण फल है। इसलिए किसी के ऊपर उसे तिरस्कार करने का नहीं हो सकता। वस्तुस्थिति ऐसी है, उसे जानो—ऐसा यहाँ आचार्यदेव परमात्मप्रकाश में फरमाते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण १, गुरुवार, दिनांक - ०९-१२-१९६५
गाथा - ११० से ११२ प्रवचन - ७१

परमात्मप्रकाश, ११० गाथा पहले भाग की है। इसका भावार्थ। परलोक किसे कहना परलोक? परलोक अर्थात् प्रधान लोक, उत्कृष्ट लोक। **परलोक शब्द का अर्थ ऐसा है कि पर अर्थात् उत्कृष्ट वीतराग चिदानन्द शुद्ध स्वभाव आत्मा...** देखो! आत्मा की व्याख्या। पर, पर, पर। पर अर्थात् उत्कृष्ट, रागरहित ज्ञानानन्द शुद्ध स्वभाव त्रिकाल शुद्ध स्वभाव ऐसा आत्मा, उस आत्मा को यहाँ पर कहा गया है। समझ में आया? **लोक अर्थात् अवलोकन निर्विकल्पसमाधि में अनुभवना, वह परलोक है।** लो। भगवान आत्मा वीतराग चिदानन्दस्वरूप त्रिकाल शुद्धस्वभाव, वह तो वस्तु त्रिकाल, उसे वर्तमान में पुण्य-पाप के मन के संग विकल्प बिना अन्तर्मुख की दृष्टि और रागरहित निर्विकल्प दृष्टि और शान्ति, अनन्तानुबन्धी आदि रहित ऐसी शान्ति और दृष्टिसहित वह लोक-अवलोक, उस द्वारा पर को (उत्कृष्ट को) अवलोकना, उसे परलोक कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वरूप की पूरी कातली वज्र की मूर्ति प्रभु, उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्शान्ति—चारित्र, उसे यहाँ निर्विकल्प समाधि कहा गया है। शान्ति, वस्तु शान्तस्वरूप आनन्द वीतराग चिदानन्द समाधिस्वरूप ही आत्मा है। वस्तुरूप से समाधि वीतराग समाधिस्वरूप है, ऐसा कहा था न! वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव, वह समाधिस्वरूप ही है। शान्त आनन्द, शान्त अकषायस्वभाव भगवान आत्मा को अकषाय दृष्टि, ज्ञान की परिणति द्वारा अवलोकना, पर यह आत्मा उसे लोकना—अवलोकना, उसे परलोक कहा जाता है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर अर्थात् उत्कृष्ट यहाँ, पर की व्याख्या दूसरी है यहाँ। पर अर्थात् उत्कृष्ट, ऊँचा ऐसा भगवान आत्मा अपना स्वरूप, वह पर। उसे अवलोकना

निर्विकल्प दृष्टि—ज्ञान की शान्ति द्वारा, उसका नाम लोक, परलोक। पर को अवलोकना वह परलोक कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह निर्विकल्प शान्ति, इसका नाम धर्म, यह लोक। उसको पर, उसको अवलोकना लोक अर्थात् अवलोकना। पर्याय द्वारा पर को अवलोकना, ऐसे दो होकर परलोक। समझ में आया? यह तो दूसरे प्रकार से पूरी व्याख्या है न!

परमात्मप्रकाश है। परमात्मा स्वयं वस्तु... वस्तु... वस्तु शक्तिरूप परमात्मा अकेला शान्त अनाकुल समाधि का, वीतरागी निर्दोष समाधि का पिण्ड आत्मा है। वस्तु पर—उत्कृष्ट, उसे निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और शान्ति द्वारा, दृष्टि, ज्ञान और शान्ति द्वारा अन्तर का अनुभव करना, अवलोकना, उस जीव को परलोक कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बाकी सब नीचा लोक, ऐसा। राग-द्वेष को अवलोकना और पर को अवलोकना, वह सब नीचा। इसे अवलोकना, वह उत्कृष्ट लोक कहा जाता है। आहाहा! रचना देखो न! समझ में आया? राग-द्वेष आदि बाह्य ज्ञान में ज्ञात हो, वह कहीं परलोक नहीं। इस ज्ञान में साधारण अवस्था आदि ज्ञात हो। परलोक तो यह आत्मा का उत्कृष्ट लोक। भगवान एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण वीतराग चिदानन्द शुद्धस्वभाव वस्तु आत्मा को अवलोकना। अन्तर निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान और अनन्तानुबन्धी आदि कषाय बिना, शान्ति द्वारा उसे अनुभव करना, अवलोकना, उसका नाम परलोक कहा जाता है। ओहोहो! यह व्याख्या भी अलग प्रकार की! कहो, समझ में आया इसमें?

अथवा जिसके परमात्मस्वरूप में या केवलज्ञान में जीवादि पदार्थ देखे जावें,... जिसमें जीवादि पदार्थ केवलज्ञान में दिखते हैं। **इसलिए उस परमात्मा का नाम परलोक है।** उस केवलज्ञान में लोका जाता है—देखा जाता है लोकालोक दूसरा। केवलज्ञान में लोकालोक अवलोका जाता है, अवलोका जाता है, इसलिए परमात्मा केवलज्ञानी को भी परलोक कहा जाता है। समझ में आया? **अथवा व्यवहारनयकर स्वर्ग-मोक्ष को परलोक कहते हैं।** यह बात साधारण डाली है अन्दर। परन्तु **स्वर्ग और मोक्ष का कारण भगवान का धर्म है,...** भगवान का धर्म। उन्होंने कहा है भगवान ने पूर्णानन्दस्वरूप का अनुभव वह मोक्ष का कारण, बीच में जरा राग व्यवहार बाकी रहे, वह स्वर्ग का कारण।

इसलिए केवली भगवान को परलोक कहते हैं। केवली भगवान को ही परलोक कहा जाता है। समझ में आया? उसमें दूसरे पदार्थ ज्ञात होते हैं, इसलिए परलोक अथवा वह भगवान का धर्म स्वर्ग और मोक्ष का कारण, इसलिए केवली भगवान को परलोक कहा जाता है।

परमात्मा के समान अपना निज आत्मा है, वही परलोक है,... यहाँ अन्तिम उतारा है। अन्दर में परमात्मा, वही उपादेय। इसके बाद आया न परलोक शब्द वाच्य। परलोक शब्द वाच्य अपना आत्मा आया, केवलज्ञान आया सब आया। अन्त में **परमात्मा के समान अपना निज आत्मा है,...** वही ध्यान करनेयोग्य, वही परलोक और उपादेय है, बाकी कुछ आदर करनेयोग्य नहीं। ओहोहो! यह राजपाट और धन्धा कब करना? यह तो कहते हैं कि विकल्प आदि भाव है, वह तो पाप है, सब बन्धन का कारण है। आर्त—रौद्रध्यान है। कहेंगे आगे। समझ में आया? वह तो दीर्घ संसार का कारण है। यहाँ तो मुक्ति का कारण हो, ऐसा आत्मा, उसे अन्तर में दृष्टि, ज्ञान, शान्ति से अवलोकना, वही परलोक और इससे वह आत्मा ही स्वयं उपादेय है। व्यवहार विकल्प आदि वे कुछ आदर करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? ११० हुई। १११।

★ ★ ★

गाथा - १११

१११) सो पर वुच्चइ लोउ परु जसु मइ तित्थु वसेइ।
जहिँ मइ तहिँ गइ जीवहँ जि णियमेँ जेण हवेइ॥ १११॥

वही ज्ञानी जीव परलोक है—ऐसा कहेंगे अब। ज्ञानी जीव ही परलोक है।

अन्वयार्थ :- जिस भव्य जीव की बुद्धि... जो भव्य अर्थात् योग्य पात्र जीव की बुद्धि। मति है न, मति। लोग नहीं कहते? जैसी मति, वैसी गति, कहते हैं या नहीं? वह यहाँ आचार्य ने आत्मा में घटित किया है। समझ में आया? **जिस भव्य जीव की बुद्धि उस निज आत्मस्वरूप में बस रही है,...** जिसकी मति स्वरूप शुद्ध चिदानन्द में बसती है। **अर्थात् विषय-कषाय-विकल्प-जाल के त्याग से...** शुभाशुभ विकल्प की जाल,

विषय-कषाय के त्याग से, **स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूपकर स्थिर हो रही है।** विकल्प का अभाव और स्वसंवेदन का सद्भाव, ऐसी दो बातें करते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप से विराजमान परमानन्द की मूर्ति में जिसकी बुद्धि **स्वसंवेदन-ज्ञानस्वरूपकर स्थिर हो रही है।** स्वसंवेदन आत्मा का ज्ञान होकर उसमें स्थिर हुई है, उसे विषय-कषाय का त्याग हो गया है पर्याय में। शुभाशुभ विकल्प की रुचि, परिणति का लक्ष्य छोड़कर त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव भगवान परमानन्दस्वरूप की अन्तर में दृष्टि में, मति में स्थिर करके स्वसंवेदन से स्थिर हुआ है। **वह पुरुष निश्चयनयकर उत्कृष्ट जन कहा जाता है।** वही परलोक है और वही ज्ञानी जीव उत्कृष्ट जन कहलाता है। उसे ऊँचा आत्मा कहा जाता है, वह बड़ा आत्मा कहे न, बड़ा मनुष्य, वह यही कहते हैं। बड़ा जन वही है। बड़ा जन वह है कि, जिसने भगवान आत्मा में—पूर्णानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की पूर्ण आनन्दमूर्ति में—जिसने निर्विकल्प मति को स्थापित किया है, वह ज्ञानी जीव ही परलोक है, ऐसा यहाँ कहते हैं। अर्थात् कि प्रधान लोक है अर्थात् कि जगत में प्रधान जीव है, वह प्रधान मुख्य जन है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जेचन्दभाई! यह सब पैसेवाले बड़े कहलाये और फलाना बड़े कहलाये, ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। लोक को इनकार कराने के लिये तो यह बात है। लोक को इनकार करे नहीं। इनकार कर, उसमें कुछ है नहीं।

भगवान आत्मा परमेश्वरस्वरूप ही अपना है साक्षात् शक्तिरूप से। उसमें वर्तमान विकल्प शुभाशुभ का भाव छोड़कर शुद्ध परिणतिरूप निर्विकल्प शान्ति प्रगट करके उसमें जो बसते हैं, उन ज्ञानीजन को जन, उत्कृष्ट जन, परलोक, उत्कृष्ट मनुष्य कहा जाता है। आहाहा! यह सब बड़े सेठिया और यह बड़े कहलाते हैं न यह प्रमुख न, क्या कहलाते हैं तुम्हारे बड़े-बड़े? प्रधान और नेता और... उनकी कीमत शून्य की। हो नहीं एकड़ा। शून्य का शून्य अलग हो और एकड़ा का शून्य अलग होता है। समझ में आया? शून्य का शून्य गोल अकेला गोल चक्र हो और एकड़ा का जरा ऐसा करके ऐसा होता।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु पूर्ण स्वरूप से शान्तरस से भरपूर पूरा तत्त्व छलाछल वीतरागभाव से भरपूर आत्मा है। उसे जिसने मति में स्थापित किया, मति उसमें स्थापित की है, उसमें जिसने मति को स्थापित किया है, मति अर्थात्

निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान द्वारा उसमें स्थापित की है, वह जीव ज्ञानीजन, परलोक और उत्कृष्ट जन कहा जाता है। वह बड़ा मनुष्य कहा जाता है, वह महात्मा कहा जाता है, वह बड़ा परलोक कहा जाता है। आहाहा! कठिन भाई! समझ में आया? कहते हैं कि, बड़ा चक्रवर्ती हो तो भी वह महाजन नहीं। महाजन, ओहो! महाजन आता है न? महाजन नहीं आता? उसमें आता है महाजन। १७२ में आता है न? १७२ में आता है। वीतरागभाव में महाजन ऐसा करे, ऐसा आता है। यह बात तो (संवत्) १९८५ में कही थी, वीरजीभाई को। चौदह बोल में। महाजन। वह और याद आया। (संवत्) १९८५ में चर्चा हुई थी, लाठी। वीरजीभाई कहे, हे महाजन! उनको सम्बोधते। यह महाजन है न। महाजन कहलाता है न, महाजन।

यहाँ कहते हैं, वह महाजन तो उसे कहते हैं... समझ में आया? महाजन... महाजन... महाजन उसे कहते हैं कि जो वस्तुस्वरूप अखण्ड आनन्द में जिसने मति को स्थापित की स्थिर होकर, उसे महाजन कहा जाता है। ज्ञानी को महाजन कहा जाता है, बाकी सब महाजन कहलाते नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? पर्यूषण में सब इकट्ठे हों न, इकट्ठे बड़े, फिर विवाद करे कि उसने ऐसा किया, ऐसा करना, ऐसा करना। सामने पड़ने (प्रसिद्ध होने) के लिये जरा दो, चार फिर... वे सामने पड़े। ऐई! पर्यूषण में तुम्हारे हुआ होगा न कलकत्ता में भी। सब हो न सब जगह। सामने पड़े। मुश्किल से आठ दिन बारह महीने में सामने पड़ने का समय हो अधिक लोगों के बीच। उसका ऐसा हो, उसका ऐसा हो, फलाना हो। यह भी बड़े थे न, इनके गाँव प्रमाण। उसके प्रमाण में यह बड़े थे न वहाँ। सबको सामने पड़कर हमारा कुछ है सत्ताप्रिय, ऐसा बताकर बारह महीने के योगफल में पर्यूषण में अधिक है, इतना बतलाना है। कुछ न कुछ निकाले। पैसे कितने भरे? फलाना क्या किया? सच्ची बात है। मलूकचन्दभाई! सच्ची बात है? आगे पड़ने के लिये। कहते हैं, यह महाजन नहीं। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आगे पड़ा आत्मा के स्वभाव में, उसे महाजन कहा जाता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! कितने पैसे भरे तूने? वह कहे, दो सौ भरे। हमने दो हजार भरे। देखो! पहली कुर्सी हमारी होगी। ठीक।

यहाँ कहते हैं कि पहली कुर्सी उसकी है कि जो आत्मा के चिदानन्दस्वरूप में

निर्विकल्प दृष्टि से स्थिर होता है, मति को स्थापित करता है, उसे पहली कुर्सी मिलती है। उसे महाजन और परलोक कहा जाता है। आहाहा! ग्यारह अंग का पठन और नौ पूर्व का पढ़नेवाला भी, कहते हैं कि महाजन नहीं कहलाता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? नौ पूर्व पढ़ा हो, ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व की धारणा की हो, ग्यारह अंग की, वह महाजन नहीं। जमुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने की कहेंगे अभी। जीव शब्द पड़ा है न? '**जीवहँ**' इसमें बहुवचन निकालेंगे। मति वैसी गति अर्थात् दो प्रकार की गति। एक को ऐसे जाये, उसे यह गति और ऐसे जाये उसे संसार की भटकने की गति। यह निकालेंगे इसमें से। मति वैसी गति शब्द पड़ा है न और '**जीवहँ**' शब्द है न, उसमें से बहुवचन निकालेंगे। समझ में आया?

उत्कृष्ट जन कहा जाता है अर्थात् जिसकी बुद्धि निजस्वरूप में ठहर रही है, वह उत्तम जन है,... वह ज्ञानी ही उत्तम जन है। ज्ञानी भी ऐसा। ग्यारह अंग और (नौ) पूर्व पढ़ा हुआ, वह नहीं। दुनिया में प्रसिद्धि प्राप्त हो, दुनिया मानती हो, लाखों, करोड़ों में प्रसिद्ध हो... ओहोहो! महा महात्मा कहलाये। लो! समझ में आया? कहते हैं, वह महात्मा नहीं, वह महा आत्मा महाजन नहीं, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! भाई! वह तो बड़ा मनुष्य है। नहीं कहते? बड़ा मनुष्य है, भाई! वह तो बड़ा मनुष्य, बड़ा राजा मनुष्य कहलाये। ऐसा कहकर फिर मूर्ख कहलाये वापस। बेवकूफ कहना हो तो राजा मनुष्य कहे। परन्तु वह तो बड़ा मनुष्य हो तो ऐसा कहे, वह तो बड़ा मनुष्य है। उसकी सब बातें भी बड़ी होती हैं। पागल का बड़ा है, कहते हैं यह।

बड़ा तो उसे कहते हैं कि, **क्योंकि...** कारण देते हैं। उसे बड़ा क्यों कहना? **जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही जीव की गति निश्चयकर होती है,...** ऐसा। जैसी जिसकी मति, वैसी उसकी गति। इसलिए जिसकी मति ज्ञानानन्द शुद्ध द्रव्यस्वभाव वस्तु में मति स्थिर है, उसकी वैसी गति परमात्मपद प्राप्त होगा, इसलिए उसे महाजन और महा उत्तम पुरुष कहा जाता है। आहाहा! कथन पद्धति परमात्मप्रकाश की... समझ में आया? **वैसी ही जीव की गति निश्चयकर होती है, ऐसा जिनवर देव ने कहा है।** सर्वज्ञ

परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। ओहोहो! करोड़ों का माननेवाला, करोड़ों का मालिक, मालवा का धनी नहीं कहते कुछ यह? भाई! करोड़ों मालवा का क्या? ... समझे न? गरीब का मालवा, ऐसा कहते हैं। गरीब का मालवा, ऐसा कहते हैं। बहुत पैसा-बैसा देता हो और बहुत वह करता हो, दवा-बवा कराता हो तो (ऐसा कहे), यह तो गरीब का मालवा है, बापू! यह कहते हैं, गरीब का मालवा भटकनेवाला है। उसकी मति है राग और द्वेष में। समझ में आया? कहेंगे अर्थ में। पुण्य और पाप के विकल्प में जिसकी मति चिपटी है, वे सब दीर्घ संसारी जीव जहाँ मति वहाँ गति। समझ में आया? आहाहा! वह शुभ और अशुभराग में जिसकी मति चिपटी है, वह शुभराग में जिसकी मति चिपटी है, वह मति वैसी गति, उसकी विकारी के फलरूप से उसे चार गति में दीर्घ संसार भटकने की गति मिलेगी। समझ में आया? आहाहा! किस ढंग से बात करते हैं न!

अर्थात् शुद्धात्मस्वरूप में जिस जीव की बुद्धि होवे, उसको वैसी ही गति होती है,... लो! **जिन जीवों का मन निज-वस्तु में है, उनको निज-पद की प्राप्ति होती है,...** देखो! भगवान ज्ञानानन्द निर्विकल्पस्वभाव आत्मा का, उसमें जिसका मन लगा है, चित्त लगा है, मति लगी है, दृष्टि लगी है, उसे परमात्मपद की प्राप्ति होगी ही। मति वैसी गति। कहो, समझ में आया इसमें? **इसमें सन्देह नहीं है।** आहाहा! वे दो शब्द निकाले हैं न। '**जीव-जीवस्यैव अथवा बहुवचनपक्षे जीवानामेव निश्चयेन भवतीति।**' ऐसा। संस्कृत में। मति वैसी गति के दो अर्थ निकाले। एक मति वैसी गति ऐसा और एक मति वैसी गति ऐसे उल्टी। संस्कृत में है, इसलिए निकालते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- जो आर्तध्यान रौद्रध्यान की आधीनता से अपने शुद्धात्मा की भावना से रहित... अर्थात् जिसकी मति पुण्य-पाप के विकल्प के राग में मति स्थापित है, पर्याय विकृत भाव, पुण्य-पाप का भाव, उसमें जिसने मति स्थापित की है, वह आर्त-रौद्रध्यानवाला जीव, उसे **आधीनता से अपने शुद्धात्मा की भावना से रहित...** वह तो उसकी भावना करनेवाला है। पुण्य बढ़े, पाप बढ़े, पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... पुण्य-पाप... विकार की वृत्ति के ऊपर उसकी दृष्टि है। समझ में आया? जिसकी मति पुण्य-पापरूपी राग विकल्प के ऊपर मति स्थापित है, वह शुद्धात्म भावना से रहित है। समझ

में आया? वह नौवें ग्रैवेयक गया दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु, तथापि उसने मति विकल्प और पुण्य-पाप में ही स्थापित की है। समझ में आया? आहाहा! दो मति वैसी गति की, बस। एक ओर भगवान पूर्णानन्द प्रभु की मति ऐसी की है, उसकी गति परमात्मा। मति वैसी गति और जिसकी मति पुण्य-पाप के विकल्प में स्थापित है, यहाँ अनादर किया, उसके स्वभाव की भावना से अनादर हो गया है। जिसे शुभ विकल्प का आदर है, उसकी मति विकार में चिपटी है, विकार में चिपटा हुआ जीव खोटे ध्यान के आधीन हुआ शुद्धात्मा की भावना से रहित है।

रागादिक परभावोंस्वरूप परिणमन करता है,... लो! वह तो रागादि विकाररूप परिणमन करता है। वह वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा के ओर की वीतरागी दृष्टि-ज्ञान का परिणमन करता है। इसलिए मति वैसी गति। उसकी मति वहाँ स्थापित है, वह गति होकर परमात्मा हो जायेगा। समझ में आया? जिसकी मति पुण्य-पाप के विकल्प और विकार की विकृत के ऊपर जिसकी रुचि और मति स्थापित है, वह रागादि परभावोंस्वरूप परिणमन करके, विकाररूप परिणमन करके। उस स्वभाव पर मति है, वह निर्विकार परिणमन करके और विकार के ऊपर रुचि का प्रेम है जिसे, वह विकाररूप परिणमन करता **दीर्घसंसारी होता है...** समझ में आया? दीर्घ संसारी।

दो दिशा। यह मति वैसी गति। लोक में कहते हैं कि जैसी मति वैसी गति। यहाँ तो कहे, मति वैसी गति। ऐसे वस्तु में मति वैसी गति। यह विकल्प में मति, वैसी गति। आहाहा! मलूकचन्दभाई! समझ में आया इसमें? ऐई... जेचन्दभाई! आहाहा! कथन पद्धति के दो पहलू ही कर दिये हैं। मति वैसी गति, ऐसा कहा था न। अब उस मति के दो बोल करो, दो पहलू। समझ में आया? जिसकी मति भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु में मति स्थापित करना छोड़कर अर्थात् शुद्धात्मा से रहित होकर, ऐसा कहा। भावना से रहित। भावना कहो या मति की स्थापना अन्दर में (करना), उसे छोड़कर पुण्य-पाप के विकल्प की रुचि के प्रेम में ही पड़ा है, उसकी ही जिसे भावना है, उसमें ही मति को स्थापित किया है, इतना ही आत्मा हूँ, ऐसा उसमें रँग गया है, वह विकाररूप परिणमन करके दीर्घ संसारी होगा। वह अनन्त संसारी होकर निगोद आदि में जायेगा। यह (स्वभाव रुचिवाला) परमात्मा होगा, वह (पर की रुचिवाला) निगोद जायेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे रुचि, इतना प्रेम उसे आता नहीं। जो प्रेम घुस गया है न, वैसा इसे प्रेम आता नहीं। कैसा होगा? यह वह कौन होगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मीठी लगे किस प्रकार से? ऐसे आत्मा ऐसा है, ऐसा अव्यक्तरूप से भी जहाँ तक प्रेम न आवे, वहाँ तक अन्दर में रुचि जमती नहीं। समझ में आया? ऐसे विक्षिप्त होकर बाहर निकले न विकल्प में, उसे प्रेम लगे जहाँ-तहाँ। बाहर खड़ा हो विकल्प और रागादि तो हा... हा... कुछ करते हैं, कुछ ठीक करते हैं। ऐसा जो ऐसा का ऐसा उत्साह लगा है न, उसके प्रेम में यह भगवान अन्दर विकल्प से रहित है, उसकी इसे रुचि और मति स्थापित करने का अवसर लेता नहीं। बात ऐसी है, बात ऐसी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मति वैसी गति। लोग ऐसा कहते हैं, भाई! मति वैसी गति। ऐसी मति हो तो नरक में जाये, ऐसी मति हो तो स्वर्ग में जाये। ऐसा नहीं। यहाँ तो कहे, मति अर्थात् यहाँ आत्मा में मति स्थापित की, वह परमात्मगति को पावे। यहाँ विकल्प में मति को स्थिर की है, वह दीर्घ संसारी होकर निगोद में जायेगा और अनन्त संसार करेगा। उसे अनन्त संसार का अभाव होकर अनन्त आनन्द आयेगा। इसे अनन्त आनन्द का अभाव होकर अनन्त दुःख होगा। आहाहा! कहो, रतिभाई! यह समझ में आये ऐसी बात है या नहीं? इसमें तो सादी (भाषा) इसमें कहीं...

भगवान आत्मा यह द्रव्यदृष्टि से मति जिसने वहाँ स्थापित की, उसकी गति परमात्मा की है, ऐसा कहते हैं और जिसने पुण्य और पाप और बाह्य पर के ज्ञान और पर में राग की मन्दता—उमसें मति को जिसने स्थापित की, वह विकार का परिणमन करके दीर्घ संसार में भटकेगा। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग, उस राग में मति स्थापित करे, उसे विकार का परिणमन होकर दीर्घ संसार भटकेगा, ऐसा कहते हैं, लो! ऐ... न्यालभाई! यह तो एक चोट, दो टुकड़े।

भगवान आत्मा विराजमान वीतराग पिण्ड प्रभु है। आत्मा अर्थात् वीतरागी का पिण्ड। उसकी मति जहाँ अन्दर स्थापित की, वह वीतराग परिणति द्वारा स्थापित की, दृष्टि द्वारा, वह वीतरागदशा ही शक्ति में से व्यक्त हो जायेगी। और ऐसा भगवान आत्मा को छोड़कर सूक्ष्म भी विकल्प शुभभाव का, उसमें जिसने रुचि को आत्मस्वभाव से विपरीत भाव में मति को, श्रद्धा को स्थापित किया, ज्ञान को स्थापित किया, वहाँ रोका, यह ठीक, कहते हैं कि उसका विकाररूप परिणमन होकर विकार के फलरूप से दीर्घ संसार में भटकेगा। आहाहा! ऐसी बात! समझ में आया? उसका प्रवाह जाता है अन्दर और इसका प्रवाह जाता है विकार में, ऐसा कहते हैं दो। नदी का प्रवाह बहता है या नहीं? इस किनारे और उस किनारे। वहेण समझते हैं? पानी, क्या कहते हैं तुम्हारे? प्रवाह। नदी की इस ओर का प्रवाह हो तो महिलाओं को ठीक पड़े क्योंकि आगे भरने जाना मिटे। नदी बहुत बड़ी हो बड़ी तो इस ओर हो न नदी के इस किनारे पानी (होवे तो कहे), इस किनारे पानी का प्रवाह ऊँचा आया है। आगे जाना मिटे। काळुभार जैसी नदी हो। बड़ी नदी जोरदार, अब आगे कहाँ भरने जाये। इसलिए इस ओर का प्रवाह हो तो बहुत अच्छा है, उस ओर का प्रवाह हो तो अच्छा नहीं। क्योंकि पानी का बहुत प्रवाह हो तो उसमें कभी मेल रहे नहीं। कभी बीच में प्रवाह हो जाये, कभी एक ओर हो जाये, इस ओर हो जाये। पानी का बड़ा प्रवाह। दो-दो बाँस (ऊँचाई) पानी आता हो। ऐसा कहते हैं कि जिसका प्रवाह आत्मा के स्वभाव के ऊपर गया, उसका प्रवाह परमात्मा को पहुँचायेगा वह और जिसका प्रवाह विकार की परिणति के ऊपर गया, वह उसे आत्मा से दूर करके विकार में भटकायेगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : घरबार, परिवार छोड़कर....

पूज्य गुरुदेवश्री : घरबार छोड़ा नहीं। किसे घर बाहर थे इसे। इसका था भगवान और या इसका था विकार। दो चीज़ है, कहो। क्या कहते हैं? या इसका था त्रिकाली प्रभु और या इसने माना कि राग मैं हूँ। बस! इसके अतिरिक्त की कोई तीसरी चीज़ है ही नहीं। जुगराजजी! बराबर है? दुकान-बुकान नहीं? दुकान-बुकान नहीं, वह तो जड़ है। या यह राग का हो और या यह वीतरागस्वभाव का हो, दो का हो, तीसरे का होने का नहीं इसमें। बराबर है? ऐसा कहते हैं। संक्षिप्त में भी... समझ में आया?

ओहो! ज्ञानस्वरूप प्रभु, ज्ञानस्वरूप कहो या वीतरागस्वरूप कहो। ज्ञानस्वरूप में और दोष कहाँ से हो। निर्दोष भगवान अकेला निर्दोष रस का कन्द, अकेला रस। उसकी मति जहाँ गयी उसमें, मति जहाँ स्थापित की, (वहाँ) विकल्प की मति उठ गयी। विकार का आदर दृष्टि में से चला गया। एक भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति, मति वहाँ स्थापित हो गयी। बस हो गया। वह प्रवाह परिणति करते-करते वीतराग परिणति होकर केवलज्ञान पायेगा। वह मति वैसी गति। और अज्ञानी की गति... इसलिए दो बोल यह निकाले फिर। जो जीव ऐसे हो वह ऐसा पावे, जो जीव ऐसे मति करे तो ऐसी गति पावे। भगवान आत्मा को छोड़कर जिसका प्रेम राग ने लूटा है, एक विकल्पमात्र आकर प्रेम में फँसा है, कहते हैं कि मति वहाँ स्थापित की है, उसका विकार का दीर्घ परिणमन होकर जहाँ विकार में फल है चार गति, उसमें भटकेगा। समझ में आया? अब (जहाँ) तुझे रुचे वहाँ जा। ऐसा भी कहेंगे कहीं। समझ में आया? कहीं आता अवश्य है। कहाँ है? दूसरा तो आता है परन्तु कहीं होगा इसमें। कहीं होगा। यह सब शैली ऐसी है। ऐसा होगा कहीं। कहो, समझ में आया?

और जो निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परमात्मतत्त्व में भावना करता है,... मति वैसी गति के दो प्रकार किये। जिसकी मति राग में, विकल्प में, शुभरागरूप से, मन्दरागरूप से उसकी रुचि है, वह महामिथ्यात्व की गति का परिणमन है। इसलिए उसे दीर्घ संसार की गति है। क्योंकि भगवान आत्मा से विरुद्ध भाव का प्रेम है। विरुद्ध भाव का प्रेम है, उसे संसार ही फलता है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द नाथ ऐसा स्वभाव, उसकी मति वहाँ रुचि, वह मति वहाँ गयी और रुचि... मति वहाँ स्थापित हुई, उसकी गति परमात्मा की है। वह निश्चयरत्नत्रयस्वरूप... वह मति स्थापित की। मति के तीन बोल आये ये। शुद्धद्रव्यस्वरूप की प्रतीति, उसका ज्ञान और उसकी स्थिरता, इन तीनों को मति वैसी गति। ऐसा इसमें हो गया। यह मति में हाँ कर दी। समझ में आया? आहाहा!

निश्चयरत्नत्रयस्वरूप परमात्मतत्त्व में भावना करता है,... ऐसा भगवान आत्मा... जिसने भगवान आत्मा के साथ प्रेम किया है और जिसने राग और विकल्प का प्रेम छोड़ दिया है **तो वह मोक्ष पाता है।** बस! उसे मति वैसी गति हो जायेगी। बहुत शब्द मति में

डाले तीनों वापस। मति का अर्थ ही यह है न। मति अर्थात् ऐसे झुकायी मति जिसने श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता (की ओर) उसकी गति मोक्ष की। समझ में आया? आहाहा! जिसे ऐसे राग और पुण्य-पाप का उछल-उछलकर प्रेम आता है, उत्साह आता है, प्रेम आता है, अधिकता भासित होती है, मिठास लगती है, कहते हैं कि मति वहाँ चिपटी है, भाई! वीतरागस्वभाव पूरा अनादर में जाता है, अनादर में जाता है। यहाँ आदर हो जाता है। समझ में आया?

इसलिए इस विकल्प के आदर में उसे मिथ्यात्व का मिथ्याज्ञान का... तीन लेना यहाँ भी। विकार का परिणमन कहा था न? रागादि परिणमन अर्थात् कि मिथ्यात्व का परिणमन। वह राग की रुचि, वह मिथ्यात्व का परिणमन; राग का ज्ञान, वह मिथ्याज्ञान; राग में स्थिरता, वह मिथ्याचारित्र। जिसकी मति राग के विकल्प में स्थापित है, वह मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थापित मति उसके फलरूप से दीर्घ संसार है। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा जानकर सब रागादि विकल्पों को त्यागकर उस परमात्मतत्त्व में ही भावना करनी चाहिए।** लो! दो प्रकार का स्वरूप इस प्रकार से है, ऐसा जानकर भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं निज स्वरूप, उसकी भावना अर्थात् श्रद्धा, ज्ञान, स्थिरता करनी चाहिए। उस भगवान आत्मा के ऊपर सन्मुख होकर दृष्टि, ज्ञान और रमणता करनी चाहिए। यही आत्मा को हितकर और मोक्ष का मार्ग है। ओहोहो!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि का परिवर्तन करना। ऐसे दृष्टि राग के प्रेम में चिपटी है, ऐसे अनुकूलता में उत्साह वर्तता है, उस दृष्टि को बदल, भगवान के ऊपर दृष्टि रख। स्वयं भगवान, हों! महिमावन्त पदार्थ। जिसकी महिमा वीतराग वाणी से पूरी नहीं कह सके। जिसकी निर्मल पर्याय की बात भी पूरी नहीं कह सके, उसके पूरे द्रव्यस्वभाव की बात भगवान के ज्ञान में पूरी आ गयी, (परन्तु) वाणी से पूरी नहीं पड़ सकी। समझ में आया?

ऐसा भगवान वीतराग चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान में मति को स्थापित कर वहाँ, इसके अतिरिक्त कुछ करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? १११—तीनों एकड़ा। जिसने मति से भगवान की कीमत की, उसे क्या फल आवे? वह तो भगवान ही होगा।

जिस मति से भगवान आत्मा की कीमत की, उसे संसार कैसे हो? उसे मुक्ति होगी। जिस मति से राग की कीमत की, उसे आत्मा का लाभ कैसे होगा? उसे संसार का लाभ होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? चिमनभाई! यह क्या हुआ यह सब इंजीनियर-फिंजीनियर कहाँ गये होंगे इसमें? आहाहा! डुगडुगी किस ओर बजाना, यह तेरे हाथ में है, कहते हैं। डुगडुगी होती है न वह।

भगवान आत्मा एक समय का पूर्ण नाथ। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... केवलघन, अकेला घन ज्ञान-आनन्द का। ऐसा वीतरागी भाव की मति की, बस! पूरा हो गया। उसने आत्मा की कीमत की। उसकी मति में से पुण्य और पाप की कीमत उड़ गयी। आहाहा! भोग में मिठास तो कहाँ रही? विषय में सुख की मिठास तो कहीं गयी परन्तु उसमें राग हो, उसकी मिठास चली गयी। समझ में आया? भगवान पूर्णानन्द प्रभु जहाँ दृष्टि की झुकाव दशा अन्दर हुई, मति अन्दर गयी, उसने राग के स्तम्भ को रोका राग और विकल्प वह मेरा स्वरूप नहीं, प्रीति छूट गयी। समझ में आया? ज्ञानी को रागादि होते हैं, तथापि प्रीति नहीं। गति वहाँ नहीं, गति ऐसी है अब। आहाहा! समझ में आया? तीन कषाय, दो कषाय, एक कषाय (चौकड़ी) आदि होती है, तथापि ज्ञानी ने मति तो प्रभु में स्थापित की है। वह राग में मिठास में मति उड़ गयी है। समझ में आया? और अज्ञानी ने भगवान में से मति को उड़ा दिया है अनादि से। वह राग में आकुलता दुःख है, उस आकुलता का दुःख है। भगवान अनाकुल से विरोधी विकल्प है। वह आनन्द से उल्टा भाव है, उसमें जिसने मति को प्रेम से स्थापित की है, उसे क्या हो दूसरा? उसे वह दशा निगोद की जाकर अनन्त काल बसेगा। वह एक अनन्त साथ में रहेंगे, वह एक शरीर में अनन्त रहेंगे, वे अलग जाकर क्षेत्र में... यह अनन्त-अनन्त आनन्द में इकट्ठे, वह अनन्त दुःख में एक शरीर में इकट्ठे। आहाहा! समझ में आया? १११ हुई।

★ ★ ★

गाथा - ११२

आगे फिर इसी बात को दृढ़ करते हैं—परमात्मप्रकाश परन्तु परमात्मा प्रकाश किया है।

११२) जहिँ मइ महिँ गइ जीव तहुँ मरणु वि जेण लहेहि।
तेँ परबंभु मुएवि मइँ मा पर-दव्वि करेहि॥ ११२॥

अन्वयार्थ :- हे जीव जहाँ तेरी बुद्धि है, वहीं पर गति है, उसको... जहाँ तेरी मति, वहाँ तेरी गति। अब मरण के बाद भी तेरी मति है, वहाँ जायेगा—ऐसा कहते हैं। जहाँ तेरी मति, यदि भगवान आत्मा में तेरी मति है। **वहीं पर गति है, उसको जिस कारण से तू मरकर पावेगा,...** देह छूटकर भी तू परमब्रह्म की ओर के ही झुकाव में रहेगा। समझ में आया? आहाहा! और यह देह छूटकर भी परमात्मा हो जायेगा। **इसलिए तू परब्रह्म को छोड़कर परद्रव्य में बुद्धि को मत कर।** समझ में आया? **परद्रव्य में बुद्धि को मत कर।** अब इसकी व्याख्या की मिठास वर्णन करते हैं जरा, खूब शब्द से।

भावार्थ :- शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर... भगवान आत्मा यह चिदानन्द प्रभु शुद्ध द्रव्य की दृष्टि से देखें, शुद्ध वस्तु की दृष्टि से देखें तो **टांकी का-सा गढ़ा हुआ अघटित घाट,...** अघटित घाट ऐसा भगवान अनादि का ऐसा का ऐसा है। समझ में आया? वस्तु, वस्तु अघटित घाट। **अमूर्तिक पदार्थ...** रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित प्रभु पदार्थ है आत्मा। **ज्ञायकमात्र स्वभाव...** अकेला जाननहार स्वभाव। ऐसा भगवान आत्मा **वीतराग, सदा आनन्दरूप, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप, अमृत के रसकर तृप्त...** समझ में आया? वीतराग सदानन्द—वीतराग सदा आनन्दरूप अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखस्वरूप, अजोड़ अतीन्द्रिय आनन्द का सुखरूप, अमृत के रस से तृप्त हुआ, यह पर्याय की बात है, हों! समझ में आया? पाठ में परिणत शब्द है, इसका अर्थ जरा अर्थकार ने 'तृप्त' किया है, तृप्ति हो गयी है, कहते हैं। जैसे तृषा लगी हो और पानी पीया हो न मीठा, एक तो मौसम्बी और उसमें डाला हुआ हो बर्फ और उसमें डाली हो शक्कर। सेठिया हो तो बहुत पीवे। वहाँ कहाँ पैसे की कमी हो? तो डाले, डाल न यह, मुफ्त में कोई ले जाये, इसकी अपेक्षा खावे-पीवे तो सही या नहीं। भगवान आत्मा, आहाहा! कैसा? अघटित

घट भगवान अमूर्तिक चिदानन्द ऐसा का ऐसा कहते हैं। ज्ञायकमात्र स्वभाव उसे वीतराग सदा आनन्दरूप, सदा आनन्दरूप स्वयं। उसे अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप, अमृत के रसकर परिणत। ऐसे भगवान को अजोड़ अतीन्द्रिय सुख से, अमृत के रस से परिणत पर्याय प्रगट करके। समझ में आया? आहाहा! भाषा भी कितनी की है!

'**टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं**' 'एक' आया इसमें? 'एक' नहीं आया। अद्वितीय आया है। एक स्वभाव, एक स्वभाव वीतराग सदानन्द सुखामृत। वापस दो जगह आया। दो जगह एक आता है न। टंकोत्कीर्ण ज्ञायक 'एक' स्वभाव, वह वस्तु। '**वीतरागसदान्दैक-सुखामृतरसपरिणतं निजशुद्धात्मतत्त्वं मुक्त्वा**' दो जगह 'एक' 'एक' है, हों! यह 'एक' को डालते नहीं। अद्वितीय अतीन्द्रियस्वरूप। 'एक' ... इसमें एक आया, उसमें बाकी रह गया। एकरूप भगवान आत्मा वस्तु, उसे एकरूप अतीन्द्रिय सुखरूप परिणत हुआ, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत, अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत के रसकर परिणत हुआ, तृप्त हुआ जीव। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द में से अतीन्द्रिय पर्याय प्रगट करके तृप्त हुआ जीव। आहाहा! समझ में आया? भाषा भी ऐसे कम पड़ती है मानो आचार्य को।

भगवान आत्मा, जैसे हीरा की एक मूर्ति हो न, हीरा की मूर्ति। आता है न? एक सेठिया का आता है। एक हीरा का बैल था। आता है न? ऐसा आता है। जगडु सेठ, जगडु सेठ। हीरा का एक बैल था बड़ा। एक दूसरा बैल करता था। ... अकेला हीरा मोटा। कहते हैं, यह पूरा आत्मा अकेला चैतन्यरत्न के हीरा से भरपूर बड़ा है। वह बैल था, यह भगवान है। समझ में आया? ऐसा भगवान सदा आनन्दरूप त्रिकाल आनन्दरूप, लो! अब उसे अद्वितीय अतीन्द्रिय सुखरूप वर्तमान परिणति। अजोड़ अतीन्द्रिय सुखरूप अमृत के रसकर तृप्त हो गया परिणति में। पर्याय ली। बस! उसे कुछ चाहिए नहीं।

ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर... ऐसे निज शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर। आहाहा! **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म में या देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।** अरे! आनन्द में जहाँ चित्त लगा उसे अब तुझे बाहर कहाँ काम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या काम है तुझे विकल्प का? उसके प्रेम का क्या काम है? दुनिया की प्रसिद्धि का तुझे क्या काम है? दुनिया अधिक गिने, उसका अधिक तू आत्मा में रस से तृप्त हो गया

है न! उस तृप्ति में अब दूसरे के कारण से तृप्ति तुझे कहाँ रही है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानघन का प्रभु स्वरूप, उसकी तृप्ति में पड़ा हुआ, उसे दूसरा क्या काम है अब? समझ में आया? उसे आठ कर्म का क्या काम है? भावकर्म का क्या काम है? विकल्प का क्या काम है? नोकर्म शरीर-देहादि परिग्रह में मन को मत लगा, उसमें मन को न लगा। ऐसे लगाया, उसे अब यहाँ न लगा। समझ में आया? देखो न, दुनिया में बड़ा ठहराने के लिये कितने जलसा नहीं करते? पाँच, पचास हजार खर्च कर डाले, कोई बड़ा अभिनन्दन देता हो तो। हैरान, हैरान हो जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु इसे सुहावे तब न। वह सुहाता है। बाहर में वह कहे हाँ, तू बड़ा, तो कहे हाँ। तू अच्छा, तो कहे हाँ, ... बढ़ गया है दूसरों से, हों! कैसे बढ़ा है या क्या बढ़ा है वह तो... आहाहा! इसे किसकी बड़ी पदवी कहना? आहाहा! किसे तिलक करना इसमें? कहते हैं। यह याद आ गया।

भगवान कहते हैं कि तेरा तिलक तूने किया, अब तुझे जगत का क्या काम है? आहाहा! भगवान अखण्डानन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त गुण का चैतन्य रत्नाकर जहाँ दृष्टि में आया, मति को वहाँ स्थापित की, श्रद्धा, ज्ञान को वहाँ झुकाया, तुझे अब क्या काम है दूसरा? तुझे अब ऐसे कर्म बँधे तो ऐसा होगा, अच्छे कर्म बँधे न तो आत्मा स्वर्ग में जायेगा। धूल में भी कर्म यहाँ बँधते नहीं, ऐसा कहते हैं। कर्म ही नहीं न, यहाँ विकल्प नहीं। विकल्प है, वह भी स्वरूप में नहीं। जाये जड़ में, पर में जाये। आहाहा! अरे! ऐसा वीतरागी तत्त्व, भगवान वीतरागी आत्मस्वभाव, अरे! उसके इसे गीत गाना भी आता नहीं और वह राग और फल और उसके गीत (गाये)। आहाहा! समझ में आया? जिसके गीत से रंगा वह रंग जायेगा उसमें। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनने बैठे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्या कहते हैं यह? महिमा करता हो न तो इसे एक नींद न आवे जरा। रात्रि के दस बजे तक सुनावे। ... बड़ी-बड़ी महिमा की एक पुस्तक

बनाकर रखी हो, मजदूर करके रखा हो दो रुपये का वेतन (देकर), वह सुनाया करे। सवेरे से सुनाया करे कि तुम बहुत ऐसे, तुम बहुत ऐसे, तुम बहुत ऐसे। बहुत करते-करते दस बजे (तो कहे), अब भाईसाहेब नहीं। किसलिए नहीं अब? महिमा सुनता था न प्रेम से। अब उकताहट आती है, अब सोने दे। समझ में आया? यह भगवान आत्मा के आनन्द के अन्तर में एकाग्र होना, 'अब नहीं' उसमें होगा नहीं, कहते हैं। एकाग्र... एकाग्र... एकाग्र... एकाग्र... कहाँ तक? परमात्मा हो वहाँ तक। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मतत्त्व को छोड़कर द्रव्यकर्म... रजकण। आठ कर्म में तीर्थंकर गोत्र बाँधा, वह द्रव्यकर्म में आता होगा या नहीं? भावकर्म। उसके द्वारा विकल्प से बँधे, वह विकल्प, नोकर्म शरीर, वाणी व्यवस्थित हो तो ठीक, कण्ठ व्यवस्थित हो तो ठीक, **देहादि परिग्रह में मन को मत लगा।** यह सब ठीक हो तो फिर तुझे कोई काम नहीं। आहाहा! भगवान मिले, अब रंक का क्या काम है तुझे? समझ में आया? उसमें मन को न लगा। ऐसा कहा न कि परद्रव्य में मन को न लगा। अब परद्रव्य किसे कहना? स्वद्रव्य भगवान आत्मा... एक ओर राम और एक ओर गाँव, एक ओर राम भगवान आत्माराम अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसमें मति स्थापित की, उसे परद्रव्य का कुछ काम नहीं। समझ में आया? तब वह परद्रव्य कहना किसे? यह ११३ में पूछेगा। उसका आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण २, शुक्रवार, दिनांक - १०-१२-१९६५
गाथा - ११३ से ११४ प्रवचन - ७२

गाथा - ११३

परमात्मप्रकाश, ११३ गाथा। ११२ हुई। पहली परलोक की व्याख्या की। परलोक से भिन्न उसकी ममता छोड़ने का कहा। अब शिष्य ने प्रश्न किया। किसकी ममता छोड़नी? **परद्रव्य क्या है?** परद्रव्य किसे कहते हैं? **उसका समाधान श्रीगुरु करते हैं—**

११३) जं णियदव्वहँ भिण्णु जडु तं परदव्वु वियाणि।
पुग्गलु धम्माधम्मु णहु कालु वि पंचमु जाणि॥ ११३॥

अन्वयार्थ :- जो... 'निजद्रव्यान्' अर्थात् आत्मा अपने द्रव्य से भिन्न। पाठ में तो ऐसा शब्द है न **'निजद्रव्यान्'**। अपना आत्मद्रव्य वस्तु शुद्ध अखण्ड ज्ञायकभाव, **पदार्थ से जुदा जड़ पदार्थ है, उसे परद्रव्य जानो,...** वह परद्रव्य है, तेरा द्रव्य वह नहीं। **और वह परद्रव्य पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और पाँचवाँ कालद्रव्य ये सब परद्रव्य जानो।** इतना अभी पाठ में तो आत्मा के अतिरिक्त पाँच जड़ है, उन्हें भिन्न कहा है। टीका में इसका अधिक स्पष्ट करेंगे।

भावार्थ :- द्रव्य छह हैं,... इस जगत के अन्दर भगवान तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी प्रभु ने छह द्रव्य देखे हैं, उनमें से पाँच जड़ हैं। **और जीव को चैतन्य जानो।** पाँच तो अचेतन जड़ और एक भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकस्वभाव जीव है। **पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश ये सब जड़ हैं, इनको अपने से जुदा जानो और जीव भी अनन्त हैं,...** स्वयं अधिक स्पष्टीकरण करते हैं। **उन सबको अपने से भिन्न जानो।** सब आत्मा भिन्न, सिद्ध भगवान से लेकर सब। इस आत्मा से सब आत्मा भिन्न हैं। **अनन्त चतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है,...** अब आत्मा की व्याख्या। आत्मा अर्थात् क्या? निज तत्त्व, निज द्रव्य क्या? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा

अनन्त चतुष्टयस्वरूप जो जीवद्रव्य, अपना जीवद्रव्य। समझ में आया?

जीवद्रव्य किसे कहना, ऐसा कहते हैं। भगवान केवली ने तीर्थंकर ने तो छह द्रव्य देखे। जगत में छह पदार्थ हैं, उनमें इस आत्मा से दूसरे सब पाँच जड़ द्रव्य भिन्न हैं और इस आत्मा से अनन्त आत्मायें भिन्न हैं। इसलिए यह आत्मा कैसा है (कि जो) भगवान सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव ने देखा? अनन्त ज्ञानमय आत्मा है। देखो! वह रागरूप, पुण्यरूप, शरीररूप, कर्मरूप वह आत्मा नहीं, तथा अल्पज्ञ पर्यायरूप वह आत्मा नहीं, ऐसा तो यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? निज भगवान आत्मा उसे कहते हैं और उसे कहा भगवान तीर्थंकर ने कि बेहद अन्तर चतुष्टय ज्ञान पड़ा है। बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त वीर्य, ऐसा अनन्त चतुष्टयस्वरूप, उसे यहाँ निज पदार्थ आत्मा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उसमें अनन्त गुण इकट्ठे हैं, परन्तु अनन्त चतुष्टय मुख्य वस्तु है, ऐसा गिनकर (कहा)। **अनन्त चतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है,...** यह आत्मा जो अन्दर है, उसे भगवान केवली ने ऐसा देखा है और ऐसा कहा है कि अन्दर आत्मा अनन्त, अनन्त अमाप ज्ञान से भरपूर सदा पदार्थ है। अनन्त-अनन्त दृशिशक्ति से भरपूर तत्त्व है, अनन्त-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर आत्मा है और अनन्त-अनन्त आत्मवीर्य से भरपूर तत्त्व है। अहो! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह आत्मा वर्तमान में ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। किसके लिये बात चलती है यह? इसके लिये तो समझाते हैं। ऐसा आत्मा अभी यहाँ अन्दर है। उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान द्वारा जानना, उसका नाम धर्म कहलाता है। आहाहा! समझ में आया?

क्या कहा जाता है यह? अन्तर... यह तो अलग कहा। एक धर्मास्तिकाय तत्त्व भगवान ने देखा, अधर्मास्ति, काल, पुद्गल और आकाश वह तो पर जड़ है, अचेतन है। यह एक आत्मा चैतन्य है। परन्तु यह चैतन्य भी कैसा? उसे चैतन्यमात्र कहा परन्तु वह कितना सामर्थ्यवाला तत्त्व? अनन्त ज्ञान, अनन्त ज्ञान अन्तर, हों! वर्तमान समय में, एक समय में। आहाहा! यह शरीर-कर्मवाला नहीं, अल्पज्ञ पर्याय वह कहीं मूल द्रव्य नहीं इतना। समझ में आया? एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा अनन्त-अनन्त

बेहद ज्ञान का तत्त्व है आत्मा। अभी शक्ति सत्त्वरूप से, हों! अनन्त-अनन्त दर्शनरूपी शक्ति से भरपूर आत्मा है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दरस वह आत्मा अन्दर में अनन्त आनन्द से भरपूर तत्त्व है। वह स्वरूप ही है, और भरा हुआ अर्थात्। और अनन्त उसका वीर्य, बेहद अनन्त बल—वीर्य से भरपूर आत्मा है। उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : वर्तमान ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान ऐसा है त्रिकाल। वर्तमान क्या, त्रिकाल ऐसा है। वस्तु त्रिकाल ऐसी है। भान कब किया है? ऐसी की ऐसी यह भटकाभटक (की)। या पुण्य-पाप के भाव मेरे, या कर्म, शरीर मेरे और या एक समय की अवस्था वह मेरी, इतना मैं, वह सब मिथ्यात्वपना है। उसे भगवान तीर्थंकरदेव मिथ्यादृष्टि कहते हैं। आहाहा! कहो, मलूकचन्दभाई! तो आत्मा पुत्रवाला है या नहीं? नहीं? पुत्र नहीं, पाँच जड़ पदार्थ वे आत्मा के नहीं, एक रजकण भी आत्मा का नहीं। यह अन्दर में पुण्य-पाप का विकल्प उठता है, दया, दान, काम, क्रोध का भाव, वह आस्रवतत्त्व, वह आत्मतत्त्व नहीं। और एक समय की प्रगटरूप अवस्था है, वह तो व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्म तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर आत्मा, उसे आत्मा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त चतुष्टयस्वरूप अपना आत्मा है,... भगवान आत्मा... आत्मा... सर्वज्ञ परमात्मा को अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगट होता है, वह कहाँ से प्रगट होता है? कहीं बाहर से आता है? वह अन्दर में भरपूर आत्मा है। अरे! इसे खबर नहीं होती अभी। जैन में वाड़ा में जन्मा तो भी आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म करना अब। कहो, धर्मचन्दजी! समझ में आया? जैसे पीपर के दाने में हरा रंग और चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है दाने में। है या नहीं? कब? कब? यह जवाब नहीं आया। यह छोटी पीपर है या नहीं? उस पीपर में चौंसठ पहरी चरपराई अन्दर भरी है या नहीं? कब? निकाले बिना भरी हुई है अन्दर। यदि भरी हुई न हो तो आये कहाँ से बाहर में? चौंसठ पहरी चरपराई जो बाहर आती है, वह आयी कहाँ से? बाहर से आती है पत्थर में से? कब यह तो पूछा नहीं। कब? अभी।

उस पीपर के दाने में एक इतनी पीपर छोटी पीपर उसमें अन्दर चौंसठ पहरी निकलती है न घूँटे तब, वह आयी कहाँ से ? पत्थर में से आयी ? कोयलो घूंटे नहीं कोयला ? उसमें चौंसठ पहरी शक्ति पड़ी है। इतने दाने में चौंसठ पहरी अर्थात् समझ में आया ? रुपया, रुपया, पूरा-पूरा सोलह आना-चौंसठ पैसा; वैसे पूरी-पूरी अन्दर चरपराई पूरी पड़ी है। वह भरी है छोटी पीपर उससे। उसे वास्तव में छोटी पीपर कहते हैं। आहाहा! ऊपर जो काला भाग है, वह छोटी पीपर का वास्तविक स्वरूप नहीं अथवा अल्प चरपराई की पर्याय तो एक समय की है, वह वास्तविक छोटी पीपर का स्वरूप नहीं। लींडी पीपर कहते हैं न ? छोटी पीपर। समझ में आया ? कि छोटी पीपर जिस डिब्बे में पड़ी हो, वह डिब्बा कहीं छोटी पीपर है ?

इसी प्रकार भगवान आत्मा। शरीर तो डिब्बा मिट्टी धूल है। वह आत्मा है ? अन्दर कर्म, जड़ है, वह आत्मा है ? पुण्य-पाप के विकल्प उठे शुभ, अशुभ, दया, दान, काम, क्रोध के भाव, वह आस्रवतत्त्व है, वह आत्मा है ? और एक समय की प्रगट, जैसे उसमें एक जरा-सी चरपराई बाहर दिखती है, पीपर में जरा-सी चरपराई हो न थोड़ी, जरा बाहर; उसी प्रकार आत्मा में थोड़ा ज्ञान, दर्शन, वीर्य प्रगट अल्प, अल्प दिखता है, वह अल्प दिखता है उतना आत्मा है ? उतनी छोटी पीपर है ? वह छोटी पीपर जैसे अभी चौंसठ अर्थात् पूरी-पूरी चरपराई और पूरा पूरा हरा रंग भरा हुआ है। उसी प्रकार यह भगवान आत्मा अभी एक समय की अल्पज्ञता का लक्ष्य छोड़कर, राग नहीं, पुण्य नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं और एक समय की प्रगट अवस्था का अंश है, उतना नहीं। बेहद अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य से भरपूर आत्मा, उसे भगवान आत्मा कहते हैं। आहाहा! वह बात बैठे छोटी पीपर की कि, हाँ, यह सही। परन्तु तू इतना ? कि, यह अपने को खबर नहीं पड़ती। वाह! समझ में आया ? कब यह छोटी पीपर चौंसठ पहरी है ? अभी। शक्तिरूप से, भावरूप से, सत्त्वरूप से अभी है। उसी प्रकार यह आत्मा अभी वर्तमान में अन्दर में बेहद ज्ञान, बेहद दर्शन, बेहद आनन्द और वीर्य से भरपूर भगवान आत्मा है। ऐसा भगवान ने देखा और भगवान ने कहा है। इसकी उसे खबर नहीं होती। समझ में आया ?

उसी को निज (अपना) जानो,... देखो! अपना जानो। कहते हैं कि ऐसा आत्मा

परिपूर्ण वस्तु से भरपूर एक तेरा आत्मा, ऐसा जान। ऐसा तू जान, ज्ञान उसमें लगा, ज्ञान को उसकी ओर लगा (कि) यह आत्मा है। कहो, भीखाभाई! आहाहा! वस्तु एक समय में अनन्त ज्ञान से भरपूर, अनन्त दर्शन, आनन्द से (भरपूर), वह अपना अर्थात् स्वयं का निज स्वरूप है, ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं कि तू जान, उसे जान। उसे जानने से तुझे आनन्द आयेगा। इसके अतिरिक्त आनन्द और शान्ति कहीं से मिलेगी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

और जीव के भावकर्मरूप रागादिक... देखो! भावकर्म पुण्य-पाप। यह स्वयं स्पष्ट किया। गाथा में नहीं, परन्तु यह स्पष्ट किया टीका में। पुण्य-पाप जड़ है न, सामान्य बात की परन्तु विशेष आ जाये। अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प उठता है, राग है, शुभराग पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, वासना की वृत्ति हो, वह पाप है। यह दोनों पुण्य और पाप वह राग विकार है। उससे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। समझ में आया? यह छोटीपीपर की ऊपरी जरा कालिमा है न कालिमा, उससे छोटी पीपर भिन्न है अन्दर हरी भरपूर अकेली, हरा-हरा रंग से भरपूर। समझ में आया? लीला कहते हैं न? हरा, हरा कहते हैं तुम्हारे।

भावकर्मरूप रागादिक... राग और द्वेष, पुण्य और पाप भाव से भगवान आत्मा भिन्न है। क्योंकि वह तो मैल है। आत्मा का स्वरूप अल्पज्ञ पर्याय जितना नहीं तो राग जितना तो नहीं ही। राग तो उसमें है नहीं। उसके अस्तित्व में अल्पज्ञता है पर्याय में, परन्तु यह राग-द्वेष तो उसके अल्प अस्तित्व में उसकी वस्तु ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? उससे भिन्न और द्रव्यकर्म आठ कर्म हैं जड़ मिट्टी। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय आते हैं न आठकर्म? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, गोत्र, आयुष्य और अन्तराय। भगवान ने आठ कर्म कहे हैं न? ये आठ कर्म जड़ हैं, मिट्टी हैं, अजीव हैं, उनसे आत्मा अन्दर भिन्न चीज़ है। समझ में आया इसमें?

ज्ञानावरणादि आठ कर्म, और शरीरादिक नोकर्म,... यह शरीर और वाणी वह जड़ नोकर्म वाणी जड़ है, उससे आत्मा भिन्न है। **और इनका सम्बन्ध अनादि से है,...** इनका सम्बन्ध राग का, पुण्य-विकल्प का, कर्म का और शरीर का ऐसे सम्बन्ध एक

समय का, हों! एक समय का ऐसा सम्बन्ध। विकल्प, विकार, जड़ कर्म और शरीर एक समय का सम्बन्ध है, अनादि का ऐसा सम्बन्ध है। **परन्तु जीव से भिन्न है,...** परन्तु वह वस्तु तो जीव से भिन्न है, एकदम पृथक् है। ओहोहो! राग पुण्य-पाप के विकल्प की वृत्तियाँ वे भावकर्म हैं। मैल, मैल, मल, मल जिसे कहा न। मल आता है कहीं? किसमें? यह लोगस्स में नहीं आता विहुयरयमळा? कहाँ अर्थ आवे, भगवान जाने। विहा रोई मळ्या, ऐसा कहे। दशा, विशा को विवाद हुआ न, तो विहा रोई मळ्या। परन्तु यह लोगस्स में विहा रोई मळ्या कहाँ से आया? अर्थ की खबर नहीं होती, भाव की खबर नहीं होती, ऐसे के ऐसे अन्ध के अन्ध चलते जाये। विहुयरयमला आता है या नहीं?

लींबड़ी में ऐसा हुआ था। दशा, विशा को विवाद हुआ। इसलिए दशाश्रीमाली बोले। वृद्धाओं को बेचारों को अर्थ की खबर नहीं होती, इसलिए विहुयरयमला के बदले विहा रोई मळ्या (बोले)। परन्तु यह लोगस्स में कहाँ से आया? अर्थ की खबर नहीं होती, उसे धर्म क्या हो, कैसे हो, उसकी खबर कहाँ। विहुय अर्थात् टाले हैं, ऐसा है। हे भगवान! परमात्मा! आपने वि—विशेष हुय—हुय टाले हैं। क्या? रयमला। रज अर्थात् आठ कर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय जड़ है जड़ आठ कर्म, उसे आपने टाला है। विहु—टाला है और मल अर्थात् पुण्य-पाप के भावकर्म मैल। पुण्य-पाप का विकार वह मैल है, मल है और आठ कर्म वे जड़, रजकण हैं, उन्हें भगवान ने टाला है। तब भगवान आत्मा में नहीं थे, आत्मा में नहीं थे और आत्मा का ध्यान करके स्थिर हो गये। समझ में आया? आता है या नहीं? ऐई कान्तिभाई! किया था या नहीं लोगस्स-बोगस्स? किया था।

परन्तु जीव से भिन्न है, इसलिए अपने मत मान। हे आत्मा! यह पुण्य-पाप के भाव, कर्म और शरीर तेरा न मान, तेरा न मान, भाई! यह तेरे नहीं। तेरे हों, वे तुझसे भिन्न पड़े नहीं और भिन्न पड़े, वे तेरे होते नहीं। आहाहा! खबर नहीं होती कि क्या है। **पुद्गलादि पाँच भेद जड़ पदार्थ सब हेय जान,...** सबको हेय जान। यह तो सम्बन्ध मत जान, ऐसा कहा न। अपने मत जान, उसे हेय जान (कहा)। जड़ आदि रजकण वे तेरे नहीं, भाई! तू तो आत्मा है। आहाहा! आत्मा निज द्रव्य उसे कहा जाता है कि ऐसे बेहद

ज्ञान, दर्शन, आनन्दवाला (तत्त्व), उसके ऊपर दृष्टि दे, उसे जान, तुझे सम्यग्दर्शन और ज्ञान होगा। उससे तुझे धर्म होगा, बाकी धर्म होगा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दिखलाया है न। ज्ञान का प्रकाश का अंश है, वह पूरी चीज़ ज्ञानमय है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान का अंश है या नहीं? बाहर दिखता है या नहीं? एक अंश है या नहीं? परन्तु उस अंश जितना नहीं, पूरी चीज़ है अन्दर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वस्तु है न आत्मा अनादि-अनन्त पदार्थ, महान पदार्थ चैतन्य वस्तु। देह के परमाणु मिट्टी से भिन्न। जैसे शीतल बर्फ की शिला। वैसे भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर शिला अन्दर है। अरूपी पदार्थ भगवान महान पदार्थ। उसे अंशपना जो दिखता है, उतना न मान, उतना न मान। रागवाला तो नहीं, पुण्यवाला तो नहीं, कर्म, शरीरवाला नहीं। वह अंश जो वर्तमान प्रगट दिखाई दे उतना अंश जितना न मान। वह पूरे अंशी का एक अंश, पूरा अंशी उससे भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

अपना स्वरूप ही उपादेय है,... अपना स्वरूप वह अनन्त चतुष्टय, हों! वह एक समय का... वह नहीं। निज स्वरूप जो त्रिकाली ध्रुव एक स्वरूप। उत्पाद-व्यय की जो पर्याय क्षणिक है, वह भी उपादेय नहीं। उपादेय करनेवाली पर्याय है, परन्तु पर्याय उपादेय नहीं। आदरणीय त्रिकाल ध्रुव ज्ञायकस्वरूप है। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा भगवान अपना आत्मा, उसकी अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान करके स्थिर होना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यह परमात्मा होने का मार्ग है। कहो, समझ में आया इसमें? ११३ हुई। ११४ (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ११४

आगे एक अन्तर्मुहूर्त में कर्म-जाल को वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप अग्नि भस्म कर डालती है, ऐसी समाधि की सामर्थ्य है,... समाधि कौन? अन्दर आनन्द में स्थिरता, हों! समाधि। लोगस्स में आता है समाहिवरमुत्तंदिंतु। नहीं आता? क्या होगी समाधि? वे बाबा समाधि चढ़ावे, ऐसी होगी? कुछ खबर नहीं होती। ऐवंमये अभित्थुआ। इसका अर्थ कुछ दूसरा करते। समझ में आया? अन्दर वस्तु... निज समाधि मुझे दो, ऐसा कहते हैं। समाधि अर्थात् जो आत्मा वस्तु से अनन्त गुण आदि से भरपूर तत्त्व है, उसे पुण्य-पाप के विकल्प जाल के त्यागरूप, कहेंगे अर्थ में, विकल्प जाल के त्यागरूप पवन और ऐसा महा स्वरूप, उसकी एकाग्रतारूपी अग्नि (ऐसी समाधि)। समझ में आया? सब बात ... होवे मानो ऐसा इसे (लगे), कभी सुनी न हो इसने। निज घर की बात वीतराग ने कही हुई परन्तु कभी सुनने को कान में पड़ी न हो। आहाहा!

परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान हुआ, उन भगवान की वाणी में ऐसा आया। भाई! तेरा आत्मा ऐसा अनन्त, अनन्त ज्ञान, दर्शन से भरपूर तत्त्व है न, उसे **कर्म-जाल को वीतरागनिर्विकल्पसमाधिरूप अग्नि भस्म कर डालती है,...** भगवान आत्मा ऐसी स्वरूप शुद्धात्मा में एकाग्रतारूपी अग्नि, उसकी एकाग्रतारूपी अग्निरूपी समाधि और उसमें विकल्प के जाल के त्यागरूपी महा पवन, उसके द्वारा... ला हो वहाँ वा, नहीं कहते? कहते हैं न? यह कहेंगे, हों! अन्दर। समझ में आया? यह तो समाधि किसे कहना, (यह कहते हैं)। समाधि वे बाबा चढ़ावे, ऐसी नहीं। आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा में अन्तर एकाग्र होना। उस एकाग्रतारूपी अग्नि, उसरूपी समाधिरूपी अग्नि और एकाग्र होने पर पुण्य-पाप के विकल्प जाल का त्याग हुआ, अभाव हुआ। अस्ति में एकाग्रता और विकल्प का अभाव—यह दो होकर उसे समाधि कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसे ज्ञान-वैराग्य शक्ति कहा है न। लो! **वही दिखाते हैं—**

११४) जइ णिविसद्धु वि कु वि करइ परमप्पइ अणुराउ।
अग्गि-कणी जिम कट्ठ-गिरि डहइ असेसु वि पाउ॥ ११४॥

अन्वयार्थ :- जो आधे निमेषमात्र... अरे! भगवान आत्मा... ऐसा कहते हैं। एक आँख मींचकर उघाड़े इतना उसमें आधे निमेष। इतने मात्र भी जो आत्मा—भगवान आत्मा अनन्त गुण का धनी उसमें, **कोई परमात्मा में प्रीति को करे...** परमात्मा अर्थात् अपना आत्मा परम स्वरूप। परम आत्मा, परम स्वरूप उसे कह गये—निज चतुष्टय। समझ में आया? ऐसा निज चतुष्टय परम आत्मा अपना अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वह निज स्वरूप परमात्मा, परम आत्मा, परम स्वरूप। एक समय की पर्याय परम स्वरूप नहीं, रागादि तो उसका नहीं। भगवान आत्मा का परम स्वरूप अनन्त ज्ञान, दर्शन, उसमें आधे निमेष (अर्थात्) आँख मींचकर उघाड़े उसमें से आधा, इतनी भी यदि प्रीति अर्थात् वस्तु में एकाग्रता करे। आहाहा!

तो जैसे अग्नि की कणी... जैसे अग्नि की इतनी कणी, **काठ के पहाड़ को भस्म करती है,...** लकड़ी का बड़ा पर्वत हो परन्तु एक दियासलाई लगायी हो तो, इतनी कणी राख कर देती है। ढ़ेर के ढ़ेर घास के हों, एक दियासलाई की कणी उन्हें सुलगा देती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं, हे आत्मा! तेरा परम स्वरूप जो ज्ञान अनन्त दर्शन, आनन्द, ऐसा आत्मा, उसमें एक क्षण भी यदि एकाग्र हो तो, जैसे अग्नि की कणी विशाल पर्वत—लकड़ी के पर्वत के पर्वत—पहाड़ को जला डालती है, उसी प्रकार कर्म के ईंधन को जला देता है। उस कर्म को नाश करने का यह एक उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं, ऐसा कहते हैं। परमात्मा में प्रीति करे, देखा? प्रीति अन्तर रुचि करे, ऐसा, एकाग्रता करे। यह पुण्य-पाप के, शरीर के प्रेम जो अनादि के लगे हैं भ्रमणा में, मिथ्यात्व में, मिथ्यात्व में पर के प्रेम में एकाकार है, उसे एक क्षण भी यदि भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर आत्मा एक क्षण प्रीति, प्रीति शब्द से एकाग्रता, उसका नाम प्रीति।

अग्नि की कणी काठ के पहाड़ को भस्म करती है, उसी तरह सब ही पापों को भस्म कर डाले। पाप शब्द से देखा? पुण्य और पाप सब, हों! सब पाप ही है। आहाहा! समझ में आया? यह सम्यग्दर्शन द्वारा भी वहाँ जलकर भस्म कर दे। आठ कर्म और रागादि। मैं वह कुछ हूँ ही नहीं, ऐसी दृष्टि से पहले उसे अपनी सत्ता में नहीं, ऐसा दृष्टि में अनुभव करने से उसका अभाव कर डाले। स्थिरता विशेष हो जाये, (तब)

सर्वथा अभाव हो जाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह करते-करते...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करते-करते... यह युवक तैयार हुए हैं अब। शुभ को तो यहाँ जलाना है, शुभ तो राग है, शुभ तो एक विकल्प पुण्यभाव विकार है। उससे तो रहित है। इतना तो कहाँ यहाँ कहना है? एक समय की पर्याय का अंश है, इतना भी नहीं तेरा स्वरूप। तेरा स्वरूप परमस्वरूप है, परमस्वरूप है। वह (पर्याय) तो अपरमस्वरूप हुआ, वह तो पर हुआ। क्या कहा? पुण्य-पाप के परिणाम, कर्म, शरीर तो परस्वरूप हुआ। अल्पज्ञ पर्याय आदि अपरमस्वरूप हुआ। वस्तु है, वह परमस्वरूप है। समझ में आया?

भावार्थ :- ऋद्धि का गर्व,... छोड़कर। यह ऋद्धि, ऋद्धि। बहुत पैसा और स्त्री, पुत्र और महाराजापना धूल में भी नहीं, वह तो मिट्टी है। तेरी ऋद्धि धूल में भी नहीं उसमें। तेरी है? उसकी है? ऐसे पैसे पाँच-पाँच करोड़, दस-दस करोड़, स्त्री अप्सरा जैसी, लड़के रूपवान बड़े साहेब जैसे, पाँच हाथ के लम्बे मोटे, आठ-आठ लड़के मोटे। क्या है परन्तु? सब धूल के ढ़ेर हैं, मिट्टी के ढ़ेर। तुझे और उन्हें कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! उसका गर्व, अभिमान, ऐसा कहते हैं। यह हमारे, यह अभिमान छोड़े बिना आत्मा की दृष्टि होगी नहीं। समझ में आया?

ऋद्धि का गर्व... लो! हमारे इतने हाम, दाम और ठाम, बापू! ऐसी लोग बातें नहीं करते? बापू! उसे तो हाम, दाम और ठाम। धूल भी नहीं, सुन न अब। ठाम अर्थात् असंख्यप्रदेशी आत्मा इसका ठाम है, हाम अर्थात् अनन्त वीर्य है। समझ में आया? दाम अर्थात् अनन्तगुणी लक्ष्मी पड़ी अपने में, वह उसका दाम है। बाहर में, धूल में लक्ष्मी-फक्ष्मी इसकी कब थी? वह तो मिट्टी की, धूल की है। उसका अभिमान—हम पैसेवाले, हम लड़केवाले, हम कीर्तिवाले। धूलवाला है तू। छोड़ दे ऐसा गर्व, कहते हैं। यदि तुझे आत्मज्ञान चाहिए हो और आत्मा का दर्शन करना हो तो उनका गर्व छोड़ दे, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। जुगराजजी! आहाहा! कठिन भाई! ऐई.. जेचन्दभाई! मेरा भाई ऐसे बढ़ गया और मैं घट गया, ऐसा नहीं आता उसमें। यह बराबर में वापस यह आता है। कोई

धूल में बढ़ गया और कोई धूल में घट गया, यह आत्मा में नहीं आता। ए... मोहनभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा में नहीं आवे परन्तु याद तो आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : याद अर्थात् ज्ञान आवे। याद आवे उसमें ज्ञान आवे, उसमें यह मेरा, उसके कारण बड़ा और उसके कारण छोटा, यह आया कहाँ से? जड़ के ढ़ेर से आत्मा बड़ा? या अनन्त गुण सम्पन्न है, इसलिए बड़ा? आहाहा! समझ में आया? अनन्त गुण, अनन्त आनन्दमय है, इसलिए बड़ा। उसके बदले इससे बड़ा, उसे आत्मा की दृष्टि होगी नहीं। आहाहा! यह बाह्य अर्थात् यह आत्मा को मानना हो, वह माने।

यहाँ तो वीतराग परमेश्वर कहते हैं कि जिसे आत्मा मानना हो तो यह माना जाये। मानो, नहीं तो भटकता है अनादि से, भटक। उसमें कहाँ हमारे यह कहना है भटकने का? भटक ही रहा है तू। भटकने का तो आता है भटकते हुए। जुगराजजी! जुगराजजी कहे, भाई! हमारे तो चार गति के दुःख रहित की बात करनी हो तो करना, दूसरी नहीं करना। साधु के पास गये थे। हमारे चार गति के दुःखरहित की बात है? एक बात चाहिए, हमारे दूसरी चाहिए नहीं अब। चार गति में देव हो और राजा हो या धूल हो, उसमें आत्मा को क्या? सब दुःखी हैं, दुःख के सरदार सब भिखारी हैं। राजा भिखारी, पैसावाला भिखारी, भोगी के भोग के अर्थी भिखारी। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान यहाँ तो तीर्थंकरदेव कहते हैं कि तुझे आत्मा, आत्मा तू कौन है, उसे तुझे देखना है या नहीं? यह तू कौन है, उसे तुझे जानना है या नहीं? यह सबको जान जानकर पूरा काल निकाला। यह आयेगा, समझे न? दूसरे में आयेगा। यह ११५ में आयेगा। '**दृष्टश्रुत**'। समझ में आया? आहाहा! भाई! यह ऋद्धि का गर्व छोड़, मद अभिमान छोड़ दे। वह तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे आत्मा चाहिए हो, जो अनन्त काल में इसने आत्मा को देखा और माना नहीं। तो वह आत्मा कैसा है? कि अन्तर में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त बल का भरपूर पूरा तत्त्व भगवान आत्मा है। तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा कहा है। जिसने यह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन से भरपूर भगवान ऐसे आत्मा की जिसे श्रद्धा करना अर्थात् धर्म करना हो, उसे ऋद्धि का गर्व छोड़ देना चाहिए।

अर्थात् कि हम यह पाँच, पचास लाख के आसामी हैं और हमारा शरीर रूपवान है और मेरे स्त्री, पुत्र अच्छे हैं और मेरे लड़के बड़े....

मुमुक्षु : अच्छे हों तो अच्छा न कहे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं, लड़के भी कब इसके थे ? वह तो धूल की पर की चीज़ है।

यहाँ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा कहते हैं कि जिसे आत्मा की ऋद्धि का भाव चाहिए हो, आत्मा अनन्त ज्ञान का धनी परमात्मा, उसकी श्रद्धा, ज्ञान करना हो अर्थात् जिसे सम्यग्दर्शन करना हो, प्रथम में प्रथम धर्म करना हो, उसे क्या करना ? कि उसे यह स्त्री, पुत्र, पैसे, धूल-धाणी धमाका, इनका अभिमान पहले छोड़ देना, ये मेरे हैं—ऐसा छोड़ देना। बहुत बात आयी यह तो पहली सीधी। ऐई ! ऋद्धि का गर्व छोड़ दे। वह तेरी चीज़ नहीं। तेरी चीज़ तो राग-द्वेष भी हो, वह नहीं और अल्पज्ञ पर्याय प्रगट अल्प अंश में विकास दिखाई दे, उतना भी तू नहीं। तू तो अनन्त ज्ञान का धनी अन्दर आनन्दकन्द से भरपूर है। समझ में आया ?

अभी दृष्टान्त दे गये न पीपर का। पीपर के दाने में जैसे चौसठ पहरी चरपराई भरी पड़ी है अन्दर पूरी और हीरा रंग भरा पड़ा है पूरा एक-एक पीपर में, वह पीपर का वास्तविक रूप है, स्वरूप है। समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप शरीर, वाणी तो नहीं, पुण्य-पाप नहीं, वर्तमान अल्पज्ञ पर्याय दिखाई दे विकास का क्षयोपशमभाव ज्ञान, दर्शन का, इतना भी नहीं। अन्दर में भगवान सर्वज्ञ ने देखा हुआ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त बल और अनन्त आनन्द—ऐसा परमस्वरूप, ऐसा परमात्मा तू है। आहाहा ! मनसुखभाई ! यह है परमात्मा तू है। उसकी तुझे दृष्टि करनी हो और श्रद्धा—समकित करना हो तो इस ऋद्धि का गर्व छोड़ दे पहले। ये मेरे, मेरे। धूल में भी तेरे नहीं एक भी। तेरे हों वे भिन्न नहीं होते, भिन्न हों वे तेरे नहीं होते। आहाहा !

ऋद्धि का गर्व, रसायन का गर्व अर्थात् पारा वगैरह आदि धातुओं के भस्म करने का मद,... होता है न। हमको यह भस्म बनाना आता है। मोती की भस्म, सोना की भस्म, धूल की भस्म लोहे की। भस्म, वह तो धूल की है। उसका अभिमान, उसका अभिमान छोड़ दे। **अथवा नौ रस के जानने का गर्व,...** हमको शृंगाररस आता है,

हमको अद्भुतरस आता है, हमको दूसरे को फलाना आता है, वह मद छोड़ दे। भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द प्रभु है, उसकी तुझे धर्मदृष्टि करनी हो, सम्यग्दर्शन करना हो तो इनका मद छोड़। यह मद छोड़े बिना निर्मानी भगवान अनन्त आनन्द का कन्द, उसकी श्रद्धा तुझे होगी नहीं।...भाई! क्या करना इसमें बाहर की होशियारी? आहाहा! यह कवि का मद, लो! कनुभाई आये हैं। रतिभाई आये नहीं? आये हैं? कहाँ हैं? ठीक। समझ में आया इसमें? क्या कहते हैं? यह तो कवि, इसलिए याद आये।

कहते हैं **कवि-कला का मद...** छोड़ दे, आत्मा में वह चीज़ है ही नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने परम आत्मस्वरूप देखा है अन्दर। तेरी चीज़ अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन ऐसे बेहद आनन्दवाला आत्मा देखा है। उसमें यह पर के अभिमान करने से उस आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान धर्म होगा नहीं। आहाहा! **वाद में जीतने का मद,...** यह तो अब शास्त्र की आयी, उस ऋद्धि का निकाल डाला। स्त्री, पुत्र, पैसा, धूल-धमाका, उसका अभिमान निकाल डाला, नौ रस को जानने का अभिमान निकाल डाला। यह धातु को भस्म करने की शक्ति और कला हमको आती है। यह कारखाना की कला होती है या नहीं सब? उसे अभिमान हो कि हमको कारखाना आता है, कैसे चलाना, कैसे नहीं। मर गया तेरे अभिमान में, सुन न अब।

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान का धनी अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर तत्त्व आत्मा है। जैसे पीपर में चरपराई और हरापन भरा हुआ है अन्दर में तो चौंसठ पहरी चरपराई प्रगट होती है। वह प्रगट कहाँ से होती है? अन्दर में पड़ी हुई है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में अनन्त ज्ञान, आनन्द पड़ा हुआ है, उसमें से केवलज्ञान और केवलदर्शन और आनन्द प्रगट होता है। ऐसा यह आत्मा जिसे अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है आत्मा में अन्दर, हों! भगवान वर्तमान में। ऐसी जिसे श्रद्धा, ज्ञान आत्मा का करना हो, उसे यह कवि का मद, वाद में मद (छोड़ देना चाहिए)। बातें करते-करते अपनी अधिकाई रखने का मद होता है। बोलचाल में भी जरा दूसरे का हीन हो और मुझे कुछ आता है, ऐसी अधिकाई होती है न। वह मद में मर गया, कहते हैं, छोड़े दे अब यह मद। यहाँ तो शास्त्र की बात ली परन्तु लोक में भी ऐसी होती है न, बातचीत करते-करते मानो दूसरे से अधिक हूँ,

अधिक हूँ, मुझे कुछ विशेष आता है, ऐसा जिसे... होता है, वे सब अज्ञान के अभिमान हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि, उस **वाद में जीतने का मद,...** छोड़ दे। वरना भगवान ज्ञानानन्दमूर्ति श्रद्धा में, ज्ञान में नहीं आयेगा। आहाहा! **शास्त्र की टीका बनाने का मद,...** यह शास्त्र की टीका करना मुझे आता है। वह तो विकल्प है और उघाड़ हो तो भी पर सन्मुख का, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह संसार की कला का अभिमान निकालकर शास्त्र की कला का अभिमान छोड़ दे, वरना आत्मा हाथ नहीं आयेगा। आहाहा! मलूकचन्दभाई! कहते हैं, अरे! यह शास्त्र की टीका, कौन टीका करे? वह—भाषा तो जड़ की पर्याय है। शास्त्र होता है, वह मिट्टी की पर्याय है (अर्थात्) परमाणु पुद्गल की पर्याय है। तीन काल में नहीं किया जा सकता। शब्दों की यह भाषा उठे, उसे आत्मा नहीं कर सकता। वह तो जड़ मिट्टी है, आवाज उठे वह रजकण की उठती है। क्या आत्मा में है रजकण यह ध्वनि? ध्वनि तो जड़ है, भटकता है। आत्मा अरूपी है, उसमें वाणी कहाँ से आयी? वाणी तो अन्दर जड़ से उठती है। बिल्कुल कर नहीं सकता तीन काल में। मनसुखभाई! क्या होगा? ... दुकान का ध्यान रखते थे बराबर। बाबूभाई! बहुत कहा था एक बार तो ऐसा झपटा था बराबरी का। किया, धूल भी कर सकता नहीं, परन्तु उसका अभिमान नहीं छोड़ता। क्यों नटु! अब नटु के सिर पर आया आज है सब।

कहते हैं कि जगत के रजकण का एक परमाणु का फेरफार करने के लिये आत्मा तीन में समर्थ नहीं है। क्योंकि जैसे ईश्वर जगत का कोई कर्ता नहीं, वैसे आत्मा जड़ रजकण का फेरफार करने की सामर्थ्यवाला है नहीं। समझ में आया? यह सब सारे काम करना, दुकान की व्यवस्था करना, प्रभुभाई! यह बहुत करते थे वहाँ। वहाँ से फिर यहाँ वड़ोदरा आये। क्या होगा यह? ऐ... नटुभाई! आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा, ओहोहो! बेहद आनन्द से भरपूर तू है न भाई अन्दर में। जैसे शक्कर में मिठास भरी है, जैसे बर्फ में शीतलता भरी है, वैसे भगवान आत्मा में अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का रस भरा है। उसकी यदि तुझे श्रद्धा, ज्ञान और धर्म करना हो तो सम्यग्दर्शन, तो यह सब अभिमान को छोड़े बिना धर्म होगा नहीं। आहाहा!

कठिन बातें! कैसे होगा इसमें? कालीदासभाई! सुनते हैं या नहीं? अब कान नहीं और दूर बैठे हैं। उन्हें कान नहीं। कहो, समझ में आया?

शास्त्र की टीका बनाने का मद, शास्त्र के व्याख्यान करने का मद,... पाँच-पाँच लाख में हम ऐसा भाषण देते हैं, लोग रंजन (हो)। धूल में भी नहीं, सुन न, भाषा जड़ है। क्या तुझसे भाषा होती है? आहाहा! यह तो रजकण की ध्वनि उठती है, उसे आत्मा कर सकता है? आत्मा करे तो जब बोलना चाहे गूँगा होकर ऊं... ऊं करे तो नहीं बोला जाता। जड़ है वह तो। बोलने की क्रिया वह जड़ की है, आत्मा की नहीं। आहाहा! जुगराजजी! यह मद छोड़ दे। हमको समझाना आता है लाखों लोगों को। एक घण्टे व्याख्यान करें (तो) लाखों रुपये के ऐसे ढ़ेर करा दें। पैसा दान, दान। सच्ची बात होगी? धूल में दिलावे नहीं। एक व्यक्ति—साधु कहता था कि हमारे पास पैसा नहीं परन्तु पैसा करोड़ों रुपये खर्च करवाते हैं लोगों से। धूल भी खर्च नहीं कराते। तुझमें क्या ताकत है? वह तो उसके पैसे वहाँ से जाने के हो तो जाये। क्या दूसरा कोई तेरे व्याख्यान और तेरे उसके द्वारा वह पैसा खर्च कर सकता है? समझ में आया? आहाहा! बहुत उल्टा परन्तु इस जगत से। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव कहते हैं कि, भाई! यह व्याख्यान जड़ की क्रिया है। हमको व्याख्यान करना आता है और हमको दुनिया को रंजन करना आता है, यह सब अभिमान महापाखण्ड हैं। आहाहा! ऐ जुगराजजी! यह तो सबका पानी उतार दे ऐसा है।

ये चार तरह का शब्द-गौरव-स्वरूप... यह शब्द का गौरव—अभिमान। शब्द का अभिमान कवि का, वाद का, शास्त्र का और व्याख्यान करने का, उस टीका का। **इत्यादि अनेक विकल्प-जालों का त्यागरूप प्रचण्ड पवन...** देखो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा बेहद आनन्द की मूर्ति प्रभु है, उसमें ऐसे मद के त्यागरूपी पवन, ऐसे विकल्प के त्यागरूपी पवन। है? **उससे प्रज्वलित हुई (दहकती हुई) जो निज शुद्धात्मतत्त्व के ध्यानरूप अग्नि की कणी है,...** भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर पड़ा है। उसमें एकाग्र होना, वह ध्यान की अग्नि कहलाती है, ध्यानरूपी अग्नि। और उस मद का त्याग, विकल्प का त्याग, उसे पवन कहा जाता है। उस अग्नि से... कहते हैं न कि ला वहाँ वा। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने स्वरूप

की अन्तर में एकाग्रता के ध्यान की अग्नि में वे बाहर के विकल्प जो हैं अभिमान के, उनका अभाव करके, उनका पवन और एकाग्ररूपी अग्नि, उसरूपी समाधि, उसरूपी धर्मध्यान। लो!

उस धर्मध्यान से **जैसे वह अग्नि की कणी काठ के पर्वत को भस्म कर देती है,...** अग्नि का कण भी विशाल लकड़ी के पर्वत को जलाकर भस्म कर देता है। विशाल घास के ढ़ेरों को एक दियासलाई की कणी सुलगाकर राख कर डालती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनन्द के अन्तर में एकाग्र होना और इस विकल्प जाल का त्याग होकर अन्दर में स्थिर होना, ऐसी ध्यान की अग्नि का कण, वह अग्नि जैसे लकड़ी के पर्वत को जलाती है, इसी प्रकार यह ध्यानाग्नि का कण कर्म के विशाल ढ़ेर को जलाकर राख कर डालता है। समझ में आया? लो! यह निर्जरा कही, निर्जरा। कितने अपवास से निर्जरा होती होगी? धूल में भी नहीं होती, सुन न! वह तो सब लंघन है। भगवान आत्मा, उप अर्थात् अपना स्वरूप शुद्ध है, उसके समीप में एकाग्र होने पर... समझ में आया? जुगराजजी! यह गजब बात आयी, भाई! चिदानन्दस्वरूप ज्ञानानन्द भगवान आत्मा अकेला आनन्द का पर्वत आत्मा है। पुण्य-पाप के विकल्प का जरा अभाव करके वह पवन और स्वरूप में एकाग्रता, वह अग्नि। वह समाधि, वह एकाग्रता समाधि की अग्नि से आठों कर्म अथवा उस प्रकार के कर्म का नाश होता है। इसके अतिरिक्त कोई कर्म का नाश करने का उपाय भगवान ने कहा नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात। कितनों को तो नयी बात सुनते हुए लगे, मानो यह वीतराग की बात होगी? वीतरागमार्ग में ऐसा होगा? यह वीतराग कहते हैं। समझ में आया? प्रवीणभाई! परन्तु निवृत्ति कहाँ यह दुनिया के पाप के धन्धे के कारण। ऐ... नटु! कहाँ गया हसमुख? निवृत्ति कहाँ है इसमें? सुनने के लिये सुनने की निवृत्ति नहीं होती, अभी समझना तो बाद में रहा। आहाहा!

भगवान त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतरागदेव जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक जाने हैं। ऐसे परमात्मा कहते हैं कि, हे आत्मा! तेरा परमस्वरूप अन्दर आनन्दकन्द है न, भगवान! उसमें तुझे एकाग्र होना हो तो उस विकल्प की जाल को जरा हटा दे और स्वरूप में श्रद्धा, ज्ञान द्वारा एकाग्र हो, कर्म का

नाश होगा। सम्यग्दर्शन द्वारा आठ कर्मों का (नाश हो जायेगा)। ... आठ कर्म मेरे नहीं, राग मेरा नहीं, मेरा परम स्वरूप वह मैं हूँ, ऐसा तुझे दृष्टि में आयेगा। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **अर्थात् जन्म-जन्म के इकट्ठे किये हुए कर्मों को...** जन्म अनन्त, जन्म करते विकार किये और कर्म किये। **आधे निमेष में नष्ट कर देती है,...** आधे निमेष— ऐसे आँख में आधा (पलकारा हो) इतने में भगवान अन्दर एकाग्र हो सम्यग्दर्शन में। समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, वह अन्तर स्वरूप में अन्तर वस्तु है, उसमें अन्तर आत्मा की पर्याय द्वारा अन्तर एकाग्र हो तो कहते हैं, आठों कर्म का नाश एक क्षण में करने की उसमें सामर्थ्य है। पहले दृष्टि सम्यक् होने पर आठों कर्म और राग मुझमें नहीं, ऐसे दृष्टि से भस्म किये। पश्चात् स्वरूप में स्थिर होने पर वह सब सम्बन्ध निमित्तरूप से है, वह भी नहीं रहता। उसे अन्तर्मुहूर्त में परमात्मा शक्तिरूप से स्वयं है, वह व्यक्तरूप से पर्याय में परमात्मा अरिहन्तरूप हो जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसी शुद्धात्म-ध्यान की सामर्थ्य जानकर... ऐसी शुद्ध आत्मध्यान की। देखा? शुद्ध आत्मा भगवान। यह कर्म शरीर तो जड़ मिट्टी पर है, यह तो धूल है, वाणी धूल है। अन्दर पुण्य-पाप का विकल्प उठे, वृत्तियाँ उठती हैं, वह विकार आस्रवतत्त्व है। उससे भिन्न भगवान पूर्ण ज्ञान-आनन्द से भरपूर उसकी एकाग्रता का ध्यान, उसकी इतनी सामर्थ्य है। जानकर... उसके ध्यान का इतना सामर्थ्य है, ऐसा जानकर। **उसी ध्यान की ही भावना सदा करनी चाहिए।** अन्तर की एकाग्रता की भावना बारम्बार करनी चाहिए। ओहोहो! समझ में आया? इसका नाम धर्मध्यान। धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव, उसका ध्यान अर्थात् एकाग्रता। पुण्य-पाप के विकल्प राग, वह विकार। शरीर, वाणी, कर्म तो धूल पर सब। उसका लक्ष्य छोड़कर अपने स्वरूप की एकाग्रता करना, उसे भगवान धर्मध्यान कहते हैं। वह धर्मध्यान कर्म के नाश का उपाय है। समझ में आया? कौन कहता होगा ऐसा? जैन परमेश्वर होंगे? हमने तो ऐसा सुना नहीं था। अपवास करना, कन्दमूल नहीं खाना, रात्रिभोजन नहीं करना... ऐ.. मलूकचन्दभाई! भाई! यह सब बातें राग मन्द विकल्प की सब बातें हैं। भगवान आत्मा का जो श्रद्धा और ज्ञान है, वह तो

राग के विकल्परहित आत्मा की एकाग्रता करना, वह धर्मध्यान कहलाता है। उसे भगवान ने धर्म का ध्यान कहा है। बाकी पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उसमें एकाग्र होना, वह आर्तध्यान और रौद्रध्यान है। समझ में आया? दुकान में कौनसा ध्यान होगा? रौद्रध्यान पाप। पैसा प्राप्त करे और धूल प्राप्त करें, यह करना। दूसरा क्या है? यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, भक्ति के परिणाम पुण्य हैं, वह भी अभी धर्मध्यान नहीं, वह विकल्प है, राग है।

मुमुक्षु : वह कौन सा ध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लेना, परमार्थ से आर्तध्यान में। ऐई! बापू! मार्ग वीतराग का 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली चौदहवें जिनवर की चरणसेवा...' वीतराग का मार्ग कोई अन्तर अनन्त काल में इसने देखा नहीं। एक सेकेण्ड सुना नहीं, सुना नहीं इसने। सुने तो इसे यथार्थ रुचि हो जाये, रुचि होने पर इसे मार्ग हाथ लग जाये, परन्तु सुना नहीं। यह तो बाहर की बातें धूलधाणी-धमाका। अनन्त काल ऐसा का ऐसा व्यतीत किया परन्तु वस्तु की स्थिति समझने का इसने प्रयत्न नहीं किया। कहो, समझ में आया इसमें? प्रसन्न हो ऐसा है आत्मा इसमें। इसमें ही प्रसन्न हो ऐसा है। धूल में क्या था वहाँ? क्या पूछा, समझ में आया? बारातियों में प्रसन्न हो ऐसा है? मैंने कहा, प्रसन्न हो ऐसा यही है, धूल में भी नहीं वहाँ सब। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो आत्मराजा की बारात है। उसकी स्वरूप की एकाग्रता करना, यह उसके बाराती हैं। बाकी सब धूलधाणी और वा, पाणी। समझ में आया? आहाहा!

भगवान शिक्षा करते हैं, भगवान परमात्मा शिक्षाण करते हैं, हे भगवान आत्मा! जैसी मेरी शक्ति है, वैसी ही तुझमें शक्ति पड़ी है। मैंने मेरी शक्ति में से उकेल करके पर्याय निकाली है अवस्था परमात्मा की, कहीं बाहर से आयी नहीं। कुएँ में था, वह पानी हौज में आया है; उसी प्रकार अन्दर में वस्तु पड़ी है, उसमें से पर्याय में केवलज्ञान और आनन्द आता है। ऐसा आत्मा तेरा अन्दर में है, उसे अन्तर एकाग्र हो और बाहर की क्षणिक एकाग्रता छोड़ दे तो तुझे आत्मा का ध्यान होने से सम्यग्दर्शन होगा और सम्यग्ज्ञान होने से तुझे धर्मकला हाथ में आ जायेगी और उस धर्मकला द्वारा कर्म नाश होंगे, दूसरे प्रकार से नाश हों, ऐसा नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ३, शनिवार, दिनांक - ११-१२-१९६५
गाथा - ११५, ११६ प्रवचन - ७३

गाथा - ११५

परमात्मप्रकाश ११५ गाथा। **आगे हे जीव, चिन्ताओं को छोड़कर शुद्धात्मस्वरूप को निरन्तर देख, ऐसा कहते हैं—**

११५) मेल्लिवि-सयल अवक्खडी जिय णिच्चिंतउ होइ।
चित्तु णिवेसहि परमपए देउ णिरंजणु जोइ॥ ११५॥

अन्वयार्थ :- हे जीव... जीव किसे कहते हैं? कि आत्मा अनन्त ज्ञान, आनन्द स्वरूप से भरपूर तत्त्व, उसे यहाँ जीव कहते हैं। यह जीव है जीव, इसमें अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति से भरपूर वह आत्मपदार्थ-वस्तु है, उसे यहाँ जीव कहते हैं। समझ में आया? **हे जीव! समस्त चिन्ताओं को छोड़कर...** प्रभु! तुझमें अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, तू अतीन्द्रिय आनन्द की नित्यानन्द मूर्ति है। तू दूसरी चिन्ता-शुभाशुभराग के विकल्प छोड़कर **निश्चिन्त होकर...** इन विकल्पों की चिन्ता को छोड़कर, **अपने मन को...** अपनी ज्ञान की दशा को **परमपद में धारण कर...** यह परमानन्दमूर्ति आत्मा है, उसमें दृष्टि लगा, तुझे अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होगा। समझ में आया?

सुख कहीं बाहर नहीं। पैसा, स्त्री, पुत्र, इन्द्रपद धूल में कहीं आत्मा का सुख नहीं। सुख है आत्मा में, अन्दर पड़ा है, उसकी इसे खबर नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द की कातली है। जैसे गन्ने में अकेला रस पड़ा हो रस, वह रस अलग और छिलका अलग। उसी प्रकार पुण्य-पाप के विकल्प वे छिलके अलग हैं और आत्मा आनन्दरस से भरपूर वह तत्त्व अत्यन्त विकार के विकल्प से भिन्न तत्त्व है। समझ में आया? तुझे सुख चाहिए हो तो वहाँ दृष्टि लगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सुख कहो या धर्म कहो, दोनों एक चीज़ है, हों! धर्म अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तुझे चाहिए हो तो वह

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है, तू ऐसा है, उसमें चित्त को जोड़।

निरंजनदेव को देख। यह भगवान निरंजनदेव विकल्परहित, मन, वाणीरहित चीज़ है। उसे अन्तर में दृष्टि लगाकर उसे तू मान अथवा देख अथवा अनुभव कर। इसका नाम धर्म है और इसका नाम आनन्द का अनुभव है। बहुत संक्षिप्त। बाहर भटके, मानो यहाँ से धर्म होगा, यहाँ से होगा, यहाँ से होगा। समझ में आया? परम अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति वह स्वयं पर्वत-अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत आत्मा है। कैसे बैठे? यहाँ जहाँ-तहाँ धूल में और पैसे में, स्त्री और पुत्र और... आगे कहेंगे, इन्द्र को करोड़ों इन्द्राणियों में सुख नहीं, वह राग का विकल्प, वह दुःख है। उससे विजात—दूसरी जाति भगवान आत्मा वस्तुरूप से अनन्त आनन्द की मूर्ति आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। शरीर, वाणी, मन वह नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प भाव उठें, वह कहीं आत्मा नहीं। ऐसा भगवान आत्मा... अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान ने केवलज्ञानी प्रभु ने जैसा आत्मा अपना देखा और अनुभव किया, वैसा ही आत्मा तेरा है, उसे तू अन्तर दृष्टि लगाकर अनुभव कर। यह चार गति के दुःख को मिटाने का उपाय है और आनन्द आत्मा को सच्चिदानन्द स्वभाव की प्राप्ति का यह कारण है। ऐसी बात है।

भावार्थ :- हे हंस,... अर्थकार ने जरा हंसरूप से बुलाया है। पाठ में जीव है। क्योंकि विवेक करना है न विवेक, इसलिए हंस कहा। हंस है, वह दूध और पानी इकट्ठे होने पर भी हंस की चोंच में खटास है, वह दूध में जहाँ चोंच डाले, वहाँ दूध की पपड़ी हो और पानी पृथक् पड़ जाये। उसी प्रकार यहाँ आत्मा को कहते हैं कि हे हंसला! तुझमें ज्ञान की विवेक शक्ति पड़ी है। उससे कहते हैं... देखो! **देखे, सुने और भोगे हुए भोगों की वांछारूप खोटे ध्यान...** जितने भोग देखे हों, जितने भोग सुने हों और भोगे हों। उन सब भोगे हुए भोगों की वांछा—उनकी जो इच्छा। यहाँ अनुभव का भोग बतलाना है न। विषय की वांछा के या पुण्य-पाप के विकल्प या सुने, देखे, अनुभव किये, ऐसे भोगों की जो वांछा, वह वांछा जाती है पर की ओर, वह दुःखदायक है।

ऐसे **खोटे ध्यान आदि सब चिन्ताओं को छोड़कर...** भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सत्... सत्... सत्... सत्... शाश्वत् चिदानन्द ज्ञान और आनन्द का जिसका अन्तर रूप है, उसने कभी उसकी नजर और प्रतीति अनुभव किया नहीं। शुभ

और अशुभ चिन्तायें दया और दान, व्रत और भक्ति, काम और क्रोध के विकल्प, यह सब पुण्य-पाप के जाल विकार। ऐसे पाँच इन्द्रिय के भोगों की कल्पना, वह सब विकार भाव, वह दुःखरूप, दुःखरूप दशा है। वह वस्तु के स्वरूप में नहीं, इसने नयी खड़ी की हुई विकारी दशा है। कहते हैं, अरे... आत्मा! मुश्किल से अनन्त काल में ऐसा मनुष्य देह तुझे मिला। अब जन्म-मरण को टालने के काल में यह तेरे आत्मा की चिन्ता तो कर, दूसरी चिन्ता छोड़। समझ में आया? चिन्ता शब्द से आत्मा की एकाग्रता।

कहते हैं **चिन्ताओं को छोड़कर अत्यन्त निश्चिन्त होकर...** भगवान पर की विकल्प की जाल से निश्चिन्त हो। **अपने चित्त को...** अपने चित्त को—मन को ऐसे झुका। **परमात्मस्वरूप में स्थिर कर।** परमात्म अर्थात् परम-आत्म, परम-आत्म अर्थात् परमस्वरूप। अपना स्वरूप ही परम अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान से भरपूर, वह अपना स्वरूप ही परम स्वरूप है। वस्तु परमस्वरूप से भरपूर ही है, ऐसा स्वयं ही परमात्मा है। समझ में आया? ऐसा परम आत्मस्वरूप, परम आत्मस्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द से भरपूर भगवान पूर्णानन्द की... पूर्णानन्द की पाट है। बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं, दाल बिना चले नहीं, स्त्री बिना चले नहीं, इज्जत बिना चले नहीं, पैसा बिना चले नहीं, मकान बिना चले नहीं। कितना भिखारी परन्तु, रंक, वह रंक है न बड़ा रंक। इसे इसके बिना चले नहीं, इसके बिना चले नहीं, इसके बिना (चले नहीं)। मेरे बिना चले। मेरा स्वरूप शुद्ध चिदानन्द है, उसके बिना इसे चले। जुगराजजी! आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा स्वयं है, उसके बिना चले, (परन्तु) इसके बिना नहीं चले। गजब बात है न इसकी! अनादि से भटककर मरा। समझ में आया? कहते हैं कि भाई! एक बार परम स्वरूप में दृष्टि दे, भाई! यह सब विकल्प के जाल, जिसमें दुःख के जाल में, जैसे मकड़ी जाल निकालकर फँसती है न, भगवान! तूने पुण्य-पाप का जाल खड़ा करके तू फँस गया है। उस दुःख के जाल में फँस गया, तुझे तेरी खबर नहीं। समझ में आया?

ऐसे **स्थिर कर। उसके बाद...** उसके बाद, उसके बाद तो एक शब्द है, हों! पाठ में है। अनन्तर और क्या है? दो शब्द है। '**पश्चात् किं कुरु**' ऐसा भी है और '**तदनन्तरं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्म**' ऐसे दो शब्द पड़े हैं संस्कृत में। अर्थात्? देखो भाई! यह तो

बात ऐसी है, मूल धर्म की बात है, मूल धर्म। 'मूल मारग सुन लो जैन का रे, कर वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सुन लो जैन का रे... परमेश्वर सर्वज्ञदेव जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल, तीन लोक (जाने, ऐसे) ज्ञान की शक्ति का विकास पूर्ण हो गया। वीतरागी परम आनन्द की पर्याय पूर्ण हो गयी, उसमें ज्ञान भी पूर्ण हुआ, उसमें देखा कि, भाई! तू आत्मा मेरी जाति का इतना है, हों! समझ में आया? इस आत्मा में अनन्त-अनन्त बेहद (शक्ति है)। इतना क्षेत्र है, ऐसा न देख। उसके स्वभाव के सामर्थ्य में अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द पड़ा है। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु को दूसरी चिन्तायें विकल्प की (छोड़कर देख)। किसकी किसकी, कहेंगे।

भावकर्म,... भावकर्म—पुण्य-पाप के विकल्प अर्थात् भावकर्म। शुभ-अशुभ राग, उसे भावकर्म, मलिन विकल्प कहते हैं। **द्रव्यकर्म,...** अन्दर जड़ कर्म आठ हैं मिट्टी, उन्हें लक्ष्य में से छोड़कर। **नोकर्मरूप...** यह शरीर और यह वाणी जड़ मिट्टी, इनका लक्ष्य छोड़कर **अंजन से रहित...** इस मैल से रहित भगवान अन्दर है, कहते हैं। **जो निरंजनदेव...** निरंजनदेव प्रभु तू है, कहते हैं। ओहोहो! निरंजनदेव है तू। अब इसे कैसे बैठे यह बात? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ परमेश्वर वीतराग जिनेश्वरदेव फरमाते हैं। भाई! तू अंजन—पुण्य-पाप के राग मैल, कर्म मैल और शरीर, वाणी सब पर, उन सब अंजन—मैल से रहित तेरा तत्त्व अन्दर है, भिन्न है। कभी अन्तर नजर करने, उसके माहात्म्य को सेवन करने यह निवृत्त हुआ नहीं। समझ में आया? शशीभाई! आहाहा! इसने सब कचरा उठाया। हिम्मतभाई! विकल्प किये, शुभ और अशुभ की चिन्ताओं के विकल्प के ढ़ेर जाल, दुःखमय जाल, उसमें मकड़ी फँस गया अनादि से। भगवान! अब तो कुछ सुख का रास्ता ले। ये सब दुःख के रास्ते—पंथ में पड़ा हुआ है तू। समझ में आया?

कहते हैं, अहो! प्रभु निरंजन देव तेरा, उस निरंजन में अंजन कैसा? वस्तु भगवान आत्मा, वह तो निरंजन देवस्वरूप है। साथ में पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वे कहीं आत्मा नहीं, वह तो आस्रव मलिन तत्त्व है। चिन्ता उठे, वह तो आस्रवतत्त्व अर्थात् जिस द्वारा नये आवरण आवें, ऐसा वह तत्त्व है। कर्म अजीवतत्त्व, शरीर, वाणी अजीव—जड़तत्त्व। भगवान निरंजन तत्त्व है। इसी प्रकार ... चिन्तारहित कहना है न।

चिन्ता को छोड़। तो चिन्ता, वह अंजन मैल है। भगवान का अन्तर स्वरूप, अपना निज स्वरूप तो चिन्तारहित निरंजन देव है। आहाहा! ऐसा आत्मा कैसे बैठे इसकी श्रद्धा में? स्त्री सवेरे वे कण्डे बीनना, गोबर लेने जाते हैं न एक गोबर का पोहटा ऐसा हो, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! अरे! कहा, यह वह रंक होकर क्या घूमता है? एक टोकरा भरे ऐसा एक पोहटा हो बड़ा, आहाहा! बड़ा पोहटा... बड़ा पोहटा... क्या है? ढोर की विष्टा। विष्टा है या क्या है वह? गोबर क्या है? ढ़ोर की विष्टा। आहा! अरे, भगवान! ऐसी एक ऐसी चीज़ मिले, आठ-दस वर्ष की लड़की निकले तो आहाहा! ऐ माँ, ऐ माँ (करे)। क्या है परन्तु यह? इसी प्रकार यह भिखारी बाहर का जहाँ पाँच, पचास हजार मिले, लाख, दो लाख मिले... वह यह, वह यह... क्या है परन्तु अब? यह सब विष्टा के पोहटे हैं। ऐ.. जुगराजजी! गजब बात, भाई! यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु तो तू अन्दर विराजता है, भाई! तुझे खबर नहीं, तूने सुना नहीं। तुझे कितना तू यह सुना नहीं तूने। आहाहा! तुझे तूने सुना नहीं कि तू अन्दर कैसा है। रतिभाई!

कहते हैं कि हम तो कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तु कन्द पड़ा है, चिदानन्द प्रभु वह तो निरंजन है। उसमें पुण्य-पाप के विकल्प मन्द राग, शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं। वस्तु, वस्तु में कोई सम्बन्ध नहीं। अन्दर एक समय की दशा में राग-द्वेष विकार और कर्म का सम्बन्ध, ऐसा अन्दर में सम्बन्ध तूने किया है, वस्तु में सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? **परम आराधने योग्य अपना शुद्धात्मा है,...** क्या कहते हैं? अरे! परम आराधनेयोग्य, सेवनयोग्य तो अपना भगवान आत्मा है। बाहर देव-गुरु-शास्त्र आदि भी वह व्यवहार के विकल्प के समय, भक्ति करनेयोग्य कहे जाते हैं, शुभराग के काल में अशुभ से बचने के लिये (कहे जाते हैं)। परन्तु यह परम आराधनेयोग्य तो तेरा देव अन्दर विराजता है, उसे सेवनयोग्य है। स्वयं अपनी सेवा, वह क्यों माहात्म्य आवे इसे? जमुभाई! बापू! प्रभु! तेरे स्वरूप में प्रभुता और परमेश्वरता नहीं हो तो उसकी प्रगट अवस्था के काल में परमेश्वरता कहाँ से आयेगी? समझ में आया?

कहते हैं, अरे! आराधनेयोग्य, सेवनयोग्य तो भगवान! तेरा स्वरूप ही है। पर आराधनेयोग्य, वह शुभ विकल्प के काल में, ऐसा कहा जाता है और वह शुभ विकल्प भी स्वयं आराधनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? परम आराधनेयोग्य कहा है

न ? उसकी पहले पहचान तो कर कि, ऐसा होगा या नहीं ? ऐसा आत्मा हो सकता है या नहीं ? उसके लिये पहले पहलू सत् समागम द्वारा सुनकर निर्णय कर। ऐसा होगा या नहीं ? यह कहते हैं ऐसा हो सकता है या नहीं ? फिर उसकी चिन्ता छोड़कर, विकल्प छोड़कर उसका ध्यान कर, दृष्टि लगा। सम्यग्दर्शन भी स्वरूप की एकाग्रतारूप ध्यान। समझ में आया ?

कहते हैं, आराधनेयोग्य भगवान अपना शुद्ध प्रभु **उसका ध्यान कर।** उसका एकाग्र होकर ध्यान कर भाई ! उसमें तुझे शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होगी। जो शान्ति और आनन्द चक्रवर्ती के और इन्द्र के पद में नहीं। उन सब चक्रवर्ती के पद और इन्द्र के पद में दु:ख की ज्वाला सुलगती है। आहाहा ! समझ में आया ? पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये और यह बड़े बँगले पचास-पचास करोड़ के, यह सब कीड़े सब अन्दर, आहाहा ! घाव इस मोटे घाव में जैसे गुफा में कीड़ी पड़ी हो न, चूहा और नेवला, उसी प्रकार यह बड़े घाव में पड़े हुए नेवला, अन्दर सुलगते हैं राग और द्वेष की जलन अन्दर में है, उसकी इसे खबर नहीं। क्या होगा ? ऐसे दु:खी होंगे सब ? समझ में आया ? कहो, बाईस-बाईस मंजिल के मकान, उसमें ईयळ पड़ी हो मनुष्य। बाईस मंजिल में तो बहुत होंगे या नहीं ? कितने होंगे ? ऐई ! ... आहाहा ! कोई दस लाख के और कोई पाँच लाख और पच्चीस लाख के कीड़े राग-द्वेष के कीड़े सुलग रहे हैं वहाँ, कहते हैं। राग और द्वेष... राग और द्वेष... राग और द्वेष की कल्पना में सुलग रहे हैं। मूढ़ कहता है कि हमको उसमें मजा है। समझ में आया ? आहाहा ! पागलपना, पागल हो गया है, कहते हैं। जहाँ दु:ख है, वहाँ सुख मानता है; जहाँ सुख है, वहाँ सन्मुख देखने को भी निवृत्त नहीं होता। आहाहा !

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का डूंगर / पर्वत आत्मा है। आहाहा ! चखनेवाले की जीभ चाहिए न वापस इसे, या दूसरा चखावे जीभ से ? शक्कर को सुनने से शक्कर का स्वाद नहीं आता, शक्कर का स्वाद लेनेवाले को देखने से शक्कर का स्वाद नहीं आता। शक्कर का स्वाद ले, उसे शक्कर का स्वाद आता है। उसी प्रकार आत्मा की व्याख्या सुने, उसे आत्मा क्या है, उसका स्वाद नहीं आता। आत्मा का स्वाद लेनेवाले को देखे, उससे देखनेवाले को आत्मा का स्वाद (नहीं) आता। आहाहा ! हाथ काम आवे नहीं

वहाँ। मिश्री की डली को हाथ लगाओ तो स्वाद आवे? न्यालभाई! आहाहा! अरे! बापू! तू अकेला आनन्दरस का पिण्ड अन्दर है, हों! परन्तु इसने कहाँ कभी श्रद्धा कहाँ है इसे? इसे विश्वास ही कहाँ है कि मैं इतना हूँ?

मैं तो यह पैसेवाला और स्त्रीवाला, पुत्रवाला और शरीर कुछ रूपवान हुआ हो और धूल... क्या है परन्तु यह तेरा पागलपन? ... उसमें और मोटर हो व्यवस्थित लाख, दो लाख की मोटर क्या कहलाये? वह मोटर नहीं आती ऊँची? ऐई! तुम्हारे है न। अपने को नाम भी आता नहीं। लाया था न यहाँ, नहीं? पूनमचन्द लाया था यहाँ मोटर एक बड़ी एक लाख रुपये की यहाँ लाया था इनका पुत्र। लाख रुपये की मोटर, ओहोहो! क्या है यह वह? वहाँ भी लाया था, तुम्हारा गोवावाला। बेलगाम गये थे न? बेलगाम न? बेलगाम नहीं गये थे? वह शान्तिलाल खुशालदास है न बड़ा, उसके भाई का पुत्र आया था, मणिलाल आया था दर्शन करने बेलगाम। वह एक लाख रुपये की मोटर थी लाल लम्बी। देखो तो, ओहोहो! क्या है परन्तु अब? होली सुलगती है। यह मेरा और तेरा। जो नहीं उसका उसे माने मेरा। जो है अपना, उसे न माने मेरा। अब उसका करना क्या? समझ में आया? और जिसने माना मेरा, उसमें कुछ बिगाड़ हो तो... यह व्यवस्थित करो, स्त्री बिगड़ी, लड़के बिगड़े। अपना माना उसमें कुछ फेरफार हो तो दुःखी हो वह। और उसमें कुछ ठीक हो तो सुख की कल्पना में दुःखी हो। आहाहा! अरे! इसे खबर नहीं, इसे खबर नहीं। समझ में आया? आगे कहेंगे, इन्द्राणी के इन्द्र भी सुखी नहीं, भाई! यह तुझे बाहर में दिखता है ऐसे मानो दो, पाँच करोड़ रुपये हों और धूल हो और लाख, दो लाख की मोटरें दस-बीस हों। भाई! यह तो सुखी है। कहनेवाले का मुँह फट जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी चिन्ता... पैसे अधिक को लेकर दुःखी नहीं, चिन्ता के कारण दुःखी है। समझ में आया? अधिक हों और चिन्ता थोड़ी हो, थोड़े हों और चिन्ता अधिक हो, इसलिए उसका प्रमाण चिन्ता के ऊपर है, वस्तु के ऊपर नहीं। संयोग के ऊपर नहीं, भाव के ऊपर है। समझ में आया? अरे! कहते हैं कि भगवान का ध्यान तो कर। तुझे आर्तध्यान आता है। कहेंगे, हों!

पहले यह कहा था कि खोटे ध्यान को छोड़, सो खोटे ध्यान का नाम शास्त्र में अपध्यान कहा है। खोटे ध्यान को छोड़ और आत्मा का श्रद्धा, ज्ञान, ध्यान कर। तब कहते हैं, खोटा ध्यान कहना किसे? **निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जिन-शासन में...** वीतरागमार्ग में उसे बुरा ध्यान कहते हैं कि **जो द्वेष से पर के मारने का, बाँधने का अथवा छेदने का चिन्तवन करे और रागभाव से परस्त्री आदि का चिन्तवन करे।** पैसा, लक्ष्मी, पुत्र, पुत्रियाँ, स्त्री, पुत्र का राग भाव से चिन्तवन करना, वह सब खोटा—बुरा ध्यान है। समझ में आया? राग और द्वेष। द्वेषभाव से मारना और बाँधना और छेदने की व्याख्या की। रागभाव से स्त्री, कलत्र, पुत्र—लड़के आदि की चिन्तवना कि, ओहो! हमारे। तीन काल में तेरे नहीं। तेरी चीज़ हो, वह अलग रहे नहीं और अलग हो, वह चीज़ तेरी हो सकती नहीं। अनादि का अज्ञानी जिसमें जो स्वयं नहीं, उसमें और वह चीज़ नहीं आत्मा में, उसकी राग से चिन्ता की। पुत्र, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, पैसा, मकान यह चिन्ता, वह आर्तध्यान, आर्तध्यान विशेष उग्र हो तो वह रौद्रध्यान है। दूसरे को बाँधना, मारना आदि, वह रौद्रध्यान है।

उस अपध्यान के दो भेद हैं, एक आर्त दूसरा रौद्र। जिसमें भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के प्राण जिसमें पीड़ित हों। जैसे घानी में तिल पीलते हैं, जैसे घानी तिल पिलते हैं, उसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय मूर्ति आत्मा है, उसे इस विकल्प के जाल में आर्त अर्थात् आत्मा की शान्ति वहाँ पीड़ित होती है। घानी में पिलता है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, उसे इस विकल्प के जाल के ध्यान में—विकल्प पुण्य-पाप शुभाशुभ के (या) यह मारना, छेदना या मेरे पुत्र, मेरी पुत्री, उसमें चैतन्य की शान्ति के आनन्द प्राण का घात होता है। हिम्मतभाई! आहाहा! खबर नहीं होती, खबर नहीं होती। आँखें ओळे गयी, गयी आँख। पीछे गयी, ओळे अर्थात्। समझे? जिसे जहाँ जैसा है, उसे देखना छोड़कर आँखें... देखने की चिन्ता में पड़ा अनादि काल से। एकेन्द्रिय ईयळ, कीड़ा, मकोड़ा से लेकर राजा, रंक और देव। समझ में आया? भगवान आत्मा देह के परमाणु से भिन्न (विराजता है)। आगे कहेंगे, देहदेवल में भगवान विराजता है। अभी कहेंगे। गाथा में कहेंगे। समझ में आया? देव का कहेंगे, हों! आगे कहेंगे कहीं। है न? १२३ में है पीछे।

१२३) **देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।**
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम-चित्ति॥ १२३॥

वह देव नहीं मन्दिर में, देव नहीं मन्दिर में, देव नहीं कहीं... इस चिन्ता के जाल में सुलग गया हुआ, पीछे भगवान विराजता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह चिन्ता... चिन्ता... चिन्ता... यह होली हो गयी, शरीर में यह हो गया और लड़का कमाता नहीं और मुझे ऐसा होता है और ढींकणा होता है, फलाना यह होता है और लड़की ठिकाने पड़े तो ठीक। सुलग गया, जल गया चिन्ता में, ऐसा कहते हैं। उस चिन्ता के पीछे भगवान आनन्दकन्द मूर्ति आत्मा विराजता है, उसकी इसे खबर नहीं। जेचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसारी-फंसारी कैसा? आत्मा संसारी नहीं। कहा न पहले कि आत्मा निरंजनदेव, उसे आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के विकल्प शरीर, स्त्री-स्त्री, वह आत्मा में है नहीं। आत्मा संसारी कैसा? समझ में आया? संसारी अर्थात् भटकनेवाला आत्मा? मिथ्यादृष्टि अज्ञानभाव पुण्य-पाप को अपने मानकर, जगत की चीज़ें जो आत्मा से भिन्न हैं, उनको मानकर अपनी मान्यता से चार गति में भटक रहा है। उस मिथ्याभ्रम के कारण भ्रमणा में पड़ा है। उस आत्मस्वभाव में वह भ्रमणा-फ्रमणा है नहीं। आहाहा! गजब बात भाई! हमारे नीचेवालों को क्या करना? ऐसा। नीचेवाले की बात चलती है यह। समझ में आया? भगवान अन्दर देहदेवल में, इस देहरूपी देवालय में भगवान देव विराजता है अन्दर। समझ में आया?

कहते हैं, उसकी चिन्ता छोड़कर भगवान की अर्थात् एकाग्रता, इस दूसरी चिन्ता में पड़ा, उसके फल में नरक और निगोद में जायेगा, कहते हैं। समझ में आया? नीचे नरक है। बड़े पाप करनेवाले प्राणी नीचे नरक में (जाते हैं)। समझ में आया? सभा भरती है वहाँ नीचे। और यह निगोद के जीव... एक शरीर में अनन्त जीव। जिन्होंने तत्त्व का बहुत विरोध किया, तत्त्व का बहुत अनादर किया, तत्त्व की सेवा छोड़कर पर की विकल्प की बहुत सेवा की। वे मरकर निगोद में जाते हैं। आलू, शकरकन्द में निश्चिन्तता से पड़े हैं वहाँ। समझ में आया? आहाहा! यह स्त्री, पुत्र, पैसे... घर में पाँच

सौ-पाँच सौ नौकर हों। आहाहा! ... राग की होली उठायी तूने, कहते हैं। वह उठा वहाँ। भगवान विराजता है, उसे तू देखता नहीं। वे सब रंक भिखारी पर की इच्छा करे, ऐसा यहाँ कहते हैं। बादशाह आत्मा अन्दर है, उसकी दृष्टि करे, वह बादशाह है। समझ में आया?

इसलिए विवेकियों को त्यागने योग्य हैं। वह हंस कहा था न पहला शब्द। इसलिए हंस जीवों को, विवेकी जीवों को यह पुण्य-पाप के विचार, पर की चिन्तायें छोड़कर आत्मा के ओर की चिन्ता—एकाग्रता करना, वह विवेकियों का कर्तव्य है। भेदज्ञानियों का वह आचरण है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११६

आगे शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा के ध्यान करने पर जो सुख होता है, उस सुख को तीन दोहा-सूत्रों में वर्णन करते हैं—शिवस्वरूप है। शिव अर्थात् निरुपद्रव कल्याणमूर्ति अर्थात् आनन्दरूप। वह आनन्द शिव तो तू स्वयं हैं। वस्तु से, वस्तु से, स्वभाव से शिवस्वरूप ही भगवान आत्मा का स्वरूप है। उसे तीन दोहा में कहते हैं।

११६) जं सिव-दंसणि परम-सुहु पावहि झाणु करंतु।
तं सुहु भुवणि वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणंतु॥ ११६॥

अन्वयार्थ :- जो ध्यान करता हुआ... भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु उसके ऊपर एकाग्रता करता हुआ। अरे! गृहस्थाश्रम में भी समकिती धर्मी जीव अपने स्वरूप की एकाग्रत—ध्यान करता है तब उसे आनन्द आता है। समझ में आया? उसे भले विकल्प आदि हो, परन्तु अन्तर में उसका प्रेम होता नहीं। समझ में आया? कहते हैं, अरे! **जो ध्यान करता हुआ निज शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यन्त सुख है...** देखो! '**शिवदर्शने**'। शिव भगवान आत्मा अन्तर में पूर्ण आनन्द की कातली पड़ी है स्वयं, उसका दर्शन। यहाँ शिव कहा, तब यहाँ चिन्ता कही विकल्प को। चिन्तारहित

चीज़ जो शिव निरूपद्रव भगवान, उसका ध्यान करने से परम सुख (होता है)। अवलोकन से सुख होता है। जिसके अवलोकन से सुख होता है। आहाहा! निर्णय तो करे, पहले निर्णय तो करे। यह सब उल्टे निर्णय में चले जाते हैं। जिसके अवलोकनमात्र से जिसमें आनन्द की तृप्ति बहे, उसे अवलोकता नहीं और यह दूसरे को अवलोककर मर गया अनन्त काल से। आहाहा! समझ में आया?

जिसके **अवलोकन में अत्यन्त सुख है, हे प्रभाकर भट्ट...** शिष्य को गुरु कहते हैं **तू पा सकता है,...** जिसके अवलोकन करने से अनन्त सुख प्राप्त होता है, ऐसा भगवान आत्मा तू है।

मुमुक्षु : अवलोकन अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखना। अ—निश्चय से ऐसा देखना कि यह ऐसा है... उसे देखना अर्थात् अनुभव हो गया वह। भगवान आत्मा 'यह आत्मा' ऐसा देखा तो ज्ञेय ज्ञान में एकाकार हो गया। ज्ञेय वस्तु जो है ज्ञान की पर्याय में एकाकार हो गयी। यह पुण्य-पाप में एकाकार है या नहीं? उसे ऐसे पर को देखने से विकल्प उठावे पुण्य-पाप का, उसमें एकाग्र है, वह दुःख है, जहर है। भगवान आत्मा में ऐसे अवलोकन करने से एकाग्र हो, उसका नाम अमृत और सुख है।

यह तो परमात्मप्रकाश है। ताजा लड्डू बनाकर सीधा रखा है। समझ में आया? कहते हैं, भगवान! तेरे अन्तर स्वरूप को कितना, कैसा है, वह कभी तूने सुनकर उसकी कीमत ही नहीं की। दुनिया की कीमत निकालने बैठा। सोना की यह कीमत है और धूल की यह कीमत है और हीरा की यह कीमत है और माणेक की यह कीमत है। एक कन्या लेने—विवाह करने जाये तो कन्या ऐसी है और रूपवान है और कोमल है और काली है और ढींकणा है और यह है। धूल के साथ धूल की सगाई करने के लिये परीक्षा करे। परन्तु यह भगवान आत्मा अन्दर कौन है, उसका सम्बन्ध करने (के लिये निर्णय नहीं किया कि) यह कौन है यह जीव? समझ में आया?

कहते हैं, उसे तू देख तो, एक बार निर्णय तो कर। यह चीज़ ऐसी भगवान कहते हैं, ऐसा हूँ या नहीं? हो सकता है या नहीं? और न हो सके तो कारण ला। तब क्या

शरीर में तू हो सकता है ? पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उनमें हो सकता है ? इनसे रहित चीज़ है, उसमें अनाकुलता का सुख न हो तो होगा कहाँ ? समझ में आया ? शुभाशुभ विकल्प की चिन्ता जाल, वह आर्तध्यान और दुःखरूप जाल है। तब उस रहित चीज़ है पूरी, उसमें आकुलता नहीं अर्थात् अनाकुल आनन्दस्वरूप ही है वह। आहाहा! समझ में आया ?

कहते हैं, अरे! तुझे सुख होगा, हों! वह तीन लोक में भी जो परमात्मद्रव्य कहते हैं, उसके अतिरिक्त सुख कहीं नहीं। तीन लोक में इन्द्रों में नहीं, चक्रवर्तियों में नहीं, जिसके घर में छियानवें-छियानवें हजार चक्रवर्ती के घर में पद्मिनी जैसी रानियाँ हों, चमड़े के पुतले जिसमें लक्ष्य करने से राग और दुःखी होता है। आहाहा! भगवान पवित्र मूर्ति आनन्दकन्द तू है न! जिसे देखने से तुझे ऐसा सुख होगा कि तीन लोक में कहीं अन्यत्र है नहीं। आहाहा! **तीन लोक में भी परमात्मद्रव्य के सिवाय नहीं है।**

भावार्थ :- शिव नाम कल्याण का है,... देखो! शिव अर्थात् कल्याण। पुण्य-पाप की चिन्ता-विकल्प, वह अकल्याण। उसरहित आत्मा का स्वरूप वह शिव अर्थात् कल्याण। **सो कल्याणरूप ज्ञानस्वभाव निज शुद्धात्मा को जानो,...** कल्याणस्वरूप ज्ञान, ज्ञान, प्रज्ञा, प्रज्ञा। ज्ञान अर्थात् ज्ञानस्वरूप चिदानन्दस्वरूप ऐसा निज शुद्धात्मा, अपना शुद्ध आत्मा, वह कल्याण और शिवस्वरूप जानो। आहाहा! **उसका जो दर्शन अर्थात् अनुभव...** यह व्याख्या की, अवलोकन की व्याख्या की। **अनुभव, उसमें सुख होता है,...** समझ में आया ? है न तीन शब्द '**दर्शनमवलोकनमनुभवनं**' तीन शब्द हैं, संस्कृत में तीन हैं। '**दर्शनमवलोकनमनुभवनं तस्मिन् शिवदर्शने**' आहाहा! यह तो भाई! आत्मा वह परमात्मस्वरूप है, उसकी बात है। इसलिए यह बात जरा ऊँची, महँगी लगे। वस्तु ही ऐसी है वहाँ फिर महँगी, ऊँची कहना किसे ? समझ में आया ? उसे इस प्रयास की पद्धति की खबर नहीं। उसका प्रयास कैसे करना और कहाँ मेरा प्रयास चलता है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया ? सब बी.ए. और एल.एल.बी. के पूँछड़े लगाये और एम.ए. के और एम.ए. के। बड़ा पाँच-पाँच हजार का वेतन और सब भिखारी थोथा हो रहे हैं। हिम्मतभाई! तुम वकील हो या नहीं ? रामजीभाई वकील थे। वह अलग बात है। परन्तु वकील थे न वे ? दो सौ रुपये लेते थे, कोर्ट में जाते थे चार

घण्टे, पाँच घण्टे, वे भिखारी थे या क्या थे? आहाहा!

अरे! भगवान! तुझमें इतना सन्तोष का आनन्द का नशा भरा है, कहते हैं कि एक क्षणमात्र, एक क्षणमात्र जिसकी नजर में, भगवान नजर में पड़ने से अनन्त आनन्द आवे, ऐसा भगवान तू है। यह अनन्त बार यह सब देखा, देखा स्त्री, पुत्र, पैसा, धूलधमाका अनन्त बार। प्रतिकूल, अनुकूल संयोग देख-देखकर मर गया परन्तु कहीं सुख है नहीं। समझ में आया? यह सब पैसेवालों को सुखी कहते हैं न, क्या करना? ऐ... मलूकचन्दभाई! अज्ञानी मूर्ख कहते हैं। कहते होंगे या नहीं तुम्हारे लड़के वहाँ गाँव में—मुम्बई में? बाईस मंजिल बनाते हैं, लो! दो करोड़ रुपये इनके घर में, तीन करोड़े। पूनमचन्द मलूकचन्द। यह उनका पिता, उनका पिता यह। इनके पुत्र का पुत्र वह पूनमचन्द है न। मुम्बई में बाईस मंजिल का बड़ा मकान बनाता है। दो करोड़, तीन करोड़ धूल के कंकड़। दुःखी... दुःखी... दुःखी... दुःखी बेचारा। उसका पिता जाये तो मिलने को फुरसत न हो, वह। है या नहीं? तो यहाँ आत्मा को मिलने निवृत्त कहाँ से हो वह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उसके पिता कहते थे एक बार। वे कहते थे वह मैंने कहा, मेरे घर का नहीं कहा। वह काम करे तो मैं बैठा रहूँ एक ओर। बात करने का समय भी न हो। क्योंकि बहुत लोग आवे। साहेब... साहेब करते आवे। पैसेवाले धूल धणी को। ... कोई पैर छूता हो। धूल में पैर छूए उसमें उसके आत्मा को क्या? यह मेरा और यह बड़ा, यह ममता का विकल्प वह दुःखरूप है। आहाहा! यह भगवान मेरा और मैं उसका, ऐसी दशा और श्रद्धा, वह सुखरूप है। समझ में आया? आहाहा!

शिव नाम कल्याण का है,... कहा न? **वह सुख परमात्मा को छोड़ तीन लोक में नहीं है।** यहाँ तो जरा पाँच हजार का वेतनदार लड़का हो तो ऐसा मैं चौड़ा और गली सकड़ी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पिता को नहीं। तुम्हारे नहीं परन्तु दूसरे को... उस लड़के से बातें करे। सुमनभाई को आठ हजार का वेतन अभी महीने में। अमेरिका में गया है

रामजीभाई का पुत्र। आठ हजार का या दस हजार का कोई कहता है। अपने कहाँ सुनने गये हैं ? छह हजार तो यहाँ थे न, मद्रास थे न। उसमें खबर क्या है ? आठ हजार। आठ हजार महीने का, आठ हजार का वेतन इनके पुत्र को। बाहर में अंक तो अच्छा लगे चालीस वर्ष की उम्र और आठ हजार वेतन। आहाहा! मुख फट जाये लोगों का—मूढ़ जीवों का। आहाहा! क्या है परन्तु अब वहाँ ? ऐ जेचन्दभाई! सच्ची बात है ? प्रकाश को खान में से गहराई में से नरम पत्थर अच्छी निकले न। गहराई से नरम पत्थर अच्छी निकले, सुने वहाँ ऐसा हो जाये कि आहाहा! अच्छी आमदनी होती है, लड़का अच्छा कमाता है। क्या है परन्तु यह सन्निपात ? कहते हैं। जेचन्दभाई! यह सन्निपात किसका लगा है ? कहते हैं। पेट भरने का तो यहाँ कहाँ पेट नहीं भरता ? ममता... ममता... ममता... ममता... भगवान ममत्वरहित चीज़, अरे! तू कभी देखने को, तू तुझे देखने को निवृत्त नहीं। आहाहा! एक रानी जैसी पचास वर्ष से यदि उसमें—पर्दे में हो, क्या कहलाता है ? ओझल में और आज बाहर निकली है, ऐसा कहे तो सब देखने निकले। होवे तो समझने जैसा सब। चमड़े के पुतले हों सब लटकते धूल के। यह आत्मा अनादि से ओझल में पड़ा है, विकल्प के आड़ में कौन है, देखने को कुछ कौतुहलता है ? कौतुहल कहा है न ? भाई! समयसार में कौतुहल कहा है। एक बार कौतुहल तो कर कि यह तत्त्व कौन है ? इतनी-इतनी महिमा चलती है आत्मा की, तो देखने को कौतुहल तो कर। ऐसे... यह क्या है ? ऐसा-ऐसा आत्मा ? जगत की चीज़ बहुत वर्ष से देखी हो और बाहर आयी हो तो एकदम सब देखने निकले। आज रानी साहेब ने ओझल छोड़ा है, घूमने निकले हैं राजा और रानी दोनों। झुण्ड निकले।

कहा था न ? वडिया के दरबार है न, वडिया नहीं वडिया ? वडिया न ? वडिया का दरबार बड़ा होशियार और राजाओं के पुत्र पढ़ने आवे, हों! वहाँ हम गये थे (संवत्) १९९६ में। दर्शन करने... ठीक कहा चलो। महाराज! कुछ व्होरजो। दरबार आये थे, व्याख्यान में सब आये थे। ९६ में। अपने भाई वहाँ रहते हैं न लखुभाई। लखुभाई दीवान थे कामदार। लोग बहुत इकट्ठे हुए थे न। लोग मानो रानी कैसी होंगी ? इसलिए मैं अन्दर गया वहाँ रानी कोठी जैसी मोटी थी। यह लबडतुं यह सब। राजा सुखी व्यक्ति को। कुछ नहीं मिलता। ऐसे भद्रिक महिला। अन्दर गये तब चरण छुए।

लोगों को मोह कितना है, रानी कैसी होगी। खाने, पीने से शरीर ऐसा हो गया, ऐसे लटकता सब खून, खून, खून। नहीं रूपवान, नहीं कोमल, नहीं रंग, नहीं कुछ, परन्तु दुनिया को मोह। यह भगवान ओझल में पड़ा है, उसे देखने को कभी मोह होता नहीं इसे। मोह अर्थात् सावधानी। समझ में आया? कहते हैं, तीन लोक में तुझमें आनन्द है, वैसा तीन लोक में इन्द्र में भी है नहीं।

वह सुख क्या है? जो निर्विकल्प वीतराग परम आनन्दरूप शुद्धात्मभाव है,... सुख की व्याख्या की है। भगवान आत्मा शुद्धात्मा आनन्दमूर्ति को अवलोकने से उसकी श्रद्धा—सम्यग्दर्शन करने से, उसका सम्यग्दर्शन—प्रतीति-श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करने से अन्तर में कैसा सुख होगा? **निर्विकल्प वीतराग परम आनन्दरूप शुद्धात्मभाव है,...** रागरहित वीतरागी शुद्धात्मभाव, उसे सुख कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह शुभ-अशुभ विकल्प की चिन्ता के भाव को रागवाला दुःख कहते हैं। कहो, भीखाभाई! ऐसा आत्मा होगा? कहाँ चला गया? एक व्यक्ति कहे, धुले हुए मूला जैसा कहाँ चला गया? परन्तु तूने कभी देखा नहीं, सुना नहीं, विचारा नहीं कि मैं वह कौन चीज़ हूँ। दूसरे की कीमत आँकने जाये कि फलाने के ऐसी चीज़ है। कीमत आँकनेवाला दूसरे की कीमत करे, परन्तु उस कीमत करनेवाले की कीमत कितनी है? धबो नमः। पाँच-पाँच लाख के हीरा की कीमत करते हैं या नहीं? कितना पानी है उसमें? तुझमें कितना पानी है, कभी देखा?

भगवान आत्मा, ओहो! क्या कहते हैं? वह तो अतीन्द्रिय आनन्द की, पूर्णानन्द रस से भरपूर तत्त्व है। उसे एक क्षणमात्र अनुभव की दृष्टि करने से वह सुख वीतरागी निर्विकल्प परम शुद्धात्मभावरूप दशा प्रगट होती है, उसे सुख कहा जाता है। उसे धर्म कहा जाता है, लो! धर्म उसका नाम है, धर्म कहीं शुभाशुभभाव और पुण्य-पाप भाव, वह कहीं धर्म है नहीं। समझ में आया?

वही सुखी है। देखो! वह सुखी है। कौन? **क्या करता हुआ यह सुख पाता है...** सुख पाता है **कि तीन गुप्तिरूप परमसमाधि में आरूढ़ हुआ ध्यानी पुरुष ही उस सुख को पाता है।** मन, वचन और काया से हटकर, स्वरूप में एकाग्र होकर, एकाग्र जो शान्ति का ध्यान करता है, वह वहाँ सुख को प्राप्त करता है, वह ध्यानी सुख को प्राप्त

करता है। धर्मी धर्म का ध्यान करते हुए धर्म के परिणाम में सुख होता है। ओहो! **अनन्त गुणरूप आत्मतत्त्व के बिना...** .... मूल तो अनन्त अर्थात् देव का नाम है। देव स्वयं अनन्त है। अनन्त अर्थात् जिसका अन्त नहीं, ऐसा तत्त्व, ऐसा। वस्तु स्वयं अनन्त है, ऐसा कहना है। आत्मा को ही अनन्त देव कहा परन्तु फिर उसमें से निकाला, इस आत्मा में अनन्त गुण हैं, संख्या से अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं इसमें। जानना, देखना, श्रद्धा, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, विभुत्व, स्वच्छत्व, कर्ता, कर्म, करण आदि शक्तियाँ ऐसी एक आत्मा में अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं, संख्या से अनन्त। समझ में आया? यह संख्या से एक भगवान आत्मा में अनन्त शक्ति अर्थात् गुण पड़े हैं गुण, गुण; इसलिए उस देव को अनन्त देव कहा जाता है। अनन्त देव तू है भाई! आहाहा!

अनन्त गुणरूप आत्म-तत्त्व के बिना वह सुख तीनों लोक के स्वामी इन्द्रादि को भी नहीं है। अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र हैं, शकेन्द्र हैं। ऊपर सौधर्म देवलोक है, उसका स्वामी है। उसे बत्तीस लाख तो विमान हैं अन्दर में। समझ में आया? वे भी सब दुःखी हैं, परद्रव्य के आश्रय से पराधीन स्वप्न में सुखी नहीं। परपदार्थ के आश्रय की कल्पना, वह कभी सुखी नहीं। समझ में आया? यह इन्द्रादि भी सुखी नहीं। और यदि उन्हें सुख है तो अकेला सम्यग्दर्शन और आनन्द का सुख है, इन्द्रादि के पद का सुख नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया?

यहाँ तो अंक टाँके। इसके पास पाँच लाख और इसके पास दस लाख। दस लाख हो तो उसके पास पचास लाख, चालीस लाख की कमी पाड़े। एक तो कमीवाला हो मानो कारण कि, पाँच लाख की पूँजी कहलाती हो और हो लाख की अन्दर। एक तो चार लाख की कमी हो अन्दर और निभाते हों। उसमें पाँच लाख हो तो वापस उसके पास पचास लाख, यह पैंतालीस लाख की कमी पाड़ी। ... होवे तो ठीक पड़े। कमी मिटती नहीं कभी। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर आनन्द का कन्द जिसमें कमी ही नहीं, कहते हैं, जिसमें कभी कमी आती ही नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान अनन्त गुण का नाथ तीन लोक का स्वामी इन्द्रादि भी सुखी नहीं, ऐसा भगवान सुखस्वरूप है।

इस कारण सारांश यह निकला कि शिव नामवाला जो निज शुद्धात्मा है,... यह भगवान ही शुद्धात्मा शिव है, दूसरा कोई शिव है नहीं। **वही राग-द्वेष मोह के**

त्यागकर ध्यान किया गया आकुलतारहित परम सुख को देता है। यह भगवान ही परम सुख को देता है, दूसरा कोई शिव नाम का परमेश्वर सुख देता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **संसारी जीवों के जो इन्द्रियजनित सुख हैं, वह आकुलतारूप है,...** इन्द्रिय के लक्ष्य से होता भोग का, इज्जत का, कीर्ति का, विकल्प का वह आकुलतारूप सुख है। **और आत्मिक अतीन्द्रियसुख आकुलतारहित है,... आत्मिक अतीन्द्रियसुख आकुलतारहित है, सो सुख ध्यान से ही मिलता है,... 'झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।'** (द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७)।

भगवान आत्मा बाहर की चिन्ता के विकल्प को समेटकर अन्तर में एकाग्र हो वहाँ आनन्द और ध्यान में शान्ति है। वह ध्यान अन्तर में मिलता है, कहीं दूसरे से मिलता नहीं। **दूसरा कोई शिव या ब्रह्मा या विष्णु नाम का पुरुष देनेवाला नहीं है।** कोई शिव होगा शंकर आत्मा को सुख दे। कोई ब्रह्मा दे देवे, विष्णु दे देवे, (ऐसा) है नहीं। तू ही शिव, तू ब्रह्मा और तू विष्णु। **आत्मा का ही नाम शिव है,...** देखो! यह भगवान ही स्वयं कल्याण की मूर्ति आत्मा यह शिव है। स्वयं ही ब्रह्मा है, ब्रह्मानन्दस्वरूप है। विष्णु सबको जानने की सामर्थ्यवाला आत्मा स्वयं है। विष्णु—व्यापक। स्वयं ही विष्णु है आत्मा अनन्त गुण का धनी। ऐसे आत्मा का तू अन्तर्मुख होकर क्षण तो ध्यान कर, एक तो क्षण तो ध्यान कर। तुझे आनन्द आयेगा, ऐसा आनन्द तीन काल में अन्यत्र नहीं है। इसलिए यह परमात्मा आत्मा ही आराधने योग्य है, दूसरा आराधने योग्य है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ४, रविवार, दिनांक - १२-१२-१९६५
गाथा - ११७, ११८ प्रवचन - ७४

गाथा - ११७

परमात्मप्रकाश, पहला भाग।

११७) जं मुणि लहइ अणंत-सुहु णिय-अप्पा झायंतु।
तं सुहु इंदु वि णवि लहइ देविहिँ कोडि रमंतु॥ ११७॥

जो आत्मा का आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द, आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, उसकी अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय, अनुभव शान्ति का, उसे **आत्मा को ध्यावने से महामुनि पाते हैं,...** महामुनि... पर के कार्य कर सकूँ, ऐसे अभिप्राय के शल्यरहित और राग के भाव से मेरा कल्याण होगा, ऐसी परसन्मुख की अभिप्राय दृष्टि से रहित और स्वरूप में विकल्पों की आड़ में जो भगवान अन्दर स्थित है, उसे विकल्पों की शुभाशुभ वृत्ति से दूर होकर, पहले शल्य से दूर होकर कहा। मिथ्यात्व शल्य। मुनि की विशेष बात लेते हैं न! भगवान आत्मा... दूसरे के काम कर सकूँ, ऐसा जो मिथ्यात्व शल्य, जब तक उसकी बहिर्बुद्धि है, उसे अन्तर्मुख दृष्टि का आनन्द आने का उसे अवकाश है नहीं। शुभराग से मुझे कल्याण होगा, ऐसी भी बहिर्बुद्धि, मिथ्यात्वबुद्धि, बहिर्बुद्धि उसकी है। उसे भी मिथ्यात्व के शल्य के कारण स्वरूप की दृष्टि का अनुभव उसे हो नहीं सकता। तदुपरान्त शुभाशुभराग के विकल्प के जाल में रुकने से विकल्परहित चीज़ वीतरागस्वरूप भगवान का आनन्द, उसके आनन्दस्वरूप का आनन्द ऐसे शल्य में और विकल्प में रुकने से आता नहीं। समझ में आया?

वह सुख इन्द्रादि देवों को दुर्लभ है। क्योंकि इन्द्र के सुख में तो विकल्प की जाल है। राग-द्वेष की जाल, राग में उन इन्द्र के, इन्द्राणी के सुख है, ऐसा मानता है। भले इन्द्र न माने, परन्तु उसके विकल्प की अन्दर में अस्थिरता बहुत पड़ी है। अर्थात् कि जो आनन्द धर्मी जीव को आनन्दस्वरूप आत्मा, उसके शल्य को छेदकर नि:शल्य

दृष्टि से आत्मा का आनन्द आता है और तदुपरान्त रागरहित स्थिरता होकर जो आनन्द सन्तों को आता है, ऐसा आनन्द इन्द्र को इन्द्रासन में भी नहीं। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- अपनी आत्मा को ध्यावता,... भगवान वीतराग आनन्द का स्वरूप है आत्मा में। वीतरागी आनन्दस्वरूप आत्मा है। वह वीतरागी दृष्टि और वीतरागी स्थिरता द्वारा आत्मा को ध्याता है, आत्मा को अपनी स्थिरता में प्रकाशरूप से आनन्दरूप से है, ऐसा देखता है। **परम तपोधन (मुनि)...** जिसे आत्मा के आनन्द की दशा प्रगटरूप वर्ते, वह उसे धन है। समझ में आया? निजानन्द भगवान आत्मा को अन्तर्मुख के... बहिर्मुख के भाव को हटाकर अन्तर्मुख के अभिप्राय और स्थिरता में रमता है, वह परम, **अनन्त सुख पाता है...** वह आत्मा के अनन्त आनन्द को (प्राप्त करता है)। मुनि की उत्कृष्ट दशा से बात की है। सम्यग्दर्शन में भी आनन्द है। जितना मिथ्या शल्य की आड़ में पड़ा था भगवान, उसे छोड़कर और जितनी अस्थिरता अनन्तानुबन्धी थी, उतनी छोड़कर जितना स्वरूप में एकाग्र होता है, उतना सम्यग्दृष्टि को भी अतीन्द्रिय आनन्द होता है। समझ में आया? इसका नाम धर्म। जो यह आत्मा में... कहा न पहले कि मिथ्याशल्य, मेरे अतिरिक्त के दूसरे पदार्थों की दशा मैं कर सकता हूँ, ऐसा शल्य और राग से पुण्य का विकल्प बहिर्मुख की वृत्ति से मेरे अन्तर्मुख के चैतन्य का लाभ हो, ऐसी मिथ्या शल्य को छोड़कर, सम्यक् ऐसी नि:शल्य वृत्ति को प्रगट करके, स्वभाव-सन्मुख नि:शल्य सम्यक्व को प्रगट करके जो सम्यग्दृष्टि को आनन्द आता है, ऐसा आनन्द जगत के किसी विषय में नहीं। परन्तु यहाँ तो मुनि के आनन्द के साथ इन्द्रों की तुलना करते हैं। मुनि को यह धर्म कहलाता है, हों! धर्म। यह धर्म कैसा? समझ में आया?

मिथ्या अभिप्राय और राग-द्वेष के परिणाम, वे अधर्म हैं। भगवान आत्मा वीतरागी आनन्द की मूर्ति, उसे सम्यक् अभिप्राय द्वारा दृष्टि में लेकर और स्थिरता द्वारा उसमें आचरण करके जो अतीन्द्रिय आनन्द का अंश आता है, उसे भगवान मोक्ष का मार्ग और धर्म कहते हैं। यह करने से मुनि को तीनों इकट्ठे हुए, इसलिए यहाँ मुनि की बात करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन मोक्ष का कारण है न? समझ में आया? इसीलिए तो मुनि को शल्य गये, अस्थिरता अनन्तानुबन्धी की गयी, इतना नि:शल्य दृष्टि और स्थिरता का अंश हुआ। तदुपरान्त स्वरूप को पकड़ने की स्थिरता विशेष जमी है। आनन्दमूर्ति

भगवान को लीनता में विशेष पकड़ा है। इससे मुनि को दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति में भगवान विराजमान हैं, इससे उसे परिणति का, आनन्द का सुख इतना है। इन्द्रों और करोड़ों अप्सराओं के विकल्प में है, वह तो दुःख और जहर है। समझ में आया?

यह कहते हैं, जो अनन्त सुख सन्तों... 'सुखिया जगत में सन्त दुरिजन दुखिया रे।' आता है या नहीं? सुखिया जगत में सन्त। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द को पकड़कर लीनता के आनन्द को वेदते हैं, बस वे जीव सुखी हैं। दुरिजन दुखिया—यह मिथ्या शल्य और राग-द्वेष में रम रहे हैं, ऐसे दुर्जन दुःखी हैं। सेठिया को क्या? ऐ... ...भाई! कहाँ डालना सेठिया को? लो, यह मलूकचन्दभाई कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा का अनन्त गुण सत् समाज, उसे निश्चिन्त होकर जहाँ अन्तर दृष्टि में आत्मा को लिया, अनुभव किया, वह सन्त है। चौथे गुणस्थानवाला भी एक जघन्य सन्त है। यहाँ चारित्र सहित की विशेष उग्रता बतलानी है।

अहो! जिसमें आत्म वीतरागी आनन्द का कन्द ही पड़ा है ऐसा का ऐसा भगवान। उसे स्थिरता द्वारा, शल्य छोड़कर स्थिरता द्वारा अनुभव किया उसने जो, अनन्त शब्द प्रयोग किया है न इसलिए, अनन्त सुख, अनन्त सुख, चारित्रसहित का सुख का क्या कहना! ओहोहो! समझ में आया? यह अनन्त सुख अर्थात् कि धर्म अर्थात् कि मोक्ष का मार्ग। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष के मार्ग में आनन्द है, दुःख नहीं। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का कारण ऐसा मार्ग, वह अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय के कारण से पूर्ण आनन्द प्रगट होता है। समझ में आया? आचार्य ने जरा-सी सुख से बात उठायी है। चारित्रवन्त को आनन्द से उठाकर बात (करते हैं)।

परमात्मप्रकाश है न! भगवान परमात्मा वीतरागी आनन्द की मूर्ति प्रभु। अनादि, हों! अनादि। उसे यह विकल्प की जाल के कारण अनुभव नहीं किया था, उस विकल्प की जाल में से निकलकर 'यह वस्तु, यह वस्तु' ऐसे सम्यग्दृष्टि वीतरागी पर्याय द्वारा उसे अनुभवे, इसलिए वीतरागी स्थिरता द्वारा आत्मा को अधिक अनुभव करे चारित्रवन्त, उसके आनन्द को अति अनन्त आनन्द कहते हैं। समझ में आया? गजब भाई! यह मोक्षमार्ग और आनन्द में समाहित कर दिया। समझ में आया? बन्धमार्ग दुःख में और मोक्षमार्ग आनन्द में। समझ में आया? मिथ्या शल्य और राग-द्वेष के भाव, वे दुःखरूप

हैं, यह बन्धमार्ग है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का सागर प्रभु, उसे जिसने शल्य और अस्थिरता छोड़कर निःशल्य दृष्टि और स्थिरता द्वारा जिसने अनुभव किया, कहते हैं कि वह आनन्द अनन्त है। वह आंशिक अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द (रूप) मोक्ष का वह कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ छठवें से लगाकर बात है। ...यहाँ तो जरा चारित्र को सम्मिलित कर बात करते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग को तो इस प्रकार से बात करते हैं। छठवें, छठवें में। चौथे से ही यहाँ तो बात शुरु की है पहली तो। चौथे में चारित्र की विशेषता, अधिकता नहीं। इसलिए आचार्य महाराज जरा चारित्रसहित का आनन्द, दर्शन-ज्ञान के स्वरूप के आचरण का आनन्द, तदुपरान्त चारित्रसहित का जो आनन्द, वह बहुत आनन्द है, ऐसा (कहते) हैं।

कोई ऐसा कहे कि, अहो! मुनि को तो बहुत परीषह बहुत सहन करने का, हों! उसके सामने यह बात करते हैं भाई! ... मुनिपना क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं। ओहो! कितने कष्ट सहन करना मुनि को। नंगे पैर चलना, ऐसे खुराक ठण्डे के गर्म मिले, गर्म के ठण्डे मिले। भाई! मुनिपने की व्याख्या को तू समझता नहीं। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग में रमते मुनि की दशा कैसी होती है, तुझे खबर नहीं। मुनि तो सुख के आनन्द में झूलते हैं, उसे मुनि कहते हैं। आनन्द में रमे, उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। दुःख है और यह है, वह तू रहने दे यह बात। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसे कुछ अब... एक वृद्धा कहती थी, अब फिर इसे कुछ सर्दी के पाक मिले साधु होने के बाद? यहाँ तो पाक हो, मोहनथाल, मैसूर, ... दीक्षा लेने के बाद यह मिलेंगे नहीं। दुःखी। यहाँ तो सवेरे सर्दी हो तो सालमपाक बनावे... क्या कहलाता है? मुसलीपाक तैयार करे। हमेशा ड़ेढ़-डेढ़ पाव सेर चढ़ावे सवेरे। दस व्यक्ति हो तो चार सेर चार सेर... साधारण हो और न करे, वह अलग बात है। समझ में आया? अरे! दीक्षा लेने के बाद कुछ यह मिले, ऐसा है? लो, यह अरमान। अरे... भाई! दीक्षा अर्थात् क्या? अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमना, इसका नाम दीक्षा है। अरे! भाई! समझ में आया? कहीं वस्त्र छोड़े, वह दीक्षा नहीं, नग्नपना वह दीक्षा नहीं, अन्दर पाँच महाव्रत

के विकल्प उठे, वह भी दीक्षा नहीं। वह तो दु:खरूप दशा है, दु:खरूप दशा को दीक्षा कैसे कहा जाये? आहाहा!

कहते हैं, **करोड़ देवियों के साथ...** देखो, वापस एक तो इन्द्राणियाँ, एक तो इन्द्र, उसे तो बत्तीस लाख विमान वहाँ ... ऐसी साहेबी। अरे! साहेबा धूल का बापू! उसकी ओर का विकल्प, वह दु:ख की जाल है। वह बन्ध के मार्ग में पड़ा है अकेला। समझ में आया? मुनि आत्मा के आनन्द के झरने को वे पीते हैं अन्दर में, सुधारस निर्विकल्प आनन्दरस पीते हैं। समझ में आया? उन्हें मुनि कहते हैं, उन्हें मोक्षमार्गी कहते हैं, बापू! मुनि और मोक्षमार्ग कोई कठोर चीज़ है। कठोर अर्थात् दु:ख की, ऐसा नहीं। उत्कृष्ट पुरुषार्थ से प्राप्त होती है। समझ में आया? कहते हैं, **देवियों के साथ रमता हुआ नहीं पाता।**

भावार्थ :- बाह्य और अन्तरंग परिग्रह से रहित... चारित्र सहित की बात लेनी है न! ओहो! जितना परिग्रह अभ्यन्तर से मिथ्यात्व का गया, और जितना परिग्रह अन्दर से अस्थिरता का गया, उतने प्रमाण में उसे बाह्य के निमित्त का सम्बन्ध भी गया। यह बाह्य-अभ्यन्तर कहा। समझ में आया? जितना अन्दर में भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप को सम्यग्दर्शन द्वारा पकड़ा, उतना मिथ्यात्व गया और मिथ्यात्व के निमित्त सम्बन्ध से कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र भी सम्बन्ध में से गये और स्वरूप में जहाँ स्थिरता (हुई), अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति भगवान आत्मा, उसे जहाँ चूसने लगा स्थिररूप से, उतनी अस्थिरता गयी और उसके प्रमाण में संयोगों में उसे वस्त्र और पात्र आदि के निमित्त थे, वे भी सम्बन्ध में रहे नहीं। समझ में आया? बापू! मोक्ष का मार्ग—धर्म का मार्ग कोई अलौकिक है। लोग उसे कल्पित कर बैठे हैं, वैसा वह स्वरूप नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **बाह्य और अन्तरंग परिग्रह से रहित निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ...** देखो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, ऐसा शुद्धात्मा, उसकी भावना। देखो! 'निज शुद्धात्मा' ऐसा शब्द पड़ा है। अपना शुद्धात्मा भगवान पूर्ण अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का कन्द है, उसकी भावना—उसकी अन्तर एकाग्रता। जैसे राग में और शल्य में एकाग्रता थी, वह नि:शल्य दृष्टि और स्थिरता में एकाग्रता हुई। उससे उत्पन्न हुआ। **वीतराग परमानन्दसहित महामुनि जो सुख पाता है,...** उस अन्तर

दशा में जो आनन्द को महामुनि प्राप्त करते हैं। वीतराग परमानन्द देखा? रागरहित का आनन्द। दुनिया के भोग के और फोग के यह सब मानते हैं कल्पना के, वह तो रागवाला आनन्द अर्थात् दुःख है। समझ में आया? यह करोड़ोंपति और अरबोंपति, हम सुखी हैं और मोटर में.... मानते हैं न? वह विकल्प है, वह दुःखरूप, दुःखरूप दशा है। यह दशा रागरहित परम आनन्द को अनुभवते हैं मुनि। वह रागवाला दुःख अनुभवते हैं गृहस्थ और इन्द्र। यह भगवान आत्मा की ओर के झुकाव में रागरहित परम आनन्दसहित महामुनि सुख को पाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

उस सुख को इन्द्रादि भी नहीं पाते। इन्द्रादि कहाँ से पावे? इन्द्रादि को भले सम्यग्दर्शन आदि का सुख है, (परन्तु) इतना सुख उन्हें नहीं और इन्द्राणियों के लक्ष्य में जितना विकल्प जाता है, उतना तो दुःख को वेदते हैं। समझ में आया? **जगत में सुखी साधु ही हैं, अन्य कोई नहीं।** लो! **यही कथन...** उसमें भी आता है न। वीतरागी साहु। एकान्त सुखी मुनि वीतरागी, आता है न? परन्तु किसे कहना यह? यह वस्त्र छोड़कर बैठे उन्हें? उन्हें अन्दर मिथ्यात्व और राग-द्वेष की वृत्तियों के वस्त्र छोड़े नहीं। समझ में आया? मिथ्यात्व अर्थात् शुभभाव में आनन्द माननेवाला और अभिप्राय में परपदार्थ की क्रिया करने के महाकामी अनन्त पदार्थ में करने के अभिप्राय में रुका हुआ वह स्वपदार्थ में आ नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं कि, एकान्त सुखी मुनि वीतरागी। आत्मा के आनन्द की प्रतीति के भान उपरान्त जिन्हें स्थिरता का आनन्द आया है, वे जगत में सुखी, बाकी सब सेठिया, बादशाह सब दुःखी। क्या होगा इसमें? बहुत सुखी है, पैसे इतने अधिक, पति और पत्नी दो जनें। बड़े दो-दो लाख के बँगले, खा कर पूरा नहीं पड़े। सुखी बहुत कहे लोग, लो! आहाहा! भाई! सुख की व्याख्या क्या? सुख की व्याख्या अर्थात् उसका स्वरूप क्या? सुख तो भगवान आत्मा में है। उस आनन्द को नहीं पहुँच सके, तब तक उसे सुखी कहना कैसे? समझ में आया? आहाहा! पहला तो दृष्टि में आनन्दस्वरूप है, ऐसा जहाँ अभी भान न आवे, उसे स्वरूप में स्थिरता की दशा किस प्रकार आवे? जिसे आनन्द दृष्टि में ललचावे नहीं, यह आनन्द है ऐसा दृष्टि में जहाँ लालच आया, अर्थात् आनन्द में जमने में स्थिरता हो, उसे चारित्र होता है। आहाहा! समझ में आया? यह

आनन्द का भान जहाँ नहीं, किस ओर जाना और क्या है आनन्द, उसे कहाँ स्थिर होना है, इसकी उसे खबर नहीं, वह राग और द्वेष विकल्पों में स्थिर हो, वह तो संसार अज्ञान विकार है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द को जो अन्तर की दृष्टि द्वारा स्थिरता से सन्त भावलिंगी मुनि (भाते हैं), वे एक ही सुखी हैं। ऐसे सुखी हैं भले चाहे जितने हों, इसके अतिरिक्त चाहे जितने दूसरे, परन्तु दुःखी हैं। **शास्त्रों में भी कहा है—** श्लोक रखा है।

दह्यमाने जगत्यस्मिन्महता मोहवह्निना।
विमुक्तविषयासंगाः सुखायन्ते तपोधनाः॥

इसका अर्थ ऐसा है कि महामोहरूपी अग्नि से जलते हुए... देखो! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप की दृष्टि छोड़कर यह पुण्य और पाप के राग और संयोग में सुख है, ऐसी मान्यता, वे जीव महामोह की अग्नि से सुलग रहे हैं। समझ में आया? **महामोहरूपी अग्नि से जलते हुए इस जगत में...** भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसके अनादर से और विकार और संयोग के आदर से महामोह की अग्नि से जले, सुलगे जीव। **देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी सभी दुःखी हैं,...** सब दुःखी हैं। वे सब दुःख के वर्ग में पड़े हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा मोह और रागरहित का चिदानन्द प्रभु, उसकी जिसे अन्तर दृष्टि और स्थिरता आयी नहीं, ऐसे भगवान परमानन्दस्वरूप स्वयं, उसका अनादर करके पुण्य-पाप के विकल्प और भोग के विषय में प्रेम में पड़े हैं, वे महामोह की अग्नि से जले और सुलगे हैं। समझ में आया? निगोद के जीव स्वरूप की असावधानी के भाव से पर में सावधानी के भाव में पड़े हैं, वे दुःखी हैं। ऐसे राजा, सेठ, रंक भगवान आत्मा के असावधानी के भाव से पर के सावधानी की अग्नि में सुलगकर जल रहे हैं। सच्चा होगा यह? रोता तो नहीं कोई, दुःखी होवे तो रोवे न? हें? शान्तिभाई! भान कहाँ है परन्तु इसे? दिखता नहीं? झपट्टे मारता है ऐसे लूँ और ऐसे लूँ, विकल्प की जाल खड़ी कर-करके अग्नि सुलगती है, इसे दिखती नहीं। मोहनभाई! कठिन बात भाई यह! समझ में आया?

कहते हैं, इस जगत में महामोहरूपी अग्नि... मिथ्यात्व की लेनी है न यहाँ। जिसे भगवान चिदानन्द का आदर नहीं, जिसके अभिप्राय में, उसके अभिप्राय में तो

अल्पज्ञ, राग-द्वेष और संयोग का ही आदर है। अग्नि सुलगती है विकल्प में, कहते हैं। कषाय की अग्नि से जल रहा है। आहाहा! ऐ... भीखाभाई! क्या कहा इन्होंने? यहाँ तो जरा दो, पाँच लाख जहाँ मिले और जहाँ दो, चार लड़के अच्छे रूपवान हों और कुछ मोटरें लाख-लाख रुपये की पाँच इकट्ठी की हो न... सुखी हैं। जहाँ सुख है, उसकी खबर नहीं और जहाँ दुःख के निमित्त, वहाँ झपट्टे मारता है। आहाहा! कहते हैं, भगवान! वह तो महा अग्नि से दुःखी है।

और जिनके तप ही धन है,... लो! अब जिसे तप धन है अर्थात् आत्मा के आनन्द की दृष्टि की है और आत्मा के आनन्द में स्थिरतारूपी भाव प्रगट किया है, वह तपोधन मुनि कहलाता है। वह तपोधन, हों! जिसके पास तपस्या अर्थात् इच्छा निरोध और आत्मा की शान्ति और आनन्द का प्रगटपना, इच्छा का अभाव और अनिच्छा— ऐसा आत्मा का स्वभाव, इसका पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट होना, वह तपोधन है। उसके पास अनन्त आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! बाहर से एकदम काला शरीर हो, बबूल के नीचे बैठा हो और... समझ में आया? नीचे कंकड़ हों। मोरपिच्छी कहीं कंकड़ निकालने में काम नहीं आती। वह तो झाड़ू का काम किया इसने। वह तो उपकरण नहीं हुआ, अधिकरण हुआ। यह तो शरीर में कोई जीवांत आदि हो तो.... कंकड़ चुभे और कंकड़ निकालकर बैठे, ऐसा नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कांटा-बांटा भी निकाले नहीं। वह तो झाड़ू का काम करता है। आहाहा! यहाँ तो बतलाना है कि ऐसा संयोग बाहर हो, ऐसा वह दूसरे को ऐसा लगे कि यह? परन्तु अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द में लवलीन है, वह सुखी है, ऐसा कहना है। नीचे कांटे नहीं निकाले, कंकड़ नहीं निकाले। वह कहीं मोरपिच्छी कांटे, कंकड़ निकालने के लिये नहीं है। वह तो एक जरा सा कोई विकल्प आवे, छू सके नहीं तो ऐसे करने के लिये है अथवा कोई जीव नीचे हो, ऐसे जरा आगे (करने) के लिये है। ऐसी स्थिति में बैठा हुआ परन्तु यत्ना करके अन्दर में बैठा है। समझ में आया? आहाहा! अरे! आत्मा का माहात्म्य जिसने दृष्टि में लिया और तदुपरान्त स्थिरता में जिसने लिया। यह आगे कहेंगे। मुनि के मन में भगवान बसते हैं, कहते हैं। राग और पुण्य और संयोग

नहीं बसते। धर्मी के ज्ञान में संयोग और राग-द्वेष नहीं बसते। धर्मी के ज्ञान में भगवान परमात्मा स्वयं निज-आत्मा बसता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होशियार अर्थात्? अनअभ्यास से मुश्किल। वस्तु घर की है, उसमें मुश्किल क्या? घर की प्राप्त करना मुश्किल (नहीं होता), किसी की प्राप्त करनी हो तो मुश्किल कहलाये। परन्तु इसे अभ्यास नहीं न। वह अभ्यास करने जैसा यह है, ऐसी इसे कीमत भी हुई नहीं। ऐसा का ऐसा रुक गया है बाहर में और बाहर में अनादि से। समझ में आया? या जगत को प्रसन्न करने में रुका, जगत को प्रसन्न करने में और या जगत से प्रसन्न होने में। बस!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका अर्थ... समेटना किसलिए? कि, यह वस्तु आनन्दमय है, इसमें स्थिर होने, ऐसा ... इसलिए वह निर्णय करे तब हो न। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका लालच लगा है, वह स्थिरता के लिये वृत्तियों को समेटता है, ऐसा इसका अर्थ है। ... ऐसा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है, उसका सम्यग्दर्शन में पहले भान हो, इससे दृष्टि में आत्मा को लालच लगी आत्मा के आनन्द की। आनन्द अनुभव की लालच लगी, वह आनन्द अनुभव इसे स्थिरता में खींचता है। आहाहा! समझ में आया? बात लगे बड़ी, परन्तु वस्तु ऐसी ही है, हों! तू ऐसा है। न माने तो ऐसा है और माने तो ऐसा है। है, ऐसा है। है, ऐसा कभी कोई दूसरा हो जाये, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ एक जरा शुभराग किया हो न, तो भी दूसरे को बतलाने का कामी हो जाये। मैंने ऐसा किया है, हों! मैंने देखो दया पालन की, मैंने भक्ति की, मैंने पूजा की, अरे! शुभराग करके भी बतलाना—प्रसिद्ध होना है, उसे आत्मा की प्रसिद्धि कहाँ करनी है? समझ में आया? भगवान आत्मा की प्रसिद्धि कहीं राग द्वारा होगी? रागरहित होकर दृष्टि करे तो हो। वह भी मुझे ऐसा करना पड़े और करना पड़े, ऐसा नहीं, वह तो हठ हुई। यह वस्तु अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा सागर भरपूर है न, वही मैं हूँ और वही मैं हूँ। अब वह मैं हूँ, उसमें मुझे रहना। वह तो उसकी दशा सहज श्रद्धा, ज्ञान में आ जाये। आहाहा!

तप ही धन है,... आहाहा! इसने अन्दर लक्ष्मी के सन्दूक खोले। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द भगवान, उसने सम्यग्दर्शन द्वारा मिथ्यात्व के ताले तोड़कर खजाना देखा कि यह तो खजाना अनन्त आनन्द का कन्द है। अब इसमें जितना एकाग्र होऊँ, उतना आनन्द आवे। ललचाता है वह आनन्द इसे। बाहर की लालच इसे छूट जाती है। अस्थिरता की जरा रहती है, परन्तु उसमें इसे प्रेम नहीं रहता। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा, उसे जिसने पर्याय में प्रगट किया उग्र स्थिरता द्वारा, वह तपोधन है, लक्ष्मीवाला है। लो! यह दूसरे को बनाया भिखारी। विद्यमान पैसे भिखारी। विद्यमान पैसे थे कब पैसे इसके बाप के? वे तो जड़ के थे। विद्यमान पैसा तो भगवान विद्यमान आनन्द और ज्ञान की मूर्ति विद्यमान वस्तु है तेरी। उस विद्यमान को विद्यमान माना, उसे लक्ष्मी प्रगट हुई। आहाहा! समझ में आया? ऐसा यह धर्म कैसा यह? कहते हैं, **तथा सब विषयों का सम्बन्ध जिन्होंने छोड़ दिया है, ऐसे साधु मुनि जगत में सुखी हैं।** लो! समझ में आया? अब जरा जिनवर का दृष्टान्त देकर इसे ऊँचा करते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ११८

११८) अप्पा-दंसणि जणवरहँ जं सुहु होइ अणंतु।
तं सुहु लहइ विराउ जिउ जाणंतउ सिउ संतु॥ ११८॥

आगे, वैरागी मुनि... अर्थात् रागादि का अभाव करके स्वरूप के पूर्ण अस्तित्व के स्वभाव के आश्रय में पड़ता है, वह पर से जिसे वैराग्य हो गया है, पुण्य-पाप के विकल्प से भी जिसे वैराग्य है। **निज आत्मा को जानते हुए निर्विकल्प सुख को पाते हैं—** वे निर्विकल्प अर्थात् आनन्द को पावे, वीतरागी आनन्द को पाते हैं, यह कहते हैं।

अन्वयार्थ :- निज शुद्धात्मा के दर्शन में... अहो! भगवान निज शुद्ध प्रभु के दर्शन में। समझ में आया? **जो अनन्त अद्भुत सुख मुनि-अवस्था में जिनेश्वरदेवों के होता है,... 'छद्मस्थावस्थायां'** है न पाठ? छद्मस्थ अवस्था। भगवान तीर्थंकर का दृष्टान्त दिया, हों! आहा! जिसके घर में छह-छह खण्ड के राज थे। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ थीं। वे तो पर थे। उनके प्रति का जरा

अस्थिरता का विकल्प था, उसे छोड़कर जिनवर ने जब आत्मा को स्थिरता द्वारा देखा, वह दीक्षा काल में, कहते हैं, जो अनन्त आनन्द आया तीर्थंकर को... दृष्टान्त तीर्थंकर का—जिनवर का दिया। आहाहा! वे तीर्थंकर भी जब दीक्षा काल में आनन्द का जो अनुभव, ऐसा कहते हैं। हल्के हो जाते हैं ऐसे। परसन्मुख की वृत्ति थी न, वह छूट जाती है। आत्मा के आनन्द की अनन्त लहर जहाँ दीक्षित काल में होती है, उसे दीक्षा कहा जाता है। देखो! यहाँ मुनि की बात ली है। श्रेणी-फ्रेणी की बात नहीं ऊपर की। यह तो दीक्षा का काल लिया, देखो न पाठ है न, है न? तब दीक्षा काल कब होता है? छठवें गुणस्थान में दीक्षा काल होता है... फिर ध्यान में सातवें में जाते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मप्रकाश है न! स्वयं ही परम आत्मा अर्थात् परम आनन्द की मूर्ति ऐसा परमात्मा, उसे अन्तर में दृष्टि में लेकर और अन्तर में वैराग्य करके राग-द्वेष से विमुख होकर स्थिर होता है, ऐसा वीतराग तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमेश्वर भी दीक्षा के काल में जो अनन्त आनन्द को (वेदते हैं)। लोग ऐसा कहते हैं कि, अरेरे! सब सुविधा गयी। यह रानियाँ गयीं, यह राज गये, यह वस्त्र / कपड़े गये, जवाहरात गये, यह हाथी के हौदे भगवान बैठते थे गृहस्थाश्रम में, वह हिलने में बैठने के हाथी गये। कहते हैं कि तुझे खबर नहीं। इस दीक्षा काल में जो अनन्त आनन्द को अनुभव करते हैं। समझ में आया?

वह सुख वीतरागभावना को परिणत हुआ मुनिराज... आहाहा! ऐसा ही सुख। तीर्थंकरों का बड़ा पुण्य है न! बाहर में जिनके इन्द्र सेवक, मित्र नहीं। चक्रवर्ती को इन्द्र आदि मित्र होते हैं। तीर्थंकर को तो इन्द्र ऐसे सेवक होते हैं। प्रभु! तीन ज्ञान के धनी गृहस्थाश्रम में हों, वहाँ भी बालक हो तो इन्द्र ऐसे... प्रभु। ऐसी जिन्हें संयोग की स्थिति, वे जब संयोग के लक्ष्य को छोड़ते हैं, ऐसा कहते हैं। वे संयोग के लक्ष्य में पड़े, तब तो इतना अभी अस्थिरता का दुःख था। कोई ऐसा कहे कि ओहोहो! क्या पुण्य की सामग्री तीर्थंकर को! स्वर्ग में से आहार आवे, वस्त्र आवे, गहने आवे। वे यहाँ के नहीं लेते। उत्कृष्ट पुरुष है न! इसलिए संयोग के सुख में वे सुखी होंगे। भाई! उस संयोग की ओर का जितना विकल्प था, उतना दुःख था। इसलिए कहा कि, ऐसे संयोग के लक्ष्य

के विकल्प को छोड़कर, स्वरूप के लक्ष्य में दीक्षा काल में स्थिर हुए, तब महा आनन्द आया उन्हें। आहाहा! समझ में आया? लोगों को ऐसा हो, इन्द्र जिनके सेवक! भगवान जन्मे, (तब) इन्द्र आवे और देव को छोड़ जाये सेवा के लिये। कोई भी इस पुरुष का नाम प्रतिकूल करेगा तो छेद डालूँगा। इन्द्र आकर कहे। सुविधा होगी न इतनी? ... चारित्र का वर्णन करना है न। समझ में आया? बापू! वह सब सामग्री भले स्वर्ग के भोजन आवे, वहाँ के गहने (लावे), उस ओर का लक्ष्य है, वृत्ति है, वह दुःखरूप है, वह शान्ति नहीं। तीर्थंकरों को भी उस सुविधा के लक्ष्य में शान्ति नहीं। आहाहा! समझ में आया? उनके जैसा तो पुण्य दूसरों का होता नहीं। लो यह आया, सवेरे आया था। रास्ते में आया था। तीर्थंकर का उत्कृष्ट पुण्य, चक्रवर्ती को उससे कम, वासुदेव को उससे कम, बलदेव को उससे कम, प्रतिवासुदेव को उससे कम। है सब मोक्ष के गामी। सवेरे बात चलती थी न। ....

यहाँ तो आचार्य महाराज ऐसा कहते हैं, यह जिनेश्वर का दीक्षा काल, यह वह आनन्दमय है या कैसा है? ऐसा कहते हैं। जो ऐसी सुविधा का काल छोड़ देते हैं। समझ में आया? इन्द्र स्वर्ग में से आहार लावे। यहाँ इसे अभी स्त्री पकावे तब लिया जाये, मिले। ... यह कहते हैं कि वह सब सुविधा के प्रति वृत्ति थी न, वह दुःख था। उसे छोड़कर आनन्द में आये हैं। दीक्षा काल में अतीन्द्रिय आनन्द को अनुभव करते हैं, ऐसा तू देख। ऐसा न देख कि यह सब साधन गये। क्या गये? भाई! तुझे खबर नहीं। समझ में आया? ले भगवान का दृष्टान्त। समझ में आया? दीक्षा के समय तीर्थंकरदेव **शान्त भाव को जानता हुआ पाता है।** जैसा भगवान दीक्षा के समय में पाते हैं, ऐसा ही मुनि (पाते हैं), ऐसा कहते हैं। चाहे जितनी साधारण सुविधा हो विशेष ... उसका कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। वे स्वयं आत्मा के अन्तर के आनन्द में लीन हुए हैं न, दीक्षा में मुनि भी, जैसा तीर्थंकर को आनन्द है, वैसा ही उन्हें आनन्द है। समझ में आया? बहुत सुविधा थी इसलिए छूटा, इसलिए कुछ आनन्द थोड़ा इनको, थोड़ी सुविधा छूटी इसलिए आनन्द अधिक, या बहुत सुविधा छोड़ी, इसलिए आनन्द बहुत, इसके साथ कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। आहाहा! ... लोग नहीं कहते? यहाँ कहते हैं, बापू! यह जहाँ अन्तर दशा में आया, उस दीक्षा काल में भगवान को जो आनन्द है, ऐसा

मुनियों को ऐसा उतना ही आनन्द है। आहाहा! वह लकड़हारा हों! लकड़हारा ले न दीक्षा। समझ में आया? वह भी आत्मा के आनन्द को लगकर जो लीनता को पाये हैं, उस दीक्षा काल में भगवान को आनन्द है, वैसा ही उस लकड़हारे के जीव को अपनी चारित्रदशा का आनन्द है। समझ में आया? बाहर की कीमत उड़ गयी। थी ही कब? समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- दीक्षा के समय तीर्थंकरदेव... आहाहा! जिन्हें इन्द्र खम्मा खम्मा कहे। उसका सुख होगा न उन्हें? कहते हैं, वे इन्द्र आवे और (कहे) खम्मा अन्नदाता! मेरुपर्वत के ऊपर ले जाये। वे तो अवधिज्ञानी हैं, सब जानते हैं। यह सुविधा, वह सुख नहीं। उसकी ओर का जितना लक्ष्य जाता था, उतना राग था। इससे चारित्र में जो आनन्द है, उतना आनन्द तब नहीं था। ऐसी सुविधा, परन्तु उसमें वह आनन्द नहीं था। वह आनन्द कहाँ से होगा? वह तो राग है। आहाहा! उसमें शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीर्थंकर स्वयं, चक्रवर्ती स्वयं, कामदेव पुरुष भी स्वयं। परन्तु उन्हें दीक्षा काल में जो आनन्द है, वैसा ही आनन्द मुनि को दीक्षा के काल में होता है, ऐसा कहते हैं। बाहर की पदवी के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। कामदेव हों! ढाई द्वीप में उनके जैसा पुण्य ... ऐसा तो सुन्दर रूप। इतने पुण्य से घढ़े हुए अवयव और एक-एक अवयव का एक-एक कण। वह भले हो, तीर्थंकर पद की प्रकृति तो अभी उदय नहीं आयी, परन्तु उसके पूर्व में होने के ऐसा आया उन्हें। और चक्रवर्तीपद हो। उस पद के प्रमाण उसे सुख-दुःख है, ऐसा नहीं। वह पदवी छोड़कर विकल्प छोड़ा, उस ओर का और एक गरीब मनुष्य उसके पास कुछ नहीं और एक शरीर आदि था, उसके प्रति की ममता छोड़कर आत्मा के आनन्द में, सम्यग्दर्शनसहित आनन्द में रमता है नग्न मुनि जंगल में, दोनों को समान आनन्द है। समझ में आया? और दोनों आनन्द में हैं, कहते हैं। इनको ज्यादा छूटा और उसको थोड़ा छूटा। दोनों आनन्द में हैं और दोनों समान आनन्द में हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं यह? यह वीतरागी दृष्टि और वीतरागी आनन्द, उसे बाहर की सुविधा-असुविधा के संग के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? एक जैसा और कहाँ से आया? यह अभी आगे कहेंगे कि एक म्यान में दो नहीं रहते। ऐसा कहेंगे। जिसकी दृष्टि में... आता है न?

१२१) जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्कहिँ केम समंति वढ वे खंडा पडियारि॥ १२१॥

एक म्यान में दो तलवार कैसे रहेंगी? कहेंगे। यह सब शैली ऐसे उठाकर पर्याय की, आनन्द की ... कहते हैं। समझ में आया? जिसके कलेजे में सुन्दर स्त्री का प्रेम बसता है, वह मिथ्यादृष्टि, आत्मा उसकी दृष्टि में कैसे बसेगा उसे? आहाहा! जिसकी दृष्टि में पद्मिनी जैसी स्त्री कोमल... कोमल... कोमल... और अकेले अंगों में मानो बिना गहने घढ़ी हुई मूर्ति हो वह, उसके ज्ञान के नेत्र में जिसे वह बसती हो, उसके ज्ञान नेत्र में भगवान कैसे बसेगा? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भगवान कैसे उस नेत्र में आयेगा? एक म्यान में दो रहेंगे नहीं।

परमात्मप्रकाश बनाते होंगे, तब उन्हें कैसा ज्ञान में कितना तैरता है! ओहो! भगवान! आप दीक्षाकाल में जो आनन्द अनुभव करते हो, वही आनन्द हमको है। ऋद्धिवाले थे, इन्द्र मानते थे, कैसे धर्म के समय आये थे, इसलिए दीक्षा काल का आनन्द आप बड़े, इसलिए अधिक और हम ऐसे छोटे, इसलिए थोड़ा—ऐसा नहीं, हों! समान है। आहाहा! यह बाहर के संयोग के ऊपर बड़े-छोटे की कीमत अन्तर में है नहीं। समझ में आया?

निज शुद्ध आत्मा को अनुभवते हुए जो निर्विकल्प सुख पाते हैं, वही सुख रागादि रहित निर्विकल्पसमाधि में लीन विरक्त मुनि पाते हैं। बस, दोनों के साथ में मिलाया। ऐसे भगवान कि जिन्हें शरीर में १००८ लक्षण, हों! शरीर में १००८ (लक्षण)। और शरीर से सुन्दर, वे सुन्दर। इन्द्राणियाँ भी देखकर, इन्द्र भी देखने के लिये एक हजार आठ, क्या कहलाता है? एक हजार (नेत्र)। ऐसे शरीर की ममता छोड़े तो उसे अधिक आनन्द होगा न मुनि को? और काला-कुबड़ा शरीर हो, साधारण हो, वह ऐसे चारित्र में उसे ऐसा थोड़ा होगा न, कहते हैं। भगवान! उस आनन्द की दोनों की जाति एक ही है। आहाहा! समझ में आया?

वही सुख रागादि रहित... भगवान तीर्थंकरदेव। याद किये भगवान को, परन्तु उन भगवान के आनन्द के काल को याद किया है। तुमको भी जितने विकल्प परसन्मुख के थे, वे छोड़े हैं, तब तुमको दीक्षा का आनन्द आया है। हमको भी परसन्मुख के जितने

विकल्प थे, वे छोड़े तब आनन्द आया है। इसलिए हम तो एक नात के, एक जाति के, तेरे साथ बैठे हैं। बाहर में तो तुमको इन्द्र मानते थे, ऐसा मानते थे, इसलिए तुमको बड़ा आनन्द हो गया दीक्षा काल में? नहीं, नहीं, हों! भगवान! ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! परन्तु उन्हें तीन ज्ञान थे या नहीं? और दीक्षा ली, तो अधिक आनन्द आवे या नहीं उन्हें उस समय? ऐसे दूसरे को तीन ज्ञान नहीं होते, लो! साधारण मति-श्रुत हो, वह दीक्षा ले, तब उसे कम आनन्द होगा या नहीं? ज्ञान उन्हें अधिक और इसे कम, लो! यह इनकार करते हैं यहाँ तो। आहाहा! गजब बात, भाई! भगवान! भले अपने को तीन ज्ञान थे, हों! अवधि (ज्ञान में) लोक जानते। परन्तु जब दीक्षा होकर, आपको चारित्र काल का आनन्द आया न, हमको कुछ अवधि-बवधि नहीं होता और मति-श्रुत साधारण, तुमको दीक्षा ली और मन:पर्यय हुआ, हमको नहीं; इसलिए भी आनन्द में कम हैं, ऐसा मानना नहीं। आहाहा! राजमलजी! एल.एल.बी. पढ़े हुए हों बड़े फिर त्याग करे तो उसे अधिक हो या नहीं? आहाहा! तुलना करते हैं न! वे रागादि रहित निर्विकल्प शान्ति वस्तु की दृष्टि करके स्थिर हुए, दोनों के समान आनन्द है। वे दोनों मोक्ष के मार्ग में समान पड़े हैं। ऐसे आनन्द को मुनि अनुभवते हैं, ऐसा अनुभव सम्यग्दृष्टि को इतना उग्र नहीं होता और ऐसा अनुभव मिथ्यादृष्टि को जरा भी नहीं होता। इसलिए आत्मा की दृष्टि करके अनुभवना, इसके लिये यह बात करना चाहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ५, सोमवार, दिनांक - १३-१२-१९६५
गाथा - ११९ से १२१ प्रवचन - ७५

गाथा - ११९

परमात्मप्रकाश, ११९ गाथा। **आगे काम क्रोधादि के त्यागने से...** अथवा राग और द्वेष के त्यागने से, **शिव शब्द से कहा गया परमात्मा दिख जाता है, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं—**

११९) जोइय णिय-मणि णिम्मलए पर दीसइ सिउ संतु।
अंबरि णिम्मलि घण-रहिए भाणु जि जेम फुरंतु॥ ११९॥

अन्वयार्थ :- हे योगी, निर्मल अपने मन में... अर्थात् क्या कहते हैं? कि यह आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, वह पुण्य-पाप के विकल्प से बुद्धिपूर्वक रागादि से हटकर निर्मल परिणाम सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान के प्रगट करे, उसमें वह परमात्मा शुद्ध है, वह भासित होता है। क्या कहा? यह सम्यग्दर्शन से लेकर बात है, हों! मुनि की मुख्यरूप से बात करते हैं। निर्मल अपना मन। मन अर्थात् अन्दर ज्ञान जो शुद्धस्वरूप है, आत्मा ज्ञान शुद्ध स्वरूप ज्ञान है, उसे पुण्य-पाप के विकल्प के काम-क्रोध, काम अर्थात् राग इच्छा और क्रोध अर्थात् द्वेष, ऐसी खण्ड-खण्ड बुद्धि जो राग-द्वेष की है, उससे समभाव के परिणाम प्रगट करके, शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान आदि प्रगट करके उसमें वह परमात्मा अकेला ज्ञान और आनन्दमय है, अकेला ज्ञान चैतन्यसूर्य और आनन्द है, ऐसा उस निर्मल परिणाम में भासित होता है। कहो, समझ में आया?

कैसा है? **'शिवः शांतः' निज परमात्मा (शिव) रागादि रहित...** शान्त है। वस्तु स्वयं पदार्थ पुण्य-पाप के रागरहित शान्त अर्थात् वीतराग शान्तस्वरूप है। आत्मा वीतराग अर्थात् निर्दोष शान्त, ज्ञान वह ज्ञानस्वरूप है अर्थात् कि अन्तर शान्तस्वरूप है। समझ में आया? ऐसा परमात्मा परम अर्थात् **नियम से दिखता है,...** यह कहते हैं। देखो! **जैसे बादल रहित निर्मल आकाश में...** बादल रहित निर्मल आकाश में। **भानु-**

सूर्य के समान भासमान (प्रकाशमान) है। बादल रहित सूर्य जैसे प्रकाशित होता है, उसी प्रकार भगवान चैतन्यसूर्य सम्यग्ज्ञान, श्रद्धा, शान्ति के परिणाम में, वह परमात्मा यह शुद्ध अकेला ज्ञान का बिम्ब सूर्य है, ऐसा भासित होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- जैसे मेघमाला के आडम्बर से सूर्य नहीं भासता... मेघमाला—बादल की श्रेणी की धारा में सूर्य दिखाई नहीं देता। **और मेघ के आडम्बर के दूर होने पर...** यह मेघ अर्थात् बादल के आडम्बर की माला—श्रेणी से दूर होने से आकाश में निर्मल सूर्य दिखाई देता है। **निर्मल आकाश में सूर्य स्पष्ट दिखता है, उसी तरह शुद्ध आत्मा की अनुभूति के शत्रु...** चैतन्यसूर्य अन्तर में पुण्य-पाप के वर्तमान विकल्प की धारा मेघमाला से रहित ऐसा आत्मा के स्वभाव का अनुभव, उसके शत्रु वे पुण्य-पाप और **काम-क्रोधादि...** भाव। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य ज्ञानसूर्य की अनुभूति—ऐसे चैतन्यस्वरूप का अनुभव—ऐसे स्वभाव को अनुसरकर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का होना, ऐसी जो अनुभूति जो धर्म, उसके शत्रु पुण्य-पाप आदि विकार हैं। समझ में आया इसमें? यह तो एकदम बहुत संक्षिप्त बात है और ऊँची बात है। ऊँची अर्थात् सत्य वापस ऐसा। ऊँची अर्थात् बड़ी आगे की, ऐसा नहीं।

सत्य सूर्य भगवान ज्ञान का पिण्ड प्रभु, वह आत्मा अर्थात् ज्ञान का पिण्ड ज्ञानपुंज वस्तु समझण का सत्त्व पूरा आत्मा, उसे अनुभव करनेवाली दशा, सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और वेदन, स्वरूप-सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और वेदन, ऐसी अनुभूति, उसके वैरी विकार। निर्मल अविकारी अनुभूति के वैरी मलिन विकार भाव। कहो, समझ में आया? उसके वैरी कर्म है, ऐसा नहीं कहा यहाँ। अन्यत्र कहा, वह निमित्त से है। भगवान ऐसे चैतन्यसूर्य है न ऐसा। अकेला ज्ञान का ज्ञान, ज्ञान का अस्तित्व, ज्ञान का अस्तित्व, ज्ञान वस्तु का अनुभव, ज्ञान का अनुभव। ज्ञान को अनुसरकर सम्यग्ज्ञान श्रद्धा का होना, अनुभव का होना, वह निर्मल वीतरागी पर्याय, उसे—अनुभूति को कहते हैं। उस वीतरागी पर्याय से आत्मा वीतराग प्रभु आत्मा अनुभव में आता है। गजब बातें, भाई! आत्मा अकेला ज्ञान है न, वह ज्ञान अर्थात् कि विकार और राग-द्वेषरहित चीज़। ऐसा आत्मज्ञान सूर्य प्रभु वह निर्दोष अरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति ऐसी अनुभूति—अरागी

अनुभूति उस द्वारा ही वीतरागस्वभाव पूरा अनुभव में आवे। समझ में आया? उसके वैरी राग और द्वेष। काम शब्द से इच्छा, भोगादि की इच्छा और क्रोध द्वेष।

ऐसे **विकल्परूप मेघ हैं,...** ऐसे राग-द्वेष के विकल्परूपी बादल, बादल। वे आत्मा निर्विकारी भगवान के वेदन की दशा से विरुद्ध भाव। समझ में आया? नौ तत्त्व के अन्दर लें तो भगवान आत्मा, वह ज्ञायक चैतन्यस्वभाव, चैतन्यस्वभाव, जाननस्वभाव, अकेला स्वभाव ऐसा जो सत्त्व, उसे अनुभव अर्थात् कि शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और निर्मलता की पर्याय, उस द्वारा अनुभव में आवे, वह अनुभूति संवर और निर्जरा। समझ में आया? उस संवर, निर्जरा को रोकनेवाले राग और द्वेष के परिणाम कि जो आस्रव और बन्धभाव हैं वे। अपना भावबन्ध, हों! जड़ नहीं। समझ में आया?

नौ तत्त्व है न, नौ तत्त्व? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। उसमें आत्मा एक शुद्ध चैतन्य वस्तु। अकेला ज्ञान सूर्य ज्ञानस्वभाव ऐसा अन्तर आदि ज्ञान अकेला हो, उसमें आनन्द, ज्ञान दुःखरूप नहीं होता, इसलिए आनन्द और शान्ति इत्यादि के साथ ऐसी चीज़ आत्मा। उसे अनुभव करनेवाली वीतरागी पर्याय निर्विकल्प समाधि शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान वीतरागी दशा, उसे अनुभव करे, उस दशा का नाम संवर और निर्जरा कहा जाता है अथवा उस दशा का नाम मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। उस मोक्ष के मार्ग से विरुद्ध पुण्य और पाप, राग और द्वेष वह आस्रव और बन्ध पर्याय तत्त्व कहा जाता है। उस अरागी पर्याय के वैरी यह राग पर्याय है। समझ में आया?

ऐसे शत्रुरूपी बादल **उनके नाश होने पर...** वे पुण्य-पाप के राग एक क्षणिक समय की विकृत पर्याय, उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर अकेला ज्ञानस्वरूप वीतरागस्वभाव आत्मा का, उसमें अन्तर लक्ष्य चिपटने से जो अनुभूति हो, वह राग-द्वेष को नाश करने का भाव है। समझ में आया? इसमें बात बहुत संक्षिप्त और बड़ी लगे मानो। भगवान आत्मा वस्तु है न, वह तो ज्ञान, यह विकल्प, उन्हें भी जाननेवाला। जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... जाननेवाला... प्रकाश अकेला प्रकाश, ऐसा चैतन्यप्रकाश वह आत्मा। उसके प्रकाश के अनुभव को रोकनेवाला, उस अनुभव की वीतरागी पर्याय के वैरी राग और द्वेष। ऐसी अनुभूति द्वारा जिसने अन्तर में राग और द्वेष

का व्यय किया और अरागी श्रद्धा, ज्ञान, अनुभूति उत्पन्न की, उसे ऐसे निर्मल ज्ञान की पर्याय में **निर्मल मनरूपी आकाश में केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप किरणोंकर सहित...** जैसे आकाश के अन्दर बादल टलने से हजार किरणों से उगता सूर्य प्रकाशमान आकाश में दिखाई देता है। बादल के अभाव से हजार किरणों से प्रकाशित सूर्य आकाश में दिखाई देता है। उसी प्रकार राग-द्वेष के विकल्पों का अभाव और स्वभाव की पर्याय प्रगट करने से उस मन में, जैसे आकाश में सूर्य दिखता है, वैसे ही ज्ञान की निर्मलरूपी पर्याय में अनन्त गुण के किरणवाला आत्मा श्रद्धा में आता है, अनुभव में आता है, दिखता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपना पूर्ण स्वरूप है, वह ज्ञान है, उसके ऊपर यह नजर नहीं करता। यह नजर करता है विकार और संयोग के ऊपर, यह उसका मिथ्यात्व का दोष है। समझ में आया? जहाँ महान अस्तित्व स्वरूप चैतन्यस्वरूप है, उसके अस्तित्व का स्वीकार नहीं करता और वह मात्र पुण्य और पाप के राग उठें या राग के निमित्त संयोग वे मेरे, ऐसे उनके अस्तित्व में रुका है, इसका नाम मिथ्यात्व का जीव का दोष। समझ में आया? उस मिथ्यात्व दोष का वस्तु पूर्ण शुद्ध आनन्द है, ऐसी सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान द्वारा नाश होने से, बादल का नाश होने से आकाश में हजार किरणों से सूर्य प्रकाशित होता है; उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य-पाप और संयोग के अस्तित्व की जितनी अन्दर बुद्धि थी। उसे भगवान पूर्णानन्द मैं हूँ, ऐसी अन्तर बुद्धि-दृष्टि प्रगट होने से वह विकाररहित जो आत्मा परमानन्द की मूर्ति, वह निर्मल चित्त-ज्ञान की पर्याय में प्रकाशित होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान की बात है न! वह वर्तमान है या नहीं? राग-द्वेष आदि के अस्तित्व में मान्यता भी वर्तमान में ही है। राग-द्वेष विकल्प की जाल अकेली। चैतन्य अनन्त गुण का किरण भगवान आत्मा एक ओर पड़ा रहा। वर्तमान शुभ-अशुभ राग विकल्प आदि मैल, उसके अस्तित्व का स्वीकार वर्तमान में मिथ्यात्वभाव है।

समझ में आया? वह मिथ्यात्वभाव वर्तमान है। ऐसा ही परमात्मा वर्तमान अखण्ड पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड है, उसके सन्मुख होकर श्रद्धा, ज्ञान किये, वह वर्तमान है। उस वर्तमान ज्ञान में चैतन्यमूर्ति भगवान दिखाई देता है। आहाहा! जैसे वर्तमान श्रद्धा में मिथ्यात्व में, राग, द्वेष और विकल्प ही उसे प्रतीति में भासित होते हैं, उसी प्रकार भगवान पूर्ण अस्तित्व, पूर्ण अस्तित्व पूरा ज्ञान का पुंज प्रभु उसकी श्रद्धा, ज्ञान की निर्मल पर्याय में वर्तमान में आत्मा पूर्ण अनन्त गुण का किरणवाला है, वह वर्तमान सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान में ज्ञात होता है, प्रतीति में आता है। समझ में आया? क्या होगा यह? यह किसकी बात है? भाई! तेरी अभी की बात है। समझ में आया?

पूरा चैतन्य ज्ञानस्वरूप... ज्ञानस्वरूप... ज्ञानस्वरूप। उसके साथ आनन्द आदि इकट्ठा आ जाता है। यहाँ तो ज्ञान की स्व-परप्रकाशक वस्तु है न, इसलिए ज्ञानप्रधान ही पूरा आत्मा गिनने में आता है। वह ज्ञान... क्योंकि ऐसे अपने को जाने और रागादि बाकी, उन्हें जाने, ऐसा ही वह स्व-परप्रकाशक चैतन्यस्वरूप, उसे न मानकर, पुण्य-पाप के विकल्प रागादि जो वस्तु में नहीं, अभूतार्थ है, खोटे हैं अर्थात् वस्तु में—सच्ची वस्तु में नहीं, ऐसे शुभ-अशुभभाव की खण्डता, उन्हें अपनी मान्यता में लेकर और जो दुःख वेदता है वर्तमान, दुःख वेदता है वर्तमान, ऐसा ही उस भाव से विरुद्ध भाव परम महासत्तास्वरूप भगवान आत्मा महासत्ता अस्तित्व स्वरूप प्रभु के सन्मुख की, उनसे (पर-विकार से) विमुख होकर यहाँ सन्मुख की अन्तर श्रद्धा, ज्ञान की निर्मल पर्याय में परमात्मा भासित होता है और आनन्द होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वर्तमान मिथ्यात्वभाव में राग-द्वेष जितना भासते हैं, उसे मिथ्यात्व में दुःख होता है। समझ में आया? वस्तु आत्मा अकेला आनन्द और ज्ञान का पूर्ण रूप, उसे अन्तर में ज्ञान में लेने से जो ज्ञान की निर्मल दशा हो उसमें, श्रद्धासहित का ज्ञान उसमें, वह आत्मा पूर्ण यह है ऐसा, सूर्य किरणवाला आकाश में बादल बिना दिखाई दे, वैसे मैल बिना की निर्मल दशा में भगवान यह चैतन्य सूर्य है, ऐसा ज्ञान में ज्ञात हो और वह सुखरूप हो। समझ में आया?

केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप किरणों... अनन्त गुण हैं, भगवान में अनन्त गुण

हैं। उनकी वे पर्यायें अनन्त पर्यायें होती हैं, अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें होती हैं। अनन्त गुण के किरणवाला अर्थात् स्वभाववाला ज्ञान की निर्मल पर्याय में ज्ञात होने से उस पर्याय में अनन्त गुणों के निर्मल किरणों के अंश उसमें प्रगट होते हैं। समझ में आया? कहो, शशीभाई! गजब बात! ऐसा धर्म कैसा? वीतराग का धर्म ऐसा होगा? वीतराग का धर्म वीतरागपर्यायरूप होता है। वीतराग की पर्याय में पूरा वीतरागी पूर्णानन्द तत्त्व भासित हो, तब वह वीतरागीपर्याय कही जाती है। आहाहा! समझ में आया?

निज शुद्धात्मारूपी सूर्य प्रकाश करता है। सम्यग्ज्ञान प्रगट करके स्वरूप की ओर के सन्मुख भाव में वह अनन्त गुण का किरणवाला भगवान, अनन्त गुण... उसको (सूर्य) को तो हजार ही किरण सूर्य को है, इस भगवान आत्मा में तो अनन्त गुणरूपी शक्ति पड़ी है, उसकी प्रतीति करने से, उसका ज्ञान करने से उस ज्ञान की पर्याय में श्रद्धा पर्याय, शान्ति पर्याय अनन्त गुण के अंशों की निर्मल पर्याय लेता हुआ वह प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? चिमनभाई! यह सब है, वहाँ कहीं मुम्बई में यह मिलता होगा? इंजीनियर में जाये यह मकान मिले और पैसा मिले, धूल मिलती होगी वहाँ। ममता मिलती है, वह तो ममता, पैसा किसे मिलता है? किसके पास ममता थी? पैसा जड़ है, वह आत्मा को छूता है? आत्मा के पास आता है पैसा? शरीर यहाँ है, पैसा पैसे में आता है। शरीर शरीर में है। क्या आत्मा को शरीर स्पर्शा है? उसे ममता स्पर्शी है। वे मेरे (और) चैतन्य अनन्त आनन्द का कन्द मैं नहीं, वे मेरे और अनन्त आनन्द का कन्द चैतन्य नहीं—ऐसी मिथ्याश्रद्धा की ममता उसे स्पर्शी और छुई है। बराबर होगा? चिमनभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं रहता नहीं, असंख्य प्रदेश में रहता है वह। कहीं आत्मा रहता नहीं। कल नहीं आया था? असंख्य प्रदेश में सदा ही रहता है अनादि-अनन्त। समझ में आया? भगवानस्वरूप प्रभु, वह पर में तो रहता नहीं, परन्तु परमार्थ से वह पुण्य-पाप के विकल्प में वह भगवान रहता नहीं। यह तो इसने माना है, मान्यता खड़ी की है। असंख्य प्रदेश अनन्त गुण का सागर भगवान पूर्ण वस्तु अकेला ज्ञानस्वरूप चैतन्य, यह वह उसके अपने क्षेत्र के भाव में बसता है या वह उस पर क्षेत्र में बसता है?

आहाहा! मात्र मिथ्याश्रद्धा काल में विकार की पर्याय में बसता है, ऐसा कहा जाता है। वह भी उसकी पर्याय स्वक्षेत्र में है उसे। समझ में आया? क्या होंगी ऐसी बातें? बापू! यह तो सत्य की सत्यसूर्य प्रभु, जिसे आत्मा कहते हैं, वह सूर्य का सूर्य है अकेला, अनन्त गुण का सत्यस्वरूप सूर्य प्रभु है। उसे सम्यग्ज्ञान की पर्याय द्वारा यह आत्मा, उस अंश में अकेला आत्मा यह, ऐसा ज्ञान में ज्ञात हो, उस ज्ञान को यहाँ अनुभूति का ज्ञान कहने में आता है। इसका नाम धर्म कहा जाता है। कठिन बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आया। सदा ही संवर हो गया उसे। भराया है न सब इसने भ्रमणायें कुछ। कितनी घड़ी संवर करना? कहते हैं। चौबीस घण्टे जितना करे चौबीस? रात, दिन करे या नहीं? यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वस्तु जो अनाकुल आनन्द का कन्द ज्ञानमूर्ति, उसका अन्तर श्रद्धा, ज्ञान द्वारा स्वीकार हुआ, वह सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान कायम रहनेवाले हैं। इतना संवर और निर्जरा तो कायम रहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प से रुचि छोड़कर, पूर्णानन्द की दृष्टि करके ज्ञान उसमें झुकाया, वह तो सदा कायम रहता है। भगवान ऐसा का ऐसा तो श्रद्धा, ज्ञान (भी) ऐसे के ऐसे, संवर और निर्जरा, संवर और निर्जरा कायम आत्मा के साथ ही रहते हैं। आहाहा! ऐ... न्यालभाई! चौबीस घण्टे... दो घड़ी की सामायिक, दो घड़ी रहती होगी सामायिक? वह तो विशेष निर्विकल्प उपयोग की अपेक्षा की बात है। बाकी तो जितनी निर्मलता वीतरागीपर्याय प्रगट करके वीतरागस्वभाव के अवलम्बन से, वह सदा साथ ही रहती है। साथ ही है पर्याय, उसका काल ही लम्बा है। समझ में आया? यह ११९ हुई। १२०।

★ ★ ★

गाथा - १२०

१२०) राएँ रंगिए हियवडए देउ ण दीसइ संतु।
दप्पणि मइलए बिंबु जिम एहउ जाणि णिभंतु॥ १२० ॥(विँ) ॥१२० ॥

आगे जैसे मैले दर्पण में रूप नहीं दिखता, उसी तरह (पुण्य-पाप के) रागादिकर मलिन चित्त में शुद्ध आत्मस्वरूप नहीं दिखता, ऐसा कहते हैं — पुण्य-पाप के मैल के परिणाम में रुका हुआ चित्त, उसमें निर्मल भगवान नहीं दिखता।

अन्वयार्थ :- राग करके रंजित... यहाँ तो वीतरागस्वभाव के सामने अकेला राग लिया। उस राग में सब पुण्य-पाप, विकल्प, विषयवासना सब उसमें आ गया और मिथ्यात्वभाव भी उस राग में ही आ जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति जो वीतरागस्वरूप है, उससे विरुद्ध जो श्रद्धा, वह अकेली रागमय मलिन श्रद्धा। समझ में आया? ऐसे **राग करके रंजित...** रंगा हुआ हृदय है। अरे! राग में एकाकार हुआ जिसका चित्त है अन्दर में, उसे '**शांतः देवः न दृश्यते**' उसे वीतरागी आत्मदेव, शान्त अर्थात् वीतरागीस्वरूप आत्मदेव, शान्त अर्थात् विकाररहित भगवान आत्मा वह '**देवः न दृश्यते**' वह भगवान देव दिखता नहीं। आहाहा! समझ में आया? मलिन दर्पण में मुख दिखाई नहीं देता। दिखता है? उसी प्रकार जहाँ अकेला भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु से विरुद्ध अकेले पुण्य और पाप के मलिन विकल्प-भाव, वह मैला चित्त, उसमें प्रभु का प्रकाश कहाँ से आवे? समझ में आया? प्रभु अर्थात् स्वयं आत्मा, हों! वापस दूसरा प्रभु यहाँ नहीं, वह तो स्वयं ही प्रभु है आत्मा। आहाहा! राग में एकत्व से रंगा हुआ चित्त, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, वह राग में रंगे हुए में कैसे वीतरागी चैतन्य दिखाई दे? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह कहते हैं न, चाँद दिखाई नहीं देता।

'यथा' जैसे कि मैले दर्पण में मुख नहीं भासता यह बात हे प्रभाकर भट्ट! तू निर्भ्रान्त-सन्देह रहित जान। ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसका अर्थ गुलाँट खाते निर्भ्रान्त हो, निर्मल पर्याय में भगवान दिखे बिना रहेगा नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- ऐसा श्री योगीन्द्राचार्य ने उपदेश दिया है कि जैसे सहस्त्र किरणों से शोभित... हजार किरणों से शोभावाला **सूर्य आकाश में प्रत्यक्ष दिखता है, लेकिन (परन्तु) मेघसमूहकर ढंका हुआ नहीं दिखता,...** मेघ के—बादल के टुकड़े आड़े आवें, वह दिखाई नहीं देता। उसी प्रकार भगवान आत्मा **केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप किरणोंकर...** भगवान आत्मा केवलज्ञानादि अनन्त किरण, अनन्त गुणरूप किरणों से लोकालोक को प्रकाशित करनेवाला। समझ में आया ? वह तो मात्र जाननेवाला, देखनेवाला ही है, फिर लोकालोक हो या चाहे जो हो। समझ में आया ? यह तो उसका—ज्ञेय का एक माप कहा। वह चैतन्यसूर्य तो लोकालोक का क्षेत्र ही इतना है और उतना काल उसे आत्मा ज्ञानस्वभाव में जाने, ऐसा ही उसका स्वभाव है। समझ में आया ? कब ? अभी।

लोक-अलोक का प्रकाशनेवाला भी इस देह (घट) के बीच में... इस देहरूपी घड़े में भगवान भिन्न विराजता है। यह मिट्टी का पिण्ड, इसमें चैतन्यसूर्य अत्यन्त भिन्न विराजता है, अत्यन्त भिन्न। समझ में आया ? **शक्तिरूप से विद्यमान निज शुद्धात्मस्वरूप...** तत्त्वरूप शक्तिरूप है। प्रगट पर्यायरूप केवलज्ञान नहीं, परन्तु शक्तिरूप-सामर्थ्यरूप, जैसे अभ्रक में सामर्थ्य है हजार पुट होने की, तुम्हारे गिरिडिह में होती है न अभ्रक ? उसी प्रकार आत्मा का ऐसा स्वभाव है, शक्तिरूप है कि उसमें पर्याय में अनन्त केवलज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य प्रगटे, ऐसा उसका शक्तिरूप है। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन सामर्थ्य, ज्ञान अनन्त सामर्थ्य, दर्शन अनन्त सामर्थ्य, आनन्द का अनन्त सामर्थ्य, वीर्य का अनन्त सामर्थ्य इत्यादि ऐसा शक्तिरूप भगवान आत्मा अभी विराजमान है।

निज शुद्धात्मस्वरूप (परमज्योति चिद्रूप) सूर्य काम-क्रोधादि... ऐसा जो भगवान सूर्य। **काम-क्रोधादि राग-द्वेष भावोंस्वरूप विकल्प-जालरूप मेघ से ढँका हुआ नहीं दिखता।** ऐसा भगवान साक्षात् अस्ति-सत्ता सामर्थ्य पूर्ण स्वभाववाला पदार्थ है। वह बहिर्मुख की वृत्ति शुभाशुभ विकल्प राग-द्वेष, उसके मैल में वह भगवान दिखता नहीं। समझ में आया ? उसमें भी ऐसा कहा कि केवलज्ञानावरणीय प्रकृति है, इसलिए दिखता नहीं, ऐसा नहीं कहा। जड़ कर्म है, इसलिए दिखता नहीं, ऐसा नहीं कहा। समझ में

आया ? आहाहा ! स्वयं उल्टा पड़ा पुण्य-पाप के विकारी भाव में एकाकार हुआ, जैसे बादल में सूर्य दिखता नहीं, वैसे विकार की एकाग्रता में भगवान निर्मलानन्द दिखता नहीं। समझ में आया ? भले आत्मा देखे, न देखे उसमें क्या, हमारे भाई ! धर्म करना है। परन्तु इसका नाम ही धर्म है। आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, उसे पुण्य-पाप के राग में एकाकार होकर रहना, वह अधर्म है। वही अधर्म है, अधर्म कोई दूसरी चीज़ बाहर में होती नहीं। भगवान अनन्त चैतन्य गुण का पिण्ड प्रभु, उसे लक्ष्य में—दृष्टि में, स्थिरता में न लेकर अकेले पुण्य-पाप, राग और द्वेष खण्ड में एकाकार होकर रहना, वही उसकी अधर्मदशा है, उसका नाम अधर्मदशा है। वह दशा कहीं बाहर नहीं रहती। समझ में आया ?

इसे धर्म करना हो तो यह अधर्मदशा जो राग और पुण्य-पाप की एकताबुद्धि है, उसे छोड़कर त्रिकाली ज्ञानानन्द भगवान में एकताबुद्धि करने से उसे निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति प्रगटे, उसे धर्म कहा जाता है। गजब बात ! समझ में आया ? कभी सुना नहीं था। 'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' बोले जाये हाँक रखे गाडा। चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं... किसे कहना 'केवली पण्णत्तो धम्मो' ? भगवान जाने। तो भगवान जाने, परन्तु तुझे क्या ? भगवानजीभाई ! मांगलिक बोले ने सवेरे-शाम, हाँक रखे। मांगलिक बोलूँगा तो कुछ दुकान चलेगी, पैसा-बैसा ठीक होगा, नंगे-भूखे नहीं रहेंगे। ऐसी तो आशायें मूढ़ को। मूढ़ मिथ्याश्रद्धा में ऐसी भावना। समझ में आया ? वह सब मिथ्याश्रद्धा के लक्षण हैं, मिथ्यात्व भाव के लक्षण हैं। मुझे यह मिले और यह मिले। भगवान मिले, ऐसी उसे खबर नहीं। समझ में आया ?

यह आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, वैसा अन्तर में पुण्य-पाप के विकल्प की एकता तोड़कर स्वभाव-सन्मुख की एकता करना, उसका नाम वीतराग पर्याय और धर्म कहते हैं। आहाहा ! यह दृष्टि हुई, वीतरागस्वरूप भगवान पूरा ऐसा है, ऐसा ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात हुआ, वह ज्ञान धर्म है, श्रद्धा में—प्रतीति में आया कि वह सम्यग्दर्शन धर्म है, इतना जितने अंश में उसमें स्थिर हुआ, वह भी चारित्ररूपी धर्म है। 'केवलि पण्णत्तो धम्मो' यह है। कौन जाने कभी सुना न हो। साठ-साठ वर्ष व्यतीत किये हों वाडा में। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरी बात ही विरोध में पड़ गयी है, पटरी से गाड़ी ही उतर गयी है और गाड़ी चलती है, ऐसा काम करते हैं इतना। चलती अवश्य है, परन्तु कहाँ जाती है। समझ में आया? दिशा बदलने की आवश्यकता है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं, योगीन्द्रदेव '**भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' ऐसा है, हों अन्दर! १२२ में अन्त में। यह तो अपने १२०वीं चलती है। भगवान योगीन्द्रदेव का यह अभिप्राय है। कुन्दकुन्दाचार्य में आता है न, जयसेनाचार्य (की टीका) में '**भगवतां कुन्दकुन्दाचार्यदेवानाम् अभिप्राय।**' नियमसार में आता है। इसी प्रकार यहाँ है १२२ में अन्त में। महायोगीन्द्रदेव भी जोरदार हो गये, हों! महामुनि दिगम्बर सन्त जंगल वनवासी जिन्हें आत्मध्यान छठवें, सातवें गुणस्थान (में) झूलते... झूलते... झूलते... विकल्प आया और यह शास्त्र लिख गये। समझ में आया? यह कहेंगे। १२२ में कहेंगे।

कहाँ बसा है हंस? मानसरोवर में। इसी प्रकार कहाँ भगवान बसता है? कि निर्मल ज्ञान पर्याय में। ऐसा योगीन्द्रदेव का अभिप्राय कहते हैं। प्रभु! तू कहाँ बसता है? कि निर्मल सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान की पर्याय में भगवान बसता है। हंस वहाँ बसता है? वह कहीं यहाँ सोनगढ़ की नदी में नहीं होता उतावली नदी में हंस। तथा समुद्र में भी नहीं होते। विशाल समुद्र ऐसे भरे खारे, हंस वहाँ नहीं होते। जहाँ मानसरोवर, जहाँ मोती पकते हों, वहाँ हंस होते हैं। जिन्हें मोती का चारा है। समझ में आया? ऐसे मानसरोवर है, हों! भगवान ने देखे हुए कहा है अमुक स्थान में। जहाँ उसे मोती पके, बालू (रेत) के बदले मोती पके हुए हों। वे हंस मोती का चारा चरे, वे यह ज्वार और बाजरा नहीं खाते। आहाहा!

इसी प्रकार भगवान आत्मा की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान की पर्याय में हंस वह आत्मा की शान्ति का चारा चरे। आहाहा! समझ में आया? हंस, वह रेत और दाना को अलग करके मोती को ही ले। जैसा चोंच में मोती आया, निगलकर एकदम नीचे पेट में जाये। ऐसा कड़क और कठिन मोती हो, ऐसे लिया इकट्ठा निगलकर पेट में जाये। इसी प्रकार

भगवान आत्मा अनन्त जहाँ शान्ति और आनन्द के मोती पकें, ऐसा सरोवर आत्मा है। आहाहा! अनन्त आनन्द और शान्ति के मोती पकें, ऐसा भगवान सरोवर है। उसकी सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान द्वारा वह धर्मी—हंस ऐसे मानसरोवर के मोती को चरता है। आहाहा! वह पुण्य-पाप के माँस के पिण्ड और कंकड़, वह सम्यग्दृष्टि खाता नहीं। आहाहा! अज्ञानी कौआ माँस को चूसता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति की श्रद्धा छोड़कर अकेले पुण्य-पाप के विकाररूपी कंकड़ और माँस को खाता है। समझ में आया?

देखो न, यह छाणा-बाणा सड़ा हो न। सांझ का छाणा (गोबर) पड़ा हो, शाम का गोबर, गोबर। पूरी रात पड़ा हो तो जीव पड़े हों, फिर सवेरे कौआ चोंच से ऐसे-ऐसे करे साफ। जीव अन्दर पड़े हों न। शाम का गोबर हो और बारह घण्टे रहा हो, कौन ले जाये उस समय? पश्चात् जीव पड़े इतने-इतने। सवेरे चोंच मारकर छोले और वे जीव खाये। कौवे को तो जीव का खुराक हो, उसे दूसरा क्या खुराक हो? इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शान्ति का सरोवर, उसकी श्रद्धा छोड़कर अकेला पुण्य-पाप ही मैं, पुण्य-पाप मैं, शरीर मैं, ऐसी मान्यता के मिथ्यात्वभाव में अज्ञानी को राग-द्वेष का ही खुराक होता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान **काम-क्रोधादि राग-द्वेष भावोंस्वरूप विकल्प-जालरूप मेघ से ढँका हुआ नहीं दिखता।** परमात्मा तो विराजता है ऐसा का ऐसा, परन्तु उस विकल्प की आड़ में भगवान अन्दर में दिखता नहीं। उस भगवान आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में देखना, इसका नाम धर्म है। धर्म कोई दूसरी वीतराग मार्ग में चीज़ नहीं। आहाहा! गजब परन्तु लोगों को कठोर लगे, हों! ऐ... धीरूभाई! व्यवहार धर्म लोप हो जाता है। बापू! व्यवहार का लोप होगा तो निश्चय प्रगट होगा। इसके बिना प्रगटेगा किस प्रकार? व्यवहार तो राग पुण्य को कहा है, परन्तु यहाँ निश्चय हुए बिना उसे व्यवहार कहना कैसे? और वह घटता जाये और स्थिरता होती जाये, तब धर्म की वृद्धि होती है। आहाहा! भारी कठिन काम। जगत को ... मिला बहुत और मिला... मिला बहुत उल्टा। भरे बर्तन सब मिले उल्टे, इसलिए यह चीज़ क्या है, उसे दृष्टि में आना मुश्किल पड़ता है। जुगराजजी!

मेघ से ढँका हुआ (भगवान) नहीं दिखता। वह मैल और पुण्य-पाप की एकताबुद्धि को टालने से भगवान आत्मा में एकता... एकता... एकता... उसका आदर होकर एकता (होने से) चैतन्यसूर्य उसमें दिखता है। अर्थात् श्रद्धा में आवे, ज्ञान में यह पूरा आत्मा है, ऐसा ज्ञात होता है। ऐसी श्रद्धा, ज्ञान की पर्याय को धर्म कहते हैं। समझ में आया? अब फिर ऐसी बात वैसी ही लगे न लोगों को, ९९ यात्रा करने जाते हों तो यहाँ एक भी बात आती नहीं ९९ की यात्रा की। फिर ऊपर ऐसे चढ़ना फिर ऐसे उतरे, वहाँ तो धर्म हो। एक दिन में तीन बार हो। एक बार हम गये थे। तब एक लड़की ग्यारह-बारह वर्ष की दौड़कर जाये, दर्शन करके नीचे उतरे, फिर दौड़कर जाये, नीचे उतरे, क्या है परन्तु? बहुत हो जाये ऐसा कि ... बहुत जायें तो बहुत धर्म होगा।

भाई! वह तो भगवान! शुभभाव में लक्ष्य करे तो वह पुण्यभाव का कारण है, पुण्य शुभभाव। वहाँ तू मान ले कि उसमें धर्म है और संवर-निर्जरा है, वह है नहीं। यहाँ लोग सामायिक प्रौषध और बैठे सामायिक करके बैठे, संवर हो गया। कहीं धूल में भी संवर नहीं, सामायिक कहना किसे, यह तुझे खबर नहीं। समझ में आया? जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प उठें, उसे एकरूप बन्ध जाने और उससे रहित अबन्धस्वरूप भगवान को श्रद्धा-ज्ञान में ले, तब जो रागरहित श्रद्धा-ज्ञान हुए, उसमें स्थिरता हो, तब उसे सामायिक कहा जाता है। ऐसी तो सामायिक की व्याख्या है। आहाहा! वह ऊपर चढ़कर मान ले धर्म, यह घड़ी दो घड़ी ऐसे बैठकर निकला, वहाँ हो गया धर्म हमारे। कहाँ गया था? विकल्प में। समझ में आया? १२१।

★ ★ ★

गाथा - १२१

आगे जो विषयों में लीन हैं, उनको परमात्मा का दर्शन नहीं होता,... अर्थात् कि भगवान आत्मा के लक्ष्य को छोड़कर बाह्य विषय में लीन है, स्त्री को मुख्य गिना है यहाँ, उसके प्रेम में लीन है, उसे आत्मा का विषय अन्दर शुद्ध चिदानन्द है, वह उसमें रह सकता नहीं।

१२१) जसु हरिणच्छी हियवडए तसु णवि बंभु वियारि।
एक्कहिँ केम समंति वढ वे खंडा पडियारि॥ १२१॥

'वढ वे खंडा पडियारि।' अन्वयार्थ :- जिस पुरुष के चित्त में 'हरिणाक्षी' मृग के समान नेत्रवाली स्त्री बस रही है... आचार्य उसका नाम देते हैं मुख्य तो। स्त्री का प्रेम जगत में अज्ञानियों को विशेष लगता है। समझ में आया? भगवान आत्मा का भोग अनुभव को छोड़कर अकेले स्त्री के भोग की आसक्ति में एकाकार पड़ा, ऐसी आसक्ति में अन्धेरे में भगवान चैतन्य कैसे दिखाई दे? आहाहा! समझ में आया? **मृग के समान नेत्रवाली...** ऐसे मृग के नेत्र ऐसे लम्बे वैसे हो न चकचकित हों, ऐसी जिसकी आँखें ऐसी-ऐसी। जिसके हृदय में वे स्त्रियाँ और राग बसे हैं, **उसके अपना शुद्धात्मा नहीं विचार में नहीं आता...** वह भगवान आनन्दमूर्ति को विषय नहीं कर सकता। विषय अर्थात् उसे लक्ष्य में नहीं ले सकता। आहाहा!

तब कहे, सम्यग्दृष्टि है न, छियानवें हजार स्त्रियाँ होती हैं न? नहीं, नहीं; भाई! तुझे खबर नहीं। उसकी दृष्टि में स्त्री बसी नहीं, उसके ज्ञान में राग बसा नहीं। उसकी दृष्टि और ज्ञान में तो आनन्द भगवान बसे हैं। आहाहा! समझ में आया? वह सम्यग्दृष्टि संसार में छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में दिखाई दे, वह स्त्रियों में नहीं। उनके प्रति का जरा अशुभराग, उसमें उसका अस्तित्व वह मानता नहीं। अरे! जिसे वस्तु के ज्ञानस्वभाव वस्तु अतीन्द्रिय आनन्द के—श्रद्धा, ज्ञान में स्वाद आया है, उसे स्त्री ज्ञान में कैसे बसे? समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में तो चैतन्यसूर्य भासित हुआ है और वह चैतन्य भी अनाकुल आनन्द की दशा का स्वाद लेता भासित हुआ है। आहाहा! उस स्वाद के लोलुपी

सम्यग्दृष्टि, उन्हें छियानवें हजार स्त्रियों के राग में रंग होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसलिए कोई ऐसा कहे कि अपने स्त्रियाँ छोड़ देते हैं। ऐसा नहीं। उनके प्रति की राग की वासना जो विकार की है, उसका जहाँ अन्दर प्रेम है, उसे निर्विकारी भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का प्रेम नहीं। और भगवान अनाकुल आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा परमात्मा सर्वज्ञदेव ने कहा, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने भगवान को पूर्ण अनुभव किया, ऐसा ही भगवान पूर्णानन्द का ज्ञानस्वरूपी चिदानन्द आत्मा जिसके अन्तर में ज्ञान से उसे—आत्मा को ज्ञेय बनाकर और श्रद्धा, ज्ञान हुए हैं, उसमें तो आत्मा बसता है धर्मी के ज्ञान में। स्त्री का बास एक क्षण भी नहीं। वह राग के भोग के काल में राग में एक क्षण भी आत्मा अपने ज्ञान में बसा, वह हटता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और अज्ञानी को धर्म के नाम की क्रिया राग की दया, दान, व्रत के राग की क्रिया में बैठा है तो अज्ञानी को एक समय भी आत्मा उसके ज्ञान में आया नहीं, उसके ज्ञान में तो वह विकल्प और राग बसे हैं। आहाहा! समझ में आया? यह वीतराग मार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग कोई अलौकिक है। यह कोई ऐरे-गैरे मान बैठते हैं, ऐसा यह धर्म नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! जिसके ज्ञान में, आँखों में वह '**हरिणाक्षी**' स्त्री के भोग और वृत्ति बसते हैं, वह एक म्यान में दो तलवार कैसे रहे? जिसे उस आसक्ति के भोग में प्रेम में—प्रीति में अर्पित हो गया है, उसमें भगवान वीतरागी चिदानन्दस्वरूप उसे ज्ञान, श्रद्धा में कैसे आवे? समझ में आया? आहाहा! समझ में आया इसमें? ओहोहो! त्यागी हजारों रानी छोड़कर बैठा, परन्तु अन्दर में राग के विकल्प का प्रेम और रुचि है, उसके राग में सब स्त्रियाँ पड़ी हैं। भगवान उसके राग में नहीं आता, राग में भगवान आत्मा कहाँ से आवे? उस राग से पृथक् होकर अरागी श्रद्धा-ज्ञान द्वारा आत्मा को बसावे तो निर्मल ज्ञान में भगवान आवे। वह कहीं राग में भगवान आवे? आहाहा! समझ में आया? आचार्य ने भी....

सुन तो सही एक बार! भगवान अनन्त गुण का नाथ प्रभु तूने तेरे ज्ञान में बसाया नहीं और उस ज्ञान में तूने राग को और राग के निमित्तों को बसाया, वह एक म्यान में दो नहीं रहे। समझ में आया? वह राग का और भोग का भी आदर और चैतन्य शुद्ध का

भी आदर, दोनों नहीं रह सकते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अर्थात् उसके शुद्धात्मा का विचार नहीं होता,... जो अकेले विकल्प की—राग की जाल में ही रुक गया है, उसे विकल्परहित भगवान निर्विकल्प आनन्द प्रभु अपना स्वरूप, उसकी विचारधारा उसे नहीं आती। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा हे प्रभाकर भट्ट! तू अपने मन में विचार कर। बड़े खेद की बात है कि एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं?** जहाँ आत्मा आनन्दकन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसे स्वयं निर्मल ज्ञान की दशा करके उसे बसाया नहीं, राग और पुण्य के प्रेम में पड़ा, उसमें राग जहाँ बसा, वहाँ भगवान कैसे हो? और भगवान जहाँ ज्ञान में बसे, वहाँ राग कैसे हो? समझ में आया? वह सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से लेकर यह बात है। सम्यग्दृष्टि जीव से लेकर यह बात है।

सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं कि, जिसकी दृष्टि में वीतराग चैतन्य बसे हैं, आत्मा बसा है। जिसे रागादि हो, परन्तु वे दृष्टि में बसे नहीं। रहा, उसे स्थान नहीं, दृष्टि और श्रद्धा में राग को स्थान नहीं। आहाहा! दृष्टि में स्थान है भगवान पूर्णानन्द नाथ का स्थान है। ऐ जुगराजजी! आहाहा! उसमें और यह पैसा दो, पाँच करोड़, धूल करोड़ इकट्ठे हों और गलगलिया हो, मूढ़ है, कहते हैं। रुपये में मेरे, मेरे ऐसे प्रसन्न हो गया। वह राग में प्रसन्न हुआ उसे भगवान का सुखीपना आयेगा नहीं। कहो, समझ में आया?

आचार्य कहते हैं, खेद है कि एक म्यान में दो तलवार कैसे रहेंगी? जैसे राग के प्रेम पुण्य-पाप के बसते हैं, वहाँ भगवान का प्रेम कैसे रहेगा? और जहाँ भगवान आत्मा का प्रेम दृष्टि हुई, वहाँ राग का प्रेम कैसे रहेगा? आहाहा! समझ में आया? ऐसा करके चैतन्य भगवान आत्मा की प्राप्ति का माहात्म्य बताया है। समझ में आया? तब आत्मा प्राप्त होता है। अन्दर दृष्टि करने से राग और पुण्य के विकल्प का प्रेम छूट जाये। हो, परन्तु प्रेम छूट जाये। वस्तु वीतरागानन्द प्रभु आत्मा का प्रेम अर्थात् एकता होने से भगवान जिसके ज्ञान में बसे, यह उसे सम्यग्दृष्टि धर्मी कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ८, बुधवार, दिनांक - १५-१२-१९६५
गाथा - १२१ से १२२ प्रवचन - ७६

परमात्मप्रकाश १२१ गाथा। आज कुन्दकुन्दाचार्य का आचार्य पद-आरोहण का दिन है। शास्त्र की पौष कृष्ण आठ। अपने यह मगसिर कृष्ण ८। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज इस समय जैनशासन के महा सूर्य थे। आचार्यपद के योग्य वह आचार्यपद किसी का दिया हुआ नहीं दिया जाता। ऐसी योग्यता लेकर आये थे। उनका एक शब्द सवेरे याद आया था। **सव्व सिद्धे।** समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि सर्व सिद्धों को अर्थात् अनन्त सर्वज्ञदेव को मैं मेरे ज्ञान की पर्याय में स्थापित करता हूँ और श्रोताओं की पर्याय में अनन्त सिद्ध को, अनन्त सर्वज्ञ को (स्थापित करता हूँ)। समझ में आया? ऐसा कहकर उन्होंने इतना-इतना उसमें कहा है कि जिसने ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञपद को स्थापित किया, वह तो जानने-देखनेवाला ही रहेगा। उसे राग का काम सौंपना या पर का काम सौंपना, वह सर्वज्ञ पर्याय जिसके ज्ञान में बैठी है, उसे वह काम नहीं होता, उसे नहीं सौंपा जाता। समझ में आया?

सर्वज्ञ पर्याय, वह अनन्त हैं। यह तो एक ही सर्वज्ञ हो या अनन्त सर्वज्ञ, सभी एक ही बात है क्योंकि एक सर्वज्ञ की पर्याय में भी अनन्त सर्वज्ञ ज्ञात हो गये हैं। इसलिए अनन्त सिद्ध को स्थापित करने पर उसने अनन्त सर्वज्ञपना एक समय में अनन्त सिद्ध को जाने और लोकालोक को जाने, ऐसी पर्याय, ऐसी पर्याय जिसके ज्ञान की वर्तमान प्रगट दशा में स्थापित की, उसका अर्थ यह कि उसका लक्ष्य ज्ञायक के ऊपर जाता है और वह वर्तमान सर्वज्ञ को पर्याय में स्थापित करने पर वह ज्ञाता-दृष्टारूप तू हो, हम उसमें-समयसार में तुझे कहेंगे। आहाहा! समयसार में यही ज्ञाता-दृष्टापना ज्ञायकभावपना कहेंगे। समझ में आया?

जिस समय में राग होता है, उस समय में भी स्वयं उसे स्व के लक्ष्य से

जाननेवाला (रहकर) उस पर को जानने का ही काम करता है। समझ में आया? उस जानने के काम में पाँचों भाव साथ में जाते हैं। सर्वज्ञ ने जैसा देखा है या पुरुषार्थ से जिसने नियत जो समय में प्रगट होने की पर्याय, उस समय में पुरुषार्थ, उस समय में स्वभाव, उस समय में नियत, वह काल और उस समय में वह भाव। ऐसा जो सर्वज्ञ भगवान ने दूसरे जीव के एक समय के धर्म पुरुषार्थवाले के कार्य में पाँच (समवाय) साथ में देखे हैं। समझ में आया?

ऐसे सर्वज्ञ की पर्याय जिसके ज्ञान में बैठी है, वह भी एक ही समय में ज्ञानस्वभाव है, ज्ञातापने का पुरुषार्थ होता है, उस काल में उस प्रकार के कर्म के उदय का निमित्तपना भी दर्शनमोह की उतनी योग्यतावाला, चारित्रमोह के उदय का भी अभाव है, उस समय उस काल में वह प्रगट होने की पर्याय प्रगट होती है और उसी प्रकार वहाँ भाव है। समझ में आया? यह तो सवेरे उठते हुए जरा ऐसा हुआ कि यह अनियत माननेवाले सर्वज्ञ को नहीं मानते, ऐसी बात है। पण्डितजी को पूछा परन्तु वह बहुत कुछ.... अनियत माननेवाले अल्पज्ञ ही मानते हैं, ऐसा उसका अर्थ है। समझ में आया? अनियत माननेवाले, इस ज्ञायकपने को स्थापित किया है न पर्याय में? वह सर्वज्ञस्वभावी और पर्याय में सर्वज्ञपना, यह भी नहीं मानते - ऐसी बात है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है।

जिसे ज्ञान में सर्वज्ञ केवलज्ञान बैठा... एक बात उस समय याद आयी थी। बहुत वर्ष पहले (संवत्) १९७६ के वर्ष की बात है। एक कोई 'जोबाला', जोबाला है न तुम्हारा देव का। जोबाला गये थे न, भाई! उजमशीभाई रोजकावाला, उजमशी रोजकावाला। वह वहाँ आया था। ...बराबर यह आकर जहाँ बैठा है, वहाँ आया वह और ऐसा उससे कहा कि देखो भाई! शास्त्र में एक लेख है। उत्तराध्ययन का ११५....

जैसे जम्बूद्वीप में एक अनादि शाश्वत् जम्बू नाम का वृक्ष है। है न? जम्बू वृक्ष। उसमें एक आणाध्यस देव नाम का वास है। नम्बर से देव रहे परन्तु एक आणाध्यस का नाम था। उत्तराध्ययन में ११ में आता है। ऐसा कहा, सम्यग्ज्ञानी के ज्ञान में 'जिन' उसके ज्ञान में बसे हुए होते हैं। भाई! समझ में आया? और उस देव का नाम भी आणाध्यस है या नहीं? नाम भी आणाध्यस। उसमें जो आता है वह ठीक परन्तु उसमें

वह है। आणाध्यस। उसमें फिर निकाला था। यह तब १९७६ की बात है। 'जोबाला' गये थे, बैठे और वह आया, उसमें यह बात की। देखो, भाई! ऐसा है, हों! यह कितना है? ११-११, देखो यहाँ। २७ वीं एक बहुश्रुत की गाथा है। बहुश्रुत अर्थात् ज्ञानी, उस ज्ञानी के ज्ञान में सर्वज्ञ बैठे हैं। '...' यह तो सब आता था या नहीं? ऐई! उसके सेठिया का है न! .... वृक्ष में प्रधान वृक्ष। वृक्ष में प्रधान... अर्थात् वृक्ष प्रधान। जम्बू नाम... वह जम्बू वृक्ष है। यह जम्बूद्वीप है न, उसका वह शाश्वत् वृक्ष है। उसका दूसरा नाम सुदौषणा है। उस वृक्ष का नाम भी दूसरा नाम सुदौषणा। उसमें दो नाम हैं। उसमें होवे सही। समझ में आया? ...उसमें आणाध्यस नाम का, आणाध्यस इस नाम का उसमें देव बसता है... ऐसा होवे बहुश्रुति, ऐसा एक शब्द है। तब फिर (निकाला था)। जहाँ ज्ञानस्वरूपी भाव प्रगट हुआ, ऐसे बहुश्रुत। वहाँ तो बहुश्रुत शब्द है न? उस बहुश्रुति के ज्ञान की पर्याय में आणाध्यास। सर्वज्ञ की आज्ञा अर्थात् सर्वज्ञ बसे हैं। जुगराजजी! यह तो (संवत्) १९७६ की बात है। कितने वर्ष हुए? ४६ हुए, ४६। विहार करके गये थे, नीचे मूलचन्दजी आये। कहा, बापू! मार्ग की ऐसी कोई शैली है कि ज्ञानी के ज्ञान में तीर्थंकर बसते हैं। तब तो ऐसा कहा था, भाई! आहाहा! समझ में आया? उसे बहुश्रुत लिखनेवाले को तो खबर भी नहीं।

यहाँ कहा कि सुननेवाले के और कहनेवाले के ज्ञान में हम सर्वज्ञ को स्थापित करते हैं। कहनेवाला कहता है कि सर्वज्ञ हमारे ज्ञान में विराजते हैं, हों! आहाहा! इससे यह बात सब अब निकलेगी। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य महाराज, दिगम्बर सन्त, महामुनि और अन्तर ज्ञान की दशा में हमने अनन्त सर्वज्ञ को स्थापित किया है। अब यह सब वाणी निकलेगी, सर्वज्ञ जैसी वाणी, जानी-मानी, अनुभव की ऐसी ही वाणी निकलेगी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य महाराज तो गजब बात करते हैं! अरे! आत्मा! हम अनन्त-अनन्त एक सर्वज्ञ कहो या अनन्त कहो, सब एक ही है क्योंकि एक सर्वज्ञ की पर्याय में अनन्त सर्वज्ञ ज्ञात हो गये हैं। समझ में आया? अर्थात् अनन्त सर्वज्ञ को पर्याय में हमने स्थापित किया। आहाहा! अब हमारे राग का और निमित्त का आदर नहीं हो सकता। समझ में आया? यह राग होता है, उसका आदर नहीं होता; होता है, उसका

यहाँ ज्ञान होता है। किस शैली से स्थापित करते हैं, ओहोहो! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। चारों ओर देखो तो एक ही वस्तु सिद्ध हो जाती है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि हमने तो सर्वज्ञ को हमारी दशा में स्थापित किया है, हों! अब इस शास्त्र का लिखने का, बोलने का विकल्प उठा है, वह भी विकल्प को, जैसे सर्वज्ञ नहीं करते; वैसे हम भी नहीं करते, हों! आहाहा! जब करता नहीं तो हो क्या? हम तो उसके जाननेवाले हैं, हों! हमारे ज्ञान में सर्वज्ञ स्थापित हैं। उसमें राग का कर्तृत्व और संयोग का प्राप्त करना, संयोग को हटाना, यह सर्वज्ञ के ज्ञान में नहीं है। सर्वज्ञ ज्ञान में स्थित - व्यवस्थित है सब। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! मांगलिक करके तो गजब काम किया है।

आचार्य तो आचार्य! कुन्दकुन्दाचार्य भगवानतुल्य उन्हें कहा। समझ में आया? स्वयं भगवानतुल्य। पश्चात् अर्थ में कहा न कि वह शुद्ध आत्मा साध्य है सिद्ध को.... वैसे आत्मा के ज्ञान में शुद्धात्मा साध्य है। पूर्ण सर्वज्ञता प्रगट करनी है। अल्पज्ञता में और इसमें रहना नहीं है। समझ में आया? इसलिए जहाँ एक समय में... और श्रोता को कहते हैं कि भाई! तुम्हारी पर्याय में अनन्त सिद्ध को स्थापित करते हैं! हों! बैठाते हैं। अब सर्वज्ञ जैसे राग होता है, उसे जानते हैं, वैसे तुमसे भी राग हो, उसे जानने की बात हम कहेंगे। उसमें यह आयेगा। आहाहा! समझ में आया? यह सुनने का जो विकल्प आवे, उसका भी कहते हैं कि तू कर्ता न हो, तब सर्वज्ञ को स्थापित किया कहलाता है। आहाहा! सर्वज्ञ राग के मालिक हैं? संसार के मालिक हैं? जानते सब हैं परन्तु पर के मालिक हैं? इसी प्रकार जिसने ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञपना स्थापित किया है। ओहो! उसे अनियत ऐसा कुछ है ही नहीं। आहाहा!

जैसे होता है, वैसे होता है। वह राग भी होता है, निमित्त भी होता है, निमित्त दूर हट जाए, ऐसी जो व्यवस्था जैसे होती है, उसे श्रोता को कहते हैं कि तू जाननेवाला रहना। प्रवीणभाई! क्योंकि हमारे पूरा आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है और ज्ञायकस्वरूप सिद्ध करने से पर्याय में ज्ञातापना-दृष्टापना ही आता है, दूसरा नहीं आता। समझ में आया? और ज्ञातापने के भाव में पाँचों समवाय आ जाते हैं। भगवान ने जैसे

केवलज्ञान में दूसरे जीव के सम्यग्दर्शन-ज्ञान के काल में जो पुरुषार्थ आदि पाँच समवाय देखे, वैसे ज्ञानी को उस समय में उस प्रकार का स्वभाव, उस प्रकार का पुरुषार्थ, उस प्रकार का भवितव्य अर्थात् भाव और उस प्रकार का काल तथा उस प्रकार से वहाँ कर्म का अभाव संग में वर्तता है, ऐसा पाँचों ही समवाय का ज्ञान भी उसे जैसा भगवान देखते हैं, वैसा यह देखे तब सर्वज्ञ को स्थापित किया कहलाता है। आहाहा! बजुभाई! समझ में आया इसमें?

धर्मी जीव के एक समय का जो पुरुषार्थ स्वभाव चलता है, काल तो वही है, पुरुषार्थ भी चलता है, स्वभाव ज्ञायक है, भाव वही है, प्रगटने की पर्याय का और पर का - उसका भगवान के ज्ञान में इस साधक जीव के एक समय के पाँच बोल उस समय में जानने में आये हैं। बराबर है? क्या कहा? अकेला नहीं, भगवान ने उसके पाँचों देखे हैं। इसलिए पाँच जैसे देखे, वैसे सर्वज्ञ को पर्याय में स्थापित किया, वह भी पाँच एक समय में ही जानता है। समझ में आया?

जैसे सर्वज्ञ को कुछ फेरफार करना नहीं है। समझ में आया? इसी प्रकार सर्वज्ञ की पर्याय जहाँ स्थापित की, वहाँ ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा निर्णय हुआ, वहाँ कुछ बदलना-बदलना नहीं है। जो होता है, उसे जाने और जाननेवाले को जानते हुए उसमें पाँचों समवाय पुरुषार्थ आदि आ जाते हैं, पाँचों आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह आचार्य कुन्दकुन्द आचार्य महाराज ने, आचार्य पद को आरोहण करके यह बात सर्वज्ञ के घर की दुनिया को कही थी। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा को जो कहना था, वही सर्वज्ञ, जिसकी पर्याय में सर्वज्ञ बसे हैं, उन्होंने यही कहा है। समझ में आया? आहाहा! यह बात!

उसका अर्थ ही हो गया, आत्मा ज्ञ-स्वभावी है अर्थात् वह सर्वज्ञस्वभावी है। अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी है, उसे पर्याय में सर्वज्ञ पर्यायरूप प्रगट हुए को स्थापित किया, उसे पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगट होगा, ऐसा साधकपना वहाँ प्रगट हुआ है। समझ में आया? अब उसे दूसरा करना नहीं है। ऐसा जानने से सर्वज्ञस्वभावी आत्मा सर्वज्ञपर्याय में स्थापित किया। सर्वज्ञस्वभावी द्रव्य, ऐसा अन्तर में जो लक्ष्य रहा ही करता है, वह 'ज्ञ' स्वभाव की वृद्धि होकर पर्याय में राग का घटना होकर सर्वज्ञ हो जाएगा और

वीतराग हो जाएगा। समझ में आया? आहाहा! बजुभाई! आहाहा!

सर्वज्ञ की कथनपद्धति जो निश्चय से जहाँ सर्वज्ञ को पधराया, तब कहते हैं, विकल्प है न! है तो क्या है? जाननेवाला हूँ। समझ में आया? करनेवाला नहीं। वाणी का करनेवाला नहीं, विकल्प का करनेवाला नहीं। सर्वज्ञ सबके जाननेवाले हैं, वैसे हम हमारी शक्तिप्रमाण जो शक्ति प्रगट हुई है, उसमें हम जाननेवाले ही हैं। समझ में आया? यह उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? यह आचार्यपद के आरोहण का दिवस है न? यह इतना मांगलिक आया, लो! आहाहा!

'वंदित्तु सव्व सिद्धे' एक शब्द पहला। समयसार का पहला शब्द। एक शब्द **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** क्या कहते हो प्रभु यह? हम सर्व सर्वज्ञों को आदर करते हैं, आदर करते हैं। वन्दन करते हैं अर्थात् आदर करते हैं। वन्दन करते हैं, आदर करते हैं, सत्कार करते हैं। अल्पज्ञ, राग, निमित्त का आदर-सत्कार नहीं हमारे, उनका ज्ञान है। समझ में आया?

इसलिए यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि एक म्यान में दो तलवार नहीं समाती। लोकोक्ति चलती है न अपने? एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। समझ में आया? जिसमें राग के प्रेम की रुचि का काम, जिसे राग के कर्तापने का काम पड़ा है, उसमें ज्ञातापना नहीं बसता और जिसमें सर्वज्ञ का ज्ञातापना बसे, वहाँ राग का कर्तापना नहीं बसता! दोनों एक स्थान में नहीं होते। समझ में आया? आहाहा!

देखो! १२१ का भावार्थ। **वीतराग निर्विकल्प परमसमाधिकर उत्पन्न हुआ अनाकुलतारूप परम आनन्द अतीन्द्रिय-सुखरूप अमृत है।** यहाँ उत्पन्न हुए की बात है, हों! त्रिकाली की बात नहीं। भगवान आत्मा तो त्रिकाली ऐसा ही है - वीतराग निर्विकल्प आनन्द की मूर्ति है परन्तु ऐसा जहाँ अन्दर में ज्ञ-रूप से ज्ञान के स्वभाव से भान किया तो पर्याय में वीतरागी—रागरहित अभेद सुखामृत शान्ति से उत्पन्न हुआ अनाकुलरूप परमानन्द ऐसा अतीन्द्रिय सुख अमृत—यह पर्याय की बात की। समझ में आया?

सर्वज्ञपने की पर्याय जहाँ अन्तर में स्थापित की और एकाकार सर्वज्ञ हूँ। (मैंने) सर्वज्ञ को मेरे आँगन में पधराया। आहाहा! वह आँगन कितना उज्जवल होगा कि जिसमें सर्वज्ञ आवें! ऐसे आँगन में सर्वज्ञ तीन काल-तीन लोक का ज्ञान एक समय में पूरा (हुआ), उन्हें पधराया अर्थात् अन्तर में यथार्थरूप से तो सर्वज्ञस्वभावी (स्वरूप) की दृष्टि करके वर्तमान पर्याय में स्वभाव से प्रगट हुआ अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत का प्याला... समझ में आया? ऐसी जिसे अनुभूति की पर्याय प्रगट होनी चाहिए। ऐसी न प्रगट होकर... आहाहा! समझ में आया? उसे रोकनेवाला अर्थात् वहाँ सर्वज्ञदेव पूर्णानन्द प्रभु है और मैं भी सर्वज्ञस्वभावी हूँ, ऐसी दृष्टि पर्याय में रही नहीं। दृष्टि अनाकुल द्रव्यस्वरूप की प्रगट होनी चाहिए, अनाकुल पर्याय। (होनी चाहिए), उसके बदले राग मैं हूँ, विकल्प मैं हूँ, ऐसे ज्ञान में राग को बसाया है। वह वीतराग की पर्याय प्रगट करने का शत्रु है। समझ में आया?

भगवान आत्मा! पूर्ण सर्वज्ञ को पूर्ण अनाकुल आनन्द प्रगट हुआ है, सर्वज्ञदशा हो गयी है। ऐसा ही भगवान अनाकुल आनन्द और सर्वज्ञस्वभावी है, उसका जिसने पर्याय में आदर किया है, उसकी पर्याय में तो अनाकुल आनन्द के अमृत का प्याला प्रगट हुआ है, आनन्द प्रगट हुआ है, कहते हैं। उससे विरुद्ध आकुलता को जिसने राग को ज्ञान में बसाया, जो वस्तु में नहीं। समझ में आया? उसे स्त्री आदि के भोग का राग-राग ज्ञान में बसाया। राग के प्रेम में पड़ा है, उसे सर्वज्ञस्वभावी आत्मा उसकी श्रद्धा में-दृष्टि में हट गया है। समझ में आया?

उसे तो अनाकुल आत्मा और अनाकुल पर्याय प्रगट होनी चाहिए, उसके स्थान में! वीतरागस्वभाव से विरुद्ध, वीतरागपर्याय से विरुद्ध राग के अंश को जिसने ज्ञान की दशा में रोका है, जिसके चित्त में राग अकेला विकार जिसे बसा है, उसे भगवान की निर्मल अविकारी पर्याय कहाँ से उत्पन्न होगी! एक म्यान में दो नहीं रहती। समझ में आया?

आकुलता को उत्पन्न करनेवाले जो स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से... ऐसे भगवान को देखने की अभिलाषा छोड़ दी है। ज्ञायकमूर्ति भगवान ज्ञ-स्वभाव प्रभु को देखने की दृष्टि छोड़कर इस स्त्री को देखने की दृष्टि में राग करके रुक गया है...

एकत्वबुद्धि की बात है, हों! यहाँ! सम्यग्दृष्टि है, वह वहाँ रुका नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को राग में एकत्व नहीं है। उसे ज्ञान की पर्याय में एकत्व है। आहाहा! यह राग है, उसे जाननेवाले की भूमिका में वह बैठा है, राग में वह नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भगवान सर्वज्ञप्रभु ऐसा आत्मा! और सर्वज्ञपर्याय प्रगट होने के कारणरूप स्व के लक्ष्य से, स्व की श्रद्धा से, स्व के आश्रय से अनाकुल पर्याय प्रगट होनी चाहिए, इसके बदले पर के लक्ष्य से, पर के आश्रय से राग में एकत्व हुआ (तो) कहते हैं कि अनाकुल पर्याय को रोकनेवाली राग की एकत्वबुद्धि है। समझ में आया? आहाहा!

स्त्रीरूप के देखने की अभिलाषादि से उत्पन्न हुए भाव (सुख-विकार)... देखो! स्त्री के मुख का विकार। भगवान मुख्य प्रभु की अविकारदशा देखना पड़ा रहा। **भाव अर्थात् चित्त का विकार....** उसके मन में क्या है वह जाने। विकारी है न जीव? उसके मन में मेरे प्रति प्रेम है, (ऐसा जाने)। यहाँ भगवान आत्मा में से आनन्द बरसता है, उसकी इसे खबर नहीं। **मुँह का टेढ़ा करना,...** स्त्री के मुख का ऐसा हँसना आदि वही उसके ज्ञान में, राग में बसता है। भगवान अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु है, उसे ज्ञान में से उसने हटा दिया है। समझ में आया?

विलास अर्थात् नेत्रों के कटाक्ष.... आँख की कटाक्षता, प्रेमाल, प्रेमाल आँख की कटाक्षता, वहाँ देखने राग में रुक गया है। समझ में आया? भगवान आनन्दमूर्ति सम्यग्दर्शन का जो विषय है, उसे ऐसे उस पर नजर करनी चाहिए, उसमें ऐसा छोड़कर ऐसे (बाहर में) नजर में एकाकार रुक गया है। **स्वरूप विकल्प जालों कर,....** ऐसी विकल्प की जाल उत्पन्न की है। भगवान ज्ञायकभाव के प्रगटपने की पर्याय को रोककर, अरे! उसमें तो इसकी जाति है, वैसी पर्याय प्रगट होनी चाहिए परन्तु उसके आदर बिना यह विकारी पर्याय जिसके स्वभाव में नहीं... समझ में आया? उस विकल्प की जाल में एकत्व हुआ। सब विकल्प जाल ही उत्पन्न हुआ है, जो वस्तु में नहीं है। समझ में आया?

ऐसे जालों से **मूर्छित...** हो गया है, वासित हो गया है। अर्थ में एक शब्द रह गया

है। **वासित**- वासना गन्ध ही बैठी रही है वह सब। स्त्री आदि के पाँच इन्द्रिय के भोगों के विकार के जाल में ही वासित हो गया है। भगवान अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु! उसे दृष्टि में से दूर किया है। समझ में आया? **रंजित..** ऐसे विकल्प में वह रँग गया है। उसमें चित्त परिणत हो गया है। ऐसे **चित्त में ब्रह्म का रहना कैसे हो सकता है?** ऐसे चित्त में भगवान कैसे आवे? ऐसे चित्त में भगवान आत्मा कैसे बसे? समझ में आया? जहाँ चित्त की मलिनता में रुक गया है, जिसका चित्त ही वहाँ स्थिर हो गया है, ऐसे चित्त में शुद्धात्मा ब्रह्मानन्द प्रभु आत्मा कैसे आवे पर्याय में? समझ में आया? आहाहा!

एक म्यान में दो तलवारें कैसे आ सकती हैं? एक म्यान में दो कैसे समायेगी? ओहो! जिसने सर्वज्ञस्वभावी और सर्वज्ञ भगवान को पर्याय में स्थापित किया, उसमें राग की एकता कैसे आवे? और राग की वासना की मूर्छित हो गयी परिणति में भगवान वीतरागी चैतन्यमूर्ति पर्याय में कैसे आवे? द्रव्य तो है ही नहीं। समझ में आया?

महान सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञ... सर्वज्ञस्वभावी। ऐसा भगवान जिसकी पर्याय में नहीं बसा, उसे राग की एकता बसी है, वहाँ भगवान सर्वज्ञस्वभावी पर्याय में प्रतीति में कैसे आवे? समझ में आया? समझ में आता है या नहीं इसमें? जमुभाई! इसमें तो बहुत भाषा तो वैसी नहीं, भाषा तो सरल है। भाव भले जरा... आहाहा! एक म्यान में दो नहीं रहती। जहाँ भगवान सर्वज्ञस्वभावी को पर्याय में बसाया, वहाँ राग का एकत्वपना बसना नहीं रहता, भिन्न रहेगा और राग का एकपना बसाया वहाँ भगवान भिन्न रह जाएगा। एक में दोनों नहीं रहते। समझ में आया?

राग के विकल्प की मिठास में जहाँ पड़ा, उसके करनेपने की रुचि में जहाँ पड़ा है, उसमें अकर्तापना, राग का अकर्तापना ऐसा चैतन्यस्वभाव आकर कैसे बसे, समझ में आया? जिसे राग के कर्तापने का व्यसन है। व्यसन हो गया, व्यसन... व्यसन - बसा। उसे व्यसन हो गया। राग करूँ... राग करूँ... राग करूँ... मिठास वेदता है। वह राग की मिठास के काल में, उसके कर्तृत्व के काल में भगवान ज्ञानस्वरूप की पर्याय में कैसे भासित? समझ में आया? एक म्यान में दो नहीं रहती। विकल्प की वासना का प्रेम और चैतन्य का प्रेम - दो नहीं रहते। भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु! अकेला ज्ञायकस्वभाव,

उसे जहाँ पर्याय में आया, बसाया। पर्याय में आया नहीं, वह तो है वह है। ज्ञातादृष्टा जहाँ भानरूप से आया, वहाँ राग कैसे बसे? उस घर में राग आयेगा किस प्रकार? आहाहा! समझ में आया? वह राग रहेगा परघर में। बजुभाई! ओहो!

कहते हैं **उसी तरह एक चित्त में ब्रह्म-विद्या और विषय-विनोद ये दोनों नहीं समा सकते।** भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति सर्वज्ञस्वभावी प्रभु चित्त में बसे, वहाँ विषय के विनोद का बसना कैसे हो सकता है? और विषय के विनोद का जहाँ बसना है, वहाँ ब्रह्म विद्या कैसे आवे? समझ में आया? सब त्यागी हो गये हों, उनकी यह बात होगी? ज्ञानी अन्दर में त्यागी ही है। ज्ञानस्वरूप में जहाँ भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, ऐसा प्रतीति / श्रद्धा-ज्ञान में जाननहार... जाननहार... जाननहार... जागृत हुआ, वहाँ रागादि का त्याग ही है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि में, सम्यग्ज्ञान में राग—सर्व का त्याग अर्थात् पर का सबका उसमें अभाव है। उसमें बसे हुए नहीं हैं, उसमें बसे हुए नहीं हैं। समझ में आया? गजब बात, भाई!

यह महान... महान... महान... स्वभाववाली वस्तु, इसमें जहाँ आया, दृष्टि में यह महान स्वभाव जहाँ आया, (तो) कहते हैं कि वहाँ आगे राग और पर बिल्कुल बसते ही नहीं। उसे है ही, उसमें है ही नहीं। ओहोहो! समझ में आया? भीखाभाई! बातें बहुत बड़ी! अरे! भगवान! तू कितना बड़ा! तेरी बातें कथन में सर्वज्ञ को पूरी न आवे। अनुभव में आवे, वह बातों से पूरा न पड़े, इतना बड़ा तू है, भाई! आहाहा! **'सव्वणाणदरिसी कम्मरएण' निज कर्मरज-आच्छादने...** देखो न! यह बात करते हैं! क्या कहते हैं? पुण्य-पाप अधिकार है न! पुण्य-पाप का विकल्प है। विकल्प से एकत्वबुद्धि से सर्वज्ञ सर्वदर्शीस्वभाव वहाँ रुक गया है। अर्थात् पर्याय में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की प्रतीति चाहिए, उसे नहीं रही, उसे तो राग की, पुण्य की, पर्याय की ही प्रतीति रही। उस प्रतीति में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान कहाँ आया? १६० गाथा, समयसार। ओहोहो!

श्रोता : पुरुषार्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ। यह पुरुषार्थ, दूसरा पुरुषार्थ कौन सा था? भाई!

वीर्य ऐसे गुलांट खाता है कि यह सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है। सबकी बात की है, हों! यह सब आत्माएँ। सर्वज्ञानी-सर्वदर्शी भगवान आत्मा। वह निज कर्म आच्छाद के, ऐसा कहकर कहा कि निज अर्थात् अपने पुण्य का विकल्प है, वह मेरा और मेरा कर्तव्य है, ऐसा करके रुका है, उसे सर्वज्ञस्वभाव ढँक गया है। आहाहा! समझ में आया? अरे! भगवान! इसे एक शुभ परिणाम से आत्मा को खोलना है। समझ में आया? भगवान! बड़ी दीवार जैसी भूल क्या? आहाहा! समझ में आया? बड़े मेरु पर्वत का चूरा करके उड़ा डाला, ऐसी भूल है इसकी। आहाहा! कहते हैं, प्रभु! शान्त हो, भाई!

सवेरे तो पहले प्रश्न यह उठा था कि यह अनियत अर्थात् क्या? यह तो अनियत अर्थात् अल्पज्ञ को स्थापित करता है। अनियत, वह अल्पज्ञ को स्थापित करता है। वस्तु अल्पज्ञवाली ही है, पर्याय अल्पज्ञ ही हो सकती है ऐसा, वह वस्तु की शक्ति ही सर्वज्ञ है, ऐसा उसे अन्दर में नहीं रहा। समझ में आया? शक्ति सर्वज्ञ है, पर्याय सर्वज्ञ होती है, यह बात ही नहीं रही। सब प्रकार से अल्पज्ञ है, ऐसा सिद्ध किया है। वह भले दूसरे प्रकार से माने परन्तु ऐसा सिद्ध होता है। आहाहा!

यहाँ तो सर्वज्ञस्वभावी वस्तु को पर्याय में सर्वज्ञ प्रगट हो परन्तु सर्वज्ञस्वभावी आत्मा पहले प्रतीति में प्रगट किया। आचार्य महाराज कहते हैं कि उस प्रतीति में पुण्य के विकल्प का कर्तृत्व उसे नहीं होता। इसीलिए पुण्य-पाप में यह श्लोक रखा है। बजुभाई! आहाहा! उसे पुण्य के विकल्प का कर्तृत्व और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की श्रद्धा एक समय में दोनों इकट्ठे नहीं रहते। जुगराजजी! जुगराजजी बराबर कहते हैं। समझ में आया? भाई! यह तो शान्त की बातें, धीरज की बातें हैं। यह कोई बड़े वाद-विवाद और यह और यह वह कोई बात नहीं है। यह तो घर की बातें घर से समझ में आती है। यह कहीं वाद-विवाद से ऐसे कहीं जँचे और समझ में आये?

कहते हैं, ओहो! भगवान वहाँ पहले सर्वदर्शी सर्वसिद्ध को स्थापित किया, वहाँ पुण्य-पाप में सर्वज्ञ सर्वदर्शी... आहाहा! यह शब्द जहाँ आता है न सामने, वहाँ उसमें उसका तत्त्व कितना बड़ा, यह तैर जाता है! ऐसा शब्द जहाँ आता है सर्व ज्ञानी-सर्वदर्शी! आहाहा! अर्थात् वह तो अकेला ज्ञान और दर्शन का पिण्ड ही आत्मा है। वह

इस पुण्य के विकल्प के कर्तृत्व में रुक गया, भगवान ज्ञातादृष्टा और ज्ञान का पिण्ड है, यह उसकी प्रतीति में नहीं रहता। समझ में आया?

जिसे पुण्य के विकल्प की प्रतीति और एकत्वबुद्धि के लाभ में पड़ा है, उसे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रतीति में नहीं आता और सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान आत्मा ऐसा है वह, ऐसा जहाँ प्रतीति में-श्रद्धा में आया, वहाँ राग का कर्तृत्व और पुण्य-परिणाम का कर्तृत्व उसके उस स्थान में दोनों साथ नहीं रह सकते। एक स्थान में दोनों नहीं रह सकते, एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। समझ में आया? आहाहा!

ओहो! इनका आचार्यपद का काल होगा। समझ में आया? वह इनके प्रसंग के समय इनका जैसा कल्याण हो, कहा गया है। समझ में आया? पूरे भरतक्षेत्र में जैनधर्म के आचार्य तीर्थंकर के मुख में से निकला, वहाँ विदेहक्षेत्र गये, तब (पूछा) यह कौन है? ऐसा चक्रवर्ती पूछता है, प्रभु! यह कौन है? भरतक्षेत्र के आचार्य। जैनशासन के आचार्य हैं। आहाहा! केवली के मुख से निकले और अब चाहिए किसका काम? समझ में आया? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर सीमन्धर भगवान के मुख में (से आया)। प्रभु! यह कौन है? चक्रवर्ती पूछता है। यह कौन है? ऐसा छोटा शरीर। ये भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य, प्रधान आचार्य हैं। आहाहा! समझ में आया?

(यहाँ) कहते हैं अहो! भगवान! पुण्य के परिणाम का काम सर्वज्ञ पर्याय को नहीं सौंपा जाता। समझ में आया? इस चक्रवर्ती को झाड़ू निकालने का काम नहीं सौंपा जाता। जुगराजजी! बड़े चक्रवर्ती, चक्रवर्ती कहे माँग-माँग। साहेब! यहाँ बारह महीने से कीचड़ पड़ा है, निकाल डालो। तुझे (माँगना) नहीं आता। उस चक्रवर्ती को ऐसा नहीं कहा जाता। चक्रवर्ती तो उसके घर में दास के दास के दास पड़े हैं उसे। उसकी दासी होती है, उसके हाथ में इतनी ताकत कि हीरा का चूर्ण करके जिसे चाँदला (टीका) करे। उसे कचरा साफ करने का काम नहीं सौंपा जाता। इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु आत्मा है, ऐसा जहाँ भान हुआ, उसे राग के... और राग कर, उसे नहीं होता। यह पुण्य परिणाम करे, उसमें नहीं होता। आवे, उसे जानता है। आहाहा! व्यवहार होता है, उसे जानता है। उस निश्चय में व्यवहार को एक नहीं करता। ऐसा इसका अर्थ है। तब दो रहे न? समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु! यह बड़ा पिण्ड पड़ा है स्वभाव के समक्ष, उसमें जहाँ झुकाव गया कहते हैं कि उसे राग के काम की वृत्ति अब नहीं होती। ऐई! यह व्यवहार करे नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! व्यवहारनय से बोला जाता है। यह निश्चयज्ञान है, वह व्यवहार को नहीं करता और व्यवहार को करे, वह निश्चयज्ञान नहीं रहता। एक म्यान में दो नहीं समाते, यह यहाँ अधिक सिद्ध करना है। समझ में आया?

निश्चय और व्यवहार दो है या एक? दो को दो रूप से रखे तो दो कहलाये या दो को एकरूप से रखे तो दो कहलाये? उसका अर्थ यह हो गया। आत्मा ज्ञानस्वरूपी भगवान सर्वज्ञस्वभावी पर्याय में प्रतीति में भान में आया, पश्चात् उस निश्चय में व्यवहार का वास नहीं हो सकता। उसके सम्बन्धी का अपना ज्ञान उसमें होता है। अपने में उस सम्बन्धी का अपना-अपने में ज्ञान होता है। स्व का-पर का ऐसा अपने में (ज्ञान) होता है। वह नहीं होता, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, इस चित्त में ब्रह्मविद्या अर्थात् आत्मा आनन्दमूर्ति का भान और विषय-विनोद तथा राग की एकत्वबुद्धि, राग का प्रेम, दोनों नहीं समा सकते। दोनों नहीं रह सकते। न्यालभाई! गजब बातें, भाई! आहाहा!

जहाँ ब्रह्मविचार है, वहाँ विषय-विकार नहीं है,... विचार और विकार को मिलाया। जहाँ भगवान ज्ञानमूर्ति श्रद्धा-ज्ञान में बसाया है, सर्वज्ञ की पर्याय बसायी पर्याय में और सर्वज्ञ स्वभाव बसाया श्रद्धा में। समझ में आया? सर्वज्ञस्वभावी बसाया श्रद्धा में और ज्ञान की पर्याय में बसाये सर्वज्ञ। पूरा...! उसमें विकार का टिकना नहीं हो सकता। **जहाँ ब्रह्मविचार है,...** आहाहा! विचार अर्थात् ज्ञान का परिणमन है। वह ज्ञाता वस्तु उसकी श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन है, उसमें विकार नहीं होता, भगवान! आहाहा! और जहाँ विषय विकार की वासना बसी है, वहाँ भगवान के ज्ञान की पर्याय वहाँ नहीं बसती, अर्थात् वहाँ नहीं हो सकती। समझ में आया?

जहाँ विषय-विकार है, वहाँ ब्रह्म-विचार नहीं है। जहाँ राग की वासना से रँगा हुआ चित्त है, वहाँ राग की-विकल्प की वासना भले पुण्यादि हो, उसमें बसा हुआ चित्त है, वहाँ वीतरागीस्वभाव पर्याय में नहीं बस सकता। आहाहा! **इन दोनों में आपस**

में विरोध है। इन दोनों में पारस्परिक विरोध है। यहाँ तो बाह्य विषय से उत्पन्न हुआ राग, वह सब फिर चाहे जो हो... समझ में आया? बाह्य विषय से, लक्ष्य से उत्पन्न हुआ राग; राग से जिसका चित्त रंगा है, वह अन्तरविषय जैसा आत्मा, उसकी पर्याय उस जगह कैसे हो? और अन्तरविषय भगवान आत्मा जिसकी पर्याय में बसा, श्रद्धा-ज्ञान में आया, उसे बाह्यविषय के उत्पन्न हुए राग का बसना उसकी पर्याय में कैसे हो? वह भिन्न है। गजब बात है। सन्तों की कथन पद्धति। आहाहा! निश्चय में व्यवहार नहीं, व्यवहार में निश्चय नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तब उसे व्यवहार और तब उसे निश्चय कहा जाता है। आहाहा! यह हाव-भाव का अर्थ आ गया। १२२ (गाथा)

★ ★ ★

गाथा - १२२

आगे रागादि रहित निज मन में परमात्मा निवास करता है, ऐसा दिखाते हैं—

१२२) णिय-मणि णिम्मलि णाणियहँ णिवसइ देउ अणाइ।
हंसा सरवरि लीणु जिम महु एहउ पडिहाइ॥१२२॥

ज्ञानियों के रागादि मलरहित निज मन में अनादि देव आराधने योग्य शुद्धात्मा निवास कर रहा है,... देखो! भाषा कैसी की है! वह वीतरागी पर्याय तो कृत्रिम आदि वाली है। समझ में आया? भगवान अनादि देव परमात्मा स्वयं है। अनादि देव। अनादि देव। आहाहा! शुद्ध प्रभु भगवान आत्मा अनादि का देव, जिसकी पर्याय में बसा है। समझ में आया? **आराधने योग्य शुद्धात्मा निवास कर रहा है, जैसे मानसरोवर में लीन हुआ हंस बसता है...** मानसरोवर के मोती चरने को हंस जहाँ लीन है, वैसे भगवान आत्मा अपनी पर्याय में स्वयं देखा है, पूरा ज्ञानानन्द, उसमें वह पर्याय लीन है - ऐसा कहते हैं।

सो हे प्रभाकर भट्ट! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है। हों! ऐसा कहते हैं देखो! क्या कहते हैं? जैसे मानसरोवर में हंस बसता है, वैसे ज्ञान की पर्याय में परमात्मा बसता है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय ज्ञायक में लीन है, ऐसा मुझे दिखता है—ऐसा कहते हैं।

'**प्रतिभाति**' जैसा है, वैसा भासित होता है, कहते हैं। प्रति—जैसा है, वैसा मुझे भासित होता है। जैसे मानसरोवर में हंस बसते हैं, वैसे शुद्धात्मा आराधनेयोग्य ज्ञान में बसता है। वह ज्ञान की पर्याय, उस मानसरोवर में जैसे हंस है, वैसे ज्ञान की पर्याय में परमात्मा बसता है। पूरा भगवान जिसमें बसता है अर्थात् पूर्ण परमानन्द में वह ज्ञान की पर्याय लीन हुई मालूम पड़ती है। आहाहा! समझ में आया?

जैसे मानसरोवर में हंस लीन हुए दिखायी देते हैं, वैसे निर्मल चित्त की पर्याय में भगवान परमात्मा बसा है अथवा वह पर्याय परमात्मा में लीन हुई है, ऐसा मालूम पड़ता है। यहाँ आत्मा की बात है। आत्मसरोवर है एक ओर। उसका यहाँ काम नहीं। वह है मानस-सरोवर। भगवान ने देखा है वहाँ। शास्त्र में पाठ है। कहो, समझ में आया? बड़ा सरोवर है, बहुत हंस हैं। वहाँ मोती बहुत होते हैं, बहुत मोती पकते हैं, उन मोती का चारा चरता है।

श्रोता : मोती की बात करते हो तो यहाँ मोती के...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं मोती अब। धूल, वह तो धूल पके, ऐसा कहना है। आहाहा! मानसरोवर के हंस मोती बिना दूसरा चारा नहीं चरते; इसी प्रकार भगवान शुद्धात्मा जिसके श्रद्धा-ज्ञान में बैठा, उसे शान्ति का चारा होता है, उसे राग का चारा नहीं होता। आहाहा! भगवान अकेला वीतरागी स्वभावी शान्तमूर्ति है, वह जहाँ दृष्टि और ज्ञान में आया, कहते हैं कि उसका चारा तो आत्मा के सरोवर का चारा है। उन हंसों को तो मानस का चारा करते हैं। वह हंस रेत नहीं खाता। आहाहा! ऐसे ज्ञानानन्द में बस हुआ आत्मा पर्याय में बसा, वह राग को नहीं खाता! उस राग को नहीं अनुभव करता, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? मानसरोवर के किनारे बसे हुए हंस। वैसे भगवान की पर्याय के किनारे बसे भगवान।

निर्मल पर्याय। यहाँ निर्मल कहा है न? '**निर्मले निजमनसि**' ऐसा कहा है न? ऐसे ज्ञान की निर्मल पर्याय... पुण्य और व्यवहार के रहने का स्थान ही उसका नहीं है। योगीन्द्रदेव, देखो! यह टीकाकार ने भी ऐसा लिखकर स्वयं कहते हैं, हों! '**हंस इवेत्यभिप्रायो भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' टीका का अन्तिम शब्द है। उस हंस के

जैसा भगवान है। हंस मोती का चारा चरता है, वैसे ही भगवान आत्मा निर्मल ज्ञान की पर्याय का चारा चरता है, राग-बाग का चारा नहीं चरता। '**भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' लो! इतना नाम दिया है। कुन्दकुन्दाचार्य... समझ में आया?

कहते हैं **लीन हुआ हंस बसता है। हे प्रभाकर भट्ट! मुझे ऐसा मालूम पड़ता है।** कि शुद्धात्म आराधन योग्य मन में बसता है। ज्ञान में तो वह भगवान ही समीप में बसता है। समझ में आया? समीप आता है न? ....नियमसार, यह शब्द इसमें भी आते हैं, जिसके ज्ञान की पर्याय में समीप द्रव्य है, उसके समीप में रागादि नहीं। समझ में आया? ...वह समीप में समीप है, राग समीप में नहीं है। पुण्य-पाप के विकल्प, वह भगवान ज्ञान की पर्याय में, धर्मात्मा की पर्याय में वे समीप में ही नहीं है, दूर है। ओहोहो! समझ में आया?

धर्मी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के समीप में आत्मा है। उसके पक्ष में चढ़ा है, उसके समीप में वह है। रागादि, पुण्य के समीप में भी नहीं, पुण्य के समीप में वह गया भी नहीं। स-सामायिक ऐसा। उसे सामायिक कहा। सामायिक... यह लोग माने, लो, सामायिक कर ली। क्या सामायिक? बापू! आत्मा कितना कहाँ श्रद्धा क्या है, उसकी खबर नहीं होती (और) उसकी स्थिरता में आत्मा बसाया? समझ में आया? ऐसा मालूम पड़ता है। जैसे हंस मानसरोवर में लीन, वैसे धर्मात्मा का निर्मल चित्त परमात्मा में-अपने स्वरूप में आराध्य योग में लीन है। दूसरे में वह लीन नहीं होता। इसका नाम धर्म और मोक्ष के मार्ग का आराधक कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ९, गुरुवार, दिनांक - १६-१२-१९६५
गाथा - १२२, १२३ प्रवचन - ७७

पहले भाग की १२२ गाथा है। भावार्थ है।

भावार्थ :- पहले दोहे में जो कहा था कि चित्त की आकुलता के उपजानेवाले सत्रीरूप का देखना, सेवना, चिन्तादिकों से उत्पन्न हुए... ऐसी चिन्ता से उत्पन्न हुए, **रागादि तरंगों के समूह हैं,...** विकल्पों का समूह विकार। परसन्मुख के विषयवाले (विकल्पों का समूह)। यहाँ तो अशुभ से बात ली है, परन्तु शुभाशुभ का विकल्प **उनकर रहित निज शुद्धात्मद्रव्य का...** अपना निज शुद्धात्मस्वरूप वस्तु, उसका **सम्यक् श्रद्धान...** उसकी सम्यक् स्वरूप के प्रति अन्तर्मुख की प्रतीति। **स्वाभाविक ज्ञान...** स्वाभाविक ज्ञान। वह स्वभाव चैतन्यस्वरूप शुद्ध, उसका स्वसंवेदन ज्ञान का, ज्ञान का वेदन, उसका नाम स्व-स्वाभाविक ज्ञान।

उससे उत्पन्न वीतराग परमसुखरूप अमृतरस... ऐसे आत्मा के शुद्धस्वभाव की सम्यक् श्रद्धा और सम्यक् स्वाभाविक ज्ञान, उससे उत्पन्न हुआ आनन्द, रागरहित परम आनन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति, ज्ञान से उत्पन्न हुआ परम सुखरूप अमृतरस। **उस स्वरूप निर्मल नीर से भरे हुए...** ऐसे निर्मल नीर से भरा हुआ, **ज्ञानियों के मानससरोवर में...** निर्मल चित्त, निर्मल चित्त। गजब व्याख्या! पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे राग हैं, उनसे रहित स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति का सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान, उससे उत्पन्न होता अमृत आनन्द, उससे भरपूर जिसका मन अथवा ज्ञानियों का मानसरोवर। भारी सूक्ष्म बात, भाई! ज्ञान की पर्याय को मानसरोवर कहा। वस्तुस्वरूप चिदानन्द भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, उसके सन्मुख की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता में आनन्दरूपी ज्ञान सरोवर, मानसरोवर।

(मानसरोवर) में **परमात्मादेवरूपी हंस निरन्तर रहता है।** ऐसे सम्यग्ज्ञान के अमृत में भगवान आत्मा बसता है। क्या कहा, समझ में आया? वह पुण्य-पाप के राग में तो विकार... विकार बसता है। परसन्मुख के शुभाशुभ विकल्प विकार, उसमें तो

संसार बसता है। परन्तु उससे रहित आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा आत्मा पवित्र आनन्दमूर्ति देखा, वैसा ही ज्ञान में वेदन करके सम्यक् श्रद्धा में अमृत के आनन्द की उत्पत्तिरूपी मानसरोवर में वह आत्मा बसता है। हंस मानसरोवर में बसते हैं, उसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध सम्यक् निर्मल ज्ञान में बसता है। समझ में आया?

कहते हैं कि साधक स्वभाव के ज्ञान में आत्मा बसता है, ऐसा कहते हैं, लो! जो ज्ञान आत्मा के स्वभाव का साधक हुआ, अन्तर वेदन करके और ऐसे स्वरूप की सम्यक् श्रद्धा सन्मुख की निर्विकल्प हुई, उससे हुआ वीतरागी—रागरहित आनन्द। ऐसा जो सम्यक्ज्ञानरूपी सरोवर, उसमें भगवान आत्मा बसता है। कहो, समझ में आया? वह आत्मा घर में बसता नहीं कहेंगे अभी बाद में, तुरन्त ही कहेंगे। मन्दिर में बसता नहीं, यह बसना आया सही न! समझ में आया? **ज्ञानियों के मानससरोवर में...** शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा का सम्यग्ज्ञान, श्रद्धा और शान्ति, उसे यहाँ अमृत कहा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन कहे। उसमें हंस निरन्तर बसता है। अपना भगवान आत्मा उस सम्यग्ज्ञान में बसता है। समझ में आया?

वह आत्मदेव निर्मल गुणों की उज्ज्वलताकर... भगवान आत्मा निर्मल गुणों की उज्ज्वलता से **हंस के समान है।** वह स्वयं हंस समान है। निर्मल, जैसे हंस निर्मल सफेद है, वैसे आत्मा निर्मल गुणोंरूपी हंस समान, वह परम ज्ञान सरोवर में बसता है। गजब बात भाई! यह पंचम काल के लिये होगी? चौथे काल के लिये होगी यह? पंचम काल के मुनि तो धर्म की बात करते हैं। समझ में आया? **जैसे हंसों का निवास-स्थान मानसरोवर है, वैसे ब्रह्म का निवास-स्थान ज्ञानियों का निर्मल चित्त है।** सम्यग्ज्ञान में आत्मा बसता है, ज्ञात होता है, ऐसा कहते हैं मूल तो। पुण्य-पाप के विकल्प से आत्मा ज्ञात नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा श्रीयोगीन्द्रदेव का अभिप्राय है। है न अन्दर? '**भगवतां श्रीयोगीन्द्रदेवानाम्**' भगवान श्रीयोगीन्द्रदेव मुनि, दिगम्बर सन्त थे, उनका अभिप्राय है। उसमें कहा था या नहीं? मुझे ऐसा मालूम पड़ता है। मुझे तो ऐसा भासित होता है कि यह ज्ञान में भगवान बसता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा योगीन्द्रदेव का अभिप्राय है। १२३।

★ ★ ★

गाथा - १२३

आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं —

१२३) देउ ण देउले णवि सिलए णवि लिप्पइ णवि चित्ति।
अखउ णिरंजणु णाणमउ सिउ संठिउ सम-चित्ति॥ १२३॥

भगवान आत्मदेव—यह आत्मदेव परमानन्द की मूर्ति आत्मा भगवान इस देवालय में नहीं, इस मन्दिर में भगवान बसता नहीं।

मुमुक्षु : मन्दिर नहीं बनावें।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने बनाये हैं? वह तो ... अकेले हाथ से किया। वह तो फिर दूसरे सम्मिलित हुए। अकेले ने पैंतालीस हजार डालकर मन्दिर बनाया, लो! यहाँ कहते हैं कि हराम कोई मन्दिर बना सके तो। वह तो निमित्त था, उसका ज्ञान कराते हैं। उसका शुभभाव था कि यह (मन्दिर) होवे तो ठीक, ऐसे शुभभाव का निमित्त, वहाँ तो होने के काल में वह होता है। इसलिए यहाँ तो कहते हैं कि उस मन्दिर में भगवान नहीं। यह स्पष्टीकरण कहेंगे, हों! वह जहाँ है, वहाँ खोजने जाये तो वहाँ है। जहाँ है, वहाँ खोजने जाये, वहाँ वह है। अन्तर आनन्दकन्द ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा है, उसे सम्यक् ज्ञान द्वारा खोजे तो उसमें आत्मा है, ऐसा कहते हैं। पहले यह कहा न, उसे अब सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे वापस। अस्ति कहेंगे। समझ में आया? उन मूर्तिवालों को ऐसा कहे तो उन्हें भी दिक्कत आवे। मूर्ति को उत्थापे, उनसे कहे कि भाई! मूर्ति है तो उन्हें दिक्कत आवे। न्यालभाई! भाई! मूर्ति, मन्दिर होते हैं। जब जीव स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, तब अशुभभाव वंचनार्थ व्यवहार से (धर्म) कहलाता है। परन्तु उस समय में ऐसे शुभभाव भक्ति, पूजा के होते हैं। इसलिए उसे शुभभाव में सामने लक्ष्य जाता है। परन्तु यहाँ तो परमार्थ देव भगवान यहाँ बसता है, वहाँ बसता नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो व्यवहार देव की बात है। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- भगवान '**देवकुले**' नहीं। **आत्मदेव देवालय में (मन्दिर में) नहीं है,...** मन्दिर में नहीं बसता। योगसार में आता है। '**शिलायां नैव**' **पाषाण की प्रतिमा में भी नहीं है, लेप में भी नहीं है,...** लेप की मूर्ति बनाते हैं न। ऐसा कि लौकिक करे।

स्पष्टीकरण करेंगे। **चित्राम की मूर्ति में भी नहीं है।** कागज की मूर्ति भी नहीं। चित्राम कर बनाते हैं, वह भी नहीं। **लेप और चित्राम की मूर्ति लौकिकजन बनाते हैं,...** यह तो दृष्टान्त दिया, बाकी जैनदर्शन में सम्यग्दृष्टि जीव को ऐसा विकल्प उसे ऐसी प्रतिमा बनाने का नहीं होता। समझ में आया? **पण्डितजन तो धातु पाषाण की ही प्रतिमा मानते हैं,...** स्पष्टीकरण किया। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव... धातु या पाषाण / पत्थर की प्रतिमा होती है। भगवान का मन्दिर और भगवान की मूर्ति, वह शुभभाव में एक निमित्तरूप से होती है। समझ में आया? व्यवहार भक्तिकाल में वह होती है। परन्तु यह लेप और चित्राम की तो जैनदर्शन में नहीं। यह अन्यमतियों ने की है। यह उसका निषेध इकट्ठा यह दो ले लिया।

सो लौकिक दृष्टान्त के लिये दोहा में लेप चित्राम का भी नाम आ गया। वह देव किसी जगह नहीं रहता। अब कहते हैं, **वह देव अविनाशी है,...** भगवान अक्षय है, अविनाशी प्रभु चैतन्य है। समझ में आया? **'निरंजनः' कर्माञ्जन से रहित है,...** भगवान यहाँ कर्म के रंजन जड़ से रहित है, यहाँ अभी, हों! **केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** अकेला ज्ञान का पुंज है। ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब, चैतन्यबिम्ब, वह चैतन्यबिम्ब वह परमात्मा स्वयं ही यह आत्मा है। **ऐसा निज परमात्मा समभाव में तिष्ठ रहा है, अर्थात् समभाव को परिणत हुए...** पुण्य-पाप के रागरहित आत्मा की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसे **समभाव को परिणत हुए साधुओं के मन में विराज रहा है,...** वह साधु के सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र में वह आत्मा परमात्मा विराजता है। देखो, यह साधुपना। यहाँ विशेष तीन का लेना है न, चारित्रसहित। वरना सम्यग्दर्शन-ज्ञान में सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को परमात्मा का ही आदर है, स्वरूप का ही आदर है, रागादि का आदर नहीं। धर्मी जीव को आत्मा के पवित्र शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान में शुद्ध चैतन्य ज्ञान पूर्ण परमात्मा स्वयं आदरणीय है। आदरणीय है या उसमें बसा हुआ है। सम्यग्ज्ञानी को भी पुण्य-पाप के भाव में बसा हुआ नहीं, रहा हुआ नहीं, उनका आदर नहीं। परन्तु यहाँ विशेष मुनिपने का चारित्र है न! एकदम मोक्ष का कारण है। इसलिए सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान और शान्ति तीन कषाय के अभाव की शान्ति है। ऐसे समभाव से वीतराग पर्याय से परिणमित मुनि को मन में अर्थात् समभाव में वह आत्मा बसता है। वह देव वहाँ बसता है, ऐसा

कहते हैं। समझ में आया? **मन में विराज रहा है, अन्य जगह नहीं है।**

भावार्थ :- यद्यपि व्यवहारनयकर धर्म की प्रवृत्ति के लिये... शुभभाव की। धर्म अर्थात् व्यवहार धर्म। शुभभाव धर्मी को होता है, इस कारण से, **स्थापनारूप अरहन्तदेव देवालय में तिष्ठते हैं,...** देवालय में स्थापनारूप भगवान विराजते हैं, परन्तु वे स्थापनारूप हैं, साक्षात् भगवान वहाँ नहीं। **धातु पाषाण की प्रतिमा को देव कहते हैं...** समझ में आया? धातु और पाषाण की प्रतिमा देव कहते हैं, वह देवालय में विराजते हैं अरिहन्त के मन्दिर में। **तो भी निश्चयनयकर...** वह व्यवहार शुभभाव में जब जीव आवे, तब धर्मप्रवृत्ति अर्थात् पुण्य, पुण्यरूपी धर्म, धर्म अर्थात् पुण्यरूपी धर्म—व्यवहार धर्म की प्रवृत्ति के लिये ऐसे अरिहन्त भगवान स्थापना निक्षेप से वहाँ विराजते हैं। परन्तु निश्चय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति के परिणाम में आत्मा विराजता है। समझ में आया? (धातु पाषाण की प्रतिमा को) देव कहते हैं।

निश्चयनयकर शत्रु-मित्र, सुख-दुःख, जीवित-मरण जिसके समान हैं,... निश्चय से तो जिनके परिणाम में समभाव है। वीतरागी आत्मा समभावी स्वरूपी प्रभु, वह तो वीतराग अर्थात् समस्वभावी वस्तु त्रिकाल आत्मा है। उसका जिसे सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सम परिणाम हुए, (उसे) शत्रु-मित्र दोनों समान हैं वहाँ, सुख-दुःख समान है—संयोग, जीवित-मरण समान है, जीवन हो या मरण हो। **तथा वीतराग सहजानन्दस्वरूप परमात्मतत्त्व के...** वीतराग सहजानन्द परमात्मास्वरूप आत्मा, यह आत्मा स्वयं। वीतराग—रागरहित सहज आनन्दरूप परमात्मतत्त्व ऐसा स्वरूप, उसका सम्यक् श्रद्धान। ऐसे आत्मा के साथ अन्दर सम्यक् निर्विकल्प श्रद्धा, उसका—स्वस्वरूप का ज्ञान और चारित्ररूप स्वभाव में चारित्र की रमणता। उस **अभेद रत्नत्रय में लीन...** ऐसे अभेद रत्नत्रय में लीन। **ऐसे ज्ञानियों के सम चित्त में परमात्मा तिष्ठता है।** ऐसे समभाव में परमात्मा आत्मा बसता है। शुभभाव में आत्मा नहीं बसता, ऐसा कहते हैं। शुद्ध उपयोग के परिणमन में, शुद्ध परिणमन में आत्मा बसता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

ऐसा ही अन्य जगह भी समचित्त को परिणत हुए मुनियों का लक्षण कहा है। देखो! यह प्रवचनसार तीसरे अध्याय की गाथा २४१, यह इसके साथ मिलाते हैं। यह

बारहवें गुणस्थान की बात नहीं, हों! कितने ही कहते हैं कि यह बारहवें गुणस्थान की बात है। उसके साथ यह गाथा मिलाते हैं। यह तो मुनि के छठवें, सातवें गुणस्थान की बात है। आहा! मुनिपना अर्थात् क्या (इसकी) लोगों को (खबर नहीं)। परमात्मप्रकाश के आधार में, टीका के आधार में प्रवचनसार का आधार टीकाकार देते हैं।

समसत्तु बंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो॥

जिसके सुख-दुःख समान हैं,... संयोग अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, जिसे ज्ञाता-दृष्टापने में समभाव है। समझ में आया? परीषह हो या उपसर्ग हो या परीषहरहित दशा प्रतिकूलतारहित हो, बाहर की अनुकूलता (हो), दोनों में जिसका चित्त सम है। समझ में आया? ऐसे समभाव में आत्मा बसता है और उसे मुनि कहा जाता है। **शत्रु-मित्रों का वर्ग समान है,...** शत्रु का बड़ा वर्ग हो और मित्रों का बड़ा वर्ग हो—दोनों समान हैं, ज्ञेय है। मुनि को अन्तर वीतराग पर्याय प्रगटी है, ऐसे मुनि को शत्रु-मित्र के वर्ग बड़े झुण्ड दोनों हों, समान है। समझ में आया?

पद्मनन्दि आचार्य कहते हैं, अहो! हमारी निन्दा करके जिसे सुखी होना हो तो ऐसा होओ। हमारे अवगुण देखकर जिसे सुख होता हो तो ऐसा होओ। हमको मारने के प्रतिकूलता के तुमको विकल्प आते हों मारकर तो ऐसे सुख होओ। आहाहा! हम कहाँ पर की कोई पर्याय बदल सकते हैं और हमारे कहाँ बदलने का भाव भी है? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि, शत्रु-मित्र के झुण्ड हों, हमारे तो ज्ञान में दोनों के लिये समभाव है। ओहो! नियमसार में एक श्लोक नहीं आता? एक आता है। धर्मी के प्रति और उसके प्रति... एक श्लोक आता है। हमारे तो समभाव है। समझ में आया? कहाँ कुछ याद रहता है। वह श्लोक है। धर्मी का मण्डल हो या यह हो, हमारे तो दोनों समान है। याद है? तुमको याद नहीं होगा। कितना याद रहे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, वह तो श्लोक है, यह तो कलश है भाई का—पद्मप्रभमलधारिदेव का। सबके लिये हमारे (समभाव है)। संयमधारी हों या असंयमधारी

हों, ऐसा है, समझे? हमारे तो समभाव है। मित्रों में वह आ गये न साधर्मी जीव। साधर्मी जीवों का झुण्ड हो या विरोधी का झुण्ड हो, हमारे दोनों में यह शत्रु और मित्र— ऐसा है नहीं। सब जाननेयोग्य ज्ञेय है। समझ में आया?

प्रशंसा निन्दा समान हैं,... प्रशंसा हो या निन्दा हो, यह मुनियों को तो समभाव है। प्रशंसा उसके घर में रही। वाणी की अवस्था, निन्दा भी वाणी की अवस्था उसके घर में रही। समझ में आया? समभाव में कहीं है समभाव में। समभाव नहीं? उसमें कहीं है। **पत्थर और सोना समान है,...** मुनि को कहीं ऐसे बाहर जंगल जाते हुए ऐसे हीरा की खान दिखाई दे जाये तो भी समान है। कोयला दिखाई दे तो समान है। ऐसा नहीं कि, आहा! किसी को नजर में आवे तो प्रयोग तो करे। किसे कहना हीरा और किसे कहना पत्थर? सब पुद्गल की पर्याय मुनि को तो सब समभाव है। समझ में आया? **पत्थर और सोना समान है,...** पत्थर नजर में पड़े या कहीं सोना के ढ़ेर टुकड़े पड़े ऐसे। खान में हीरा आदि के थर थर.. (हों), दोनों एक हैं। आत्मा के लिये कोई विषमता नहीं, ठीक और अठीक नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... धूल की पर्याय है। ....

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लोग चाहे उसमें इसका अर्थ क्या? वह तो मूढ़ तो चाहे, इससे कहीं उसकी विशेषता हो गयी? मूढ़ लोग हीरा, माणेक को चाहे, वह तो मूढ़ है। धर्मी तो आत्मा को चाहता है। समझ में आया? मूढ़ की चाहत से कहीं ज्ञानी को हीरा की कीमत हो जाये? कि, यह लोग बहुत चाहते हैं, इसलिए इसकी कीमत होगी, ऐसा होगा? रंकमात्र।

यहाँ कहते हैं न, **पत्थर और सोना समान है,...** दोनों एकसमान ज्ञेय है, जगत के ज्ञेय। मैं तो उनका जाननेवाला हूँ। यह ठीक और यह अठीक, ऐसा है ही नहीं ज्ञान में। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को ऐसा नहीं कि यह ठीक और अठीक। मात्र अस्थिरता का राग आवे और यह तो वह भी नहीं। वीतराग समभाव है, ऐसा वर्णन करना है न यहाँ

तो। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दृष्टि को ठीक है परमात्मा, अठीक है राग। समझ में आया? **और जीवन-मरण जिसके समान हैं,...** आयुष्य हो या देह का अन्त हो, दोनों आत्मा के लिये समान है। आयुष्य हो या देह की स्थिति पूरी हो जाओ, धर्मी को दोनों (सम हैं), विषमता कहीं नहीं। आहाहा!

ऐसा समभाव का धारण करनेवाला मुनि होता है। ऐसे समभाव से परिणमित को मुनि कहते हैं। समझ में आया इसमें? ऐसे समभाव... यह कुन्दकुन्दाचार्य का प्रवचनसार का श्लोक है। ऐसे समभाव से परिणत मुनि, उन्हें उनके समभाव में परमात्मा स्वयं आत्मा बसता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अर्थात् ऐसे समभाव के धारक शान्तचित्त योगीश्वरों के चित्त में चिदानन्ददेव तिष्ठता है।** लो! ओहो! मलिन दर्पण में मुख नहीं दिखता। उसी प्रकार मलिन चित्त में आत्मा ज्ञात नहीं होता। श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जो निर्मल दशा, रागरहित वीतरागी पर्याय निर्मल, उसमें आत्मा ज्ञात हो और उसमें आत्मा तिष्ठे, बसे। ओहोहो! बहुत बड़ी बात! वीतराग का मार्ग लोगों ने कहीं का कहीं ठहरा दिया। ऐ... न्यालभाई! एक शुभराग का ठिकाना नहीं, सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण माना। राग की मन्दता का भी ठिकाना नहीं होता। यह हो गया उसे आत्मा, मोक्ष का मार्गी हुआ। धूल में भी नहीं, कहते हैं सुन न! धर्म किसे कहना, इसकी खबर नहीं। भगवान एक समय में पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड आत्मा उसे अन्तर में उतनी ही जोर से सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान से बसावे और समभाव अन्दर प्रगट हो, तब उसमें आत्मा बसा, तब देव का आराधन किया, उसने आत्मदेव का आराधन किया। समझ में आया? देखो! यह शब्द है। है न इसमें, देखो! '**देउ देवः परमाराध्यः ण नास्ति**' ऐसा है, देखा? संस्कृत टीका में है न, पहला शब्द है, देखो! '**देउ देवः परमाराध्यः**' ऐसा। मूल तो यह कहना है न! परम आराध्य तो यह आत्मा है। देव यह स्वयं। क्योंकि आराधनेयोग्य है परम आराध्य। भगवान की प्रतिमा और शुभभाव वे सब परम आराध्य नहीं। समझ में आया? लो, मन्दिर और मूर्ति परम आराध्य नहीं। इसलिए शब्द ऐसा प्रयोग किया है न, आत्मदेव, ऐसा। समझ में आया? '**परमाराध्यः ण नास्ति**' यह देवालय में परम आराध्य भगवान नहीं बसता। आहाहा! परम आराध्य ऐसा भगवान वह शुभराग में नहीं बसता। समझ में आया? निर्मल—रागरहित श्रद्धा,

ज्ञान, शान्ति में भगवान बसता है। समझ में आया? उस निर्मल परिणाम को धर्म कहा जाता है। उस धर्म में धर्मी बसता है, धर्मी अर्थात् आत्मा। कहो, भीखाभाई! ओहोहो!

इसका मार्ग अलौकिक मार्ग है, वह लौकिक से कैसे ज्ञात हो? कहते हैं, ऐसे योगीश्वरों के शान्त चित्त में चिदानन्द देव भगवान विराजमान है। अरे! विकल्प के जालों में कहीं भगवान होगा? भगवान तो निर्विकल्प तत्त्व आत्मा है। ऐसा कहते हैं कि शुभाशुभराग से जाना ज्ञात हो नहीं। क्योंकि वह शुभाशुभ विकल्प उसकी जाति की चीज़ नहीं। समझ में आया? वह भगवान आत्मा परमानन्द की चीज़ है, शान्त वस्तु है, वीतराग समभावी स्वरूप आत्मा है। उसे वीतरागी समभावी पर्याय से जानने में आवे। आहाहा! समझ में आया? १२३ हुई। दूसरी १२३।

★ ★ ★

गाथा - १२३ *२

१२३) मणु मिलियउ परमेसरहँ परमेसरु वि मणस्स।
बीहि वि समरसि हूवाहँ पुज्ज चडावउँ कस्स॥ १२३ *२॥

इस प्रकार इकतीस दोहा-सूत्रों का-चूलिका स्थल कहा। चूलिका नाम अन्त का है, सो पहले स्थल का अन्त यहाँ तक हुआ। आगे स्थल की संख्या से सिवाय दो प्रक्षेपक दोहा कहते हैं। यह मन परमेश्वर में मिल गया। आहाहा! मन अर्थात् विकल्परूप मन, मिल गया अर्थात् विकल्प मर गये, ऐसा। विकल्परूप मन उसमें मर गया। मिल गया अर्थात्? भाषा तो ऐसी है कि **विकल्परूप मन भगवान आत्माराम से मिल गया।** अर्थात् कि विकल्प मिट गया, ऐसा। विकल्प था, वह ऐसे मिल गया, ऐसा नहीं। शुभ विकल्प जो था राग, वह रागरूपी मन वह भगवान आत्मा की ओर ढला, वहाँ वह विकल्प मर गया। वह विकल्प मर गया अर्थात् मन आत्मा में मिला, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् आत्मा जैसा निर्विकल्प है, वैसा मन निर्विकल्प हो गया। ऐसा। क्या कहा?

मन का धर्म तो शुभाशुभ विकल्प है परिणाम उसके। इसलिए कहा न, विकल्परूप मन परमेश्वर **भगवान आत्माराम से मिल गया—तन्मयी हो गया...** अर्थात् कि शुभराग

था, ऐसा जो मन, वह शुद्ध चैतन्य की ओर जाने से वह मन उसमें मिल गया अर्थात् कि निर्मल पर्याय हो गयी। जो राग था, वह यहाँ मिल गया अर्थात् निर्मल पर्याय होकर मिल गया, ऐसा। समझ में आया? भगवान आत्मा को अन्तर में देखने से मन जो रागवाला था, विकल्पवाला था, वह परमेश्वर स्वयं भगवान आत्मा निर्विकल्पस्वरूप प्रभु आत्मा है, वह आत्मा है निर्विकल्पस्वरूप, उसमें मन विकल्परहित होकर मिल गया, ऐसा कहते हैं। अर्थात् ज्ञान एकाकार हो गया, ऐसा। ऐसे विषय करता था, वह ऐसे विषय करने लगा निर्मल पर्याय, ऐसा कहते हैं। राग जो शुभ था, वह पर के विषय करता है। वह ज्ञान की पर्याय ऐसे झुकी थी रागवाली, वह पर्याय ऐसे झुकी अर्थात् निर्मल पर्याय होकर आत्मा में मिल गयी। मन मिला भगवान को और भगवान मिले मन को।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग छूट गया, रहा कहाँ? इसीलिए तो स्पष्टीकरण किया न, कि विकल्परूप मन जो ऐसे था लक्ष्य में (वह) भगवान आत्मा से मिल गया। अर्थात् विकल्प छूट गया और निर्विकल्प पर्याय होकर उसमें मिल गयी, ऐसा इसका अर्थ है। यह भगवान की भक्ति कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वयं ही परमेश्वर है, निर्मल पर्याय उसमें मिल गयी, यह इसने भगवान की पूजा की, ऐसा कहते हैं। आहा! बाहर की पूजा शुभभाव है। वह भगवान आत्मा परम आराध्य देव की पूजा नहीं। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूजा करनेवाला विकल्प था, वह छूटकर यहाँ निर्विकल्प होकर मिल गया, ऐसा। समझ में आया? ऐसे चिदानन्द का जहाँ एकाकार ध्यान करने गया (तो) विकल्प छूट गया, राग था इस ओर, ऐसे एकाकार हो गया। सेवनयोग्य भगवान और सेवक निर्मल पर्याय एक हो गयी। सेव्य-सेवक एक हो गये। समझ में आया?

'परमेश्वरः अपि' और परमेश्वर भी मन से मिल गया तो... देखो! यह परमेश्वर प्रभु आत्मा स्वयं निर्मल पर्याय में अभेद हो गया, मिल गया। निर्मल पर्याय ऐसे होकर मिली, भगवान निर्मल पर्याय में अभेद हो गया। **भगवान आत्माराम से मिल गया— तन्मयी हो गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया तो दोनों ही को समरस (आपस में**

एकमएक) होने पर... समरस हो गया। **किसकी अब मैं पूजा करूँ।** किसकी पूजा करूँ अब? अपना पूज्य भगवान आत्मा और पूजनेयोग्य उसकी परिणति, दोनों एक हो गये, किसकी पूजा करूँ अब? पूजनेयोग्य तो यह भगवान आत्मा था। यह निर्मल पर्याय उसमें—पूजनेयोग्य में मिल गयी। ओहोहो! कहो, समझ में आया इसमें?

किसकी अब मैं 'पूजां समारोपयामि' मैं किसकी पूजा करूँ? **अर्थात् निश्चयनयकर किसी को पूजना, सामग्री चढ़ाना नहीं रहा।** निश्चयनय में... व्यवहार में विकल्प था, तब यह भगवान और इनकी पूजा करूँ, यह शुभभाव में था। शुद्ध की श्रद्धा, ज्ञान की परिणति में जहाँ एकाकार हुआ (तो) पूजनेयोग्य और पूजने की परिणति दोनों एक हो गये। वाह! भगवान स्वयं प्रतिमा परमेश्वर स्वयं। उसकी शुद्ध पर्याय उसमें मिल गयी, अब किसे चढाऊँ पूजन? कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? सत्य निश्चय पूजा यह है। स्वरूप में इतना स्थिर न हो सके, तब पाप से बचने—अशुभ से बचने को शुभभाव का भक्ति आदि का स्वरूप है सही, व्यवहार है सही, व्यवहार नहीं—ऐसा नहीं। परन्तु उस व्यवहार से धर्म है या व्यवहार से निर्जरा है या व्यवहार होता है, इसलिए वहाँ शुद्ध में टिक सकेगा, ऐसा नहीं। वह चीज़ व्यवहार है। गजब बातें, भाई! साधन क्या? साधन क्या, ऐसा पूछते थे वहाँ अगास में। साधन क्या? तुम सब ऐसा कहते हो। साधन अर्थात् ऐसे भक्ति करे, ऐसा करे, वह सब साधन। वह तो निमित्त, निमित्त से साधन है; अन्तर साधन नहीं। लोगों को कठोर पड़ता है।

मुमुक्षु : भला तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भला अर्थात् पाप के निषेध की अपेक्षा से व्यवहार से भला। धर्म की दृष्टि से भला नहीं। व्यवहार से पुण्यभाव व्यवहार पाप से बचने की अपेक्षा से भला कहा जाता है। स्वरूप की दृष्टि और शान्ति की अपेक्षा से वह व्यवहार है, बन्ध का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है; अबन्ध परिणाम वह नहीं। बात तो ऐसी है, भाई! बहुत कठिन बात है। व्यवहार नहीं, ऐसा नहीं, तथा वह व्यवहार अबन्ध परिणाम को सहायता करता है, (ऐसा नहीं)। निमित्त है अर्थात् कि है, यह इसका अर्थ ऐसा है। वह चीज़ है सही। परन्तु आत्मा के अबन्ध परिणाम को वह सहायता करती है, ऐसा नहीं। उसे व्यवहारनय से ऐसा कहा जाता है कि साधक है।

उत्थापित कर डाला पूरा? पूजा, भक्ति, मन्दिर कुछ नहीं। एक व्यक्ति ने और इसमें ही सब धर्म मान बैठे कि इसमें से कल्याण होगा। न्यालभाई! जिसकी जितनी मर्यादा हो, उतनी होती है। मर्यादा से आगे जाये तो वस्तु रहती नहीं। न रहे परमार्थ, न रहे व्यवहार। यहाँ तो भगवान आत्मा ही पूजनेयोग्य देव परम आराध्य है। उसकी अन्तर में शुद्ध परिणति द्वारा उसका सेवन करना। दोनों अभेद हो गये। समझ में आया? अब कहते हैं कि किसको सामग्री चढ़ाऊँ?

भावार्थ :- जब तक मन भगवान से नहीं मिला था,... स्वरूप की परिणति एकाग्र नहीं थी। **तब तक पूजा करता था,...** शुभभाव में भगवान आदि की पूजा होती है। अन्तर तो दृष्टि ज्ञान तो अन्तर में हों, परन्तु स्थिरता न हो... समझ में आया? स्वरूप में स्थिरता न हो, तब भगवान की पूजा करते थे। **और जब मन प्रभु से मिल गया, तब पूजा का प्रयोजन नहीं है।** प्रयोजन कहाँ रहा निमित्तपना वहाँ? यहाँ स्वरूपसन्मुख जहाँ ज्ञान ढल गया, (वहाँ) कुछ प्रयोजन नहीं रहा। स्थिर नहीं हो सकता था, इसलिए ऐसा पूजा का भाव था। परन्तु वह परिणति ही जहाँ स्थिर होकर अन्दर मिल गयी (तो पूजा का) प्रयोजन कुछ रहा नहीं। समझ में आया?

यद्यपि व्यवहारनयकर गृहस्थ-अवस्था में... लो आया। गृहस्थ अवस्था में, **विषय कषायरूप खोटे ध्यान को हटाने के लिये...** विषय कषाय जो शुभ-अशुभ परिणाम, पाप के भाव ऐसे रोकने के लिये। भाषा तो ऐसी ही आवे न! विकल्प ऐसा आता है न कि यह न हो, ऐसा। **और धर्म को बढ़ाने के लिये...** शुभभाव होने के लिये। व्यवहार धर्म शुभभाव है न, शुभभाव है वह। भगवान की पूजा, भक्ति वह शुभभाव है, पुण्यभाव होने के लिये, उसे बढ़ाने के लिये, इतनी भाषा है। समझ में आया? **'धर्मवर्धमानर्थं'।** ऐसा है न टीका में? **पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** भगवान की पूजा, भगवान का अभिषेक, भगवान को... समझ में आया? मुनि आदि को आहारदान आदि के भाव होते हैं। **पूजा, अभिषेक, दान आदि का व्यवहार है,...** मुनियों को धर्मात्मा आदि को दान का भाव आदि होता है।

तो भी वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में लीन हुए... रागरहित अभेद शान्ति में लीन हुआ मन। **योगीश्वरों को उस समय में बाह्य व्यापार का अभाव होने से...** बाहर का

व्यापार रहा नहीं, शुभराग था तो वह भक्ति आदि का भाव था। समझ में आया? **स्वयं ही द्रव्य-पूजा का प्रसंग नहीं आता,...** द्रव्य-पूजा रही नहीं। यह द्रव्यपूजा है, भगवान की पूजा, वह द्रव्यपूजा। भावपूजा तो अन्दर में स्थिर होना वह है। समझ में आया? **भाव-पूजा में ही तन्मय हैं।** लो! द्रव्यपूजा का प्रसंग नहीं रहा, भावपूजा में तन्मय है।

★ ★ ★

गाथा - १२३*३

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं—अन्तिम श्लोक, पहले भाग का अन्तिम श्लोक।

१२३) जेण णिरंजणि मणु धरिउ विषय-कसायहिँ जंतु।
मोक्खहँ कारणु एत्तडउ अण्णु ण तनु ण मंतु॥ १२३*३॥

वापस योगफल निश्चय में लाये।

अन्वयार्थ :- जिस पुरुष ने विषय कषायों में जाता हुआ मन कर्मरूपी अंजन से रहित भगवान में रखा... लो! जिस आत्मा ने शुभ-अशुभराग परसन्मुख जाता था, विषय-कषायों की ओर (जाता था), उसे '**निरंजने धृतं**'। उस मन को निरंजन भगवान अपना आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप प्रभु में जिसने मन को धरा। **और ये ही मोक्ष के कारण हैं,...** एक ही बात ली यहाँ। उसे मोक्ष का कारण लिया। देखो! फिर मोक्ष आगे आयेगा न मोक्ष, मोक्ष का फल और कारण बतायेंगे दूसरे भाग में। अन्त में यह मूल ले लिया। भगवान की पूजा आदि व्यवहार होता है, शुभभाव होते हैं, परन्तु वास्तव में मोक्ष का कारण वह नहीं, व्यवहार से रत्नत्रय में कहेंगे। समझ में आया?

भगवान का स्वभाव अपना वीतरागी चैतन्यबिम्ब स्वभाव, उस स्वभाव का साधन स्वभाव ही है; राग साधन नहीं। जिसने पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर मल और अंजनरहित प्रभु भगवान आत्मा में जिसने मन को एकाग्र किया है, अर्थात् शुद्ध स्वरूप की परिणति प्रगट की है, उसमें शुद्ध भगवान सेवनयोग्य हो गया है। वह शुद्ध परिणति एक ही मोक्ष का कारण है। समझ में आया? **दूसरा कोई भी तन्त्र नहीं है, और**

न मन्त्र है। तन्त्र नाम शास्त्र व औषध का है,... कोई ऐसा शास्त्र नहीं या औषध नहीं कि उससे मुक्ति हो जाये। यह रोग मिटते हैं न औषध खाकर। ऐसी कोई औषध है कि उसकी अंजली-अंजन लगाकर मुक्ति हो जाये, ऐसा। सळी-बळी लगावे आँख में तो मुक्ति भासित हो जाये अन्दर?

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो सिद्धांजली। यह सिद्ध, सिद्ध उसकी निर्मल अंजन पर्याय लगावे आत्मा में (तो मुक्ति हो जाये)। औषध-बौषध ऐसे होते हैं न, जड़ी-बूटी के बड़े ऊँचे, इतना लगावे तो मिट जाये। ऐसी कोई जड़ी-बूटी है कि मुक्ति हो? ऐसा कोई शास्त्र है कि भाई! इतना पढ़ें तो मुक्ति हो? ऐसा कहते हैं। कहो, वैद्य को तो शास्त्र पढ़े तो उसे आ जाये वैद्य। ऐसा करो, ऐसा करो, फलाना करो, जड़ी-बूटी डालो, ढींकणा करो। इसी प्रकार इसमें कोई ऐसा शास्त्र होगा कि जो शास्त्र पढ़ने से मुक्ति हो? कोई औषधि ऐसी होगी कि औषधि खाने से एकदम पड़ जाये अन्दर (और) राग टल जाये और मुक्ति हो जाये? गोली दो गोली ऐसी कि जिससे हमको तुरन्त आत्मा उघड़ जाये। गोली कौन सी दे यह औषध की? **मन्त्र नाम मन्त्राक्षरों का है।** कोई ऐसा मन्त्र है कि ॐ.... ॐ.... ॐ.... ॐ.... करें तो मुक्ति हो? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं ऐसा मन्त्र है, (उससे) मुक्ति हो? यह जाप है, वह तो विकल्प-राग है। पाँच पद का जाप है, वह तो शुभराग है, उस जाप से मुक्ति नहीं होती। आहाहा! उससे धर्म नहीं होता, ऐसा कहते हैं। मन्त्र अर्थात् मन्त्राक्षर। मन्त्र के अक्षर नहीं आते? आते हैं न अपने उसमें? द्रव्यसंग्रह में नहीं आते? ॐ, अ, आ आदि के बहुत आते हैं। सब आते हैं। ऐसा कोई मन्त्र है कि मन्त्र जपा करें और मुक्ति हो जाये एकदम? उस मन्त्र का उच्चार, वह तो वाणी है परन्तु अन्दर विकल्प है, वह तो शुभराग है। वह कहीं धर्म और मुक्ति का कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! गजब, भाई!

विषय-कषायादि परपदार्थों से मन को रोककर... परसन्मुख के झुकाव को, मन को रोककर **परमात्मा में मन को लगाना,...** यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द में चित्त लगा देना, **यही मोक्ष का कारण है।** अर्थात् शुद्ध परिणति ही मोक्ष का कारण है, ऐसा कहना है। शुभभाव या विकल्प मन्त्रादिक कुछ मोक्ष का कारण नहीं।

भावार्थ :- जो कोई निकट-संसारी जीव... समझ में आया? '**शुद्धात्मतत्त्व-भावनाप्रतिकूलेषु**'। निकट संसारी अर्थात् जिसका संसार अन्त (नजदीक) है। **जीव शुद्धात्मतत्त्व की भावना से...** भगवान आत्मा शुद्धात्म वस्तु शुद्ध परमानन्द की मूर्ति की एकाग्रता से **उल्टा विषय कषायों में जाते हुए मन को वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के बल से...** अपने सम्यग्ज्ञान, वीतरागी ज्ञान, चैतन्य के सम्यग्ज्ञान के बल द्वारा। **पीछे हटाकर...** देखो! शुभाशुभ विकल्प को अपने आत्मा के स्वसंवेदनज्ञान के बल से हटाकर। **निज शुद्धात्मद्रव्य में स्थापन करता है,...** अपना निज शुद्धात्म पदार्थ, उसमें जो स्थापन करता है, **वही मोक्ष को पाता है,...** वह मोक्ष को पाता है। **दूसरा कोई मन्त्र-तन्त्रादि में चतुर...** यह मन्त्र में चतुर, शास्त्र में चतुर—ऐसा आया न सब इसमें। शास्त्र में चतुर, मन्त्र में चतुर, तन्त्र में चतुर, औषध आदि में वह चाहे जैसा **चतुर होने पर भी मोक्ष नहीं पाता।** भगवान आत्मा का चतुर अन्दर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की निर्मलानन्द वीतरागी परिणति से मुक्ति पाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से कभी मुक्ति है नहीं। यह पहला भाग इस प्रकार से पूरा किया। मोक्ष लिया है न! अब दूसरे अधिकार में मोक्ष और मोक्ष का फल और मोक्ष का कारण, यह अधिकार लेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण १०, शुक्रवार, दिनांक - १७-१२-१९६५
द्वितीय अधिकार, गाथा - १ से ४ प्रवचन - ७८

महा अधिकार। पहला अधिकार कल पूरा हुआ। देखो! क्षेपकों के अतिरिक्त २१४ गाथा में चलेगा यह। मोक्ष, मोक्षफल और मोक्ष का मार्ग, इसे कहने का दूसरा अधिकार है। इसमें दस दोहा तक तो मोक्ष की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं। पहला श्लोक।

गाथा - १

१२७) सिरिगुरु अक्खहि मोक्खु महु मोक्खहँ कारणु तत्थु।
मोक्खहँ केरउ अण्णु फलु जें जाणउँ परमत्थु॥ १॥

प्रभाकर भट्ट, योगीन्द्रदेव मुनि से प्रार्थना करते हैं। **अन्वयार्थ :- हे श्रीगुरु! मुझे मोक्ष...** मुझे मोक्ष कहो, '**तथ्यम् मोक्षस्य कारणं**' और **सत्यार्थ मोक्ष का कारण,...** वह कहो। प्रश्न पूछता है। '**अन्यत्**' जो मोक्ष सम्बन्धी फल, **और मोक्ष का फल कृपाकर कहो...** तीन प्रश्न है। मोक्ष, मोक्ष का सच्चा कारण और मोक्ष का फल। **जिससे कि मैं परमार्थ को जानूँ।** जिससे मुझे परमार्थ का तीनों का ज्ञान होने से परमार्थ का ज्ञान हो। ऐसा शिष्य का (प्रश्न है)। देखो! वह दूसरा कुछ माँगता नहीं, यह पूछता है। और जिससे मुझे परमार्थ का ज्ञान हो, ऐसा कहते हैं। दूसरा सब ठीक। मोक्ष, मोक्ष का सच्चा कारण और मोक्ष का फल, यह जानने से मुझे परमार्थ अर्थात् सच्चा ज्ञान हो, वह बात मुझे कहो। गुजराती समझते हो न? ठीक।

भावार्थ :- **प्रभाकर भट्ट श्री योगीन्द्रदेव से विनती करके मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल इन तीनों को पूछते हैं।** दूसरा श्लोक।

★ ★ ★

गाथा - २

१२८) जोइय मोक्खु वि मोक्ख-फलु पुच्छिउ मोक्खहँ हेउ।
सो जिण-भासिउ णिसुणि तुहुँ जेण वियाणहि भेउ॥ २॥

अन्वयार्थ :- हे योगी, तूने मोक्ष और मोक्ष का फल तथा मोक्ष का कारण पूछा, उसको... 'जिनभाषितं' आया भाई! **'जिनभाषितं'**। जिन ने देखा हुआ नहीं, परन्तु देखा हुआ और भासित हुआ सब एक ही है। **'जिनभाषितं' जिनेश्वरदेव के कहे प्रमाण...** प्रश्न करते हैं न भाई! जिनेश्वर देखा ऐसा नहीं, जिनेश्वर ने कहा, वैसा अपने को जानना। ऐसे कितने ही तर्क करते हैं। परन्तु जिनेश्वर ने देखा है, वैसा उन्होंने कहा है। बड़ा विवाद। क्योंकि जिनेश्वर ने देखा तो तीन काल, तीन लोक बराबर नियत और व्यवस्थित सब देखा है। परन्तु उन्होंने कहा है अनेकान्त, ऐसा। ऐसा कहते हैं। अनेकान्त अर्थात् कि किसी समय पर्याय होनेवाली हो, उस समय में होती है और उस समय में दूसरी भी होती है, इसका नाम अनेकान्त है। नियत, अनियत नाम अनेकान्त है। भगवान ने देखा, उससे कहा दूसरा होगा? देखा, उससे कहना दूसरा होगा? तीन काल, तीन लोक सर्वज्ञ परमात्मा ने ज्ञान में एक समय में व्यवस्थित देखे, व्यवस्थित। जिस समय में जहाँ जो पर्याय जिस काल में, जिस प्रकार से होनेवाली है, उसमें उस प्रकार से निमित्त कौन? क्षेत्र कहाँ? कैसा भाव? जिस प्रकार से जो देखा है, तत्प्रमाण वहाँ होता है, ऐसा ही भगवान ने कहा है। देखा कुछ और कहा कुछ, ऐसा होगा? पण्डितजी! यह कहते हैं।

मुमुक्षु : जाना हो वैसा कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही हो न परन्तु। यहाँ जिनभाषित कहे प्रमाण नहीं, जिनेश्वर ने कहा है, उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है, उसे भगवान ने कहा है, उस प्रमाण हम कहेंगे।

तू निश्चयकर सुन,... 'निशृणु' शब्द है न। **'निशृणु'** बराबर सुन, ऐसा। **'निशृणु'** अर्थात् बराबर सुन। समझ में आया? निश्चयकर अर्थात् बराबर जैसा है, वैसा तू सुन। **जिसके भेद अच्छी तरह जान जावे...** परमार्थ को जानने का पूछते थे, उसके उत्तर में... लेकर मोक्ष की पर्याय, मोक्ष का कारण, मोक्ष का फल, उसकी जैसे भिन्नता जिस प्रकार

से है, उसका ज्ञान तुझे हो, उस प्रकार से मैं तुझे भगवान का कहा हुआ कहता हूँ।

भावार्थ :- श्री योगीन्द्रदेव गुरु, शिष्य से कहते हैं कि हे प्रभाकरभट्ट! योगी... योगी है न वह। **शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष...** व्याख्या की टीका में। मोक्ष की व्याख्या—आत्मा शुद्ध शक्तिरूप से जो है, उसकी पर्यायरूप से शुद्धात्मा की पूर्णता की प्राप्ति का नाम मोक्ष। कहो, समझ में आया? मोक्ष अर्थात् शुद्धस्वभाव की पर्याय में पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। 'मोक्ष कह्यो निज शुद्धता'। मोक्ष अर्थात् आत्मा मुक्तस्वरूप शुद्ध तो त्रिकाल है। शुद्ध शक्तिरूप से, सत्त्वरूप से, वस्तुरूप से मुक्त है। उसकी पर्याय में पूर्ण शुद्धता की प्राप्ति होना, उसे मोक्ष कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? इसीलिए शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप मोक्ष, ऐसा। अशुद्ध आत्मा की प्राप्ति, वह संसार। समझ में आया? शुद्धस्वरूप है, उसमें विकार, मिथ्यात्व, राग-द्वेष की प्राप्ति हो, शुद्ध द्रव्य में अशुद्ध पर्याय की प्राप्ति (हो), वह संसार। शुद्ध आत्मा में पूर्ण शुद्ध निर्मलदशा की प्राप्ति हो, उसका नाम मोक्ष।

केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय का प्रगटपना स्वरूप मोक्ष-फल,... लो! इसका फल कहा। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा जिसका चतुष्टयपना प्रगटपना, वह स्वरूप, प्रगटपनेस्वरूप मोक्ष का फल, वह मोक्ष का फल है। शुद्धात्मा की प्राप्ति तो हुआ क्या उसमें? अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, वह मोक्ष का फल है। समझ में आया? अब यहाँ पूछा है तथ्य, इसलिए जरा... पाठ में ऐसा आया है न, '**मोक्षकारणं**'। सत्यार्थ मोक्ष का कारण।

और निश्चय-व्यवहाररत्नत्रयरूप मोक्ष का मार्ग,... है। निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग **इन तीनों को क्रम से जिनआज्ञाप्रमाण तुझको कहूँगा।** जिन आज्ञा प्रमाण कहूँगा, **उनको तू अच्छी तरह चित्त में धारण कर,...** भेद को जान, ऐसा। **जिससे सब भेद मालूम हो जावेगा।** यह निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में वर्णन करते हैं। समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगटे, वह निश्चयमोक्षमार्ग है और उस समय विकल्परूप व्यवहाररत्नत्रयरूप व्यवहारमोक्षमार्ग है, उसे निमित्तरूप से गिनकर प्रमाणज्ञान में उसे साथ में कहा है। समझ में आया?

मोक्षमार्ग यह दो... दो है, इसका विवाद आया है। मोक्षमार्ग दो है। मोक्षमार्ग का कथन दो है। कथन दो प्रकार से है। समझ में आया? परन्तु मोक्षमार्ग दो नहीं, मोक्षमार्ग तो एक ही है। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप परमानन्द की मूर्ति का आश्रय करके सम्यक् निश्चय, सम्यक् हो, वह स्वसंवेदन का ज्ञान निश्चय और स्वरूप में अरागी परिणतिरूपी चारित्र, वही अभेदरत्नत्रय एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? परन्तु साथ में व्यवहार कहा, निमित्त बताया है। समझ में आया?

जैसे स्वयं जीव, जड़ (पुद्गल) गति में परिणमते हुए को धर्मास्ति का निमित्तपना—सहायकपना कहा है, ऐसे शुद्धस्वभाव से निश्चय से आत्मा अपने निश्चयरूप से परिणमता है, वहाँ विकल्प ऐसे व्यवहार के होते हैं, उन्हें निमित्तरूप से सहायक और साधक कहा गया है। समझ में आया इसमें? धर्मास्तिकाय, जैसे जड़ (पुद्गल) और चैतन्य स्वयं गति में परिणमे, उन्हें धर्मास्ति निमित्त कहने में, उन्हें सहायक कहने में आता है। सहायक, साधक, सहायक, मदद करनेवाला। निमित्त है, उसे मदद करनेवाला कहा, बस इतना।

इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का अन्तर आश्रय निश्चय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निर्विकल्प पर्याय जो स्वभाव के आश्रय से प्रगट हो, वह एक ही मोक्षमार्ग स्वयं परिणमता है, स्वयं परिणमता है, वहाँ वह व्यवहार विकल्प जो है, उसे साधक, सहायक, साधक, व्यवहार, निमित्तरूप से उसे कहा गया है। साधक कहा है। यहाँ कहा है देखो! ... दो बोले हैं। ऐई! यह दो मोक्षमार्ग का कथन है न दो, साथ में प्रमाणज्ञान कराना है प्रमाण। निश्चय और व्यवहार दो का प्रमाणज्ञान कराना है। अकेला मोक्षमार्ग निश्चय होने पर भी वहाँ विकल्प सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का ही विकल्प होता है। समझ में आया?

मुनि को पंच महाव्रत आदि का ही विकल्प होता है और छह काय की दया आदि का ही विकल्प होता है, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा का ही विकल्प होता है। ऐसा विकल्प हो, इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं होता, इतनी मर्यादा बतलाने के लिये उसे व्यवहार का आरोप करके मोक्षमार्ग कहा गया है। समझ में आया? बड़ा विवाद। वह कहे कि व्यवहार चौथे से अकेला बारह तक व्यवहार होता है। कितने ही (कहे), और

चौथे से सातवें तक व्यवहार होता है, आठवें से निश्चय। वह एक व्यक्ति कहे, तेरहवें से निश्चय सम्यग्दृष्टि। आहाहा! यहाँ तो चौथे से लेकर मोक्षमार्ग शुरु होता है, छठवें में चारित्र इकट्ठा (होता है) इसलिए वहाँ से विशेष गिना है। समझ में आया इसमें? यह निश्चय-व्यवहाररत्नत्रय स्वरूप मोक्ष का मार्ग, उसे जिन आज्ञा प्रमाण कहूँगा, वह तू जान। तीसरा श्लोक।

★ ★ ★

गाथा - ३

१२९) धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिँ णाणि जिय अण्णेँ जेण ण सोक्खु॥ ३॥

अब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों में सुख का मूलकारण मोक्ष ही सबसे उत्तम है,... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा ने मोक्ष में सुख कहा है और उस मोक्ष में ही सुख है, दूसरे धर्म, अर्थ, काम में नहीं। धर्म, अर्थ, काम। धर्म अर्थात् पुण्य; अर्थ अर्थात् पैसा; काम अर्थात् भोग। तीन में सुख नहीं, परन्तु तीनों दुःखरूप हैं। समझ में आया? क्या कहते हैं? पुण्य कहा न, पुण्य कहा अभी। नीचे आयेगा, धर्म अर्थात् पुण्य शुभभाव। कहेंगे, नीचे कहेंगे। धर्म अर्थात् पुण्य, अर्थ अर्थात् पैसा, काम अर्थात् भोग और मोक्ष अर्थात् पूर्ण शुद्ध, शुद्धात्मा की प्राप्ति। चारों में सुख का मूल कारण मोक्ष, वह सबसे उत्तम है। **ऐसा अभिप्राय मन में रखकर इस गाथा-सूत्र को कहते हैं—**कहो, समझ में आया?

अन्वयार्थ :- हे जीव, धर्म... शब्द से पुण्य नीचे है भावार्थ में, देखो! **धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना।** नीचे है नोट। भावार्थ में पहला शब्द। धर्म अर्थात् पुण्य, व्यवहार धर्म को पुण्य कहने को शब्द से धर्म कहा है। समझ में आया? अर्थ अर्थात् लक्ष्मी और काम-भोग **'एतेषां सकलानां' इन सब पुरुषार्थों में से...** देखो, पुरुषार्थ तो सबमें है। किसमें? पुण्य में भी पुरुषार्थ है इतना शुभराग का वीर्य; अर्थ में अशुभ पुरुषार्थ है और भोग में भी अशुभ पुरुषार्थ है और पुण्य में शुभ पुरुषार्थ है, परन्तु तीनों दुःखरूप है, आकुलता है। समझ में आया?

धर्म, अर्थ और काम, तीनों ही दुःखरूप पुरुषार्थ हैं। बराबर होगा? अन्य धर्म, कामादि सुख ज्ञानी पुरुष मोक्ष को चार पुरुषार्थ में उत्तम कहते हैं। क्यों? कि **अन्य धर्म, अर्थ, काम आदि पदार्थ में परम सुख नहीं है।** सुख नहीं, परम अर्थात् कल्पना का सुख है, कल्पना का सुख है, वास्तविक सुख नहीं। **धर्म शब्द से यहाँ पुण्य समझना,...** हों! पाठ में ही है संस्कृत '**धर्मशब्देनात्र पुण्यं कथ्यते**' टीका में ही है। धर्म अर्थात् पुण्य, राग की मन्दता शुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का भाव, वह सब शुभभाव है, वह पुण्य है, वह व्यवहार धर्म कहा जाता है। जहाँ निश्चय धर्म हो, वहाँ ऐसा व्यवहार धर्म का विकल्प हो, उसे व्यवहार कहा जाता है। तथापि है वह आकुलता। समझ में आया?

अर्थ शब्द से पुण्य का फल... लो! यह पुण्य का फल राज आदि विभूति, पुण्य का फल राज विभूति, परिवार, स्त्री आदि अनुकूल, वह सब पुण्य का फल है। समझ में आया? देखो, कितने ही इनकार करते हैं न कि भाई! पुण्य का फल यह नहीं। ऐसा नहीं है। पुण्य का फल है। जैसे शुभभाव किये हों, उनका बँधा हुआ पुण्य हो, उसके फलरूप से पैसा, लक्ष्मी, राज, वैभव, सम्पदा, वह सब पुण्य का फल है। उसके वर्तमान राग का फल नहीं, कमाने का राग करे, इसलिए पैसा मिले? तो सबको मिलना चाहिए। कमाने का राग करे, इसलिए पैसा मिले? पूर्व के पुण्य के कारण वह पैसा, राज की विभूति आदि मिलते हैं। समझ में आया?

यह इसमें भी आ गया है, आयेगा अपने। ६० गाथा में आयेगा, इसमें। वह पुण्य भी वैभव आता है न। ६०-६० गाथा। १६० विशेष हो गयी थी न बात? ६० गाथा। २०१ पृष्ठ पर इसमें है, ६०-६०।

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ॥ ६०॥

६०वीं गाथा। दूसरे भाग की ६०वीं गाथा। ६०। इसमें ६० कही, फिर उसमें प्रश्न क्या? ६०।

मुमुक्षु : १६०।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, ६०। तुम्हारे क्या कहते हैं हिन्दी में? ६०। देखो! अर्थ '**अथ निश्चयेन पुण्यं निराकरोति**' है न इसमें ६० में। '**पुण्णेण होइ विहवो**' इस **पुण्य से घर में धन होता है,...** पुण्य से पैसा मिले, मिथ्यादृष्टि को **धन से अभिमान होता है,...** है? यह पुण्य से पैसा मिले, पैसे से अज्ञानी को अभिमान हो। सम्यग्दृष्टि को नहीं, मिथ्यादृष्टि की बात है। समझ में आया?

अभिमान हो, ऐसा बात है न? इसलिए फिर उपोद्घात लिखा है लिखनेवाले ने। निश्चय से मिथ्यादृष्टि का, ऐसा। मूल पाठ नहीं। '**निश्चयेन पुण्यं निराकरोति**' इतना ही है उपोद्घात, परन्तु इन्होंने अर्थ भरा कि वह अभिमान करता है न। सम्यग्दृष्टि को अभिमान होता नहीं, सम्यग्दृष्टि को पूर्व के पुण्य का फल हो, परन्तु अभिमान होता (नहीं), यह मेरे हैं, ऐसा होता नहीं। उसको—सम्यग्दृष्टि को तो ज्ञानानन्दस्वरूप, वही मेरा है। पुण्य का भाव उठे शुभ, वह भी अपना नहीं। पुण्य का भाव, वह भी अपना नहीं तो पुण्य के फल तो जड़, मिट्टी आये बाहर। वे कहाँ से आये अपने में? धर्मी अपना ज्ञानानन्दस्वरूप, उसे ही अपना मानता है। जो शुभ आवे व्यवहाररत्नत्रय राग, उसे भी आस्रवतत्त्व मानता है, अपना तत्त्व मानता नहीं और पुण्य के फलरूप से धूल आदि मिले, यह राज्यादि, वह तो जड़ और अजीव है। उसे समकिती 'मेरा' मानता नहीं। इसीलिए यहाँ लिया है कि पुण्य और फलरूप से पैसा। यहाँ अर्थ में सब लिया है, हों! राज्यादि वैभव सब। अपने चलते में। और उस वैभव से उसे मद होता है। हम पैसेवाले, हम राजवाले, हम रानियाँ, हमारे यह, हमारे अभिमान होता है। और **मान से बुद्धिभ्रम होता है,...** भ्रमणा हो जाये कि मानो हम सबसे अधिक हैं। बुद्धि आवे भ्रमणा हो जाये ऐसा कहते हैं। ठीक! मति मोह... भ्रमणा हो जाये कि मानों मैं बड़ा हो गया। यह सब साधारण लोग क्या बेचारे? पाँच करोड़, दस करोड़ रुपये हो जाये तो उसे मति फट जाती, आँख ओडे जाये और यह मति भ्रम हो जाये अज्ञानी को।

बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे। देखो! समझ में आया? ऐसा पुण्य, आचार्य कहते हैं कि धर्मी चाहते नहीं। ऐसा पुण्य हमारे नहीं चाहिए। आहाहा! धर्मी जीव तो, आत्मा की शुद्ध पवित्रता की दृष्टि है और पवित्रता की ही भावना करता है। धर्मी जीव आत्मा की पवित्रता अखण्डानन्द शुद्ध

की दृष्टि है और उस शुद्ध की ही भावना करता है, वह पुण्य की भावना करता नहीं। आता अवश्य है, शुभभाव आवे। व्यवहार से ऐसा कहा जाये कि व्यवहाररत्नत्रय को आराधता है। निश्चय से उसका आराधन है ही नहीं। समझ में आया?

धर्म करके यह माँगता है लो, ठीक! मूढ़ माँगे। धर्म था कब उसे? धर्म करके पैसा माँगता है, ऐसा कहते हैं। धर्म करके पैसा मिले, सुखी होंगे, नंगे-भूखे रहेंगे नहीं। रोटियाँ और शरीर के दबैल रहेंगे सदा भिखारी। मूढ़ ऐसी माँग करता है। धर्मी को तो एक शुद्ध चैतन्यमूर्ति वह मेरी पूर्ण दशा मुझे प्राप्त होओ। इसके अतिरिक्त दूसरी भावना धर्मी को होती नहीं। समझ में आया? पुण्य समझना। **अर्थ शब्द से पुण्य का फल राज्य वगैरह सम्पदा जानना,...** पुण्य फल है, वह कहीं आत्मा के राग का फल नहीं, इसी प्रकार आत्मा की मोक्ष के कारण के मार्ग का वह फल नहीं। मोक्षमार्ग का फल तो अनन्त चतुष्टय कहा। समझ में आया? यह तो पुण्य का फल है धूल रागादि और सम्पदा मिले वह।

और काम शब्द से उस राज्य का मुख्यफल स्त्री, कपड़े, सुगन्धित माला आदि वस्तुरूप भोग जानना। ऊँची चीज़ आदि। समझ में आया? वह वस्तु **भोग जानना। इन तीनों से परम सुख नहीं...** तीनों से आत्मा का सुख नहीं, परम अर्थात् आत्मा का, परम अर्थात् थोड़ा सुख नहीं, आत्मा का सुख उसमें नहीं। समझ में आया? **क्लेशरूप दुःखी है।** क्लेश है, क्लेश है। कहो, पुण्य के फल में वैभव, काम में अशुभभाव और पुण्य भाव में वर्तमान आकुलता। ये तीनों दुःखरूप हैं। ऐसा कहें तो अर्थ और भोग, वह अशुभभाव; पुण्य, वह शुभभाव, तीनों ही आकुलतारूप है। क्या कहा? पुण्य अर्थात् शुभभाव; पैसे का भाव अर्थात् अशुभभाव; भोग का भाव अर्थात् अशुभभाव। वह दो— अशुभ और शुभ दोनों दुःखरूप हैं, तीनों दुःखरूप हैं। समझ में आया? कहो, बराबर होगा? नेमिदासभाई! पैसा प्राप्त करने का भाव दुःखरूप होगा?

मुमुक्षु : मीठे नीम की कढ़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी? मीठे नीम की कढ़ी। ले ठीक! ये कहाँ से निकाली? कहते हैं कि तीनों **क्लेशरूप दुःख ही है,...** भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति का

परमानन्द की पर्याय की प्राप्ति मोक्ष में सुख है, ऐसा सिद्ध करना है। बाकी यह शुभभाव और अशुभ दोनों में अकेला दु:ख है। धर्म शब्द से पुण्य और पुण्य शब्द से दु:ख—ऐसा कहते हैं। लक्ष्मी शब्द से लक्ष्मी को कमाने का भाव। अर्थ का पुरुषार्थ कहना है न, पुरुषार्थ कहना है न तीन का? चार का पुरुषार्थ कहना है या नहीं? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार का पुरुषार्थ। तो धर्म का पुरुषार्थ अर्थात् शुभभाव का पुरुषार्थ, वह दु:खरूप; लक्ष्मी का पुरुषार्थ, वह अशुभभावरूप दु:खरूप; भोग का पुरुषार्थ, अशुभभावरूप दु:खरूप। समझ में आया? ये तीन पुरुषार्थ दु:खरूप हैं। एक पुरुषार्थ का फल जो केवलज्ञान, वह मोक्ष का कारण, वह सुखरूप है।

इसलिए इन सबसे उत्तम मोक्ष को ही... इन तीन में कुछ सुख नहीं, क्लेश ही है; इसलिए सबसे उत्तम मोक्ष को **वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं,...** वीतराग सर्वज्ञदेव कहते हैं, उन वीतराग सर्वज्ञदेव ने ऐसा जाना नहीं कि सुख ही मोक्ष है? जाना है, वैसा कहते हैं। समझ में आया? यह जाना है, उसे ऐसा कहते हैं कि तुम करना चाहते हो कि जाना ऐसा कहकर नियत सिद्ध करना चाहते हो, परन्तु उन्होंने कहा है अनेकान्त, वह सिद्ध करना नहीं चाहते। ऐसा (वे) कहते हैं। अरे! भगवान! परन्तु भाई! यह उल्टी लाईन। भगवान ने जाना है, ऐसा ही है और जाना है, वैसा कहा है और कहा है, वैसा जाना है और कहा है, वैसा है। तीनों एक ही बात है। समझ में आया?

थैली में रुपये पड़े हों ३५००। यहाँ जमा में ३५०० निकले, ज्ञान में भी वह आवे पैसे वहाँ पड़े हैं और लिखा है यहाँ। तीनों ऐसा आवे। तीनों में अन्तर आवे? इसी प्रकार जगत में जो चीज़ थैली में पड़ी है द्रव्य, गुण, पर्याय का जैसा स्वरूप, वैसा भगवान ने जाना; जाना वैसा वाणी में कहा; कहा वैसा वहाँ है; है वैसा वाणी में आया है और है वैसा जानने में आया। समझ में आया? कठिन भाई! पुण्य का पुरुषार्थ, वह दु:खरूप। यह सब हैरान हो जाते हैं। ऐई! जयचन्दभाई! पुण्य का पुरुषार्थ दु:खरूप कहते हैं। परन्तु तुमको सच्चा लगता है या नहीं वापस सच्चा? ऐसा कहे वहाँ कमाने का भाव वह सुखरूप लगता है और भगवान कहते हैं दु:खरूप। ऐसी तो दिक्कत आयी। कमाने का भाव, वह दु:खरूप है—ऐसा भगवान कहते हैं, ऐसा तुझे लगता है या नहीं? या कमाने का भाव, वह सुखरूप लगता है, ऐसा कहते हैं। और छियानवें हजार स्त्रियों के भोग

का भाव, वह पापरूप, दुःखरूप है। इन्द्र और करोड़ों इन्द्राणियों के भोग का भाव अशुभ पापरूप है। समझ में आया? और शुभभाव, जो शुभभाव राग की मन्दता, व्यवहार धर्म अर्थात् कि पुण्य, वह दुःखरूप है। नवनीतभाई!

करेंगे नहीं तो आये बिना रहेगा नहीं, करना था कहाँ इसे? भूमिका प्रमाण में उसे शुभभाव आये बिना रहेगा नहीं, परन्तु है दुःखरूप। आयेगा अवश्य, आये बिना रहेगा? यह कमाने का पाप कहे। भाई! पापभाव है, पापभाव तो आये बिना रहेगा? वह कहीं वीतराग हो गया है, वह न आवे उसे? कमाने का भाव होता ही है, भोग का भाव होता ही है, इसी प्रकार पुण्य का भाव होता ही है। समझ में आया? परन्तु तीनों भाव एक शुभ और दो अशुभ, तीनों दुःखरूप हैं, वे तीनों क्लेशरूप हैं। पाँच-पाँच लाख, दस-दस लाख पैदा करता हो और कहते हैं क्लेशरूप भाव है, उस समय का कमाने का।

मुमुक्षु : कमानेवाले को ही पूछ लो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही पूछते हैं। यह पूछे इसके बाप को यहाँ। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

क्योंकि मोक्ष से जुदा जो धर्म, अर्थ, काम हैं,... देखो! मोक्ष से भिन्न धर्म अर्थात् पुण्य। उससे भिन्न अर्थ पुरुषार्थ, हों! उससे भिन्न काम पुरुषार्थ। **वे आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,...** आहाहा! कहो, जमुभाई! अथवा पुण्यभाव करने में मजा नहीं रहता, ऐसा कहो न अभी पहले। पुण्यभाव में दुःख है तो मजा नहीं आता। इसलिए तो कहते हैं यहाँ। पुण्यभाव आवे, उसमें मजा नहीं मानना, क्योंकि उसमें दुःख है। पुण्य के फल आवें, उनमें मजा नहीं मानना, क्योंकि उसका पुरुषार्थ ही पापरूप है। भोग में मजा नहीं मानना, क्योंकि भोग का भाव ही पापरूप है। आहाहा!

यहाँ तो पुरुषार्थ की बात है न? चार पुरुषार्थ हैं—धर्म पुरुषार्थ, अर्थ पुरुषार्थ, काम पुरुषार्थ, मोक्ष पुरुषार्थ। चारों में वीर्य है। धर्म अर्थात् पुण्य पुरुषार्थ, वह शुभभाव पुरुषार्थ, परन्तु वह शुभभाव पुरुषार्थ आकुलता, क्लेशरूप दुःख है। समझ में आया? अर्थ पुरुषार्थ, यह अशुभभाव है, पुरुषार्थ है, अशुभ है, दुःखरूप है, क्लेशरूप है। भोग

पुरुषार्थ, वह पुरुषार्थ है, अशुभ है, दुःखरूप है। मोक्ष पुरुषार्थ, वह सुखरूप है। मोक्ष के मार्ग का पुरुषार्थ, वह सुखरूप है और उसका मोक्ष, वह स्वयं सुखरूप है। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष सुखरूप है और मोक्ष का मार्ग भी सुखरूप है, ऐसा इसमें सिद्ध होता है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसकी अन्तर में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् शान्ति—चारित्र की रमणता, वह मोक्ष का मार्ग, वह सुखरूप है। इसका अर्थ कि शुद्ध परिणाम, वे सुखरूप हैं। शुभ और अशुभ दोनों परिणाम, वे दुःखरूप हैं। इसका बड़ा विवाद उठा। शुभ परिणाम से क्षायिक समकित होता है, लो! शुभयोग से क्षायिक समकित होता है। ऐसी बातें! अब भारी उल्टा मारा है न! समझ में आया? यह कहा न, क्या कहा यह?

आत्मा अखण्ड अनन्त गुण का पिण्ड शुद्ध परमब्रह्म आत्मा, उसकी अन्तर की सम्यक् श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् शान्ति। शान्ति अर्थात् चारित्र, ऐसा जो मोक्ष का पुरुषार्थ अर्थात् मार्ग अभी अपने लेना है। मोक्ष पुरुषार्थ तो पूर्ण हो गया वह, परन्तु यहाँ उसका मार्ग जो है, वह सुखरूप और आनन्दरूप और शान्तिरूप है। मोक्षमार्ग दुःखरूप नहीं हो सकता। अरे! करना पड़ता है, बहुत दुःख होता है, महा सहन करना (पड़ता है)—ऐसा नहीं होता। मोक्षमार्ग आनन्दरूप होता है। आहाहा! समझ में आया? वह आस्रवरूप मोक्षमार्ग नहीं होता। आस्रवतत्त्व तो दुःखरूप है। शुभभाव है, वह पुण्य है, वह आस्रवतत्त्व है। उससे नये आवरण आवें, वह तो दुःखरूप है; इसलिए वह मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन जगत को।

भगवान आत्मा शुद्ध मोक्षस्वरूप ही है वस्तु। उसका मुक्तस्वरूप का सम्यग्दर्शन होना—शुद्ध चैतन्य की अन्तर निर्विकल्प रुचि, दृष्टि, वह सुखरूप है और पूर्ण सुख का कारण है। सुखरूप है, पूर्ण सुख का कारण है। यह भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव का स्वसंवेदनज्ञान, उसका ज्ञान, ज्ञान का ज्ञानवेदन। वह सम्यग्ज्ञान, वह सुखरूप है, आनन्दरूप है, पूर्ण आनन्द का कारण है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द की मूर्ति, उसकी श्रद्धा-ज्ञानसहित की स्थिरता, अन्दर चरता, रमणता, चारित्र वह आनन्दरूप है, अनाकुलरूप है, शान्तिरूप है, पूर्ण आनन्द का कारण है। समझ में आया?

इसलिए तो यहाँ चार पुरुषार्थ की व्याख्या की। पुरुषार्थ तो है चारों। एक शुभ का पुरुषार्थ, (दो) अशुभ का, एक शुद्ध का। समझ में आया?

कहते हैं, इस **मोक्ष से जुदा जो धर्म, अर्थ, काम हैं, वे आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं,...** आहाहा! यहाँ कहा था न शिष्य ने? प्रभु! मुझे सब बतलाओ कि जिससे मैं परमार्थ जानूँ। तब गुरु ने कहा कि यह भेद तू यह कहेगा उसे तू भेद को जानना। ऐसे प्रकार जो भिन्न-भिन्न हैं, उन्हें तू जानना। **तथा वीतराग, परमानन्दसुखरूप अमृतरस के आस्वाद से विपरीत हैं,...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द की मूर्ति आत्मा तो है। उसकी पर्याय में रागरहित परमानन्दसुखरूप अमृतरस आस्वादन, वह उसकी निर्मल पर्याय है। वह सुखरूप पर्याय है। वह संवर-निर्जरारूप पर्याय है, उससे विपरीत शुभ और अशुभ, वह आस्रव और बन्धरूप पर्याय है। समझ में आया?

क्या कहा? नौ तत्त्व में घटित किया। नौ तत्त्व है या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। जीवतत्त्व कौन? ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्य पदार्थ, वह जीव। उसके तत्त्व की सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति... यह कहा न? वीतराग परमानन्दरूप अमृतरस का आस्वाद, वह सुखरूप पर्याय, वह सुखरूप पर्याय। दूसरी भाषा में कहें तो संवर, निर्जरारूप दशा। समझ में आया? यह उससे विपरीत। कौन? यह शुभभाव और अशुभभाव का पुरुषार्थ, पुण्य का पुरुषार्थ और भोग का और अर्थ का, यह तीनों पुरुषार्थ आस्रव और बन्धरूप है। नौ तत्त्व में वह आस्रव और भावबन्धरूप है। समझ में आया?

वह आस्रव और बन्धरूप परिणाम का फल संसार। वीतराग परमानन्द की पर्याय की शान्ति का परिणमन, उसका फल मोक्ष है। नौ आ गये, नौ तत्त्व इसमें (आ गये)। समझ में आया? अजीवतत्त्व तो भिन्न रह गया, जीवतत्त्व ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा, वह तो पूर्ण शुद्ध आत्मा, उसका नाम आत्मा। आत्मा अर्थात्? पुण्य-पाप के आस्रवरहित, अजीव-कर्मरहित। अजीवकर्म तो अजीवतत्त्व में जाते हैं। पुण्य-पाप के भाव आस्रव में जाते हैं, उनसे रहित अकेला ज्ञायकतत्त्व, वह आत्मा। शुद्ध ज्ञायकस्वरूप, वह आत्मा। अब, ऐसे ज्ञायकतत्त्व की जो अन्तर पुरुषार्थ की गति स्वभाव की, शुद्ध स्वभाव

श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह संवर-निर्जरा का पुरुषार्थ, वह मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ। उसके फलरूप से मोक्ष। कहो, संवर-निर्जरा आ गया, आत्मा आ गया, मोक्ष आ गया। इस ओर आस्रव और बन्ध, वे (सुख के) आस्वाद से विपरीत धर्म, अर्थ और काम।

भगवान आत्मा की वीतराग अमृत के स्वाद की दशा, वह संवर-निर्जरा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उससे विपरीत पुण्य-पाप के भाव और धर्म, अर्थ और काम का भाव, वह आस्रव और बन्धभाव, बस बन्धभाव, वह उसे संसार है। वह संसार है। वह संसार है। आस्रव और बन्धभाव वह स्वयं संसार है। समझ में आया? यह सब नौ तत्त्व में समाहित हो गया इसमें। इसलिए कहा, देखो! कि शुभ-अशुभभाव आकुलता के उत्पन्न करनेवाले अर्थात् उदयभाव हैं, इसलिए संसारभाव है और वीतराग परमानन्द सुखरूप अमृत, वह आत्मा की निर्मल निर्विकारी पर्याय है। वीतराग परमानन्द की मूर्ति, वह द्रव्य और उसकी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, वह उसकी पर्याय। वह मोक्ष का मार्ग है, वह सुखरूप है। उससे उल्टा शुभ-अशुभभाव, वह दुःखरूप है, आस्रव और बन्धरूप है, वह संसाररूप है। समझ में आया? अब नौ तत्त्व की जहाँ अभी खबर न हो व्यवस्थित। किसे कहना नौ? किसे कहना उसका फल? समझ में आया?

इसलिए सुख के करनेवाले नहीं हैं,... यह पुण्य और पाप के भाव आस्रवतत्त्व है, दुःखरूप है; इसलिए सुख के करनेवाले नहीं। **ऐसा जानना।** लो! समझ में आया? ऐसा जानना। एक-एक गाथा में बहुत समाहित कर देते हैं। धर्म अर्थात् व्यवहार धर्म। व्यवहार अर्थात् कि धर्म नहीं, उसे धर्म कहना, इसका नाम व्यवहार। वास्तविक धर्म नहीं, उसे धर्म कहना, इसका नाम व्यवहार। परन्तु क्या हो? शास्त्र में वह आवे दया, दान और धर्म। तो कहे, यह धर्म। परन्तु यह धर्म व्यवहार या निश्चय? सच्चा या उपचार? समझ में आया?

मुमुक्षु : कम पढ़े हुए....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम पढ़े हुए समझणरहित भूल में पड़े। शब्द के कारण भूल में पड़े हैं? शब्द के कारण भूल में पड़े तो वह सबके भूल का कारण हो। इसकी नासमझ के कारण भूल में पड़ता है। अर्थ और भोग से जरा भिन्न बतलाना है, इसलिए

उसे व्यवहार धर्म कहा। ऐसा व्यवहार से... व्यवहार से। कहा तो दुःखरूप। कहा पुण्य, कहा धर्म, कहा दुःखरूप। अब क्या कहना है? वह दुःखरूप पुरुषार्थ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसकी श्रद्धा का, ज्ञान का भी ठिकाना नहीं होता और इसे धर्म हो? वस्तु एक समय में पूर्णानन्द की मूर्ति, वह तो आत्मा। नौ में वह आत्मा। उसकी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मल श्रद्धा होना, उसका नाम संवर और निर्जरा। उससे विपरीत पुण्य और पाप, वह आस्रवतत्त्व, वह बन्ध और आस्रवभाव, भावबन्ध, हों! द्रव्यबन्ध जड़ में जाता है। समझ में आया? जड़बन्ध पड़ा, वह अजीव पर्याय है। वह तो अजीव पर्याय है। अजीव भिन्न, भाव-आस्रव-बन्ध भिन्न, त्रिकाल ज्ञायक का श्रद्धा-ज्ञान भाव जो निर्मल, वह भिन्न। आस्रव-बन्ध का ज्ञान हुआ। संवर-निर्जरा का आदर हुआ, संवर-निर्जरा में आत्मा (का) आदर हुआ। शुद्ध पर्याय में आत्मा (का) आदर हुआ, तब शुद्ध पर्याय प्रगटी, आस्रव-बन्ध है, उसका ज्ञान हुआ। भिन्न पड़ा तो ज्ञान रहा उसका, ज्ञान में वे आस्रव-बन्ध नहीं आये, परन्तु ज्ञान में वे ज्ञात अवश्य हुए। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान होने पर संवर, निर्जरा की पर्याय प्रगट होने से उसमें सम्यग्ज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ। वह पर्याय है। वह वस्तु की—अन्तर पूर्णानन्द प्रभु की श्रद्धा और ज्ञान। उसमें आस्रव पुण्य-पाप की पर्याय है पुरुषार्थ में। समकिती को भी। है या नहीं? है, वह ज्ञान में नहीं आये, ज्ञान में वे नहीं मिले, परन्तु उनका ज्ञान हुआ। यह है, ऐसा ज्ञान हुआ। समझ में आया इसमें? क्या कहा? शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान आदि होने से उस शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान में वे आस्रव-बन्ध उसमें नहीं आये, परन्तु आस्रव-बन्ध सम्बन्धी का ज्ञान उसमें आया। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य की मूर्ति प्रभु, उसकी अन्तर की दर्शन, ज्ञान और आंशिक शान्ति चारित्र की, वह तो संवर, निर्जरा के सुखरूप दशा में गयी। वस्तु पूर्ण सुखरूप, उसकी दशा हुई सुखरूप। और शुभ और अशुभभाव, वे दुःखरूप में गये। उस सुखरूप दशा में वह दशा नहीं मिली, परन्तु दुःखरूप दशा को ज्ञान जानता है कि यह एक है बस इतना। आहाहा! समझ में आया? और ज्ञान जानता है कि द्रव्यबन्ध का एक निमित्तपना सामने है—ऐसा ज्ञान जानता है। ज्ञान में वह द्रव्यबन्ध और भावबन्ध

ज्ञान में अन्तर में, अस्तित्व में नहीं आया। ज्ञान के सम्यक् ज्ञान के अस्तित्व में वे आस्रव-बन्ध और अजीव यहाँ आया नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान आया इसमें। समझ में आया? बापू! मोक्षमार्ग सूक्ष्म है। वह कहीं ऐसा का ऐसा लोग ले जाये, ऐसी बात नहीं। जुगराजजी! आहाहा!

इसलिए जहाँ पूर्ण मोक्ष हो गया, तब मोक्ष की पर्याय अकेली रह गयी। फिर उसे आस्रव-बन्ध के परिणाम का ज्ञान है? कि यहाँ आया तो नहीं, परन्तु आस्रव-बन्ध का ज्ञान भी अब रहा नहीं। इसलिए पूर्ण हो गया है नहीं। वह तो सबका ज्ञान करे, ऐसा साथ में ज्ञान हो गया सबका.. सबका। पूरी दुनिया का। आहाहा! समझ में आया?

गुरु शिष्य को कहते हैं कि हे भाई! ऐसा तू जान! पुण्य और पाप के भाव को दु:खरूप जान। भगवान आत्मा सुखरूपी स्वरूपी प्रभु की वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति को तू सुखरूप जान और इन्हें (आस्रव-बन्ध को) दु:खरूप जान, अजीव को ज्ञेयरूप जान, ये सब भेद इसमें जानने में आ गये। वह कहे, भाई! हमारे परमार्थ जानना, महाराज! मोक्ष, मोक्ष का कारण और मोक्ष का फल ऐसा कहो तो हमको परमार्थ ज्ञात हो। यहाँ मोक्ष, मोक्ष का फल और मोक्ष का कारण बतलाते हुए उसमें सब वह दूसरा भाव ज्ञान में आया। समझ में आया? पूर्ण शुद्धपर्याय निर्मल मोक्ष; पूर्ण शुद्ध द्रव्य वस्तु; उसके मोक्ष की पर्याय का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-निश्चय शुद्ध संवरदशा, निर्जरा, वह कारण। बस वह कारण, वह फल, उसका फल वापस अनन्त ज्ञानादि। वह इस कारण का कारण वापस शुद्ध द्रव्यस्वभाव। उसका ज्ञान आ गया। परमार्थ ज्ञान आ गया। उसमें आस्रव, बन्ध और अजीव का ज्ञान भी आ गया। लो! यहाँ तीन के अस्तित्व में उसका ज्ञान भी इकट्ठा आ गया। समझ में आया? देखो, भेद जानता है, ऐसा लिया न? समझ में आया? ऐसा तू जान। ३ (गाथा) हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४

आगे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों से जो मोक्ष उत्तम नहीं होता तो इन तीनों को छोड़कर जिनेश्वरदेव मोक्ष को क्यों जाते ? दृष्टान्त दिया भगवान का साक्षात्। समझ में आया? देखो! तीर्थंकर तैरते हैं इन्हें! सर्वज्ञ भगवान जिनेश्वरदेव परमात्मा। यदि इन पुण्य और पाप में सुख होता तो इन्हें छोड़कर पूर्णानन्ददशा को प्राप्त क्यों करते हैं? ऐसा कहते हैं।

१२९) जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहँ सयलहँ सोइ।
तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहिँ पर-लोई॥ ४॥

अन्वयार्थ :- हे जीव! जो इन सबों से मोक्ष उत्तम ही नहीं होता... पुण्यभाव और पापभाव से यदि मोक्ष उत्तम न हो। समझ में आया? भाई! शुभभाव धर्मपुरुषार्थ व्यवहार पुण्य और अशुभभाव लक्ष्मी, भोग का पुरुषार्थ। यदि इनसे (रहित) मोक्ष में सुख नहीं होता तो इन्हें छोड़कर, व्यय करके मोक्ष के उत्पाद में क्यों परिणमते? भगवान मोक्ष को क्यों पाते? पर शब्द का (अर्थ) परलोक करेंगे। समझ में आया? आहाहा! घड़ीक में तो इसे लगे कि कुछ दूसरे देश में हैं। कहो, समझ में आया? क्या कहा? हमारे पण्डितजी अर्थ करते हैं।

हे जीव! जो सबों से मोक्ष उत्तम ही नहीं होता तो श्री जिनवरदेव धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को छोड़कर मोक्ष में क्यों जाते ? आहाहा! देखो तो सही! अरे.. आत्मा! पुण्य पुरुषार्थ और पाप पुरुषार्थ से मोक्ष का पुरुषार्थ और मोक्ष सुखरूप न होता तो इन्हें छोड़कर वे मोक्षरूप से क्यों परिणमते? ऐसा कहते हैं? समझ में आया? जिनेश्वरदेव को क्या कमी थी बाहर की? इन्द्र जिनके सेवक। समझ में आया? चक्रवर्ती तीर्थंकर जिन्हें तो छियानवें-छियानवें हजार स्त्रियाँ पद्मिनी जैसी। नवनिधान, सोलह हजार देव सेवा (में तत्पर)।...! उन्होंने शुभ और अशुभ में यदि सुख माना होता तो उसे छोड़कर शुद्ध में क्यों जाते? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : छोड़कर गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर गये, शुभाशुभभाव छोड़कर अन्दर में गये, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कहाँ भाई! इसीलिए तो यह दृष्टान्त दिया है। ऊपर पुण्य को धर्म कहा और यहाँ कहा कि उन्होंने छोड़ा। नहीं। उनको अर्थ-लक्ष्मी की क्या कमी थी? जिनके इन्द्र अर्धलोक के स्वामी इन्द्र जिनके सेवक। कहते हैं कि वे अशुभ और शुभभाव छोड़कर आत्मा की मुक्ति में पहुँचे कैसे? यदि वह सुखरूप न हो तो ऐसे दुःख को छोड़कर सुखरूप में जाये कौन? आहाहा! समझ में आया?

जिनेश्वर का दृष्टान्त। पहले आया था न अपने? प्रभु! तेरी चारित्रदशा और हमारी चारित्रदशा में जरा भी अन्तर नहीं, हों! ऐसा कहा। तुम्हारे छियानवें हजार स्त्रियाँ और इन्द्र सेवक, इसलिए तुम्हारा चारित्र और ऊँचा होगा? तुमने इतना छोड़ा, इसलिए अधिक ऊँचा होगा और हमारे घर के झोपड़ा छोड़े न इतना, इसलिए हमारा चारित्र छोटा? कहते हैं, नहीं, नहीं हों! भगवान! आहाहा! समझ में आया भाई! पहले इसमें आ गया। यह तो गजब परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव ने कोई दूसरी ही प्रकार से मथा है पूरा। आहाहा!

भगवान! तुमने ऐसी ऋद्धि का भाव छोड़ा और वह ऋद्धि छोड़ी, इसलिए तुम्हारा चारित्र कोई बहुत ऊँचा हो गया होगा अन्दर में। ऐसा न? नहीं, नहीं। हम भी तुम्हारे जैसे ही, जितने ही चारित्रवन्त हैं, कहते हैं। मुनि कहते हैं। समझ में आया? और उस चीज़ के कारण कुछ महत्ता नहीं थी कि बहुत छूटा, इसलिए महा चारित्र हो गयी। थोड़ा छूटा, इसलिए चारित्र कम रहा। समझ में आया? आहाहा! जिससे लक्ष्य हटाना है, वह चीज़ फिर अधिक हो या बड़ी हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहाहा!हमने लक्ष्य हटाया और तुमने वहाँ से हटाया। हमने चिपकाया यहाँ और तुमने चिपकाया (लगाया) यहाँ। हम दोनों समान हुए। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में दिखता है या नहीं? सब दिखता है। क्या न दिखे ज्ञान

में ? समझ में आया ? हे जिनवरदेव ! वाह ! देखो न, यहाँ जिनवरदेव को ही याद करते हैं। **धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को छोड़कर...** तीन को छोड़ा। **मोक्ष में क्यों जाते ? इसलिए जाते हैं कि मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है।** पीछे इसका अर्थ करेंगे, हों !

भावार्थ :- पर अर्थात् उत्कृष्ट मिथ्यात्व-रागादि रहित केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित परमात्मा वह पर है,... ऐसा। इसका लोक अपने आ गय है इसका। इसका अवलोकन, वह परमात्मा। **अर्थात् अवलोकन वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव वह परलोक कहा जाता है,...** उसने तो परलोक को अनुभव किया, अवलोकन किया, इसे अवलोकने को रहे, निवृत्त भी न रहे, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! शुभभाव, अशुभभाव, अर्थ और भोग के अशुभभव उन्हें कितने थे ? समझ में आया ? चक्रवर्ती को तो छियानवें हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ। उसमें कोई वृद्ध हो और मर जाये, वृद्ध हो और चली जाये तो वापस दूसरी उतनी की उतनी संख्या में रहे, वह अंक हटता नहीं, कम नहीं होता। कोई आर्यिका हो जाये, कोई फलाना हो जाये तो वापस संख्या तो उतनी की उतनी रहे। इतना छोड़ा न भगवान ! हमारे एक भी कुछ नहीं था। सुन न ! कहते हैं। हम पर का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप की दृष्टि और स्थिर हुए। भगवान ! हमारा चारित्र और तुम्हारा चारित्र एक ही प्रकार का है, हों ! जरा भी अन्तर नहीं, जरा भी अन्तर नहीं। हम ऐसे पुरुषार्थ से मोक्ष लेनेवाले हैं और तुमने ऐसे पुरुषार्थ से लिया है। समझ में आया ? आहाहा !

आतमराम के खेल हैं न यह ? कहते हैं, परलोक। परलोक का मोक्ष किया है न ? अब उसकी—परलोक की व्याख्या करते हैं। शब्द में परलोक का अर्थ मोक्ष किया। अब परलोक की व्याख्या अवलोकन करते हैं। भगवान अवलोकन करते हैं। अर्थात् उत्कृष्ट मिथ्यात्व आदि सर्व विकार टालकर। देखा ? वह शुभ-अशुभ टाला न ! टाला है शुभ-अशुभ। टालकर सर्वथा सब विकार टलकर। **केवलज्ञानादि अनन्त गुणसहित परमात्मा वह पर है, उस परमात्मा का लोक अर्थात् अवलोकन वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव, वह परलोक कहा जाता है,...** उसे—परमात्मा को परलोक से उसे अवलोकन किया भगवान ने। उसका जानना, वस्तु तो छूट गयी, उसका ज्ञान भी

छूट गया, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! शुभ-अशुभभाव तो छोड़े, उन्हें जानना भी छूट गया। वह तो अधूरा था तो साधक में जानते थे यह है इतना। अकेला परलोक परमात्मा स्वयं वीतराग परमानन्द की पर्याय, वह आत्मा को अवलोकती है। यदि उनमें सुख होता तो छोड़कर वहाँ (मोक्ष में) क्यों जाते? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए मोक्ष में सुख और आनन्द है, वह अन्यत्र नहीं। पुण्य और पाप, भोग, अर्थ में कहीं सुख है नहीं। ऐसा समझाकर मोक्ष का पुरुषार्थ कराने के लिये यह बात करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण ११, शनिवार, दिनांक - १८-१२-१९६५
गाथा - ४ से ६, प्रवचन - ७९

परमात्मा किसे कहना, इसकी व्याख्या है। पर अर्थात् उत्कृष्ट। उत्कृष्ट केवलज्ञान आदि अनन्त गुणसहित, ऐसा है, परन्तु बीच में डाला है मिथ्यात्व, रागादिरहित, ऐसा। मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत अभिप्राय और राग-द्वेष के परिणाम। उनसे रहित उत्कृष्ट **केवलज्ञानादि अनन्त गुण सहित...** केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द आदि सहित। 'परमात्मा वह पर है,...' यहाँ तो अभी पर की व्याख्या की इतनी। उसे परमात्मा कहते हैं। **उस परमात्मा का लोक अर्थात् अवलोकन वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव, वह परलोक कहा जाता है,...** देखो! भगवान तो परलोक को—लोक को अवलोकते हैं, ऐसा नहीं। वह तो आत्मा परमस्वरूप उत्कृष्ट है, उसे अवलोकन करते हैं।

वीतराग परमानन्द समरसीभाव का अनुभव, वह परलोक कहा जाता है,... कहो, समझ में आया इसमें? वीतराग परिणति द्वारा आत्मा को अवलोकना, उसे यहाँ आत्मा अर्थात् पर, उसका अवलोकन, उसे परलोक कहते हैं। पर के अवलोकन की यहाँ व्याख्या—बात है ही नहीं। भगवान ऐसे लोकालोक को अवलोकते हैं। समझ में आया? अपना स्वरूप पूर्ण आनन्द, पर अर्थात् उत्कृष्ट अनन्त गुण का पिण्ड आदि, उसे अपने वीतराग समभाव परिणाम से अवलोकना, उसे परलोक कहते हैं। कहो, समझ में आया?

अथवा परमात्मा को परमशिव कहते हैं,... ऐसे परम स्वरूप भगवान आत्मा का अवलोकन, ऐसे परमात्मा को परम शिव कहते हैं। परम कल्याणरूप वह है। अपना स्वरूप, अपना अवलोकन करना, वही परम शिव और परम कल्याण है। कहो, समझ में आया इसमें? **उसका जो अवलोकन, वह शिवलोक है, अथवा परमात्मा का ही नाम परमब्रह्म है,...** परमब्रह्म, परम आनन्द तो यह आत्मा ही परमब्रह्म और आनन्द है।

उसका अन्तर अवलोकन, वही परमब्रह्मलोक है। परमब्रह्मलोक वह है। दूसरा ब्रह्मलोक और बैकुण्ठलोक कहीं बाहर नहीं। **उसका लोक वह ब्रह्मलोक है, अथवा उसी का नाम परमविष्णु है,...** स्वयं अपने परम उत्कृष्ट केवलज्ञानादि गुण को वीतराग समस्वभाव भाव से अवलोकना, उसका नाम परमविष्णु लोक है, वह परमविष्णु लोक, वह आत्मा है।

मुमुक्षु : अर्थात् अपना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी बात है न यहाँ। यहाँ तो पूर्ण परमात्मा की बात है। नीचे भी अपने शुद्धस्वरूप को जितने अंश में अवलोके, उतने अंश में वह स्व को अवलोकन करनेवाला उतना भी प्रधानलोक है उसका। परमात्मा पूर्ण अवलोकते हैं अपने स्वरूप को। समझ में आया ?

वही परमशिव लोक, परमविष्णु लोक, परमब्रह्म लोक, परमवैंकुण्ठ लोक, वह आत्मा ही है। **ये सब मोक्ष के नाम हैं,...** यहाँ तो व्याख्या भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानादि गुण का स्वरूप प्रभु, उसे वीतराग पर्याय केवलज्ञान आदि से अवलोकन करना, वही यहाँ शिवलोक, ब्रह्मलोक, बैंकुण्ठलोक, विष्णुलोक कहा जाता है। समझ में आया ? **दूसरा कोई कल्पना किया हुआ शिवलोक, ब्रह्मलोक या विष्णुलोक नहीं है।**

यहाँ पर सारांश यह हुआ कि परलोक के नाम से कहा गया परमात्मा ही उपादेय है,... देखो, इस परलोक से या पर-अवलोकन ऐसे परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूपी आत्मा ही उपादेय है। अन्तर परम स्वरूप भगवान आत्मा को ही अवलोकना, वही उपादेय और आदरणीय है। राग और द्वेष, पुण्य और पाप, विकल्प, निमित्त, वह कोई उपादेय और आदरणीय नहीं, ऐसा कहते हैं। धर्मी जीव को अपना अनन्त ज्ञानादि गुण सम्पन्न महाप्रभु, वही दृष्टि-ज्ञान, उसे अवलोकनयोग्य है, वही उपादेय है।

मुमुक्षु : वह ऊंघ गया पूछनेवाला भी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछनेवाला ऊंघ गया है, वह पूछता कौन है ? भान नहीं होता भान, कहते हैं। पर को अवलोकता है, ऐसा कहते हैं। अपनी ज्ञान भूमिका में पर ही दिखाई दे, तथापि ज्ञान भूमिका का देखनेवाला मैं स्वयं कौन हूँ, उसे वह देखता नहीं, ऐसा कहते हैं। किसी भी परचीज़ को अवलोकन में अपनी ज्ञानपर्याय में ही वह

अवलोकन होता है। परवस्तु नहीं अवलोकी जाती। ज्ञान की दशा में स्वयं ही हो पहले तो 'यह है' ऐसा अवलोकन कहा जाता है। ज्ञान की मुख्य दशा में स्वयं ज्ञान हो तो यह राग, यह शरीर, यह लोक, यह फलाना, यह स्त्री। यह ज्ञान की मुख्यता में अवलोकन ज्ञान आता है, तथापि अज्ञानी को ऐसा ज्ञात होता है कि मैं इसे अवलोकता हूँ। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी ज्ञानसम्पदा का धनी प्रभु अपनी ज्ञानदशा द्वारा उसे अवलोकने जाता है, परन्तु वह जिसमें अवलोका जाता है, वह तो ज्ञानदशा है। उसे अवलोकता है, तथापि उसे मानता है कि इसे अवलोकता हूँ। इसलिए उसकी ज्ञानदशा पर के अवलोकन में रुकती है, इसलिए स्व को अवलोकन नहीं कर सकती। समझ में आया? महा भगवान स्वयं जिसकी अनन्त-अनन्त प्रभुता की सम्पदा, अनन्त-अनन्त प्रभुता की सम्पदा। ओहो! जिसमें नजर डालने से नजर निर्मल और पवित्र होती है। समझ में आया? यहाँ नजर डालने से, पर को देखने से राग और द्वेष होते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण प्रभुता का पिण्ड प्रभु, उसे अवलोकन में जो शान्ति है, ऐसी अवलोकन में शान्ति दूसरे में कहीं नहीं। आहाहा! समझ में आया? जो ज्ञान की वर्तमान सम्पदा प्रगट, उस ज्ञाता में अन्तर देखकर उसे अवलोके वही उसकी ज्ञान की शान्ति है और वही सुख है और वही धर्म है। समझ में आया? कहते हैं, वह पूर्ण प्रभु आत्मा हो गयी दशा और पूर्ण ज्ञान और शान्ति द्वारा आत्मा को अवलोके, पर अर्थात् प्रभु स्वयं उसे अवलोके, उसे यहाँ अवलोकन, परलोक, विष्णुलोक, ब्रह्मलोक जो कोई वह आत्मा है। समझ में आया?

परमात्मा **ध्यान करने योग्य है, अन्य कोई नहीं।** लो! भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप, वही दृष्टि में लेनेयोग्य, ध्यान में लेनेयोग्य, लक्ष्य में लेनेयोग्य वह आत्मा है। समझ में आया? दूसरा सब यह शास्त्र लक्ष्य में लेनेयोग्य है, फलाना लक्ष्य में—उसका यहाँ निषेध कर दिया है, लो! समझ में आया? यह आत्मा ही स्वयं परमब्रह्मानन्द, उसे ही अन्दर लक्ष्य में लेकर अवलोकन योग्य है, उसका लक्ष्य और उसका ध्येय करनेयोग्य है। दूसरे का लक्ष्य और ध्येय छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ५

अब पाँचवीं गाथा में जरा आचार्य दृष्टान्त देकर, **आगे मोक्ष अनन्त सुख देनेवाला है, इसको दृष्टान्त के द्वारा दृढ़ करते हैं—**

१३१) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं इच्छहिँ बंधणहिँ बद्धा पसुय वि सोइ॥ ५॥

अन्वयार्थ :- अरे! **जो मोक्ष उत्तम सुख को न देवे...** अरे! बन्धन से छूटने के भाव में उत्तम सुख न हो। समझ में आया? बन्धन से छूटने में उत्तम सुख न हो **तो बन्धनों से बँधे पशु भी उस मोक्ष की ही इच्छा करते हैं।** यह सामान्य पशु भी खूँटे से बँधे हुए छूटने की भावना, सामान्यरूप से बाहर से बँधे हुए, वे छूटने की अभिलाषा करते हैं। समझ में आया? पशु खूँटे से बँधे हैं खूँटे से। खीले समझते हैं? क्या कहते हैं? खूँटा। वह पशु खूँटा से बँधा हुआ भी छूटना चाहता है। समझ में आया? यदि छूटने में सुख न हो तो वह क्यों छूटना चाहे? ऐसा कहते हैं। तो फिर पूर्ण बन्धन से छूटना, वह आत्मा का मोक्ष, उसमें सुख क्यों नहीं होगा? ऐसा आचार्य कहते हैं।

अथवा कि भाई! यह पशु भी बन्धन से छूटना चाहता है तो तुम, तुमको हम बन्धन के विकार, पुण्य-पाप के विकार के बन्धन से (हटकर) आत्मा की ओर दृष्टि कर, ज्ञान कर, वह छूटने का उपाय है, ऐसा तुझे कहते हैं। पशु बन्धन से छूटकर भी घनघनाहट करता है तो तुझे बन्धन रहित के भाव बतलाने पर तुझे प्रसन्नता, खुशी क्यों नहीं होती? समझ में आया? तुझे पुण्य-पाप के भावबन्धन की बात में तुझको मजा आता है, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव में बन्धन का मजा तुझे आता है। ढोर जैसा पशु भी छूटने का अभिलाषी, बँधा हुआ चौबीस घण्टे से बँधा हुआ हो खूँटे से, शाम को जरा पानी पिलाने के लिये छोड़े। वह छूटने के ऐसे घनघनाहट, घनघनाहट करता है। बाँधी हो न डोरी? छूट जाये ऐसी डोरी हो और ऐसे अन्दर खूँटे में हो न, उसमें जरा काटा मारा हो। यह कहते हैं, ऐसे छोड़ने जाये वहाँ उसे खींचना पड़े उसको। ऐसे आज छूटूँगा। अभी छूटूँगा, अभी छूटूँगा। बाहर पानी पीने जाऊँगा हौज इत्यादि में। ... पशु भी खूँटे से चौबीस घण्टे का बाँधा हो, उसे छोड़ना चाहे, वह प्रसन्न होता है। नेमिदासभाई!

...! अनादि काल का पुण्य और पाप के विकार में बँधा हुआ तू। उस बन्धन से मुक्ति का उपाय हम कहते हैं और तुझे घनघनाहट, प्रसन्नता न आवे और यह हमको बन्धन छुड़ा दो, अरे मेरा बन्धन, हाय... हाय! अरे! हमारा पुण्य चला जाता है, हमारा पुण्य चला जाता है, ऐई! हमारा पुण्य चला जाता है। हमारा पाप चला जाता है, हमारा पुण्य चला जाता है। हाय... हाय! अरे! पशु भी बन्धन से छूटकर प्रसन्न हो और तुझे पुण्य-पाप के विकार के बन्धन से छूटने की बात करें और प्रसन्नता न हो, (तो) पशु में से गया-बीता है, ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! ऐ निहालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग-द्वेष की बड़ी डोरी बँधी है, उसमें मिथ्यात्व की खीला लगा है, यह ठीक है ऐसा। राग और द्वेष, पुण्य और पाप के विकार में खूँटा लगाया है कि यह मुझे ठीक है। मिथ्यात्वभाव का बन्धन किया है। कहते हैं कि तुझे हम छूटने की बात करते हैं। यह पुण्य-पाप के विकाररहित तेरी चीज़ सच्चिदानन्द सिद्ध समान स्वरूप उसे उनसे छूटकर उसकी श्रद्धा कर। उस राग से छूटकर स्थिरता कर, ऐसी बात तुझे कहते हैं और तू प्रसन्न न हो, तब तो पशु में से गया-बीता है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! उसे कहाँ पैसा-बैसा देना है कुछ ... में? अच्छा लगे या न लगे। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

यह प्रभु अन्दर परमात्मा विराजमान मुक्तस्वरूप है, कहते हैं। उस मुक्त को मुक्त करने की बात करते हैं तो तुझे क्यों रुचती नहीं? ऐसे यह बताओ, बन्धन का बताओ, पुण्य का बताओ, पाप का बताओ, इसका बताओ। उससे ऐसे होगा न। भाई! बँधा हुआ पशु छूटे (तो) प्रसन्न हो और बँधे हुए भाव से छूटने की बात से प्रसन्नता होनी चाहिए, रुचि करनी चाहिए, प्रमोद करना चाहिए। उसके बदले वह ऐसा नहीं, वह ऐसा नहीं। क्या हुआ तुझे यह? समझ में आया? आहाहा! पशु में से गया-बीता है, भाई! सामान्यरूप से छूटना, वह सामान्य-विशेष लेंगे। अभी पूछा था भाई पण्डितजी को। कहा, यह विशेषणे को क्या कहते हैं और यह अन्तिम शब्द है न संस्कृत में? '**ज्ञानिनो विशेषणे मोक्षमिच्छन्ति**' अर्थात् कि सामान्यरूप से वह बन्धन—लौकिक बन्धन, उससे छूटने का कामी प्रसन्न हो और यह तो विशेष छूटना है। विकार के, पुण्य-पाप के भाव

से छूटना, वह विशेष छूटना है और विशेष वह मोक्ष की अभिलाषा है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- बन्धन के समान कोई दुःख नहीं है,... बन्धन के समान कोई दुःख नहीं, **और छूटने के समान कोई सुख नहीं है,...** देखो! दो सिद्धान्त कहे। **बन्धन से बँधे जानवर भी छूटना चाहते हैं,...** आहाहा! बन्धन से बँधे हुए पशु, वे भी छूटने की भावना करते हैं। आहाहा! **और जब वे छूटते हैं, तब सुखी होते हैं।** वहाँ से छूटे, तब अन्दर प्रसन्न हो जाते हैं ऐसे। यह छूटे। समझ में आया? **इस सामान्य बन्धन के अभाव से ही पशु सुखी होते हैं,...** उस सामान्य के साथ वह विशेष। सामान्य अर्थात् यह लौकिक बन्धन, ऐसा। समझ में आया?

उससे भी **पशु सुखी होते हैं, तो कर्म-बन्धन के अभाव से ज्ञानीजन परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है।** भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुवस्वरूप, उसे पुण्य-पाप के बन्धन के प्रेम से छुड़ाकर भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसके प्रेम और उसकी रुचि, वह मोक्ष का—छूटने का उपाय है। कहते हैं कि उस छूटने के उपाय में क्यों प्रसन्न नहीं होता? समझ में आया? कहो, जमुभाई! आहाहा! दुनिया के साथ, लौकिक के साथ मिलाया। बछड़ा और बच्चा छोटे पशु का वह खूँटे से बँधा हुआ छूटे और घनघनाहट। यह तेरे अज्ञान के अनादि के बन्धन विकार में भगवान आत्मा मुक्त स्वरूप आनन्द है, उसकी प्रीति कराते हैं और इनकी प्रीति छुड़ाते हैं तो तुझे प्रसन्नता क्यों नहीं होती? अरे! मेरा पुण्य चला जायेगा। अरे! मेरा पुण्य चला जायेगा, मुझे बन्धन चला जायेगा, मेरा बन्धन चला जायेगा।

मुमुक्षु : सुख है सही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख माना है, धूल में सुख नहीं। मूढ़ ने माना है। पुण्य-पाप के बन्धन विकारी भाव, विकार भाव, वह आकुलता है। धूल में सुख है उसमें? शुभ-अशुभभाव भी विकारी आकुलता है, उसमें सुख कहाँ से आया? उसमें से छुड़ाना चाहते हैं, तब कहे नहीं... नहीं। यह नहीं... नहीं... नहीं... चिल्लाहट मचा गये हैं चिल्लाहट ऐसे अन्दर से। समझ में आया? आहाहा! यह तो कहते हैं अज्ञान में पशु है। दोपहर में नहीं आता? पशु। यह पशु ही है, बापू! भगवान आत्मा, अरे! अनाकुल आनन्द का

कन्द प्रभु विराजती है वस्तु और उसके पक्ष में चढ़ता नहीं और विकार के पक्ष में चढ़कर मजा मानता है, भाई! तेरी दिशा ही बदल गयी है। समझ में आया?

यह पुण्य-पाप, शुभाशुभ विकार के पक्ष में प्रसन्न हो जाता है। भगवान विकाररहित चीज़ के पक्ष में चढ़ने से तुझे ठीक नहीं पड़ता। समझ में आया? तुझे छूटने का मार्ग रुचता नहीं, भाई! बन्ध का मार्ग तुझे रुचता है। भाई! यह विशेष बन्धन के ढ़ोर भी छूटें तो ठीक माने तो तुझे कैसे यह छूटने पर वैसा नहीं लगता? कहो, जुगराजजी! क्या बात करे अब? आहाहा! वस्तु... वस्तु... वस्तु... अत्यन्त अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा है। वस्तु अबन्धस्वरूप ही है। उसे यह पुण्य-पाप मेरे, (ऐसी) एकत्वबुद्धि, वह बन्धन है। आहाहा! बाहर की चीज़ को अपनी माने तो भी कहीं उसके एकत्व में वह आती नहीं। उसके एकत्व की मान्यता में तो पुण्य-पाप का विकार एकत्व की मान्यता में आता है। मान्यता मिथ्यात्व और पुण्य-पाप एकत्व में आना, बस। भगवान की श्रद्धा में पूरा आत्मा आवे, बन्धनरहित परिणाम और बन्धनरहित स्वभाव को बन्धनरहित परिणाम से देखने पर उसे सम्यग्दर्शन के परिणाम होते हैं और साथ में स्थिरता, उसे शान्ति का, आनन्द का अधिक कारण होते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, **तो कर्म-बन्धन के अभाव से ज्ञानीजन परमसुखी होवें, इसमें अचम्भा क्या है।** अहो! जितना बन्धनभाव छूटे, उतना भगवान आत्मा अबन्धस्वरूप की दृष्टि में स्थिर हो, उसमें सुख होता है, उसमें विशेष अचम्भा क्या, कहते हैं? पूर्ण बन्धन से रहित हो तो पूर्ण सुखरूप दशा हो जाये। समझ में आया? **इसलिए केवलज्ञानादि अनन्त गुण से तन्मयी...** देखो! **अनन्त सुख का कारण मोक्ष ही आदरनेयोग्य है,...** वर्तमान अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन के साथ आनन्द, ऐसा जो मोक्ष भाव, वही आदर और मोक्ष की पर्याय आदरनेयोग्य हुई, उसे पुण्य-पाप के भाव आदरनेयोग्य रहते नहीं। ऐसा कहते हैं मूल तो। समझ में आया?

वस्तु स्वभाव शुद्ध है, वह तो उपादेय है परन्तु जिसे अनन्त केवलज्ञानादि मोक्ष की दशा जहाँ उपादेय स्वीकारे, उसे पुण्य-पाप के विकार का स्वीकार और आदर नहीं हो सकता। समझ में आया? **इस कारण ज्ञानी पुरुष विशेषता से मोक्ष को ही इच्छते हैं।** वह सामान्यरूप से जब बन्धन से छूटकर, मोक्ष अर्थात् छूटना अच्छा लगता है। तो

तुझे तो विकार से छूटना, वह उसकी इच्छा ज्ञानी करता है। विकार से बँधूं, यह इच्छा ज्ञानी नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु। जैसा सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा का आनन्द पूर्ण पर्याय में अनुभव किया, वैसा ही पूर्णानन्द का नाथ आत्मा है। कहते हैं कि उसके पक्ष में चढ़ने से बन्धन का जितना भाव छूटे, उतना आनन्द आता है। ऐसे पूर्णानन्द को चाहनेवाला, अल्प आनन्द में रहनेवाला, वह विकार को कैसे इच्छे? आहाहा! विकार हो भले, हो, परन्तु अन्दर इच्छता नहीं, उसकी भावना करता नहीं, उसमें एकाग्र होता नहीं। आहाहा! बहुत दूसरे ढंग से बात की है न, भाई! तू परमात्मा है न शक्ति से। पूर्ण परमात्मा को प्रगट हुए, उन्हें तो पूर्ण आनन्द है। अब वह पूर्ण आनन्द तुझे प्रगट करना हो तो राग का आदर और पुण्य-पाप का आदर नहीं हो सकता। उनका आदर नहीं हो सकता तो भगवान पूर्णानन्द का आदर होगा। उसका (-राग का) आदर नहीं होगा तो इसका आदर होगा। इस आदर में पूर्ण मोक्ष की भावना इसमें वर्तती है। राग करने की या राग रखने की भावना ज्ञानी को होती नहीं। समझ में आया? आहाहा! पाँचवीं गाथा।

★ ★ ★

गाथा - ६

आगे बतलाते हैं—जो मोक्ष में अधिक गुणों का समूह नहीं होता, तो मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता? देखो! लोक के अग्र में भगवान विराजते हैं। मोक्ष, मोक्ष लोक के अग्र में विराजते हैं। उस मोक्ष में अनन्त सुख न हो तो लोक उसे सिर पर किसलिए रहने दे भगवान को? समझ में आया? **मोक्ष को तीन लोक अपने मस्तक पर क्यों रखता?** ऐसा कहते हैं। सिर पर तो ऊँची वसतु रखे न लोग? पगड़ी ऊँची रखते होंगे या जूते रखते होंगे ऊपर? पगड़ी रखते हैं, टोपी रखते हैं, अच्छे बड़े-बड़े देखो न इस सर्दी में और बाँधे बड़ा ऊँचा। वह कहीं जूते बाँधते होंगे सिर पर? साफा बाँधते हैं। वह ऊँची चीज़ जो है, उसे सिर के ऊपर रखते हैं। तो कहते हैं कि भगवान तीन लोक के नाथ परमात्मा अनन्त आनन्द का अनुभव करनेवाले। जगत—

लोक उन्हें ऊँचे रखता है, सिद्ध को सिर पर रखा। सब अनन्त जीव नीचे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा करके सिर तो वहाँ ही हो, शिखर ऊपर ही हो, यह और सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं कि ऊपर नहीं होते, आगे जाते धर्मास्ति होता तो। यह वहाँ और ऐसा ठहराते हैं। समझ में आया? कहते हैं, देखो, यह छठवीं गाथा।

१३२) अणु जइ जगहँ वि अहिययरु गुण-गणु तासु ण होई।
तो तइलोउ वि किं धरइ णिय-सिर-उप्परि सोइ॥ ६॥

अन्वयार्थ :- अरे! **फिर जो सब लोक से भी बहुत ज्यादा गुणों का समूह उस मोक्ष में नहीं होता,...** बहुत अनन्त गुण का समूह मोक्ष की दशा में न हो, **तो तीनों ही लोक अपने मस्तक के ऊपर उसी मोक्ष को क्यों रखते?** तीन लोक उसे सिर पर रखता है, देखो! यह कैसी उपमा देकर बात की है! मोक्ष ही उत्कृष्ट दशा है और वही आदरनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त कोई आदरनेयोग्य नहीं। धर्मी को मोक्ष ही इच्छायोग्य, भावना करनेयोग्य है। रागादि इसके लिये... आहाहा! ऊपर चौदह ब्रह्माण्ड के ऊपर भगवान विराजते हैं, तीन लोक उन्हें सिर पर कैसे रखता है? समझे न? उन्हें रखता है। कहे, वे भले रहे, परन्तु यह क्यों रखते हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- मोक्ष लोक के शिखर (अग्रभाग) पर है,... लो! समझ में आया? शिखर पर है न ऊपर? या आगे ही चलते जाते होंगे सिद्ध फिर ऊपर? यह सब कहेंगे। बहुत व्याख्या करेंगे। शिखर पर है, उसकी व्याख्या करके अन्यमतिओं के विरोध भाव मोक्ष का है, उसका निषेध करेंगे। **सो सब लोकों से मोक्ष में बहुत ज्यादा गुण हैं,...** यह सब लोकों से मोक्ष में अनन्त आनन्द परमात्मा में है। **इसलिए उसको लोक अपने सिर पर रखता है।** इसलिए लोक अपने सिर पर रखता है। **कोई किसी को अपने सिर पर रखता है, वह अपने से अधिक गुणवाला जानकर ही रखता है।** समझ में आया? किसी समय कहते हैं कि लड़के को सिर पर रखते हैं, परन्तु उसे उसके प्रति प्रेम है। प्रेम बढ़ गया है। लड़के को बैठाते हैं या नहीं सिर पर? उसे बढ़ गया है कि यह मेरा नाम रखे ऐसा और ....

मुमुक्षु : उसे शिखर बनाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु बैठाते हैं न ऐसे किसी समय? परन्तु उसे उसके ऊपर प्रीति का उग्र भाव हो गया है। ऊँचा मानता है उसे स्वयं, तथापि ऊँचा रखता है। भगवान तीन लोक के नाथ मोक्ष में लोक के सिर के अग्र में विराजे, तीन लोक रखता है, उन्हें ऊँचा मानता है। समझ में आया? ओहोहो!

यदि क्षायिक-सम्यक्त्व केवलदर्शनादि अनन्त गुण मोक्ष में न होते,... क्षायिक समकित, केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनन्द की पूर्ण पर्याय, वह मोक्ष में न हो, **तो मोक्ष सबके सिर पर न होता,...** समझ में आया? आहाहा! **मोक्ष के ऊपर अन्य कोई स्थान नहीं है,...** मोक्ष के ऊपर कोई स्थान है फिर? है नहीं। **सबके ऊपर मोक्ष ही है, और मोक्ष के आगे अनन्त अलोक है,...** लो! मोक्ष है तो अनन्त अलोक, अलोक खाली भाग, खाली भाग। **वह शून्य है, वहाँ कोई स्थान नहीं है। वह अनन्त अलोक भी सिद्धों के ज्ञान में भास रहा है।** कहते हैं कि भले लोक के अग्र में रहे, परन्तु अलोक के नीचे रहे, ऐसा कहते हैं, तथापि अलोक का ज्ञान तो उनमें बस गया है। समझ में आया?

भगवान के ज्ञान में लोकालोक भासित हो गये हैं। कोई बाकी नहीं। भले अलोक अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अपार वह भी भगवान के ज्ञान में भासित हो गये हैं। कोई भी बाकी रहा नहीं। **वह अनन्त अलोक भी सिद्धों के ज्ञान में भास रहा है।** कहो, अलोक का तो अन्त नहीं। अन्त नहीं तो अन्त नहीं, वह किस प्रकार भासित हुआ यहाँ? भासित हुआ, वहाँ अन्त आ गया अलोक का। नहीं? अनन्त है, ऐसे अनन्त भासित हुआ। आहाहा! यह वह कोई बात है! उनके ज्ञान की हद है? बेहद ज्ञान। कहते हैं कि स्वयं लोक के अग्र में रहे, परन्तु बेहद ज्ञान अलोक को पूर्ण जाने, ऐसे मोक्ष में अनन्त सुख क्यों नहीं होगा? ऐसे अनन्त सुख को धर्मी क्यों न इच्छे? समझ में आया? और धर्मी उस पुण्य-पाप के विकार को और उसके फल को क्यों इच्छे? ऐसा कहते हैं मूल। आहाहा! कहो, शुभ-अशुभभाव हों, उन्हें क्यों इच्छे? ऐसा कहते हैं। तो उसके फलरूप से संयोग मिले, उन्हें धर्मी क्यों इच्छे? आहाहा! विवाद उठे। क्या करे? ऐसे प्रेम है न, प्रेम है न।... पुण्य का लकड़ा मीठा। लो, उसे क्या कहा जाता है वह? कढ़ी क्या कहा जाता है उसे? वह कढ़ी मीठी लगे न। आहाहा! नरम कढ़ी। इसी प्रकार अनादि से भगवान पवित्र आनन्दकन्द का प्रेम

नहीं होता। आत्मप्रीति, आता है न निर्जरा में? उसकी प्रीति नहीं होती, उसे पुण्य-पाप के भाव की प्रीति वर्तती है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु, ऐसे आत्मा की जिसे प्रीति, रुचि, दृष्टि, प्रेम नहीं, उसे पुण्य-पाप के भाव की प्रीति, रुचि, प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि है। क्या होगा इसमें? परन्तु यह पैसेवाले सब सुखी दिखाई देते हैं न? दुःखी है। दिखते हैं, ऐसा लोग कहते हैं न, भाई! लोग ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : लोग अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लोक अर्थात् चिल्लाहट मचाये ऐसे। लोक चिल्लाहट मचाये उल्टी, पोक अर्थात् उल्टा बोले ऐसा। समझे न? बोले ऐसा कि यह सुखी है न ...चिल्लाहट मचाते हैं सब। मोहनभाई! बराबर है? आहाहा! वे रतनचन्दजी कहते। वे थे न पालनपुर। ... लोक चिल्लाहट मचाये लोक का सुनना नहीं। समझ में आया? यह स्थानकवासी साधु थे न, फिर श्रीमद् को मानकर (दीक्षा) छोड़ दी। कि, लोक तो बोला ही करे कि यह वह। एक रतनचन्दजी थे। जुगराजजी! यह सिद्धपरे, सिद्धपरे है न? वहाँ एक स्थानकवासी साधु थे पहले। बहुत पढ़ा हुआ, विद्वान व्यक्ति। फिर छोड़ दिया। श्रीमद् के भगत हुए। फिर तो उनकी लाइन लौकिक में चली गयी थी वापस। गाँधी की लाइन और टीका क्या करना यह? वस्त्र-कपड़ा उसमें। थोड़े रुपये किसी के रखे, उसका फिर अनशन किया। अब यह छोड़ा किसलिए? यह मेरे... बहुत अच्छा किया, छोड़ा वह अच्छा किया, मार्ग यह है, लोक चिल्लाहट मचाये, लोक का ध्यान नहीं रखना, ऐसा कहे स्वयं। सिद्धपर से आया है।

यहाँ तो कहते हैं, पुण्य-पाप का अवलोकन करना, अवलोकन उसका अकेला वह भी पाप है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? पुण्य-पाप तो स्वयं बन्धन है, परन्तु उसका अकेला अवलोकन का ज्ञान भी बन्धन का कारण है। भगवान को ऐसे अवलोकना, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका अवलोकन तो पर का ज्ञान अकेला है। उसमें क्या

है ? वह तो परप्रकाशक हुआ... समझ में आया ? यहाँ अवलोकन लिया है न ? लोक अवलोक इति लोकः, ऐसा देखो भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप का अवलोकन, उसे परप्रधान लोक, प्रधान दशा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! यहाँ तो अभी पुण्य-पाप के भाव छोड़ने का कहे, वहाँ ठीक पड़ता नहीं। यहाँ तो कहते हैं, पुण्य-पाप की ओर का अवलोकन ज्ञान भी परप्रकाश का एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान अपने आत्मा को स्वयं ज्ञान से अवलोकते उस ज्ञान में फिर जरा बाकी है, वह पुण्य-पाप का भाव। उसका ज्ञान स्व-परप्रकाश में आ जाता है। समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया इसमें ? मार्ग बापू! अलौकिक मार्ग। उसका फल अलौकिक, वह मार्ग अलौकिक ही होगा न। लौकिक मार्ग में तो लौकिक फल मिले। यहाँ तो कहते हैं कि अहो! अनन्त अलोक भी जिसके ज्ञान में बसता है। वह यहाँ अवलोकने से बस गया है, ऐसा कहते हैं। अपना स्वभाव पूर्ण केवलज्ञान से अवलोकन किया, इसलिए लोक, यह पर को अवलोकन किया, इसलिए लोक-परलोक। उसमें अलोक स्व के अवलोकन में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ पर मोक्ष में अनन्त गुणों के स्थापन करने से मिथ्यादृष्टियों का खण्डन किया। क्या कहते हैं ? यहाँ मोक्ष में अनन्त गुण का स्थापन करने से, पर्याय, पर्याय में अनन्त गुण प्रगट हुए हैं भगवान को। कितने ही नहीं मानते कि मोक्ष में गुण नहीं होते, गुणातीत हो जाता है, वह मोक्ष। ऐसा कितने ही मानते हैं। गुणातीत होता नहीं, विकारातीत होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं रहना हो, परम आनन्द रहे और परम गुण की दशा रहे। दुःख और विकार न रहे। कुछ न रहे, वह मोक्ष ? पूर्ण रहे, आत्मा का पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण आनन्द, पूर्ण वीर्य, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता—ऐसी सब पर्याय रहे, उसे मोक्ष कहा जाता है। बात यह कि वस्तु क्या और उसकी पर्याय की पूर्णता क्या, उसका अस्तिरूप से सत्तापने का स्वीकार ही उसकी दृष्टि में बैठता नहीं, इसलिए मानो मोक्ष अर्थात् क्या ? लो! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गाड़ी की वाड़ी नहीं, परन्तु आत्मा के आनन्द की गाड़ी वाडी है न उसमें? आत्मा के अनन्त गुणों की... गमन गाड़ी चलती है, उस वाडी में आत्मा उस वाड में क्रीड़ा करता है आनन्द में, कहेंगे यहाँ। सिद्ध भगवान उसमें मजा करते हैं। समझ में आया? सिद्ध भगवान का आत्मा अपनी पूर्ण आनन्द की आदि अनन्त गुण की पर्याय में रम रहे हैं। समझ में आया? यह कहेंगे, सातवीं में बहुत कहेंगे। मोक्ष में आत्मा को सिद्ध निरन्तर क्यों सेवे? अनन्त सुख को सेवन करते हैं, समय-समय में सिद्ध भगवान। यह सातवीं में कहेंगे। यहाँ तो अभी मोक्ष को स्थापित किया है। समझ में आया?

कोई मिथ्यादृष्टि वैशेषिकादि ऐसा कहते हैं, कि जो बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार इन नव गुणों के अभावरूप मोक्ष है,... अज्ञानी कहते हैं कि यह नौ गुण चले जाये तो मोक्ष हो। **उनका निषेध किया,...** तेरी बात खोटी है। **क्योंकि इन्द्रियजनित बुद्धि का तो अभाव है,...** भगवान मोक्ष की दशा में **इन्द्रियजनित बुद्धि का तो अभाव है, परन्तु केवल बुद्धि अर्थात् केवलज्ञान का अभाव नहीं है,...** देखो! केवलज्ञानरूपी बुद्धि है। धवल में आता है न, केवलज्ञान को बुद्धि कहा है। धवल में पहले भाग में। केवलज्ञान को बुद्धि कहा है। आहाहा! समझ में आया? यह इन्द्रियजनित बुद्धि नहीं भगवान को। केवलज्ञान की बुद्धि पूर्ण प्रगट हुई। अनन्त आँख खुल गयी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियजनित बुद्धि नहीं। केवलज्ञानरूपी बुद्धि है। उसका अभाव नहीं। वह कहते हैं न बुद्धि का अभाव, परन्तु वह बुद्धि का अभाव अर्थात् इन्द्रियजनित बुद्धि का अभाव। वह कहे, बुद्धि का ही अभाव। बुद्धि का अभाव तो केवलज्ञान का अभाव हो गया, केवलज्ञान का अभाव तो आत्मा ही नहीं रहे। बुद्ध भगवान आत्मा की केवलज्ञान की बुद्धि तो वहाँ परमात्मा में भी है। ओहोहो! समझ में आया?

इन्द्रियों से उत्पन्न सुख का अभाव है,... वह कहते हैं न। सुख का अभाव कहा

है। इन्द्रियों के सुख का अभाव परमात्मा को है। **लेकिन अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता है,...** अतीन्द्रिय सुख की पूर्णता भगवान को प्रगटी है। मोक्षमार्ग में अतीन्द्रिय आनन्द की अपूर्णता होती है, मोक्ष में पूर्णता होती है। संसारदशा में अकेला दुःखदशा होती है। संसार में आत्मा के आनन्द से उल्टी दुःखदशा है। मोक्षमार्ग में अतीन्द्रिय आनन्द का अल्प भाग—अपूर्ण प्रगटा हुआ है, मोक्ष में पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ है। समझ में आया?

संसार अवस्था में अकेला दुःख है, कहते हैं। चारों गति। सच्ची बात। उस शरीर का रोग, ऐसा नहीं। वह इन्द्र के इन्द्रासन में इन्द्र दुःखी, ऐसा कहते हैं। क्योंकि विकार का भाव, वह दुःखरूप है। वह करोड़ों अप्सराओं (के ऊपर) लक्ष्य जाता है, वह भाव विकल्प और आकुलता है, वह दुःख है, वह सुख नहीं। भगवान आत्मा को परमात्मा में अतीन्द्रिय पूर्ण सुख है। **दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न इन विभावरूप गुणों का तो अभाव ही है,...** दुःख... चार बोल लिये थे न उस रूप से? दुःख, इच्छा, द्वेष और यत्न, उनका तो विभाव का.... **केवलरूप परिणमन है,...** केवलज्ञानरूपी परिणमन है, पुरुषार्थ है, केवलज्ञान का प्रयत्न पुरुषार्थ परिणम रहा है।

व्यवहार-धर्म का अभाव ही है,... धर्म कहा है न उसे? वह पुण्यरूपी धर्म, उसका परमात्मा में अभाव है। **और (जीव) वस्तु का स्वभावरूप धर्म वह ही है,...** परमात्मा की पर्याय में वस्तु के स्वभाव का पर्यायरूप धर्म निर्मल निराकुल है। पुण्यरूपी धर्म नहीं। धर्म ही नहीं, ऐसा नहीं। भगवान परमात्मा को भी धर्म है। धर्म अर्थात् पूर्ण स्वभाव की परिणति। वह धर्म है। पुण्य का भाव, वह उन्हें धर्म नहीं। क्योंकि पुण्यभाव वह विकार था, वह विकार टलकर पूर्णानन्द की पर्याय परमात्मा को प्रगटी है। समझ में आया?

अधर्म का तो अभाव ठीक ही है,... लो! भगवान को अधर्म तो अभाव, **और परद्रव्यरूप-संस्कार सर्वथा नहीं है,...** वह संस्कार न करते हैं न, परद्रव्य का संस्कार नहीं परन्तु स्वभाव संस्कार। पूर्ण संस्कार हो गये भगवान को केवलज्ञान, केवलदर्शन के संस्कार पूरे हो गये। परमात्मा को, कितने ही ऐसा मानते हैं कि संस्कार नहीं होते, धर्म नहीं होता, अधर्म नहीं होता, बुद्धि नहीं होती। यह उसका स्पष्टीकरण किया। वे परमात्मा को पहिचानते नहीं। मोक्ष, मोक्ष तो सब करते हैं, परन्तु मोक्ष की वास्तविकता

को जाने बिना उसे मोक्ष की श्रद्धा सच्ची होती नहीं। समझ में आया? **जो मूढ़ इन गुणों का अभाव मानते हैं, वे वृथा बकते हैं, मोक्ष तो अनन्त गुणरूप है।** मोक्ष तो अनन्त गुण की पर्यायरूप निर्मल है। **इस तरह निर्गुणवादियों का निषेध किया।**

तथा बौद्धमती जीव के अभाव को मोक्ष करते हैं। जीव का अभाव, वह मोक्ष। बौद्ध ऐसा कहते हैं। **वे मोक्ष ऐसा मानते हैं कि जैसे दीपक का निर्वाण (बुझना)...** यह दीपक बुझ जाना। उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान बुझ जाना, उसका नाम मोक्ष। ऐसा अज्ञानी मानते हैं। **उसी तरह जीव का अभाव, वही मोक्ष है। ऐसी बौद्ध की श्रद्धा का भी तिरस्कार किया।** उसकी भी श्रद्धा खोटी की। **क्योंकि जो जीव का ही अभाव हो गया, तो मोक्ष किसको हुआ?** दीपक बुझ गया तो दीपक का अभाव हो गया। अब जीव ही नहीं तो फिर मोक्ष हुआ किसका? मोक्ष में जीव ही न हो तो मोक्ष हुआ किसका? यह तो कह न, जीव का अभाव वह मोक्ष, जाओ। परन्तु क्या मोक्ष, किसका परन्तु? क्षणिक मानते हैं न क्षणिक? क्षणिक के संस्कार गये, इसलिए फिर जीव का अभाव हो गया, ऐसा। ऐसे के ऐसे।

जीव का शुद्ध होना वह मोक्ष है,... जीव की पर्याय में शुद्धता होना मोक्ष है। जीव का अभाव होना, वह मोक्ष नहीं। अथवा कितने ही कहते हैं न कि वहाँ मोक्ष है, उसमें जीव जाये मिल जाये इकट्ठा। दूसरे सिद्ध भगवान में यह मोक्ष जाये तो वह भी इकट्ठा मिल जाये। तो वह तो जीव का अभाव हुआ या उसकी जीव की शुद्धता की पूर्णता हुई? वह तो अभाव हो गया, पर में मिल जाये तो अभाव हो गया। अनादि भिन्न है। संसार में भी अनादि सत्ता भिन्न है, मोक्ष में भी आत्मा की सत्ता का परिणमन पूरा अत्यन्त भिन्न है। दूसरे सिद्ध को उसकी सिद्ध की पर्याय कोई एक होती नहीं। समझ में आया?

अभाव कहना वृथा है। सांख्यदर्शनवाले ऐसा कहते हैं कि जो एकदम सोने की अवस्था है, वही मोक्ष है,... सोने की अवस्था—सो गया, बस इसका नाम मोक्ष। **जिस जगह न सुख है, न ज्ञान है, ऐसी प्रतीति का निवारण किया।** यह खोटा किया कि भाई! अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द है। सोने की अत्यन्त सो जाये और भान न हो, ऐसी मोक्ष अवस्था नहीं। अनन्त ज्ञान है। एक व्यक्ति कहे अभी उन्हें अनन्त ज्ञान? उन्हें

अभी यह पर्याय की लप लगी ? सिद्ध को भी अभी पर्याय ? परन्तु .... पर्याय तो उसका स्वभाव है। वह तो अनन्त आनन्द का अनुभव है। वह तो ... कहेंगे। द्रव्य जैसे त्रिकाली वस्तु है, वैसे पर्याय भी उसकी एक समय का अनुभव है, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव, वह पर्याय है।

कितने ही और ऐसा कहते हैं कि, **नैयायिक ऐसा कहते हैं कि जहाँ से मुक्त हुआ वही पर ही तिष्ठता है, ऊपर को गमन नहीं करता।** कहते हैं न यहीं का यहीं हो गया। पक्षी के पंख टूटे पंख, वहीं का वहीं पड़ा रहे। इसी प्रकार बन्धन छूट जाये तो वहीं का वहीं चौड़ा हो जाये जीव। अनन्त में मिल जाये। ऐसा नहीं है। आहाहा! मुक्त हो तो ऊपर जाता है, गमन करके ऊपर जाता है। **ऊपर को गमन नहीं करता। ऐसे नैयायिक के कथन का लोक-शिखर पर तिष्ठता है,...** लो! लोक के शिखर के ऊपर रहता है। आगे नहीं जाते और यहाँ नीचे रहते नहीं। दोनों बातें की। वह कहे आगे चले ही जाते हैं। ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? (धर्मास्तिकाय) नहीं, वह तो इतना ही स्वभाव है उसका। धर्मास्तिकाय नहीं, वह तो निमित्त नहीं, उसकी व्याख्या की। उपादान इतना ही है, उसकी पर्याय की उस लोक के शिखर ही रहे।

ऐसे मोक्ष की बातें और आत्मा की बातें करे, परन्तु वास्तविक ऐसा समझे बिना इसने आत्मा की, मोक्ष की दशा सब खोटी मानी है। बहुत ऐसा कहे, बस, लो विकल्प छोड़ दो, भाई! बस अनन्त में मिल जाओगे। कहाँ ? कहाँ क्या जहाँ तू है वहाँ मिल, कहा। ऐसा नहीं। आत्मा की पूर्णानन्द की पूर्ण दशा प्रगट होने पर, मूँगफली का दाना जैसे छूटकर बाहर पड़ जाता है, अथवा धुँआ निकलकर ऊँचे जाता है। इसी प्रकार यह छूटकर ऊपर गमन करता है। समझ में आया ? ऐसी दशा न माने, उसे नहीं आत्मा की खबर, नहीं उसे मोक्ष की पर्याय की गति कैसे होती है, कहाँ रहती है इसकी खबर।

इस वचन से निषेध किया। इस वचन से निषेध किया। कि लोक के शिखर भी रहेंगे। समझ में आया ? आगे गमन करते नहीं, आगे भी गमन करते नहीं और नीचे रहते नहीं। **जहाँ बन्धन से छूटता है, वहाँ वह नहीं रहता,...** बन्धन तो यहाँ छूटा, मुक्ति यहाँ हुई। यहाँ रहता नहीं। मुक्ति तो यहाँ होती है। अस्थिरता छूट गयी और स्थिरता पूर्ण हो

गयी। अकम्प दशा तो यहाँ हो जाये, यहाँ, यहाँ। चौदहवें गुणस्थान के अन्त में स्थिरता यहाँ हो जाये अकम्प। छूट गया यहाँ, यहाँ रहे नहीं। समझ में आया?

मुक्त दशा होती है शरीर में यहाँ, परन्तु रहे नहीं यहाँ, ऐसा कहते हैं। पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण स्थिरता, शान्ति, पूर्ण परिणति शुद्ध, पूर्ण परिणति शुद्ध। उदयभाव का अभाव, शुद्धभाव की पूर्ण प्राप्ति, यह शरीर में होती है, इस क्षेत्र में यहाँ होती है। तथापि एक समय में चला जाता है। ऐसी मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का स्वरूप है। ऐसा न समझे उसे मोक्ष और आत्मा की खबर नहीं। अन्यमति में बहुत प्रकार से उल्टा मारे—ऐसी बात करे मानो शुद्ध है, शुद्ध है, फलाना, फलाना, परन्तु सब बातें उल्टी हो। समझ में आया?

कहते हैं, **यह प्रत्यक्ष देखने में आता है, जैसे कैदी कैद से जब छूटता है, तब बन्दीगृह से छूटकर अपने घर की तरफ गमन करता है,...** देखो! यह उसका घर है। आहाहा! जैसे कैदी कैद से छूटकर बन्दीगृह से छूटकर अपने घर में जाता है, उसी प्रकार **वह निजघर निर्वाण ही है।** निर्वाण वह निजघर है अपनी निर्मल पर्याय और निजघर व्यवहार से। समझ में आया? **जैनमार्ग में तो इन्द्रियजनित ज्ञान जो कि मति, श्रत, अवधि, मनःपर्यय हैं, उनका अभाव माना है,...** मोक्ष में भगवान को चार ज्ञान का अभाव है, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञानरूप केवलज्ञान का सद्भाव है। केवलज्ञान विराजमान परमात्मा। लो! यह सब मोक्ष का ज्ञान विरुद्ध है, उसे जानना पड़ेगा। वरना दूसरे सब बहुत बातें करे, निर्विकल्प अनुभव करो, ऐसा करो, फलाना करो।

मुमुक्षु : विचाररहित हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचाररहित हो जाओ। विचाररहित होकर। विचार तो मति की पर्याय है। विचाररहित किस प्रकार होगा? जड़ हो जायेगा। फिर आत्मा की उसकी दशा और क्या श्रद्धा करना और कैसे ज्ञान करना? उसकी मुक्ति क्या होगी? उसकी कैसी पर्याय प्रगट होगी? उसकी कुछ खबर नहीं होती और वह आत्मा का ध्यान करे। शुष्क होगा शुष्क।

वस्तु का स्वभाव है,... क्या कहा? केवलज्ञान होना, वह तो वस्तु का स्वभाव

है। चार ज्ञानरूप न रहे केवल। पूर्णदशा हो गयी। मति-श्रुत न रहे। **उसका अभाव आत्मा में नहीं हो सकता।** केवलज्ञान की पर्याय का आत्मा में अभाव नहीं हो सकता। **स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, शब्द इन पाँच इन्द्रिय विषयोंकर उत्पन्न हुए सुख का तो अभाव ही है,...** पाँच इन्द्रिय के सुख से उत्पन्न हुआ सुख, वह तो वहाँ अभाव है। **लेकिन अतीन्द्रिय सुख जो निराकुल परमानन्द है, उसका अभाव नहीं है,...** लो! परमानन्द... परमानन्द... परमानन्द... देखो! परमानन्द, नित्यानन्द प्रभु है, ऐसा ही नित्यानन्द सादि-अनन्त पर्याय प्रगट हुई।

कर्मजनित जो इन्द्रियादि इस प्राण अर्थात् पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, काया, आयु, श्वासोच्छ्वास इन दस प्राणों का भी (परमात्मा में) अभाव है, ज्ञानादि निज प्राणों का अभाव नहीं है। समझ में आया? ज्ञानादि प्राण भगवान को है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, सुख, आनन्द वह प्राण है उनके। यह (इन्द्रियादि) प्राण नहीं, परन्तु वे प्राण तो हैं। **जीव की अशुद्धता का अभाव है,...** उस जीव की अशुद्धता का तो भगवान में अभाव है। **शुद्धपने का अभाव नहीं,...** कहो, समझ में आया? **यह निश्चय से जानना।** ऐसा भगवान मोक्ष की पर्याय का स्वभाव है, ऐसा इसे बराबर निर्णय करना चाहिए।

आगे कहते हैं कि जो मोक्ष उत्तम सुख नहीं दे, तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करें? देखो, आया। निरन्तर सेवे सिद्ध भगवान निरन्तर। अन्तर पड़े बिना पर्याय का अनन्त आनन्द का सेवन। ओहोहो! समझ में आया? संसार में अन्तर पड़े बिना समय-समय का अनन्त दुःख। मोक्षमार्ग में अन्तर पड़े बिना थोड़ा सुख। मोक्ष में अन्तर पड़े बिना सादि-अनन्त सुख, पूर्ण सुख। ओहोहो! ऐसा उत्तम सुख यदि न हो आत्मा में, पर्याय दशा में, मोक्षदशा में **तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करें?** परमात्मा उसे निरन्तर सेवन करते हैं। सेवन करते हैं, देखो! उस अनन्त आनन्द को सिद्ध सेवन करते हैं।

आत्मा और फिर पर्याय का सेवन! गजब बात! दो हो गया। परन्तु दो है, ऐसा कहते हैं। दो की द्वैतता का विकल्प नहीं, परन्तु पूर्ण वस्तु और पूर्ण पर्याय के आनन्द का सेवन। समझ में आया? आहाहा! उसे मोक्ष कहते हैं और उसे सिद्ध कहते हैं। ऐसे

अनन्त आनन्द को सिद्ध यदि सेवन करते हैं तो कहते हैं, सुख न हो तो सेवन किसलिए करे? दुःख में हो तो निकल जाये थोड़े से समय बाद। दुःख रुचे कहीं बहुत काल रखने का? वह अनन्त काल... अनन्त काल... अनन्त काल... आहाहा!

'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञान (अनन्त) सहित' अनन्त दर्शन ज्ञान सहित जो, अनन्त दर्शन ज्ञान। भगवान सादि अनन्त, अनन्त समाधि सुख में। आदि अनन्त स्वभाव सुख में भगवान पर्याय में सेवन करते हैं परमात्मा। अपने आनन्द को सेवन करते हैं। ले! यह और सेवन! पर्याय है न अनुभवना। आहाहा! यहाँ क्या सेवन करते हैं? विकार, दुःख। विकार कहो या दुःख कहो। दुःख को वेदते हैं और दुःख को सेवन करते हैं। परमात्मा अनन्त आनन्द को वेदते और सेवन करते हैं। आहाहा! ऐसा अनन्त आनन्द न हो तो सिद्ध कैसे अनन्त काल तक उसे सेवन करे? समझ में आया? यह गाथा विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण १२, रविवार, दिनांक - १९-१२-१९६५
गाथा - ७-८, प्रवचन - ८०

गाथा - ७

यह परमात्मप्रकाश है। ७वीं गाथा दूसरे अध्याय की। **आगे कहते हैं कि जो मोक्ष उत्तम सुख नहीं दे, तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करें ?**—परमात्मप्रकाश है तो परमात्मा द्रव्यस्वरूप से अन्तर आनन्द है और पर्यायस्वरूप उसमें भी पूर्ण आनन्द है। इसलिए ये गाथा ऐसी ली। सिद्ध में जो अपने उपादान आनन्द से प्रगट हुआ आनन्द अतीन्द्रिय सुख, ऐसी मोक्षदशा में अनन्त आनन्द न हो तो सदा भगवान सिद्ध उसे कैसे सेवन करे? समझ में आया? **उत्तम सुख नहीं दे, तो सिद्ध उसे निरन्तर क्यों सेवन करें ?** परमात्मदशा में सिद्धदशा में ही पूर्ण आनन्द है, अन्यत्र ऐसा आनन्द नहीं। यह बात करते हैं।

१३३) उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं सयलु वि कालु जिय सिद्धि वि सेवहिँ सोइ॥ ७॥

अन्वयार्थ :- जो उत्तम अविनाशी सुख को नहीं देवे,... सिद्धदशा अर्थात् मोक्षदशा में, यदि अनन्त सुख उस दशा में प्राप्त न हो, **तो मोक्ष उत्तम भी नहीं हो सकता,...** तो मोक्ष की दशा को उत्तम नहीं कहा जाता। एक बात। **उत्तम सुख देता है, इसीलिए मोक्ष सबसे उत्तम है।** मोक्ष सबसे उत्तम है। सब दशा, संसारदशा तो हेय है, परन्तु मोक्ष का मार्ग है, उसकी अपेक्षा भी मोक्ष की दशा वह सर्वोत्कृष्ट उत्तम है। **जो मोक्ष में परमानन्द नहीं होता...** भगवान आत्मा निज आनन्दरस के घोलन से जो निज आनन्दरस पर्याय में प्रगट हुआ, ऐसी सिद्धदशा में यदि परमानन्द न हो, **तो हे जीव, सिद्ध परमेष्ठी भी सदा काल उसी मोक्ष को क्यों सेवन करते ?** अनन्त काल जब से परमानन्द प्रगट हुआ मोक्षदशा में। तब से अनन्त काल उस आनन्द को ही अनुभव करते हैं। समझ में आया?

भावार्थ :- वह मोक्ष अखण्ड सुख देता है,... मोक्षमार्ग में थोड़ा सुख है। आत्मा

चिदानन्द रस स्वरूप आत्मा के आत्मरस की घोलन दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा, उस आत्मरस में, रस तो पूर्ण है वस्तु में। चिद्रस, आनन्दरस तो आत्मद्रव्य में पूर्ण है, परन्तु उस चिद्रस के अन्तर घोलन में श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता में जो चिद्रस का घोलन और शान्ति है। उसकी अपेक्षा मोक्षदशा में पूर्ण आनन्दरस है। वहाँ पूरा चिद्रस घुल गया और पूर्ण हो गया है। समझ में आया? **मोक्ष अखण्ड सुख देता है,...** अखण्ड सुख तो द्रव्य में पड़ा है। यह कहेंगे आगे उपादान से। अखण्ड आनन्द की शक्ति के घोलन द्वारा ही उपादान से मोक्ष की पर्याय की आनन्ददशा प्रगट होती है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, **मोक्ष अखण्ड सुख देता है, इसीलिए उसे सिद्ध महाराज सेवते हैं, मोक्ष परम आह्लादरूप है,...** ओहो! भगवान आत्मा भी परम आह्लादरूप है और परम आह्लाद के रस के घोलन से उसके ज्ञान, दर्शन, आनन्द के एक-एक गुण के रस के घोलन से जो आनन्द उपादान से प्रगट होता है, वह सिद्ध में पूर्णानन्द की दशा उपादान से प्रगटी है। समझ में आया? क्यों कि - **मन और इन्द्रियों से रहित है,...** देखो! यह परमानन्दस्वरूप मोक्ष का परमानन्द भाव मन और इन्द्रियरहित है। **इसीलिए उसे सदाकाल सिद्ध सेवते हैं...** समझ में आया? क्योंकि वहाँ नीचे भी भगवान परमानन्द का रस, उस स्वरूप से भरपूर तत्त्व, उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान द्वारा आनन्द के घोलन से उत्पन्न हुआ आनन्द, उसे मन और इन्द्रिय और विकल्प से रहित ही यहाँ आनन्द सेवन करता था। मोक्षमार्ग में भी धर्मी मन और इन्द्रिय और राग से रहित ऐसा चिदानन्दस्वरूप, उसके आनन्द की दशा को धर्मी जीव मोक्षमार्ग में राग और निमित्तरहित आनन्द का घोलन का सेवन था। समझ में आया? उस सेवन से पूर्णानन्द की पर्याय जिन्हें प्रगट हुई, इसलिए यहाँ मन और राग नहीं था, वहाँ भी मन और राग बिल्कुल है ही नहीं। समझ में आया? **मन और इन्द्रियों से रहित है, इसीलिए उसे सदाकाल सिद्ध सेवते हैं,...** अर्थात् कि स्वाधीन है, स्वतन्त्र आत्मद्रव्य से प्रगट हुआ है। ओहोहो! समझ में आया?

केवलज्ञानादि गुणसहित सिद्ध भगवान निरन्तर निर्वाण में ही निवास करते हैं,... भगवान आत्मा, यहाँ पर्यायसहित की बात लेनी है। द्रव्य में तो केवलज्ञानादि अनन्त गुणादिसहित द्रव्य विराजमान है, परन्तु द्रव्य की एकाग्रता के घोलन द्वारा जो

पर्याय में केवलज्ञान आदि हुए, ऐसे सहित सिद्ध भगवान निरन्तर, निर्वाण अर्थात् शान्त, निर्वाणदशा, अपनी शान्तदशा, राग से अभाव होकर पूर्ण शान्तदशा में निवास करते हैं। ऐसी शान्त दशा में परमात्मा पर्याय में बसते हैं। समझ में आया?

सिद्धों का सुख दूसरी जगह भी ऐसा कहा है... देखो! सिद्ध भक्ति, सिद्ध भक्ति का श्लोक है। कि, **वह कैसा है (सिद्धसुख)? - कि अपनी-अपनी जो उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,...** देखो! वह सिद्धान्त यह। सिद्ध भक्ति यह श्लोक है। यह आत्मा आनन्दस्वरूप अन्तर (में) है। ... समझ में आया? यह आत्मा... देखो, कितने सिद्धान्त सिद्ध करते हैं इसमें! कि यह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है तो उसके उपादान से अन्तर आनन्द प्रगट होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपादान से अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान स्वद्रव्य के आश्रय से शक्ति की व्यक्तता होती है। उसे राग, व्यवहार और निमित्त के अवलम्बन से यह आनन्द प्रगट नहीं होता। समझ में आया?

भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप उपादान अर्थात् शुद्ध द्रव्य ध्रुवस्वरूप, आनन्दस्वरूप आत्मा। सुख लेना है न यहाँ? उसकी वर्तमान पर्याय में भी शुद्ध उपादान से प्रगट हुआ आनन्द, अपने द्रव्य से प्रगट हुआ शुद्ध आनन्द, उसे पूर्णरूप से उपादान से प्रगट किया, ऐसा सिद्ध का आनन्द। समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, उसकी एकाग्रता की शक्ति में से जो अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हुआ, वह अपने स्वभाव से, अपने कारण से, अपने उपादान से, अपने द्रव्य से प्रगट होता है। इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि जो बीच में व्यवहार और विकल्प और निमित्त है, उनसे उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि वह उपादान शक्ति से उत्पन्न हुआ है। निमित्त और राग से उत्पन्न हुआ नहीं। अपने शुद्धस्वभाव के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ है। निमित्त और व्यवहार का भले ज्ञान हो, परन्तु उनसे आनन्द प्रगट हो, ऐसा नहीं। ज्ञान हो अर्थात् एक दूसरी चीज़ है, ऐसा ज्ञान में ज्ञान भी उपादान से प्रगट हुआ है। वह उपादान अन्तर से

प्रगट हुए ज्ञान और आनन्द में राग और आदि चीज़ है, उसका ज्ञान हो कि यह है, परन्तु प्रगट हुआ ज्ञान और आनन्द वह स्वयं से प्रगट हुआ है। समझ में आया? लो! इसमें तो उपादान, निमित्त, निश्चय और व्यवहार सब आ गया इसमें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सिद्ध भगवान परन्तु प्रगट हुआ कहाँ से पहले से?

मुमुक्षु : फिर आगे जाये और शुद्ध हो बाद में हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु हो। आहाहा! सर्वज्ञ ने....

मुमुक्षु : ....किया तो पूरा हो ऐसी बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ से हुआ है पूर्ण उपादान से वहाँ पूरा होता है। यहाँ से पूरा करूँ वहाँ शुरु यहाँ से होता है। व्यवहार से, निमित्त से शुरु किया नहीं, इसलिए उससे पूरा नहीं होता। आहाहा! और उसके सिद्धान्त में तो ऐसा भी आया कि केवलज्ञानी भगवान ने इस आत्मा को इस समय में साधक जीव को इस समय में ऐसा भगवान ने देखा है कि उसका द्रव्य ज्ञायकस्वरूप आनन्दमूर्ति है, ऐसा भगवान ने देखा है, ऐसे ज्ञानस्वभावी दृष्टिवाला अपने को ज्ञानस्वभाववाला देखता है। यह भगवान ने देखा हो, वैसा देखे। देखो!

भगवान ने ऐसा देखा है कि स्वभाव के आश्रय से जो वहाँ श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट हुए, वह पर्याय है, संवर-निर्जरा है। यह ज्ञायकतत्त्व है, यह संवर-निर्जरा है, ऐसा भगवान ने ज्ञान में उस समय में उसका देखा। ज्ञानी भी उस समय में स्वयं अपने द्रव्य को ज्ञायकभाव से (और) संवर-निर्जरा की पर्याय को संवर-निर्जरा भाव से जानता-देखता है। समझ में आया? आहाहा! अरे! प्रभु! यह तो समय-समय का धर्मात्मा भी अपने को जिस प्रकार से जानता और देखता है, उस प्रकार से भगवान भी उसके ज्ञान में, उसके आत्मा की दशा को उस प्रकार से ही देखते और जानते हैं। आहाहा!

क्या हो परन्तु अब यह बात। अर्थात् इसमें सर्वज्ञ ने देखा, वह भी निर्णय आ गया और उसे भी यह निर्णय आ गया। जैसे सर्वज्ञ देखते हैं, वैसे मैं मेरे ज्ञान से मेरे द्रव्य

को, मेरी पर्याय को, बीच में राग रहा, उसे और निमित्त कर्म का जितना अभाव है और सद्भाव है उसे। भगवान केवलज्ञान में भी इसके द्रव्य, गुण और पर्याय तथा निमित्त इस प्रकार से देखते हैं। ऐसे ज्ञानी भी अपने आत्मा को इस प्रकार से अल्पज्ञान में भी ज्ञायक आत्मा, शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय वह संवर-निर्जरा, रागादि आस्रव का ज्ञान, उसका ज्ञान। और निमित्त आदि का ज्ञान, वह वस्तु है। ऐसे ज्ञानी भी एक समय में इस प्रकार से देखते हैं, ऐसा सर्वज्ञ भगवान इसके आत्मा को इस प्रकार से देखते हैं। आहाहा! समझ में आया? छोटाभाई! इसमें तो सब आ गया। नियत, निमित्त, उपादान, निश्चय, व्यवहार पाँचों समाहित हो गये इसमें तो। आहाहा!

क्या करे परन्तु? बात का स्वरूप है, ऐसा जब तक इसकी दृष्टि में न आवे और भगवान ने जिसकी श्रद्धा मिथ्या है, राग से स्वभाव मानता है, निमित्त से राग की उत्पत्ति मानता है, ऐसी जिसकी मिथ्याश्रद्धा है, उसे ज्ञायकस्वभाव की प्रतीति नहीं। श्रद्धा में मिथ्यात्व की दशा है और निमित्त में रागादि और सब है, ऐसा उसे है, ऐसा भगवान भी उसे ऐसा देखते हैं। समझ में आया? कि उसे श्रद्धा में मिथ्यात्व है, द्रव्य में ज्ञायकपना है, पर्याय में मिथ्यात्व है, कर्म में उसका निमित्तपना है। ऐसा अज्ञानी ऐसा नहीं मानता, ऐसे ज्ञानी भी उसे देखते हैं। ऐसा मानता नहीं और ऐसा मानता है, ऐसा ज्ञानी भी देखते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा सिद्ध परमात्मा को सिद्धपना उपादान से प्रगट हुआ है। समझ में आया? ऐसा कहने से उसे व्यवहार से, निमित्त से वह आनन्द भगवान को प्रगट हुआ नहीं। अस्ति में वह नास्ति आ गयी। ऐसा भगवान आत्मा सर्वज्ञ ने देखा हुआ, जाना हुआ तत्त्व, उसका जहाँ निर्णय करने जाता है सर्वज्ञ की पर्याय का। उस पर्याय का निर्णय पर्याय में पर्याय आश्रय न होकर, द्रव्य आश्रय से पर्याय में निर्णय होने पर उसके ज्ञान में केवलज्ञान की पर्याय कैसी होती है, ऐसा ज्ञान की प्रतीति में आ जाता है और उस प्रतीति में, मेरा ज्ञायकभाव ऐसा है और पर्याय ऐसी है, यह भी प्रतीति में आ जाता है। समझ में आया?

उपादान-शक्ति उसी से उत्पन्न हुआ है,... ओहोहो! एक बोल कहा, तब दूसरे से नहीं, ऐसा आया या नहीं इसमें? शरीर से, संहनन से, राग से भगवान को परमानन्द

उत्पन्न नहीं हुआ। वह ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से उपादान से भगवान परमात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न हुआ है। ऐसा कहते ही धर्मी जीव को भी उपादान अर्थात् ज्ञायकभाव के घोलन के स्वभाव और पुरुषार्थ से जो आनन्द प्रगट हुआ है, भले अपूर्ण, परन्तु उसे भी उपादान से ही प्रगट हुआ है। समझ में आया? बीच में विकल्प आदि व्यवहार हो, वह ज्ञान में निमित्तरूप से है, परन्तु आनन्द की उत्पत्ति में वह साधनरूप से नहीं। समझ में आया?

पर की सहायता से नहीं है,... देखो! अस्ति-नास्ति किया। पाठ ही है ऐसा, हों! है न? '**आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं' पर की सहायता से रहित है,...** समझ में आया? '**अन्यद्रव्यानपेक्षं**' है न इसमें? यह बाद में आयेगा। यहाँ **पर की सहायता से रहित...** भगवान आत्मा सिद्ध भगवान को आनन्द उत्पन्न हुआ, उसमें पर की बिल्कुल सहायता नहीं। ऐसे धर्मी को अपना धर्म प्रगट हुआ, वह अपने आत्मा से प्रगट होता है, उसे पर की बिल्कुल सहायता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्वयं (आप ही) अतिशयरूप है,... वह आनन्द स्वयं ही अपने से विशेषरूप है, विशेष अर्थात् खास अतीन्द्रिय आह्लाद स्वरूप ही सिद्ध का आनन्द है। उसे दूसरे कारण से उसकी विशेषता है, ऐसा नहीं। उसकी विशेषता अतीन्द्रिय आनन्द की अपने से विशेषता है उसकी। **सब बाधाओं से रहित है,...** विघ्नरहित चीज़ है। पूर्णानन्द परमात्मा को दशा प्रगट हुई, उसमें विघ्न ही नहीं। इसी प्रकार धर्मी जीव को अपने द्रव्य के अवलम्बन से आनन्द, शान्ति, मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह उपादान से प्रगट हुआ, पर की सहायता बिना और यह विघ्न बिना। उसे कोई विघ्न है नहीं। यहाँ से शुरु हुआ तो वहाँ पूर्ण हो गया है। आहाहा! समझ में आया?

निराबाध है,... बाधा-पीड़ा कोई नहीं, विघ्न नहीं। **विस्तीर्ण है...** विशाल विशाल आनन्द है, ऐसा कहते हैं। कैसा आनन्द है परमात्मा को? विस्तीर्ण है। समझ में आया? विशाल, आहाहा! वह आत्मा के अन्तर से प्रगट हुई शक्ति का विकास एक समय की अवस्था में जो आनन्द, विशाल आनन्द, विशाल आनन्द, अनन्त आनन्द से अर्थात् विशाल आनन्द से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भावे।...का कहाँ काम है यहाँ? भावे; उसके आनन्द का माप आँकना मुश्किल, इतना विशाल आनन्द है। समझ में आया? ज्ञानानन्द, दर्शनानन्द, चारित्रानन्द, वीर्यानन्द, अस्तित्वानन्द, वस्तुत्वानन्द, ऐसे अनन्त गुण का एक समय में विशाल आनन्द, विशाल आनन्द। समझ में आया? **'विशालं'** है। **घटती-बढ़ती से रहित है,... 'वृद्धिह्रासव्यपेतं'** घट-बढ़ कहाँ है? पूर्ण दशा हो गयी है। मोक्षमार्ग में तो अभी स्वभाव के आश्रय से अपूर्ण दशा है, वह आनन्द आदि वृद्धि पावे, अंश-अंश में वृद्धि पाता है। पूर्णानन्द में वृद्धि-हानि कुछ नहीं, पूर्ण हो गया। एकरूप दशा प्रगट हो गयी। समझ में आया?

ऐसा कि अनन्त काल रहे ऐसा का ऐसा तो पहले बहुत हो और बाद में कुछ थोड़ा हो—ऐसा होगा? ऐसा। और अनन्त काल रहे, इसलिए बहुत पुष्टि हो उसकी पर्याय में। अनन्त आनन्द, अनन्त काल रहे, इसलिए पुष्टि हो समय के आनन्द में। नहीं, ऐसा नहीं। एक समय का विशाल जितना आनन्द प्रगट हुआ, उतना और उतना सादि-अनन्त रहेगा। **विषय-विकार से रहित है,... 'विषयविरहितं'** पर के लक्ष्य रहित है। पर के लक्ष्य रहित है। अन्तर के लक्ष्य से प्रगट हुआ पूर्णानन्द है। उसमें विषय और विकार का विकल्प है नहीं, ऐसा आनन्द है। दुनिया कहीं विषय-विकार के राग का आनन्द दुनिया मानती है। वह दुःख है, उसे अज्ञानी आनन्द मानता है। समझ में आया?

धर्मी के स्वभाव की दृष्टि और ज्ञान में आनन्द है। रागादि का दुःख है, वह उसके ज्ञान के आनन्द में उसका स्थापन नहीं। समझ में आया? धर्मी जीव को अपने आनन्द के घोलन से जो दशा सिद्धरस की प्रगटी, सिद्धरस की। पुण्य-पाप के विकार रसरहित, यहाँ विकाररहित कहा न? यहाँ भी पुण्य-पाप के विकार के रसरहित भगवान चैतन्य के रससहित की जो दशा प्रगटी उसे, परन्तु उसमें विषय का विकार आदि का भाव उस दशा में नहीं। समझ में आया? एक दूसरा भाग है। सिद्ध को पूर्ण है, उसमें कोई भाग बाकी भी नहीं कि जिसका ज्ञान करना रहता है। समझ में आया?

विषय-विकार से रहित है, भेदभाव से रहित है,... लो! भेद नहीं, **'निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्'** प्रतिद्वन्द्व नहीं कि जिससे दूसरा उसमें भेद या न्यूनता रहे। अकेला द्वन्द्व रहित

सुख है भगवान को। समझ में आया? **भेदभाव से रहित है, निर्द्वन्द्व है,...** ऐसे दो इकट्ठे कर दिये। '**निःप्रतिद्वन्द्वभावम्। अन्यद्रव्यानपेक्षं**' निर्द्वन्द्व अर्थात् एकरूप है, दो द्वन्द्व नहीं, दो प्रकार नहीं। **जहाँ परवस्तु की अपेक्षा ही नहीं है,...** जहाँ परवस्तु की अपेक्षा ही नहीं। समझ में आया? यह आत्मा की पूर्ण दशा का वर्णन करते हुए उस द्रव्य का भी स्वरूप ऐसा ही है और श्रद्धा-ज्ञान में भी ऐसा ही आवे, ऐसा समझना इसमें, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

परवस्तु की अपेक्षा ही नहीं है,... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु के आनन्द के लिये धर्मी को भी परवस्तु की अपेक्षा नहीं। परमात्मा को भी पूर्णानन्द में पर की अपेक्षा नहीं। निरपेक्ष वस्तु है, भाई! निरपेक्ष नहीं हो न भगवान के मार्ग में? ऐसा कहते हैं न सापेक्ष हो। आहाहा! यहाँ तो निरपेक्ष कहा। देखो! है या नहीं? '**अन्यद्रव्यानपेक्षं**' कथंचित् अन्य द्रव्य सापेक्ष और कथंचित् '**अन्यद्रव्यानपेक्षं**' इसे अनेकान्त ठहराते हैं अभी, लो! आहाहा! सर्वथा निरपेक्षा नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि बिलकुल परद्रव्य की अपेक्षा नहीं। सिद्ध की पर्याय में बिलकुल परद्रव्य की अपेक्षा नहीं, ऐसा स्वतन्त्र निरपेक्ष, वह सुख है।

मुमुक्षु : अस्तिकाय का अभाव करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! इतना परतन्त्र हो गया, तब तो दुःखी हो गया। रह क्या जाये? धूल रह जाये? अरे भगवान! इसने पूरी बात को बहुत बदल डाला। बहुत पूरा रूप भगवान पूर्णानन्द की पर्याय से निरपेक्ष पर से है। उसे किसी की सापेक्षता है ही नहीं। तो वह धर्मास्तिकाय आगे नहीं, इसलिए उसके कारण से अटकना पड़ा इतना उसे पर अपेक्षित दुःख है? (नहीं)।

मुमुक्षु : कहा न अन्यद्रव्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी तो व्याख्या चलती है। उसके द्रव्य की अपेक्षा बिना का सुख है, ऐसा। यह तो ऐसा कहे गति में वह नहीं, ऐसा कहे सुख भले हो, ऐसा। परन्तु इतनी पराधीनता सुख में भी पराधीनता हो गयी। अन्यद्रव्य की अपेक्षा है ही नहीं सिद्ध भगवान को। आहाहा! अनन्त गुण की किसी पर्याय में नहीं, किसी पर्याय में नहीं।

...निरपेक्ष सुख हुआ। सुख आया सब पर्याय निरपेक्ष है। समझ में आया? ओहोहो! ऐसे मोक्ष के मार्ग में भी निरपेक्ष अपनी श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र पर की अपेक्षा बिना प्रगट होता है। द्रव्य की अपेक्षा, पर की अपेक्षा नहीं। ओहोहो! विकार भी प्रगट होता है, वह निरपेक्ष है। विकार जैसे प्रगट होता है, वह भी वास्तव में पर की अपेक्षा बिना स्वतन्त्र पारिणामिक पर्याय है वह। समझ में आया? ऐसे मोक्षमार्ग प्रगट हो, वह पर की अपेक्षा बिना का स्वतन्त्र है। सिद्धपर्याय प्रगट हुई, वह भी पर की अपेक्षा बिना स्वतन्त्र। कहो, समझ में आया इसमें?

सिद्ध को कथंचित् परतन्त्र, कथंचित् स्वतन्त्र, तो अनेकान्त होगा, सर्वथा स्वतन्त्र नहीं। भारी पठन हुआ परन्तु। आहाहा! परवस्तु की अपेक्षा ही नहीं। वस्तु की स्थिति को परद्रव्य की अपेक्षा नहीं, वस्तु के मोक्षमार्ग की पर्याय को पर की अपेक्षा नहीं और पूर्ण पर्याय को भी पर की अपेक्षा नहीं। इस प्रकार से ऐसा सिद्ध हुआ कि भगवान आत्मा स्वयं परमानन्द निरपेक्ष है, परद्रव्यरहित द्रव्य। उसका सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और आनन्द की पर्याय भी व्यवहार की अपेक्षारहित वह आनन्द है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अन्तर्मुख की दशा प्रगट हुई, वह बहिर्मुख की अपेक्षा नहीं रखती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप वस्तु जैसे पर की अपेक्षा नहीं रखती, वैसे ही उसकी अपेक्षा से, द्रव्य की अपेक्षा से प्रगट हुआ धर्म और आनन्द, वह भी राग और व्यवहार और निमित्त की अपेक्षा नहीं रखता। पूर्ण सिद्ध की पर्याय के पूर्ण आनन्द में पूर्ण के लिये कुछ चाहिए, यह बिल्कुल पर की अपेक्षा है नहीं। समझ में आया? ओहो! उस सुख को उपमा उसकी। दूसरी उपमा उसके साथ लागू नहीं पड़ती। किसकी उपमा देना? समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा के द्रव्य को किसकी उपमा? उसके मोक्षमार्ग की पर्याय को उसकी उसे उपमा, उसे दूसरे की क्या उपमा? ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का सिद्धरस तत्त्व, सिद्धरस तत्त्व उसकी अन्तर श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—ऐसा जो धर्मभाव उसे, कहते हैं कि उपमा कौनसी देना? तत्त्व अनुपम, उसका मार्ग अनुपम, उसका फल अनुपम। समझ में आया?

अनुपम है,... सिद्ध जैसे सिद्ध। वह तो उनके और उनके जैसा... दूसरी उपमा

उन्हें लागू नहीं पड़ती। ओहो! तीर्थंकर के समवसरण, उनके यह और ऐसा कितना सुख उन्हें? ऐसा सुख होगा? समवसरण का और उसे भोगते हैं न, भगवान भी पुण्य के फल को भोगते हैं, लो! ऐसा कहते हैं। कहो, तुम कहते हो पुण्य को विष्टा, परन्तु भगवान भी पुण्य के फल को भोगते हैं। अरे! भगवान! तू क्या कहता है? प्रभु! जड़ को तो अज्ञानी भी भोगता नहीं, तीर्थंकर को अभी पुण्य भोगना रहा। समवसरण का पुण्य भोगते होंगे वे? जिनके ज्ञान में ज्ञेय चीज़ है, वह तो निमित्तरूप से, उसे वे भोगते होंगे? परन्तु बहुत फेरफार।

कहते हैं कि भगवान आत्मा का सुख सिद्ध का। उपमारहित उसे कोई पर की अपेक्षा नहीं। इसी प्रकार यहाँ केवली के आनन्द को भी कहीं समवसरण और तीर्थंकरप्रकृति के फल, इन्द्र ऐसे चँवर ढोलें, इसकी अपेक्षा होगी भगवान के आनन्द को? आहाहा! कितना सुख! इन्द्र चँवर ढाले, यह हीरा के सिंहासन ऊपर ऐसे ऊपर बैठे, भले ऊपर बैठे जरा। और यह मणिरत्न के गढ़। आहाहा! अरे! भाई! उसका सुख तो उसकी अपेक्षा रखकर प्रगट हुआ है। उसे वर्तमान किसी निमित्त की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! कहो, उसे भोगते हैं अरिहन्त कहे, समवसरण प्रकृति बाँधी, स्वयं ने बाँधी तो उसका फल तो भोगे न? ... नहीं? किये कर्म भोगे बिना छुटकारा नहीं। आहाहा!

कहते हैं, भाई! भगवान सिद्ध की दशा उनके साथ तेरे आत्मा को मिलान कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? कहेंगे न आगे कि **मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करने योग्य है,...** ऐसा अन्त में कहेंगे। पूर्ण आनन्द अभिलाषा, भावना करनेयोग्य है। बीच में रागादि आवे, वह भावना करने जाये, ऐसा नहीं। ऐसा उसका योगफल लायेंगे। ऐसे सुख का वर्णन जिसके ज्ञान में आवे, उसे तो आत्मा के आनन्द का प्रेम और रुचि हो। उसे राग का प्रेम और रुचि टल जाये। तब उसने मोक्ष को जाना और मोक्ष की भावना की, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

अनन्त है, अपार है,... आहाहा! कितने शब्द प्रयोग किये हैं! भगवान की पर्याय आनन्द की अपार अनन्त है। अन्त क्या उसका? उनकी पर्याय का अन्त क्या? वर्तमान भाव का, हों! अपार-पार नहीं, पार नहीं। कितने शब्द? आहाहा! तेरे एक आनन्द गुण

की अवस्था के इतने तो विशेषणों से उपमा है। आहाहा! **जिसका प्रमाण नहीं...** जिसका माप नहीं कि इतना यह। **सदा काल शाश्वत है,...** ऐसा प्रगटा, वह प्रगटा परमात्मा को मुक्ति। सिद्ध सुख ऐसा का ऐसा सदाकाल रहता है। **महा उत्कृष्ट है,...** आहाहा! महा उत्कृष्ट है। अन्तिम में अन्तिम उत्कृष्ट है, ऐसा कहते हैं। महा उत्कृष्ट सुख है। समझ में आया? मोक्षमार्गी का सुख, बारहवें गुणस्थान में सुख, उससे मोक्ष की पर्याय में महा सुख है, ऐसा कहते हैं। भावमोक्ष से केवली को भावमोक्ष है। आहाहा! **अनन्त सारता लिये हुए है।** यह सब सार भरा हुआ है अकेला। आहाहा! अनन्त सार, अनन्त सार, अनन्त आनन्द का अनन्त सार-कस भरा है। ओहो! सिद्ध भक्ति। भगवान पूर्णानन्द की पर्याय अनन्त कस सहित, सार सहित है, असारपना उसमें जरा भी नहीं। अनन्त सार, अनन्त सार, अनन्त कस, अनन्त कस। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तब किस प्रकार करे? यह कहेंगे। यह बाद में कहेंगे ९वीं गाथा में पूछेंगे कि, महाराज! यह अतीन्द्रिय सुख की बात करो परन्तु हमको किस प्रकार बैठे यह? यह कहेंगे ९ में। समझ में आया?

जगत के प्राणी अतीन्द्रिय सुख को जानते ही नहीं हैं, इन्द्रिय सुख को ही सुख मानते हैं। तो महाराज! किस प्रकार से हमें जानना? यह बाद में कहेंगे ९वीं गाथा में। यहाँ कुछ बाकी रखे, ऐसा कुछ नहीं। समझ में आया? वह यहाँ कहेंगे। एक साधारण प्राणी भी बैठा है, कहते हैं। कोई अभी इच्छा विषय भोग की नहीं और बैठा है न कहे, कैसे? भाई! निराकुल हूँ। अभी कोई चिन्ता सिर पर कोई बोझ, काम, काज कुछ नहीं। निश्चिन्तता से इतने बाह्य के प्रसंग में भी बाह्य से जहाँ इतनी निवृत्ति में भी अव्याकुलता है, ऐसा कहते हैं। तो जिन्हें बिल्कुल विकल्प और आदि नहीं, उनकी अव्याकुलता और उनके आनन्द का क्या कहना? ऐसा। समझ में आया? ऐसे बैठा तृप्त करके। खा-पीकर निश्चिन्त करे सोकर उठा वापस ऐसा। इसलिए और... नहीं? बैठा है। और वापस कुछ दुकान पर जाना नहीं, सिर पर कोई बोझा नहीं, कोई क्या कहलाता है? फर्ज-फर्ज कि भाई! दुकान में इतने घण्टे जाना पड़ेगा तुमको पत्र पढ़ने। कुछ (नहीं),

निश्चिन्त होकर ऐसे। आहाहा! सब लड़के तो ऐसा करते हैं। उसे कहे कैसे भाई! कैसे है? मजा है।

मुमुक्षु : इन्द्रियों का कोई भोग नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियों का भोग नहीं, खाता नहीं, पीता नहीं, देखता नहीं, दूसरा नहीं, लो! तथापि पाँच इन्द्रिय के विषय का यह बाहर से अभाव है न, इतना एक दृष्टान्त सिद्ध करना है। इतना ऐसा कहते हैं कि भाई! हम तो अभी सुखी। ओ, बहुत सुखी... बहुत सुखी।

मुमुक्षु : दूसरी निरोगता होनी चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोगता तो होती है। वह निरोगता सुख का कारण है? ठीक कहते हैं यह। जयचन्दभाई का कहा। परन्तु तुम्हारे तो सब है, तुम्हारे कहाँ क्या है?

मुमुक्षु : सुखी ही है वह तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखी मानता है, परन्तु उसे कैसी कल्पना कितनी है उसे? वहाँ जाना पड़ता है अभी ऐसा है और वैसा है। वह तो कुछ करता न हो और बैठा हो, उसकी बात है अभी तो। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा पाँच इन्द्रिय का व्यापार जिसके स्थूलरूप से नहीं, वह भी वर्तमान सुखी है, ऐसा कहना चाहते हैं। तो जिसे कुछ व्यापार ही विकल्प आदि का नहीं, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द का सुख उसे क्यों न हो? कहो, समझ में आया? दृष्टान्त दिया उसे। कहे साधारण वृद्धा ऐसे हों, कुछ कामकाज न हो, शरीर अच्छा हो। कुछ नहीं होता। घर में बहू दो, चार, पाँच काम करती हों। ... कुछ है भाई उसे?

मुमुक्षु : नव निश्चिन्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : नव निश्चिन्त। वह वृद्धा ऐसा कहे, हों! बापू! मुझे तो अभी कोई मेरे कुछ आवश्यकता नहीं। जाओ तुम तब जाओ। ...! इतनी भी आवश्यकता नहीं जिसे पर की कितना काल अमुक, वह भी ऐसी व्याकुलता रहित ठीक है, ऐसा मानती है। तो जिसे कुछ विकल्प आदि नहीं, उसकी ठीकता अर्थात् सुख का क्या कहना? ऐसा कहते हैं। ठीक अर्थात् सुख। समझ में आया?

ऐसे सिद्ध भगवान के अतीन्द्रिय आनन्द के प्रवाह अन्दर पाटु ... बहे अन्दर से। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द बहा ही करे, बहा ही करे। उसके पार का क्या कहना? उसके सार का क्या कहना? अनन्त सार है। आहाहा! **ऐसा परमसुख सिद्धों के है,...** लो! यह सिद्ध भगवान के गीत। इसलिए तेरी पूर्ण पर्याय में ऐसा हो, उसके गीत गाये हैं। आहाहा! समझ में आया? 'सिद्ध समान सदा पद मेरो'। वस्तु जो द्रव्य है, वह तो त्रिकाल सिद्धस्वरूप ही है। उसकी अन्तर में एकाग्र होकर जो मोक्षमार्ग प्रगट करना और उसमें से पूर्णता प्रगट करना, उसकी पारता और सारता का क्या कहना? अपार और अनन्त सार, अपार और अनन्त सार। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

अन्य के नहीं है। ऐसा सुख अन्य को नहीं। **यहाँ तात्पर्य यह है कि हमेशा मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करनेयोग्य है,...** देखो! केवलज्ञानी के, मोक्ष के सुख की हमेशा अभिलाषा करनेयोग्य है। इसका अर्थ कि **और संसार-पर्याय सब हेय है।** भगवान आत्मा पूर्णानन्द और केवलज्ञान की भावना जब भावे, तब उसकी भावना का रूप द्रव्य के ऊपर जाता है। वस्तु के द्रव्य अर्थात् ज्ञायकभाव के ऊपर उसकी एकाग्रता, उसकी भावना मोक्ष की अभिलाषा उसे कहा जाता है। छूटना है न, बन्धनरहित होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति की भावना, वह द्रव्यस्वभाव में एकाग्र हो, उसे रागादि हेय वर्तते हैं। पुण्य आदि, व्यवहार आदि, निमित्त आदि सब हेय वर्तते हैं, तब उसने मोक्ष की अभिलाषा आत्मद्रव्य की ओर की, कहा जाता है। आहाहा! बहुत शर्तें परन्तु ऊँची।

हमेशा मोक्ष का ही सुख अभिलाषा करनेयोग्य है,... हमेशा का अर्थ क्या किया? निरन्तर। समझ में आया? निरन्तर। देखो है न पाठ? '**अत्रेदमेव निरन्तरमभिलषणीयम्**' संस्कृत है। '**निरन्तरमभिलषणीयम्**' इसका अर्थ क्या किया? कि ऐसे सिद्ध की जो पर्याय इतनी महिमा की, उसे प्रगट करने के लिये, उसकी भावना करने के लिये हमेशा तत्पर रहना। हमेशा तत्पर रहना अर्थात् उसे वस्तु के स्वभाव की ओर की निरन्तर दृष्टि और एकाग्रता रखना, निरन्तर निश्चय की ओर दृष्टि रखना। समझ में आया? '**निरन्तरमभिलषणीयम्**' अहो! छूटने की पर्याय की पूर्णता, उसकी अभिलाषा अर्थात् वर्तमान में रागादि की पर्याय की ... उसमें भी यह न्याय आ गया।

तात्पर्य—इसका यह सार है कि सिद्ध भगवान की पर्याय का ऐसा स्वरूप जो वर्णन किया, वह हमेशा उसकी भावना करनेयोग्य है। उसकी भावना करनेयोग्य के अर्थ में यह आया कि वस्तु स्वभाव में आनन्द है, उसकी ओर की एकाग्रता हमेशा दृष्टि में रखनी चाहिए। कायम उसके ओर की दृष्टि रखनी चाहिए। कहीं व्यवहार और विकल्प में दृष्टि कभी न जाये, तब उसने आत्मद्रव्य की, मोक्षमार्ग की, मोक्ष की अभिलाषा की, (ऐसा) कहा जाता है। समझ में आया? यह सात गाथा हुई। **संसार-पर्याय सब हेय है।** उदयभाव आदि सब हेय है। क्षायिक पर्याय पूर्ण प्रगट करने की भावना की अपेक्षा से तो वर्तमान क्षयोपशम आदि पर्याय भी हेय है। अकेला वस्तुस्वभाव जिसमें पूर्ण आनन्द पड़ा है, वह एक ही दृष्टि में उपादेय है। यह उपादेय है, उसे मोक्ष की अभिलाषा कहा जाता है। कहो, समझ में आया? ओहो! इतनी एक यह सिद्ध भक्ति की गाथा की है, श्लोक। सिद्ध भक्ति। गाथा ७ है।

★ ★ ★

गाथा - ८

आगे सभी महान पुरुषों के मोक्ष ही ध्यावनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं।

१३४) हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर-विंद वि भव्व।
परण-णिंरजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिँ सव्व॥ ८॥

नारायण (वासुदेव) वा इन्द्र, रुद्र (शंकर) अन्य ज्ञानी पुरुष श्रीतीर्थंकर परमदेव मुनीश्वरों के (वृन्दों) समूह... ओहोहो! लाखों मुनि। **तथा अन्य भी भव्य जीव...** चौथा, पाँचवाँ आदि सब, सभी। समझ में आया? यह तो अन्य भव्य दूसरे साधारण दूसरे, ऐसी भाषा है। वे तो बड़े-बड़े ऋद्धिवाले लिये, परन्तु इसके अतिरिक्त के दूसरे सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? **नारायण (वासुदेव) वा इन्द्र, रुद्र अन्य ज्ञानी पुरुष श्रीतीर्थंकर परमदेव मुनीश्वरों के समूह तथा अन्य भी भव्य जीव परम निरंजन में...** देखो! परम निरंजन में... समझ में आया? है न अर्थ इसमें? निरंजन, व्याख्या। '**परमनिरञ्जनाभिधाने निजपरमात्मस्वरूपे**' निरंजन की व्याख्या ही यह है। परम निरंजन को निज परमात्मस्वरूप को परम निरंजन कहा है। निज परमात्मस्वरूप। समझ में आया?

वर्तमान ज्ञायकभाव त्रिकाल निरंजन—अंजनरहित है। परम निज स्वभाव भगवान राग का अंजन, कर्म का अंजनरहित ही वस्तु है। ऐसा निरंजन भगवान आत्मा निज परमात्मस्वरूप। समझ में आया? उसमें **मन रखकर...** मन अर्थात् दृष्टि रखकर। आहाहा! देखो! इन्द्र, नरेन्द्र, नारायण, रुद्र, मुनि और भव्य, सबकी दृष्टि द्रव्यस्वभाव के ऊपर कायम पड़ी हुई होती है, ऐसा कहते हैं। '**निरञ्जने मनः धृत्वा**' परमानन्द की मूर्ति, भगवान परमात्मा निरंजन, उसमें जिसने मन को और दृष्टि को धारा है। समझ में आया? '**मनः धृत्वा**' है न? मन रखकर अर्थात् दृष्टि को रखकर, ऐसा।

सब ही मोक्ष को ही ध्यावते हैं। इस प्रकार रहकर मोक्ष को ध्याते हैं। समझ में आया? अब उसमें व्यवहार में रखकर मोक्ष को ध्याते हैं, ऐसा नहीं आया उसमें। वह व्यवहार भी मोक्षमार्ग कहा। पहले दो आ गये थे। भेदाभेदरत्नत्रय नहीं आया था? यह तो था, उसका ज्ञान कराया था। यह भगवान आत्मा एक ही प्रकार लिया। देखो! इन्द्रों को, गधधरों को, मुनि के वृन्दों को, तीर्थंकरों को और सामान्य भव्य जीव को। **सब ही मोक्ष को** (परम निरंजन में दृष्टि रखकर) **ध्यावते हैं।** ऐसा। अर्थात् मोक्ष की अभिलाषा करना, इसकी व्याख्या क्या कहते हैं? ऐसा। मोक्ष की अभिलाषा करना, ऐसा जो कहा था, इसका अर्थ भरा। मोक्ष की अभिलाषा की व्याख्या कि भगवान मुक्तस्वरूप परमात्मा, निज महिमावन्त परमात्मा, निजद्रव्य में दृष्टि को कायम रखना, इसका नाम मोक्ष की अभिलाषा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! यह तो इन्द्र को इसमें रखना? यह सब अप्सरायें हैं, यह सब बत्तीस लाख विमान हैं। समझ में आया? यह चक्रवर्ती छह खण्ड के स्वामी, परन्तु जिसे मोक्ष की अभिलाषा है, उसका स्वरूप ऐसा है कि उस काल में निरंजन परम स्वरूप भगवान आत्मा में दृष्टि स्थापित की है, उसकी एकाग्रता है, उसका नाम मोक्ष की अभिलाषा कहा जाता है। आहाहा! लो! यहाँ तो यह कहा, भाई! चौथे, पाँचवेंवाले को शुभ में रहना और आगे है, इसलिए शुद्ध का उपयोग है। मोक्ष का मार्ग नीचे शुभ मोक्ष का मार्ग है। मूलचन्दजी! ... चौथे में, पाँचवें में... यह इन्द्र चौथे में है। समझ में आया? कितने ही भव्य जीव चौथे, पाँचवें में हैं। तो मुनि छठवें में है, सातवें में हैं। इन सबको जिनवर भी जब चौथे में और जब सातवें में यह मुनि होकर होते हैं। समझ में आया? पाँचवें

में हों लो न जिनवर तो। परन्तु उन सबको एक ही प्रकार मोक्ष की अभिलाषा उसे कहते हैं। वे जीव मोक्ष की भावना करनेवाले हैं ऐसे, ऐसा कहते हैं कि, जो निरंजन परमात्मस्वरूप में जिसने दृष्टि स्थापित की है। आहाहा! समझ में आया? कहो, इसमें यह आता है या नहीं इसमें? कि चौथे, पाँचवें, छठवेंवाले को दूसरा और दूसरेवाले को दूसरा होगा, ऐसा होगा? जिनवर भी चौथे में, पाँचवें में होंगे, तब चौथे में उस शुभ में होंगे, ऐसा न? जिनवर तीन ज्ञान को लेकर आये, क्षायिक सम्यक्त्व लेकर आये। उनके शुभभाव के कारण होंगा सब उन्हें? क्या करते हैं परन्तु?

मुमुक्षु : जिनसेन आचार्य ने कहा है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ कहा नहीं जिनसेन आचार्य ने। वह निमित्त से कथन किये हैं कितने ही, इसलिए वस्तु ऐसी हो गयी? यहाँ तो कहते हैं, जितने तीर्थंकर हुए और जितने मोक्षमार्ग में भव्य जीव आते हैं, मोक्ष की अभिलाषा करते हैं, इन्द्र और रुद्र, नारायण, वासुदेव आदि करे, लो! वासुदेव को तो चौथा गुणस्थान हो, उन्हें अधिक नहीं होता। यह तो मनुष्य में, वह देव में। तथापि मोक्ष के अभिलाषी जीव का यह स्वरूप है कि उसने निरंजन ऐसा भगवान निज परमात्मा को मन में धारा होता है। समझ में आया? उसे दृष्टि में रखा होता है, दृष्टि वहाँ स्थापित की होती है। शुभ विकल्प और निमित्त में उसकी दृष्टि होती नहीं। उसका ज्ञान होता है। समझ में आया? स्थिरता कम-ज्यादा हो, वह अलग बात है, परन्तु जिसकी मोक्ष की अभिलाषा एक ही प्रकार है। उसका एक ही प्रकार कि द्रव्य में जिसकी दृष्टि स्थापित होती है। बस, यह एक ही बात है। परन्तु कोई विशेष स्थिरता हो और किसी को अल्प स्थिरता हो। समझ में आया इसमें?

छूटने के अभिलाषी को छूटे हुए तत्त्व—द्रव्य में उसे दृष्टि एकाग्र करनी चाहिए। उसे मोक्ष का अभिलाषी कहा जाता है। आहाहा! कितना स्पष्ट है, लो! मुनिवरों को, ऐसा नहीं कहा। मुनिवर को और तुम्हें उन पंच महाव्रत के परिणाम में दृष्टि स्थापित करना। ऐसा है? जितना चौथे से, पाँचवें, छठवें में। समझ में आया? तीर्थंकर हो या मुनि हो या साधारण भव्य जीव मोक्ष की अभिलाषावाले सम्यक्त्व (वन्त) जीव हो। उन सबको '**निरंज मनः धृत्वा**' एक सिद्धान्त में यह। '**परमनिरंजन**' अर्थात् निज

शुद्धात्मा के स्वरूप में '**विषयकषायेषु गच्छत् सद् व्यावृत्त्य धृत्वा**' लो! विकल्प में से हटकर उस वस्तु की दृष्टि में रहकर सभी मोक्ष को ही ध्यावते हैं, लो! सब आत्मायें सब मोक्ष को ही ध्याते हैं। लो!

रुद्र, इन्द्र मोक्ष को ध्यावे? अभी चौथे में पड़े वे? उन्हें तो बहुत कषायें बाकी हैं। इतना सब मोक्ष को ध्यावे? यह तो कहते हैं चारित्र को भावे और चारित्र मोक्ष को भावे। सब मोक्ष को भाने की व्याख्या ही एक है, कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया? देखो न कितनी व्याख्या ली! बड़ा विवाद... इतना। वह कहे, श्रावक को बारह प्रतिमा आदरणीय है। उसे आदरनेयोग्य है? नहीं, एक या नहीं, एक कहे नहीं है। श्रावक हुक्का पीता हो और कहे बारह प्रतिमा साधु को आदरणीय है। वह कहे, एक कहता है और एक कहे कि नहीं। यह विवाद बड़ा। ...भिक्षु की प्रतिमा, ऐसा कहे श्रावक को होगी? ऐसा एक व्यक्ति कहे। हमारे मूलचन्दजी। श्रावक को आदरणीय हो। वह गिरधर वोरा था कि श्रावक को आदरणीय भिक्षु की प्रतिमा है। वह कहे खाता हो तो भी? कहे, हाँ खाता हो तो भी उसे भिक्षु की प्रतिमा आदरणीय है। वह कहे कि नहीं। यह भी विवाद। हाँ ना हो गयी न! वह दृढ़ उसमें और वह दृढ़ उसमें था। वह कहे भिक्षु की प्रतिमा उत्कृष्ट कहलाये न सार ऊँची? इसलिए वह भिक्षु की प्रतिमा फिर ऊँची हो या मोक्ष हो या चाहे जो हो, परन्तु श्रावक को वह आदरणीय है, ऐसा गिरधर वोरा कहे। तब वे मूलचन्दजी कहे, नहीं, उसे नहीं होती। वे तो आगे बढ़े हुए साधु हों, उसे भिक्षु की प्रतिमा आदरनेयोग्य है, परन्तु आदरनेयोग्य संवर और निर्जरा उत्कृष्ट सबको आदरणीय माने नहीं? मानने में आदरनेयोग्य माने या नहीं?

यहाँ क्या कहा? देखो न, मोक्ष की अभिलाषा चौथे, पाँचवें से सब एक ही प्रकार की करते हैं। मोक्ष तो भाई केवलज्ञान। चारित्र हो, फिर मोक्ष की अभिलाषा हो, ऐसा है? समझ में आया? यह छूटने के अभिलाषियों को, द्रव्य छूटा पड़ा है, उसके ऊपर जिसकी एकाग्रता भावना होती है, उसे मोक्ष की अभिलाषा सबको है, ऐसा कहा जाता है। **यह मन विषय-कषायों में जो जाता है, उसको पीछे लौटाकर अपने स्वरूप में स्थिर अर्थात् निर्वाण का साधनेवाला करते हैं।** भावार्थ कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक - २०-१२-१९६५
गाथा - ८-९, प्रवचन - ८१

परमात्मप्रकाश ८वीं गाथा का भावार्थ। क्या चलता है यह? मोक्ष का फल-फल। मोक्ष चलता है यह। मोक्ष का फल बाद में। मोक्ष कैसा है? परम सुखरूप है। मोक्ष में ही परम आनन्द हैं, अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं, इसलिए तीर्थंकर आदि महापुरुष मोक्ष को साधने के लिये अन्तर आत्मस्वभाव को साधते हैं। ऐसी बात सिद्ध करते हैं।

भावार्थ :- श्री तीर्थंकरदेव... पहले से लिया। **तथा चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव...** चार तो बड़े श्लाका पुरुष पहले लिये। **प्रतिवासुदेव, महादेव इत्यादि सब प्रसिद्ध पुरुष...** यह मोक्ष और मोक्ष में सुख है, इसलिए वे आत्मा का ध्यान करते हैं। और आत्मा के ध्यान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया? ऐसे महा **प्रसिद्ध पुरुष अपने शुद्ध ज्ञान,...** देखो! अब क्या कहते हैं? मोक्ष का ध्यान करते हैं अर्थात् क्या? अपना जो आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप अखण्ड अर्थात् एक स्वभाव। आत्मा अखण्ड एक स्वभावी वस्तु ज्ञान।

जो निज आत्मद्रव्य... वह स्वभावस्वरूप निज आत्मद्रव्य, ऐसा। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान अखण्ड अर्थात् एक। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव। अर्थात् एक का 'अखण्ड' अर्थ किया है। भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञान एक। एकरूप स्वरूप है त्रिकाल, ऐसे एकरूप स्वभाव का, **उसका सम्यक् श्रद्धा...** ऐसा आत्मद्रव्य। ऐसी आत्मद्रव्य की व्याख्या की। आत्मद्रव्य उसे कहते हैं आत्म वस्तु कि जो शरीर-कर्म से तो रहित, परन्तु पुण्य-पाप के आस्रवतत्त्व से वह आत्मतत्त्व भिन्न है। अजीवतत्त्व से भिन्न और पुण्य-पाप के आस्रवतत्त्व से भिन्न, ऐसा जो आत्मद्रव्य, आत्मतत्त्व कैसा? कि शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव ऐसा आत्मद्रव्य। समझ में आया?

ऐसा उसका सम्यक् श्रद्धान, ऐसा भगवान आत्मा एक शुद्ध ज्ञानस्वभावी, उसका सम्यक् श्रद्धान अर्थात् सम्यक् (दर्शन)। उसका सम्यग्ज्ञान, वह एक स्वभावी, ज्ञानस्वभावी

आत्मद्रव्य। उसका सम्यक् ज्ञान और एक स्वभावी शुद्ध ज्ञान ऐसा आत्मद्रव्य, उसका आचरण—उसमें स्थिरता। ऐसा जो **अभेदरत्नत्रयमय समाधिकर...** समझ में आया? अभेदरत्नत्रय ऐसी शान्ति। शुद्ध ज्ञान एक स्वभावी आत्मद्रव्य की अन्तर श्रद्धा, अन्तर्मुख का निश्चय, अन्तर्मुख का उसका ज्ञान और उसका आचरण, उसरूप से अभेदरत्नत्रयमय समाधि। निश्चयरत्नत्रयरूप शान्ति।

उसमें से **उत्पन्न वीतराग सहजानन्द अतीन्द्रियसुखरस उसके अनुभव से पूर्ण...** रागरहित, उस आत्मद्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह रागरहित। वीतराग अर्थात् रागरहित। सहजानन्द उस आत्मा में स्वाभाविक आनन्द प्रगट हुआ, ऐसा अतीन्द्रिय सुखरस उसके अनुभव से पूर्ण **कलश की तरह भरे हुए...** जैसे कलश पूरा भरा हो, उसी प्रकार भगवान आत्मा ऐसी सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति से भरपूर, पूर्ण आनन्द से भरपूर पर्याय।

निरन्तर निराकार... निरन्तर, निराकार अर्थात् निरंजन, **निरन्तर निराकार (निरंजन) निजस्वरूप...** परमात्मा पूरा मानो कलश से भरपूर भगवान है न! पूरा कलश भरा हुआ हो न अमृत से, उसी प्रकार भगवान आत्मा अमृत के आनन्द से पूरा कलश असंख्य प्रदेश पूर्ण भरपूर है। कलश की भाँति आकार है न, इस शरीर का, देखो न! ऐसा ही आत्मा अन्दर पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर है। समझ में आया? ऐसे **परमात्मा के ध्यान में स्थिर होकर...** यह द्रव्य। कलश यह। उसकी स्थिरता वह ध्यान। उसमें **स्थिर होकर मुक्त होते हैं।** उसमें स्थिर होकर मुक्त होते हैं। यह मुक्ति का उपाय। बतलाना है तो मोक्ष। व्याख्या मोक्ष की है। परन्तु मोक्ष कैसे होता है? एक अखण्ड ज्ञानस्वभावी आत्मद्रव्य का अन्तर्मुख का सम्यग्दर्शन, उसका अन्तर्मुख सम्यग्ज्ञान, उसकी अन्तर्मुख स्थिरता। उससे उत्पन्न हुआ, परम सुखामृत से भरपूर भगवान, उससे उत्पन्न हुआ ध्यान। ऐसे ध्यान से वह मुक्ति होती है। लो! मोक्ष का मार्ग कहा, आत्मद्रव्य कहा और मोक्षपर्याय, तीनों बातें की। ओहोहो!

भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञान और आनन्द एक स्वरूपी आत्मा है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान शान्ति का—आनन्द का अनुभव करने से पूर्ण आनन्द से भरपूर भगवान, उसे पूर्ण आनन्द की प्रतीति, अनुभव करने से पूर्ण आनन्द की पर्याय को प्रगट करता है। समझ

में आया? भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर आत्मा। ज्ञान से बात की और साथ में आनन्द इकट्ठा लिया। समझ में आया पहला? एक ज्ञान लिया था, फिर अतीन्द्रिय सुख के अनुभव से पूर्ण कलश की तरह परमात्मा भरपूर है। वह अतीन्द्रिय की पर्याय आनन्द की प्रगट हुई, उसमें पूर्णानन्द परमात्मा पूर्ण आनन्दस्वरूप है। पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मा उसका निरंजन का ध्यान करने से जो आनन्द प्रगटे वीतरागी शान्ति (प्रगटे), उस द्वारा पूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती है। उस द्वारा पूर्ण आनन्दरूपी मुक्ति की प्राप्ति (होती है)। गजब! समझ में आया?

कैसा वह ध्यान है? कि ख्याति (प्रसिद्धि) पूजा (अपनी महिमा)... बाहर की महिमा या अन्दर के ज्ञान की अल्पज्ञता में भी जिसकी बड़ाई-मोटाई। **और धनादिक का लाभ...** बाहर बहुत लक्ष्मी आदि मिली, उसका अभिमान, उसकी बड़ाई। **इत्यादि समस्त विकल्प-जालों से रहित है।** पर की माहात्म्य की दृष्टि से रहित, स्व माहात्म्य की दृष्टि से सहित, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शरीर, वाणी, लक्ष्मी, पुण्य-पाप और पर्याय का उघाड़भाव, उसकी महिमा से रहित, उसकी महिमा के विकल्पजाल से रहित। अकेले अखण्ड ज्ञानानन्दस्वभाव की महिमा सहित।

यहाँ केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्ष-मार्ग बतलाया है,... ऐसा भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द की अन्तर महिमावाली दृष्टि, ज्ञान और शान्ति, ऐसा एक ध्यान, उसे ही भगवान ने मोक्ष का मार्ग कहा। आहाहा! समझ में आया? वह मुक्तस्वरूप ही आत्मा है द्रव्य तो। इसीलिए कहा न, एक ज्ञानस्वरूप आनन्द। वस्तु-वस्तु। उसकी पर्याय में पूर्ण आनन्द की दशारूपी मुक्ति प्रगट करने के लिये उस पूर्णानन्द से, ज्ञान से पूर्ण भरपूर द्रव्य, उसका अन्तर में ध्यान, उसे ध्येय करके, ध्यान करके मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मुमुक्षु : कर्म नहीं रोकते?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म थे कहाँ? है नहीं। पहले से कहा था। कर्म और शरीर और राग से द्रव्य रहित है। फिर रोके कौन? भगवान आत्मा कर्म, राग, अरे! अल्पज्ञ वर्तमान अवस्था, उन सबसे रहित पूर्ण है, ऐसा कहा था। यह तो पाँचवें काल के लोगों के लिये कहा। देखो! जो रुद्र अथवा इन्द्र अथवा अभी के जीव, भव्य जीव आदि है न? सब लिये इत्यादि में। वे जीव अभी भी ऐसे भगवान आत्मा का ध्यान पूर्ण मोक्ष की पर्याय

प्रगट करने के लिये करते हैं। समझ में आया? कहो, मगनभाई! यह अभी पाँचवें काल के लिये होगी यह बात? भव्य जीव कहे न! 'अन्य भी भव्य जीव' का पाठ इसमें आया है।

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रस। अर्थात् मुक्तस्वरूप अर्थात् कि दुःख का अभावस्वरूप। उसकी अन्तर में दृष्टि, निश्चय करके। निश्चय उसका ज्ञान, हों! शास्त्र ज्ञान आदि की यहाँ बात नहीं। उसका ज्ञान और उसकी अन्तर आचरण रमणता-चारित्र। ऐसा अभेदरत्नत्रयरूपी, उसे एक बोल से ध्यान कहा। समझ में आया? इस आत्मा का यह ध्यान ही एक मोक्ष का कारण है। बाकी कोई मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? देखो, वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती, प्रतिवासुदेव, तीर्थंकर भी और भव्य जीव। वे स्वयं ही अन्तर में, भले गृहस्थाश्रम में हो, परन्तु अन्तर ध्यान लगाकर जितने अंश में आत्मद्रव्य को आत्मा में एकाग्र किया है, उतना उन्हें मोक्ष का मार्ग है। वह आगे बढ़कर एकाग्र विशेष होकर मोक्ष को पाते हैं। दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग तीन काल में वीतरागमार्ग में नहीं। समझ में आया?

केवल आत्म-ध्यान ही को मोक्ष-मार्ग बतलाया है,... इसका यह योगफल किया। समझ में आया? अकेला आत्मध्यान ही मोक्ष का मार्ग है। ऐसा कहा न उसका? योगफल किया यह तो। '**सहजानन्दैकसुखरसानुभवेन पूर्णकलशवत् भरितावस्थे निरञ्जनशब्दाभिदेयपरमात्मध्याने स्थित्वा मोक्षमेव ध्यायन्ति। अयमत्र भावार्थः।**' मोक्ष का अकेला यही मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग नहीं। दो मार्ग नहीं, दूसरा कोई मार्ग नहीं, दूसरी कोई पद्धति नहीं तीनों काल में। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर्मुख निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् स्थिरता—इस रूपी ध्यान, वही मुक्ति का मार्ग है। समझ में आया?

और अपना स्वरूप ही ध्यावने योग्य है। दो बातें की। आत्म-ध्यान ही मोक्ष का मार्ग बतलाया। ध्यान किसका करना? **अपना स्वरूप ही ध्यावने योग्य है।** ऐसा। अपना आत्मा पूर्णानन्द, उसका ही ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? गजब मार्ग, भाई! सब व्यवहार के झगड़े ऐसे तूफान होते हैं कि, इससे होगा और इससे होगा। पूजा, भक्ति, व्रत और फलाना, इससे होगा, ऐसा इनकार किया। वह तो सब विकल्प उठे। वह तो विकल्प हैं, वह तो राग है। उससे आत्मध्यान होता नहीं और आत्मध्यान बिना

मुक्ति होती नहीं। दो संक्षिप्त बातें की। केवल आत्मा का ध्यान ही मोक्ष का मार्ग और ध्यान में अपना स्वरूप ही ध्यानेयोग्य। बस यह बात। ध्यान करनेयोग्य यह आत्मा अपना स्वभाव, बाकी सब पर।

तात्पर्य यह है कि यद्यपि व्यवहारनयकर प्रथम अवस्था में वीतरागसर्वज्ञ का स्वरूप अथवा वीतराग के नाममन्त्र के... यह विचार विकल्प में पहला भाव आवे। णमो अरिहंताणं, पाँच पद का ज्ञान। यह पहली अवस्था अर्थात् जहाँ दशा में विकल्प होते हैं, तब ऐसा विचार आदि आवे। **अक्षर अथवा वीतराग के सेवक महामुनि ध्यावनेयोग्य हैं,...** शुभराग, शुभ विकल्पकाल में उसका लक्ष्य करता है। **तो भी वीतराग निर्विकल्प तीन गुप्तिरूप परमसमाधि के समय अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** वहाँ तो जो शुभराग है, अन्दर दृष्टि तो है, परन्तु राग है विकल्प में, वह पंच परमेष्ठी लक्ष्य में आते हैं, ऐसे मुनि थे, ऐसे यह थे। परन्तु उसे छोड़कर स्वरूप में एकाकार होता है। तीन गुप्ति अर्थात् मन, वचन और काया से रहित वर्तमान-वर्तमान। वर्तमान मन, वचन और काया के विकल्प से रहित वर्तमान अथवा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग का जो विकल्प एक समय की पर्याय है, उससे रहित आत्मा का अन्तरध्यान, निर्विकल्प दृष्टि, शान्ति, वही मोक्ष का कारण है। समझ में आया? प्रथम विकल्पदशा में भी वीतराग परमात्मा आदि का विचार और उसका ध्यान हो। वह तो पुण्यबन्ध का कारण, परद्रव्य-अनुसारी विकल्प है। अशुभ की ओर का राग और न उत्पन्न हो, इसलिए इस प्रकार के विचार आवें, परन्तु वह मुक्ति का मार्ग नहीं।

व्यवहार मुक्ति का मार्ग साधक व्यवहार निमित्तरूप से कहा जाता है, परन्तु उसे छोड़कर आत्मा के अन्तर में त्रिगुप्तरूप से स्थित होता है, तब उसे ध्यान लगे और वह ध्यान मुक्ति का कारण, वह निर्जरा है। समझ में आया? ऐसे अन्तर शान्ति के ध्यान काल में... 'समय' है न परमसमाधि के काल में, ऐसा कहते हैं। **अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है,...** गजब बात परन्तु, भाई! **अन्य कोई भी दूसरा पदार्थ पूर्ण अवस्था में ध्यावने योग्य नहीं है।** आगे पूर्ण अवस्था होने के लिये दूसरा कोई ध्यान करनेयोग्य नहीं, ऐसा। यह आठवीं गाथा हुई। ९वीं।

★ ★ ★

गाथा - ९

अब तीन लोक में मोक्ष के सिवाय अन्य कोई भी परमसुख का कारण नहीं है,... आत्मा की पूर्ण आनन्ददशारूपी मुक्ति, उसमें सुख है, इसके अतिरिक्त कहीं तीन काल में अन्यत्र सुख नहीं। **ऐसा निश्चय करते हैं—**

१३५) तिहुणयि जीवहँ जत्थि णवि सोक्खहँ कारणु कोइ।
मुक्खु मुएविणु एक्कु पर तेणवि चिंतहि सोइ॥ ९॥

अन्वयार्थ :- तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है,... कहो, लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब, कीर्ति, वह सुख का कारण नहीं। भोग, चक्रवर्तीपद भरत आदि, वह कोई सुख का कारण नहीं। सुख का कारण तो एक मोक्ष की दशा। **एक सुख का कारण मोक्ष ही है, इस कारण तू नियम से एक मोक्ष का ही... 'परं एकं तम् एव'** एक मोक्ष की निर्मल आनन्द पर्याय, उसे प्रगट करने का ध्यान कर। दूसरा कोई करनेयोग्य नहीं। आहाहा! उसका चिन्तवन। चिन्तवन शब्द से एकाग्रता है, हों! चिन्तवन शब्द से विकल्प की बात नहीं।

भगवान आत्मा मोक्ष की पर्याय को ध्यावे, चिन्तवन करे अर्थात् पूर्ण आनन्द की पर्याय को ध्यावे अर्थात् कि पूर्णानन्द का स्वभाव आत्मा, उसमें एकाग्र हो। इसका नाम पूर्ण मोक्ष की पर्याय को ध्याता है, ऐसा कहा जाता है। भारी सूक्ष्म, भाई! अकेला आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा के अतिरिक्त भी है क्या तब? तेरे पास आत्मा के अतिरिक्त क्या है? तेरे पास आस्रव नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। तेरे पास तो आत्मा है। कहो, भीखाभाई! कितने ही कहे, आत्मा ही आत्मा माँडते हैं। अभी एक कोई महिला आयी थी न। एक महिला आयी थी। यहाँ तो आत्मा की ही बात है, कहे। पूजा, भक्ति, यात्रा करने की या उसकी कुछ महिमा? परन्तु तेरे पास है क्या? वह कह। अथवा तू है क्या? तू तो ज्ञान आनन्दकन्द ऐसा आत्मा तू है, तेरे पास या तू तो यह है। अब तुझे उसकी माँडनी है या पुण्य-पाप और शरीर-वाणी तेरे नहीं, उनकी माँडनी है, कह? वहाँ बैठे नहीं। तू है कौन या तेरे अतिरिक्त दूसरी वस्तु की बात करे? पुण्य-पाप के विकल्प वे आत्मा नहीं। देह की क्रिया आदि होती है, वह आत्मा नहीं, वह तो जड़ है।

समझ में आया? यात्रा में शरीर आदि चले, वह तो जड़ की क्रिया है। उसमें शुभ विकल्प उठे तो आस्रवतत्त्व है। अब तू है कौन? तू तो ज्ञानानन्द शुद्धस्वभाव एकरूप आत्मा। वह तो आत्मद्रव्य कहा इन्होंने। शुद्ध ज्ञान एक स्वभावी भगवान आत्मद्रव्य। वह तू है, उसकी माँडनी है या तुझे किसकी माँडनी है, कह? समझ में आया? कहो, धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? लोग बात करे। वह तो भाव उसे आये बिना रहता नहीं। जब तक स्थिरता नहीं, इसलिए भाव आवे, परन्तु वह भाव आवे, वह मुक्ति का कारण नहीं। समझ में आया? वह बन्ध का, पुण्यबन्ध का कारण है, बात ऐसी है। आवे तो सही, पूर्ण वीतराग न हो तब, स्थिर न हो, तब भाव तो होता है, परन्तु वह आत्मा नहीं, इसलिए आत्मा के समीप में वह काम कर सके, ऐसा नहीं। उसके लक्ष्य से आत्मा के समीप में जाया जाये, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह शुभ आस्रव लक्ष्य या देह की क्रिया, उसके लक्ष्य से आत्मा के समीप में जाया जाये, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं यहाँ तो। हवा किसकी परन्तु? वह शुभभाव की है। किसकी हवा?

मुमुक्षु : हल्का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्का-फल्का। हल्का राग है उसमें हल्का आया कहाँ? वह तो विकल्प है, वह स्वयं तो है नहीं। स्वयं है नहीं उसमें हल्का कहाँ से आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो आस्रवतत्त्व स्वयं है नहीं। अब स्वयं है नहीं और हुआ, इसलिए हल्का कहाँ हुआ परन्तु उसमें? वह तो सम्पूर्णतः भार हुआ। नहीं उसे लगाया। बात तो भाई ऐसी है जरा। समझ में आया? निश्चय मार्ग के अन्दर सिद्ध हो सकता नहीं तो ऐसा शुभभाव होता अवश्य है, परन्तु वह आत्मा के समीप में जाने का कारण नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा की परमानन्द की पर्याय मोक्ष, उसका विचार ध्यान करना है। अब उसकी परमानन्द की पर्याय ऐसी अपनी पर्याय पड़ी है द्रव्य में। समझ में आया?

पड़ी है द्रव्य में, उसमें से प्रगट करनी है। वह कहीं शुभराग में, निमित्त में, उसमें कहीं पड़ी नहीं। नवनीतभाई! आहाहा! मोक्ष की पर्याय अर्थात् पूर्ण शुद्ध आनन्द, ज्ञान आदि की पूर्णता। वह पूर्ण की पर्याय कहाँ राग में—शुभराग में पड़ी है कि उसका एक ध्यान करे? कहीं बाहर में पड़ी है कि उसका ध्यान करे? आहाहा! भगवान आत्मा में वह शुद्ध अनन्त... अनन्त... अनन्त... मोक्ष की पर्यायें सब अन्दर पड़ी हैं। समझ में आया? जहाँ है, वहाँ नजर डाले तो निकले। जहाँ नहीं, वहाँ नजर डाले तो कैसे निकले? समझ में आया? लोगों को—अकेले व्यवहार के पक्षकार को कठिन लगे ऐसा है... इसलिए लोग कहते हैं न, अरे! व्यवहार लोप हो जाता है। परन्तु वह व्यवहार हो, उसका लोप करे और अन्दर जाये, तब ही उसे धर्म प्राप्त होता है। तब ही, यह कहेंगे १४वीं गाथा में। तब पूर्व नय का जो विकल्प था, वह छूट गया और जब स्थिर हुआ, तब उसे पूर्ण... यह उसे व्यवहार कारण में कहा जाता है। १४वीं गाथा का अर्थ आयेगा। भाई! बात तो ऐसी है, बापू! आहाहा!

यह तू कहाँ अधूरा है कि जहाँ दूसरे के अवलम्बन लेना पड़े? ऐसा कहते हैं। तू कहाँ अपूर्ण है कि जो राग और निमित्त के अवलम्बन से तेरी पर्याय प्रगट हो? आहाहा! परन्तु बात, स्वयं ऐसा द्रव्य है, यह बात इसे बैठती नहीं। महान परमात्मा है। अनन्त एक समय की केवलज्ञान की पर्याय अनन्त चतुष्टय पर्याय, ऐसी अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... पर्याय का जो पिण्ड गर्भ में पड़ा, ऐसा मैं आत्मा हूँ। अकेला ज्ञान अर्थात् ज्ञान की एक पर्याय नहीं ली वहाँ। अकेला ज्ञान अर्थात् अकेला अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाला गुण। जिसमें अनन्त ज्ञानगुण में अनन्त परमात्मा की पर्याय जिसके गुण में पड़ी है। ज्ञानगुण में अनन्त परमात्मा केवलज्ञान की पर्यायें अनन्त हों सादि-अनन्त, वे सभी पर्यायें उस ज्ञानगुण में पड़ी हैं। आनन्द जो प्रगट हो परम आनन्द, आनन्द मुक्त में। वह एक समय की आनन्ददशा, ऐसी अनन्त समय की आनन्द दशा। एक आनन्दगुण में वे सभी दशायें पड़ी हैं। वर्तमान आनन्दगुण में अनन्त दशायें पड़ी हैं। नवनीतभाई! आहाहा!

इसी प्रकार श्रद्धागुण में क्षायिक समकित जो प्रगटे, वह अनन्त काल ऐसा का ऐसा क्षायिक समकित रहा करे। ऐसी अनन्त पर्याय श्रद्धागुण में, ऐसी क्षायिक समकित

की अनन्त पर्याय श्रद्धागुण में पड़ी है। गुण किसे कहे? और ऐसे गुण का एकरूप, वह द्रव्य। आहा! एक स्वभाव कहा था न? रात्रि में प्रश्न होता था न बहुत। समझ में आया? इक्का-इक्का। इक्का तुम्हारे है या नहीं? ताश। क्या कहलाता है वह? जीत जाये। वह क्या कहलाता है तुम्हारे खेलने का? ताश। बनियान हो गया। पहनने का बनियान और वह ताश। कहो, समझ में आया? आहाहा! इक्का जहाँ इक्का है यह। ऐसा कहते हैं, अहो! जिसके एक-एक गुण में अनन्त पर्याय प्रगट करने के सामर्थ्यवाला और उससे भी अनन्त गुण दूसरा सामर्थ्य शक्तिवाला। ऐसे अनन्त गुण का एकरूप प्रभु, उसके समीप में गये बिना मुक्ति की पर्याय जहाँ है, वहाँ से आयेगी कहाँ से? है तो वहाँ। व्रत, दया, दान आदि विकल्प है, उसमें वह पड़ी है पर्याय कि उसके लक्ष्य से वहाँ आवे?

भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप, उसे यहाँ परमात्मा कहते हैं। उसमें एकाकार मन, वचन, काय गुप्ति का अर्थ? जो विकल्प यहाँ है मन, वचन, काया के। उससे ऐसे, कोई कहे, त्रिगुप्ति वह तो किसी मुनि को हो जाये और ऐसा कहते हैं। वह तो आवे यहाँ का अर्थ जो विकल्प मन, वचन, काया सम्बन्धी के विकल्प हैं। उनसे हटकर इस ओर में चढ़ा, वह त्रिगुप्ति में आ गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वस्तु अत्यन्त अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके जहाँ अन्तर एकाग्र में आया, कहते हैं कि वह त्रिगुप्तिरूप समाधि हो जाती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी परम समाधि और त्रिगुप्ति बड़े शब्द सुनकर मानो वह तो कोई ऊँचे में होता होगा आगे। यह भगवान आत्मा अखण्ड परमात्मा परम प्रतापी प्रभु के प्रताप की प्रतीति, ज्ञान और रमणता में त्रिगुप्तिरूपी शान्ति है। ऐसे समय में अपना शुद्ध आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। देखा? उस काल में ऐसा कहे। काल में अर्थात्? आड़े-टेढ़े काल में विकल्प के विचार आवे, उस काल में वह आत्मा ध्यान करनेयोग्य नहीं हुआ वहाँ। समझ में आया? यह स्वरूप-सन्मुख की एकाग्रता के काल में ही वह आत्मा ध्यान करनेयोग्य हुआ, ऐसा कहते हैं। आत्मा, वह ध्यान करनेयोग्य हुआ तब, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है, इस कारण तू नियम से एक मोक्ष का ही चिन्तवन कर,** लो! **जिसे कि महामुनि भी चिन्तवन करते हैं।** ९वीं का अर्थ। '**परम एकं तम् एव**' '**परम एकं तम् एव**' महा शब्द हैं सब।

भावार्थ :- श्रीयोगीन्द्राचार्य प्रभाकरभट्ट से कहते हैं,... योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि थे। महा दिगम्बर सन्त आत्मध्यान में मस्त। अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त जंगल में नग्न मुनि। वे अपने शिष्य को दिगम्बर आचार्य कहते हैं। शिष्य ने पूछा था प्रभु! मुझे ऐसा बताओ, मुझे मुक्ति बताओ, मोक्ष का मार्ग बताओ और मोक्ष का फल बताओ, बस तीन। इसमें यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं। परन्तु मोक्ष की व्याख्या करते हुए मोक्ष ध्यानेयोग्य है, ऐसा कहते हुए उसका मार्ग भी साथ में बता दिया। अपने को मार्ग बतायेंगे बाद में अभी। समझ में आया? **श्रीयोगीन्द्राचार्य प्रभाकरभट्ट से कहते हैं,...** दिगम्बर महासन्त परमात्मा को आराधनेवाले। **कि हे वत्स!...** हे शिष्य! **मोक्ष के सिवाय...** परमानन्द की परिणतिरूपी मोक्ष के सिवाय **अन्य सुख का कारण नहीं है,...** इसके सिवाय कोई सुख का कारण नहीं अर्थात् कि मोक्ष हो सुख ऐसा। **और आत्म-ध्यान के सिवाय अन्य मोक्ष का कारण नहीं है,...** दो क्या कहा यह? पूर्णानन्दरूपी पर्याय के अतिरिक्त दूसरा सुख नहीं और आत्म-ध्यान के अतिरिक्त मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? ... बात भावना की है न, इसलिए बारम्बार उसके अनेक पहलुओं से बात करते हैं।

यह कहते हैं, मोक्ष के सिवाय अन्य सुखस्वरूप नहीं, ऐसा। मोक्ष के सिवाय कोई सुखस्वरूप नहीं और आत्म-ध्यान के सिवाय मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा। पूर्णानन्द की मोक्ष पर्याय, इसके अतिरिक्त कहीं सुख नहीं और आत्मा के ध्यान सिवाय कोई सुख का, मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया? यह चौथे गुणस्थान से लेकर बात है, हों! और कोई कहे, यह ध्यान और आठवें में होता होगा और फलाने में होता होगा। अभी तो यह लगे हैं सब व्यवहार मोक्षमार्ग। क्या करे? लेकर बैठे अब निकला दूसरा मार्ग। यह बाहर के व्रत और उनमें... हो गया जाओ। बापू! तू जहाँ है, तुझे काल लागू नहीं पड़ता। कि इसे चौथे काल में दूसरा मार्ग हो और पाँचवें में दूसरा मार्ग हो, ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं। और चौथे काल में फिर निर्विकल्प से मोक्ष हो, अभी सविकल्प से मोक्षमार्ग शुरु हो—ऐसे मार्ग की पद्धति भी दूसरी नहीं और काल के अन्तर से कोई मार्ग दूसरा होता नहीं। देखो न, दो ही कारण कहे। **मोक्ष के सिवाय अन्य सुख का कारण नहीं है,...** अर्थात् मोक्ष के अतिरिक्त दूसरा कहीं सुख नहीं, ऐसा। **और आत्म-ध्यान के**

सिवाय अन्य मोक्ष का कारण नहीं है,... ओहोहो! उसमें ध्येय आत्मा को बनाना, ऐसी जो ध्यान की पर्याय, वही मोक्ष का कारण है। जिसमें परम आनन्द पड़ा है। जो शक्तिरूप से मोक्ष स्वयं है, उसे ध्येय बनाकर जो ध्यान की पर्याय होती है, वह ध्यान ही मोक्ष का कारण है। आहाहा! कठिन पड़े, इसलिए लोग फिर दूसरा खोजने लगे कहीं। दूसरा कोई मिले? दूसरा कुछ मिले?

इसलिए तू वीतरागनिर्विकल्पसमाधि में ठहरकर... जितने अंश में रागरहित हुआ, उतने अंश में वीतराग हुआ, अन्तर दृष्टि में। निर्विकल्प अभेद शान्ति, स्वभाव के साथ एकरूप शान्ति। वीतराग एक समाधि में ठहरकर, **निज शुद्धात्मस्वभाव को ही ध्या।** एक निज स्वभाव भगवान का ही ध्यान कर। तेरे चौदह पूर्व और बारह अंग का यह सार है। समझ में आया? **यह श्रीगुरु ने आज्ञा की।** लो! गुरु ने यह आज्ञा की। भाई! तेरे आनन्दस्वरूप का ध्यान कर। उसमें चित्त को समाहित कर दे।

तब प्रभाकरभट्ट ने विनती की, हे भगवन्! तुमने निरन्तर अतीन्द्रिय मोक्ष-सुख का वर्णन किया है,... आप तो अतीन्द्रिय मोक्ष के सुख का ही वर्णन करते हो। **सो ये जगत के प्राणी अतीन्द्रिय सुख को जानते ही नहीं हैं,...** लो! ...भाई! **इन्द्रिय सुख को ही सुख मानते हैं।** यह धूल, इन्द्रियाँ, विषय, भोग, पैसा, शरीर, माँस, हड्डियों में मजा, मजा, ऐसे इन्द्रियसुख में अज्ञानी सुख मानता है। अतीन्द्रिय सुख की आप बात करते हो। लोगों को किस प्रकार समझ में आये कि अतीन्द्रिय सुख होगा जगत में? यह सब देखते हैं हम तो, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। समझ में आया? मावा और मेवा और पड़े हों ऐसे सब ऐसे। आहाहा! ऐसे अन्दर खाता हो और पीता हो और क्रिया होती हो जड़ की। वह तो क्रिया, हों! परन्तु उसमें उसे मजा दिखता है। भारी मजा है। उस शरीर के भोग माँस के, हड्डियों के। ऐसे वह लक्ष्य जाकर वह भोग की क्रिया जड़ की। उसमें लक्ष्य जाकर कहे, आहाहा! भारी मजा। प्रभु! हम तो इन्द्रिय सुख को जानते हैं। जगत के प्राणी तो इन्द्रिय सुख को जानते हैं। तुम और अतीन्द्रिय सुख की बात करते हो, यह वह क्या होगा? पागल हो जाये घड़ीक में तो। वहाँ पागल हो जाये कि पाँच करोड़ आये, पाँच करोड़ आये। इसलिए पाँच करोड़ ... मर गया। पागल हो जाये पागल। एक महिला को बारह हजार आये लोन में। रुपये भरे होंगे उसके बारह हजार आये। बारह

हजार। आहाहा! पागल हो गयी। ये सब पागल हो गये हैं यह सभी। यह बहुत पागल दिखाई दे, दूसरा क्या? यह जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो पागल दिखाई दें। समझ में आया? पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार, राजपाट के पीछे पागल हुए हैं, कहते हैं। गाँडा समझे? पागल। पागल-पागल हैं। ऐ धर्मचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने कभी दूसरी चीज़ क्या है, यह सुनी नहीं। सुनी उसे कहा जाता है कि बारम्बार वह क्या चीज़ है, इसके ख्याल में आनी चाहिए। समझ में आया? अनादि निगोद से लेकर यह अनुभव। निगोद से लेकर इसकी ज्ञान की पर्याय इन्द्रिय आधीन काम करती है। ऐसे तो कभी क्या है, यह तो देखा नहीं। और देखने जैसा है, ऐसा सुना ही नहीं बराबर। बराबर सुना नहीं, ऐसा। समझ में आया? इसलिए जगत इन्द्रियसुख, दुःख है, उसे सुख मानकर बैठा है।

तो कहते हैं, **इन्द्रिय सुख को ही सुख मानते हैं। तब गुरु ने कहा कि हे प्रभाकर भट्ट! कोई एक पुरुष...** का सुना। तुझे अतीन्द्रिय सुख का जरा स्थूल न्याय दूँ न्याय। **एक पुरुष जिसका चित्त व्याकुलता रहित है,...** अभी व्याकुल नहीं बैठा निश्चिन्तता से। **पंचेन्द्रिय के भोगों से रहित अकेला स्थित है,...** बैठा। **उस समय किसी पुरुष ने पूछा कि तुम सुखी हो।** कैसे भाई! ठीक है? मजा है। मजे में है। मजा है। **तब उसने कहा कि सुख से तिष्ट रहे हैं,...** बैठे हैं सुख से। ऐई! बैठे हैं। अभी चिन्ता किसी प्रकार की। कोई फिक्र नहीं, कोई कर्तव्य नहीं, कोई फिक्र नहीं, मेरे लिये इतना काम करना (ऐसी) कोई जवाबदारी नहीं। बस निश्चिन्तता से। **उस समय पर विषय-सेवनादि सुख तो है ही नहीं,...** कोई इन्द्रिय का कहेंगे स्पष्टीकरण नीचे। **उसने यह क्यों कहा कि हम सुखी हैं?** आँख का विषय नहीं, कान का सुनता नहीं, खाता नहीं, सूँघता नहीं, स्पर्श भोगता नहीं। पाँच इन्द्रिय के भोग तो हैं नहीं। बैठा है यूँ ही।

उसने यह क्यों कहा कि हम सुखी हैं। इसलिए यह मालूम होता है, सुख नाम व्याकुलता रहित का है,... जितने अंश में आकुलता स्थूलरूप से नहीं, उतने अंश में आकुलतारहित हूँ, ऐसा वह मानता है। इतना दृष्टान्त सिद्ध करना है। **सुख का मूल निर्व्याकुलपना है,...** सुख का मूल कारण तो व्याकुलतारहित है। **वह निर्व्याकुल अवस्था**

आत्मा में ही है,... वह आत्मा में है निराकुलता। **विषय-सेवन में नहीं।** यदि अब कहते हैं उस पुरुष का दृष्टान्त। **भोजनादि जिह्वा इन्द्रिय का विषय भी उस समय नहीं है,...** उसके पास। खाता नहीं, यूँ ही बैठा है। मेवा या वह मावा खाता नहीं, बैठा है। समझ में आया? ऐसे तो और काजूकतली ऐसे खाता होता है। अब तो वह भी कुछ नहीं। यह भावनगर में काजूकतली बहुत खाते हैं भाई। खाने का तो अमुक समय खाये, काजूकतली जेब में रखते हैं। भावसिंहजी थे न। हमने तो छोटी उम्र में बहुत सुना हुआ न। कोट हो, क्या कहलाता है पहनने का? कोट-पेन्ट आवे। जेब में काजूकतली रखे। समझ में आया? काजूकतली ही कहते हैं न? यह बैठा है, काजूकतली खाता नहीं।

स्त्री सेवनादि स्पर्श का विषय नहीं है,... स्त्री साथ में बैठी नहीं, अकेला बैठा है। कोई (स्त्री) याद भी नहीं कुछ। समझ में आया? **और गन्धमाल्यादिक नाक का विषय भी नहीं है,...** फूल-बूल के हार भी पहने नहीं। यों ही बैठा है। **दिव्य स्त्रियों का रूप अवलोकनादि नेत्र का विषय भी नहीं,...** सामने कोई वेश्या या उसकी स्त्री भी खड़ी नहीं कि जो ऐसे नजर करके रूप देखे। **और कानों का मनोज्ञ गीत वादित्रादि शब्द विषय भी नहीं हैं,...** वहाँ कि उसका लक्ष्य जाये। बैठा यों ही कोई। कोई पाँच इन्द्रिय के विषयों का संयोग नहीं। **इसलिए जानते हैं कि सुख आत्मा में ही है।** लो! ऐसा जानते हैं पाँच इन्द्रिय के विषय के अभावसहित बैठा हुआ सुखी मानता है। इसका अर्थ कि व्याकुलता रहित में सुख है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मन....

पूज्य गुरुदेवश्री : मन का यहाँ कहाँ काम है यहाँ? मन का हो तो मूल आनन्द में जाये। यह तो दृष्टान्त है। मन में विकल्प नहीं हो तो मूल आनन्द में जाये। यह तो दृष्टान्त सिद्ध करना है न? दृष्टान्त में मन बताते हुए अतीन्द्रिय आनन्द हो गया। वहाँ तब तो मूल आनन्द यह दृष्टान्त है, उसका सिद्धान्त तो वह करना है। मन में विकल्परहित है? समझ में आया?

यहाँ तो पाँच इन्द्रिय सम्बन्धी का बतलाते हैं, इसलिए उससे इन्द्रिय के अतिरिक्त अतीन्द्रिय बाद में। उस अतीन्द्रिय का जरा एक अंश बताया इसमें। मन भी अतीन्द्रिय है एक न्याय से। बाहर की आकुलता नहीं तो व्याकुलतारहित बैठा है। इसलिए वह विषय

व्यापार से रहित है। कहते हैं, **जो एकादेश विषय-व्यापार से रहित हैं,...** यहाँ तो इन्द्रिय का व्यापार भी अतीन्द्रिय कहना है न, भाई! इसलिए जरा इतना दृष्टान्त दिया, वह बराबर दिया है।

मुमुक्षु : मन का नहीं दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन का किसका दे? मन के विकल्प तो नहीं, मन के विकल्प नहीं उसे। यह तो सिद्धान्त सिद्ध करना है यह तो। समझ में आया? आहा! एक अंश में कुछ नहीं होता। खाता नहीं, पीता नहीं, देखता नहीं, जागता नहीं, स्पर्शता नहीं। बैठा है। तो कहते हैं कि सुखी हूँ, इसका अर्थ क्या? पाँच इन्द्रिय के विषय का भाग भोग का तो दिखता नहीं जरा, तथापि कहता है सुखी हूँ। तो इसका अर्थ हुआ कि इतने पाँच इन्द्रिय की ओर के भोग की वासनारहित है, उतनी व्याकुलतारहित, उतनी आकुलता रहित सुख है, ऐसा। कितने ही क्षण का। समझ में आया?

उनके ऐकोदेश थिरता का सुख है, तो वीतराग निर्विकल्पस्वसंवेदन ज्ञानियों के समस्त पंच इन्द्रियों के विषय... अब आया देखो! **और मन के विकल्प-जालों की रुकावट...** यहाँ तो सिद्धान्त यह सिद्ध करना है। जिसकी पाँच इन्द्रियों की ओर की प्रवृत्ति नहीं, इतने जितना वह व्याकुलतारहित दिखता है। तो जिसे पाँच इन्द्रिय और मन के विकल्परहित... समझ में आया? **मन के विकल्प-जालों की रुकावट होने पर विशेषता से निर्व्याकुल सुख उपजता है।** विशेष, वह सामान्य कहा। पाँच इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य नहीं इसलिए... यह कमाना है कि यह भी नहीं, उसे उस समय इस भोग का। अन्दर विकल्प भले अमुक हो, परन्तु यहाँ जो यह जाना है, यह करना है, वह सब नहीं। इतनी तो निर्व्याकुलता एक अंश में इन्द्रिय सम्बन्धी के भोग के अभावरूप में एक अंश में निराकुलता का सिद्धान्त सिद्ध हुआ। समझ में आया?

तो जिसे रागरहित, मन का भी राग नहीं जहाँ अब। क्योंकि मन इन्द्रियों में काम करता न ऐसे? उस मन के विकल्परहित वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन—रागरहित अपने ज्ञान के वेदन में, अपने ज्ञान के वेदन में आया। इन्द्रियों की ओर का तो नहीं, परन्तु मन की ओर इन्द्रियाँ जो मनरहित काम नहीं करती, उस मन के विकल्प भी गये और उनसे रहित आत्मा के अन्दर में एकाग्र हुआ, तब तो अभेद स्वसंवेदन हुआ। एक

आत्मा के ज्ञान का ज्ञान हुआ। आत्मा के ज्ञान का वेदन रहा। आत्मा के ज्ञान का अनुभव का वेदन, आत्मा के उस स्व विषय का वेदन रहा, पर विषय का वेदन गया। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का अंश सिद्ध करते हैं।

ज्ञानियों के समस्त पंच इन्द्रियों के विषय और मन के विकल्प-जालों की रुकावट होने पर विशेषता से निर्व्याकुल सुख उपजता है। वह सामान्य दृष्टान्त दिया था, अन्तर में रागरहित स्वरूप के समीप में एकाग्र होने से विशेषरूप से अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। उस अतीन्द्रिय सुख को सिद्ध करते हैं। **इसलिए ये दो बातें प्रत्यक्ष ही दृष्टि पड़ती हैं। जो पुरुष निरोग और चिन्तारहित हैं,...** वह पहला दृष्टान्त, उसकी बात करते हैं। **उनके विषय-सामग्री के बिना ही सुख भासता है...** एक बोल। साथ में है न कहे प्रत्यक्ष। **और जो महामुनि शुद्धोपयोग अवस्था में ध्यानारूढ़ हैं, उनके निर्व्याकुलता प्रगट ही दिख रही है,...** लो! दो सिद्धान्त सिद्ध हो गया पूरा। समझ में आया?

निरोग और चिन्तारहित दो बातें साथ में ली। समझ में आया? निरोगपना सुख का कारण की बात यहाँ बतलानी नहीं, हों! परन्तु ऐसा कि कुछ वह रोग का हो, तब तो उसकी उपाधि हो तो यह दवा करूँ या फलाना करूँ। ऐसा। पाँच इन्द्रिय के विषय नहीं, ऐसा। भूखा हो तो भूख का वह हो। यह तो खाकर बैठा है और अभी छह घण्टे खाना नहीं। दस बजे खाया हो तो शाम को खिचड़ी, कढ़ी खानी हो। यह उसकी विचारणा भी यहाँ हो नहीं घण्टे-दो घण्टे। कहते हैं कि दो दृष्टान्त सिद्ध हो गये। एक तो निरोग और चिन्तारहित, एक विषय सामग्री बिना भी सुख दिखता है उसे। वह व्याकुलता, ऐसा। **महामुनि शुद्धोपयोग अवस्था में ध्यानारूढ़ हैं,...** बिल्कुल आकुलता रहित। **उनके निर्व्याकुलता प्रगट ही दिख रही है, वे इन्द्रादिक देवों से भी अधिक सुखी हैं।** यह तो दृष्टान्त दिया, हों! इन्द्रों को सुख है, वह सुख नहीं, वह तो जहर है, राग है। इन्द्रों को, पैसेवालों को—इन धूलवालों को सुख है, वह तो राग का सुख है। राग अर्थात् जहर है, परन्तु इस आत्मा का सुख है, वह उससे विशेष बतलाने में यह माप निकालते हैं। यह साधारण है और यह तो अलौकिक है। **इन्द्रादिक देवों से भी अधिक सुखी हैं।** समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रादि जैसा। यहाँ तो आत्मा की बात लेनी है। आत्मा की बात। वह तो दृष्टान्त में गया। यहाँ तो आत्मा की बात लेनी है। उसकी कहाँ बात होती है? 'वे' अर्थात् आत्मा। उसका क्या काम है अभी? ... सुख कब था? यहाँ तो एक सुख बाहर की पाँच इन्द्रियों के विषयों से रहित है, इतना आकुलता का अंश बताकर आकुलतारहित है। निराकुल सुख है आत्मा का जो इन्द्रों को भी नहीं, ऐसा। समझ में आया? वह कहाँ वहाँ इन्द्र जैसा सुखी था?

इस कारण जब संसार अवस्था में ही सुख का मूल निर्व्याकुलता दिखती है,... संसार में भी इतने अंश में व्याकुलतारहित सुख दिखता है, **तो सिद्धों के सुख की बात ही कहाँ है?** तो मुनियों को यहाँ संसार अवस्था में भी जरा जितना ऐसा रागरहित होकर हटकर अन्तर उपयोग में आया, उतना आनन्द दिखता है, (तो) पूर्णानन्द की क्या बात करना? समझ में आया? **सिद्धों के सुख की बात ही कहाँ है? यद्यपि वे सिद्ध दृष्टिगोचर नहीं हैं,...** अनुमान से बात करते हैं अब। **तो भी अनुमान कर ऐसा जाना जाता है, कि सिद्धों के भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म नहीं,...** देखो! एक आत्मा है, उसे जड़कर्म नहीं, विकल्प के भावकर्म नहीं और शरीर नहीं। **तथा विषयों की प्रवृत्ति नहीं है,...** तीन का सम्बन्ध नहीं, विषय की प्रवृत्ति नहीं। **कोई भी विकल्प-जाल नहीं है,...** मन की जाल नहीं। **केवल अतीन्द्रिय आत्मीक-सुख ही है,...** इससे सिद्ध को अनन्त सुख है, ऐसा सिद्ध होता है, ऐसा कहते हैं। **वही सुख उपादेय है,...** लो! वही आनन्द आत्मा को आदरणीय है। धर्मी जीव को एक आनन्द, यही आदरणीय। **अन्य सुख सब दुःखरूप ही हैं।** चार गति के सुख कल्पना के, वे तो दुःख, दुःख और दुःख हैं। **जो चारों गतियों की पर्यायें हैं, उनमें कदापि सुख नहीं है। सुख तो सिद्धों के हैं,...** परमात्मा पूर्णानन्द में जहाँ विकल्प-जाल नहीं, पाँच इन्द्रिय के विषय नहीं, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म नहीं। अकेले रहने का सुख है, ऐसा कहते हैं। अकेले रहु हुए को सुख है। इसी प्रकार यहाँ अकेला विकल्परहित हो तो उसे सुख है। समझ में आया?

या महामुनीश्वरों के सुख का लेशमात्र देखा जाता है,... यह अतीन्द्रिय पूर्ण को सिद्ध करने के लिये। महा धर्मात्मा को अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द का लेश अनुभव में

आता है, तो परमात्मा को पूर्णानन्द (होता है)। **दूसरे के जगत की विषय-वासनाओं में सुख नहीं है...** ऐसे दूसरे ... चक्रवर्ती या इन्द्र, उसमें कहाँ वासना में सुख नहीं।

ऐसा ही कथन श्रीप्रवचनसार में किया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (ने किया है) **कि जो शुद्धोपयोगकर प्रसिद्ध ऐसे श्रीसिद्धपरमेष्ठी हैं,...** शुद्धोपयोग से प्रसिद्ध हुए, प्रगट हुए। पुण्य-पाप के अशुद्ध उपयोग से रहित। पुण्य-पाप के भाव अशुद्ध उपयोग हैं, अशुद्ध आचरण हैं। उस अशुद्ध आचरणरहित, शुद्ध शुद्धोपयोग का आचरणरूप सिद्ध भगवान परमेष्ठी सिद्ध परमेष्ठी हैं। **उनके अतीन्द्रिय सुख है, वह सर्वोत्कृष्ट है, और आत्मजनित है,...** यह आया था कल। यह आत्मा के आनन्द से उत्पन्न हुआ, इसलिए आनन्द के साथ सदा ही आत्मा के साथ रहनेवाला। **तथा विषय-वासना से रहित,...** भगवान आत्मा का सुख है। वह मोक्ष की महिमा बताते हैं। ऐसा मोक्ष तुझे ध्यान करनेयोग्य है, उस मोक्ष का ध्यान अर्थात् कि आत्मा में एकाग्र होने योग्य है, ऐसा। **अनुपम है,...** इस भगवान आत्मा को सुख उपमारहित अतीन्द्रिय है। लो! **जिसके समान सुख तीन लोक में भी नहीं है,...** सिद्ध के अतीन्द्रिय स्वभावी स्वसमीप से प्रगट हुआ, ऐसे सुख की उपमा तीन लोक में किसी जीव की उसे हो नहीं सकती। आहाहा!

जिसका पार नहीं... जिसके अतीन्द्रिय आनन्द का पार किसका हो परन्तु? अपनी आत्मा की पर्याय से प्रगट हुआ और वह पर्याय अपार है... अपार है... अपार है... पार क्या? जहाँ स्वभाव का अंश है, त्रिकाल स्वभाव जहाँ अपार है, उस पर्याय स्वभाव का सुख का काम ही वह अपार है। एक समय के अतीन्द्रिय सुख के स्वभाव का अपार (सुख उसकी)। हद क्या? **ऐसा बाधारहित सुख...** ऐसा विघ्नरहित सुख, **सिद्धों के है।** इसलिए मोक्ष में सुख है, इसलिए मोक्ष के सुख को उपादेय माननेवाले, उसने भगवान आत्मा को पहिचानकर उसका ध्यान करना। उसने मोक्ष को उपादेय माना कहलाता है। वरना पुण्य-पाप को आदरणीय मानकर भटके, उसे आर्तध्यान और रौद्रध्यान होता है। मोक्ष का ध्यान करे, उसे आत्मा का ध्यान होता है। उसे सम्यग्ज्ञान, दर्शन का ध्यान होने से उसे मुक्ति का कार्य प्रगट होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

मागसर कृष्ण १४, मंगलवार, दिनांक - २१-१२-१९६५
गाथा - १० से १३, प्रवचन - ८२

गाथा - १०

आगे जिस मोक्ष में ऐसा अतीन्द्रियसुख है, उस मोक्ष का स्वरूप कहते हैं—हे प्रभाकर भट्ट! ऐसा कहते हैं।

१३६) जीवहँ सो पर मोक्खु मुणि जो परमप्पय-लाहु।
कम्म-कलंक-विमुक्काहँ णाणिय बोल्लहिँ साहू॥ १०॥

आत्मा, वस्तुस्वरूप से तो आत्मा अतीन्द्रिय सुख की शक्तिस्वरूप है। आत्मा वस्तु स्वयं शक्तिस्वरूप से अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है वह। शक्तिरूप से उसके सत्वरूप से। परन्तु उसके अतीन्द्रिय आनन्द की दशा की पर्याय प्रगट मोक्षदशा में होती है। समझ में आया? शक्तिरूप से जो अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है, उसकी प्रगटता मोक्षपर्याय में पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की दशा होती है। इसलिए कहते हैं कि अतीन्द्रिय सुख मोक्ष का स्वरूप कहते हैं।

अन्वयार्थ :- जो कर्मरूपी कलंक से रहित जीवों को जो परमात्म की प्राप्ति है... देखो! मोक्ष की व्याख्या। विकार और विकल्परहित आत्मा शक्तिरूप से अतीन्द्रिय आनन्दमय है। उसकी पर्याय में पूर्ण आनन्द की पर्याय की प्राप्ति, उसे परमात्मा का लाभ हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

परमात्मा शक्तिरूप से तो स्वयं परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, परन्तु पुण्य-पाप के विकल्प और कर्मरहित होकर उस शक्ति में एकाग्रता होने से जो परमात्मा की पूर्ण पर्याय का लाभ, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसे परमात्मा का लाभ हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? अनादि से पुण्य-पाप के विकार का लाभ है। विकार का लाभ और उस लाभ में भ्रान्ति है कि वह मुझे सुख है। ऐसा जो आत्मा के स्वरूप से विपरीत मान्यता और राग-द्वेष, वह आत्मा को दु:खरूप दशा की प्राप्ति है, उसका

नाम संसार है और आत्मा को पूर्णानन्द का स्वरूप उसका जो है अन्तर (में), उसकी शक्ति की व्यक्तता अन्तर्मुख होकर प्रगट दशा का होना, उसे परमात्मा का लाभ, अतीन्द्रिय सुख का लाभ (कहते हैं)। अब मोक्ष का स्वरूप अतीन्द्रिय सुखमय है, उसका उसे लाभ हुआ, ऐसा कहा जाता है। देखो, लाभ तो कहा यह। दुनिया नहीं कहती कि लाभ सवाया, (ऐसी) बातें नहीं करते? यह धूल-बूल मिले न पाँच, पचास लाख, एक करोड़ की। क्या कहते हैं? लाभ-लाभ। लक्ष्य लाभ, लो! उसका लक्ष्य वहाँ था तो लाभ हुआ धूल में।

मुमुक्षु : लाख का, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाख, अब लाख की अभी कहाँ गिनती थी अभी तो? अभी तो करोड़ों और बड़ा पचास करोड़ और लाख और धूल के सब अंक बड़े गिनने लगे हैं बड़े। कहते हैं कि उसका लाभ ऐसा जो अन्दर भाव हो (कि) यह मुझे लाभ हुआ, उसे दुःख का लाभ अन्दर दशा में हुआ। समझ में आया? पैसे का लाभ, स्त्री का लाभ, पुत्र का लाभ, कीर्ति का लाभ, ऐसा जो अन्दर भाव कि यह मुझे लाभ हुआ। वह भाव दुःख के भाव का लाभ उसे है। कहो, क्या होगा इसमें?

मुमुक्षु : .... कैसे लगता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लगाता है इसलिए लगता है। एक जरा-सा कुछ गर्दन ऐसे खिसके, वहाँ ऊं... ऊं...। आत्मा में दो प्रकार के लाभ। यहाँ मोक्ष के लाभ की व्याख्या है। मोक्ष की व्याख्या क्या की? कर्मरूपी कलंकरहित जीव को परमात्मा का लाभ। देखा?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति स्वयं आत्मा, परन्तु वह शक्ति है, उसे शक्ति का वह स्वाद प्रगट हुए बिना नहीं आता। समझ में आया? पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराई की शक्ति है, परन्तु ऐसे दलने से उसका स्वाद नहीं आता। चौसठ पहरी, पीपर में चौंसठ पहरी शक्ति है उसमें चरपराई की। ऐसे खाने लगे तो उसका स्वाद चौंसठ पहरी का नहीं आवे। उसे घिसकर प्रगट करे, तब चौंसठ पहरा स्वाद आता है। समझ में आया? उसी प्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की ही मूर्ति, वह तो

अतीन्द्रिय आनन्द शक्तिरूप से पड़ा है। वह सीधा अकेले द्रव्य को चाटने जाये तो उस द्रव्य में स्वाद ऐसे नहीं आता। उस द्रव्य में एकाग्र सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा रमण करने से जो शक्ति में से प्रगट आनन्द थोड़ा होकर, फिर उसमें से पूर्ण आनन्द प्रगट हो, उसे आत्मा का अतीन्द्रिय सुख का लाभ, उसे परमात्मा का लाभ हुआ, ऐसा कहा जाता है। ओहोहो! समझ में आया?

उसी को नियम से तू मोक्ष जान,... शिष्य को गुरु कहते हैं, हे भाई! उस आत्मा की अतीन्द्रिय सुख की दशा का लाभ हो, उसे तू मोक्ष जान। आहाहा! समझ में आया? **ऐसा ज्ञानवान् मुनिराज कहते हैं,...** स्वयं भी कहते हैं। ज्ञानी के साधु, धर्मात्मा सन्त, उन्हें आत्मा के आनन्द का लाभ हुआ, ऐसा मुनिराज कहते हैं।

भावार्थ :- केवलज्ञानादि अनन्त गुण प्रगटरूप जो कार्यसमयसार... कार्यसमयसार अर्थात् मोक्ष। **केवलज्ञानादि अनन्त गुण प्रगटरूप जो कार्यसमयसार अर्थात् शुद्ध परमात्मा का लाभ...** ऐसी उसकी व्याख्या। पाठ में ऐसा है न परमात्मलाभ। परमात्मलाभ की व्याख्या कि केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि प्रगटरूप जो कार्य पर्याय, उसका नाम शुद्ध परमात्मा का लाभ और उसे मोक्ष कहा जाता है। समझ में आया? ओहो! दुनिया को तो जरा कुछ राजपाट, पैसा कुछ मिला धूल का, हमको लाभ हुआ। किसका? ममता का। किसका? दुःख का। ऐसा होगा? नेमिदासभाई! दुःख का लाभ, यह अनात्मा का लाभ।

मुमुक्षु : ....अनुकूल लाभ हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न, उसके पास राग हुआ, ममता हुई (कि) यह आया... यह आया। इसलिए अनात्मा का लाभ हुआ। यह मोक्ष अर्थात् आत्मा का लाभ, परमात्मा का लाभ कहो या आत्मा का लाभ कहो। समझ में आया? यह सब व्याख्या भी अलग। देखो, भगवान आत्मा केवलज्ञान आदि अनन्त गुण का स्वरूप तो शक्तिरूप है। उसकी प्रगटतारूप कार्यसमयसार अर्थात् कारण प्रभु त्रिकाल ज्ञानानन्द से भरपूर तत्त्व है, उसमें एकाग्र होकर जो कार्यरूप पर्याय, समयसार अर्थात् आत्मा कार्यरूप से पूर्ण हुआ, उसे परमात्मा के लाभरूपी मोक्ष कहा जाता है। ओहो! आचार्य ने क्या शब्द

प्रयोग किये हैं, देखो न! '**परमप्पय-लाहु**' '**परमप्पय-लाहु**' परम पद का लाभ। यह भाषा। समझ में आया?

यह मोक्ष भव्यजीवों के ही होता है। अभव्य को नहीं होता। अब कैसे भव्य को होता है? कि **भव्य कैसे हैं कि पुत्र कलत्रादि परवस्तुओं के ममत्व को आदि लेकर सब विकल्पों से...** दुःखभाव। **पुत्र कलत्रादि परवस्तुओं के ममत्व को आदि लेकर सब विकल्पों से...** अर्थात् ममत्व अर्थात् दुःखभाव, उससे **रहित जो आत्म-ध्यान उससे जिन्होंने...** आत्मा में आनन्द की एकाग्रता जिसने की। समझ में आया? भगवान महान सत्ता आनन्दस्वरूप में जिसने एकाग्रता, सर्व विकल्प जो दुःख है, उनसे रहित आत्मा के पूर्ण आनन्द शक्ति में जिसने एकाग्रता, अनाकुल शान्ति, अनाकुल सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति, उस द्वारा जिसने एकाग्रता की, ऐसा जो आत्मध्यान। समझ में आया?

उससे जिन्होंने भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी कलंक क्षय किये हैं,... उस द्वारा जिसने पुण्य-पाप के विकल्प, वह भावकर्म (और) जड़कर्म निमित्त, उसका नाश हुआ। वस्तु के स्वरूप का विकल्परहित ध्यान करने से जिसे भावकर्म, द्रव्यकर्म का नाश हुआ। कर्म कलंक शब्द है न पाठ में? समझ में आया? '**कम्म-कलंक विमुक्काहँ**' **ऐसे जीवों के निर्वाण होता है,...** ऐसे जीव को आत्मा के आनन्द की प्राप्तिरूप निर्वाण होता है। आहाहा! **ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।** ऐसा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ सन्त आदि कहते हैं।

यहाँ पर अनन्त सुख का कारण होने से मोक्ष ही उपादेय है। लो! यह अनन्त सुख परमानन्द की पर्याय प्रगट हो, ऐसा जो परमात्म लाभ, वही आदरणीय है। वह आदरणीय करनेवाले को—आत्मद्रव्य में एकाग्र हो, उसने—मोक्ष की परमानन्ददशा को उपादेयरूप से स्वीकारा है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? **अनन्त सुख का कारण होने से मोक्ष ही उपादेय है।** मोक्ष ही अनन्त सुखरूप है। मोक्षदशा, वह अनन्त (सुखरूप), वह उपादेय है। अंगीकार करनेयोग्य अथवा उत्पन्न करनेयोग्य है। ऐसा उत्पन्न करनेयोग्य है, ऐसा जो मानता है, उसकी आत्मा अतीन्द्रिय भगवान आत्मा में लीनता हुई है। वह लीनता हुई है, उसने मोक्ष की पर्याय को उपादेयरूप से जाना, माना कहा जाता है। कहो, समझ में आया? जो कोई राग और द्वेष तथा पुण्य और पाप में

एकाग्र होकर पड़ता है, उसने संसार के दुःख को उपादेय माना है। आहाहा! कहो, दुनिया में तो यह बात भारी पड़े।

मुमुक्षु : भारी हो गयी बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपादेय मानता है। अनुभव करता है, इसका अर्थ हुआ न आदरणीयरूप से अनुभव करता है। यहाँ आनन्द को अनुभव नहीं करता।

मुमुक्षु : दुःख किसको सुहावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : (नहीं) सुहावे। परन्तु दुःख का भान नहीं कि यह दुःख कैसे, इसकी खबर कहाँ है उसे? विकल्प और भ्रमणा जो उठते हैं, वे सब दुःख हैं। उनमें एकाकार होता है, इसका अर्थ ही उसने उपादेय माना, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ तो मोक्ष के स्वरूप की तीन गाथायें, ऐसी पहले मोक्ष के स्वरूप की आयेगी, अन्तिम मोक्ष के फल की आयेगी, और बाद में आयेगी मोक्ष के मार्ग की तीन गाथायें एक साथ... उस मोक्ष का स्वरूप यह कि परम आनन्दस्वरूप दशा। वह जो उपादेयरूप से प्रगट करनेयोग्य है, ऐसा माने, उसकी दृष्टि अनन्त आनन्दमय आत्मा के ऊपर उसका ढलना, एकाग्र होना होता है। तब वह परमात्मा के पूर्ण लाभ को स्वीकार करता है अथवा मोक्ष को स्वीकार करता है। और इसके अतिरिक्त जिसने पुण्य और पाप के विकल्प और जड़कर्म तथा संयोग, वे मुझे ठीक हैं—ऐसा जो मानता है, उसकी वर्तमान दशा में भ्रमणा को, विकार को उपादेयरूप से अनुभव करता है, दुःख को अनुभव करता है। उसे अनात्मा का लाभ होता है, इसे आत्मा का लाभ होता है, ऐसी दो बातें हैं इसमें। समझ में आया? लाभ तो होता है। यहाँ तो वह परमात्म लाभ आया न, इसीलिए उसके सामने जरा (यह बात की)। भगवान आत्मा अनन्त आनन्द महा प्रभु चैतन्यस्वरूप शक्ति का तत्त्व, उसकी जिसने अन्तर में एकाग्रता की, उसने ही मोक्ष की पूर्ण पर्याय आदरणीय और उत्पन्न करनेयोग्य मानी है। नवरंगभाई! इसके अतिरिक्त जो यह पुण्य और पाप के विकल्प, वे मुझे ठीक हैं, उनका बन्धन मुझे ठीक है, उनके फल मुझे ठीक हैं, यह धूल आदि के—ऐसा माननेवाला, वह दुःख को

अनुभव करता है अर्थात् दुःख को उपादेय मानता है। कहो, क्या कहना है इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे पूछे परन्तु? पागल को क्या पूछे? पागल को पूछे कि तू पागल है? तो वह कहे पागल हूँ? समझ में आया? वह तो कहे, मैं चतुर हूँ। पागल किसे कहते हो तुम? आहाहा! एक परमात्म लाभ शब्द रखकर आचार्य कितना कहना चाहते हैं! परम आत्म लाभ, परम स्वरूप का लाभ, ऐसा। परम आत्म लाभ, परमात्म लाभ। परमात्मप्रकाश है न? इस शब्द से उसे परम स्वरूप का लाभ अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसे परमात्मा का लाभ, उसे मोक्षस्वरूप कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

और जिसे उससे उल्टा शुभाशुभ परिणाम जो आस्रवतत्त्व है, वह दुःखरूप है, आकुलता है, उसमें एकाग्र होता है, वह दुःख को ही उपादेय मानता है। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? यह मोक्ष के स्वरूप की वहाँ व्याख्या पूरी हुई इस गाथा से। समझ में आया? 'मोक्ष कहा निज शुद्धता' श्रीमद् ने कहा न 'मोक्ष कहा निज शुद्धता।' यहाँ कहा कि मोक्ष परमात्मस्वरूप का लाभ। भगवान आत्मा का परमस्वरूप जो अन्दर आनन्द है, उसका पर्याय में परम स्वरूप का अतीन्द्रिय आनन्द का लाभ, उसे मोक्ष कहा जाता है। बहुत सादी-सीधी बात है। कहो, ...भाई! यह पैसे के लाभ में कहाँ डालना इसमें? उसे कितना सुखी कहना? अब यह सब बहुत कहते हैं यह। करोड़ोंपति और ढींकणापति और धूलपति। मेरा ठीक है, ऐसा कहते हैं लोग, लो! भगवान कहते हैं कि दुःखपति है। यह सुख का पति मोक्षदशा, वह पूर्णानन्द के लाभ का स्वामी है। आहाहा! समझ में आया?

यह उसे लाभ हुआ लाभ। उसको लाभ तो है दुःख का, मीठा जहर। आहाहा! यह सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहा होने पर भी चक्रवर्ती के राज में और उसकी ओर के राग में वह सुखबुद्धि उसे है नहीं। आहाहा! उसका खिंचाव अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि में पड़ा है। समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द आत्मद्रव्य है, उसके भान में उसे अतीन्द्रिय आनन्द सुख का लालच है। इसलिए रागादि और बाह्य के संयोग में सुखबुद्धि

और उसका मुझे सुख का लाभ हुआ, ऐसा ज्ञानी नहीं मानता। आहाहा! शुभराग हुआ या शुभराग का पुण्य बँधकर फल आया, मुझे लाभ हुआ—ऐसा सम्यग्दृष्टि नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? जितने अंश में परमस्वरूप भगवान आत्मा की एकाग्रता होकर जो लाभ हुआ, उतना आंशिक लाभ समकिती अपने को मानता है। पूर्ण लाभ परमात्मदशा हो वह (है)। आहाहा! समझ में आया? बहुत सरस व्याख्या आयी इस गाथा (में), हों! '**परमात्मलाभः परमप्पय-लाहु**' ... '**परमप्पय-लाहु**' लाभ हुआ। आहाहा! इस शक्ति में भगवान था और उसे पर्याय में प्रगट किया, वह तुझे परमात्मा का लाभ हुआ। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ११

अब यहाँ **इस प्रकार मोक्ष का फल और मोक्ष-मार्ग का जिसमें कथन है, ऐसे दूसरे महाधिकार के दस दोहों में मोक्ष का स्वरूप दिखलाया।** मोक्ष की व्याख्या अभी पूरी हुई। अब जरा मोक्ष के फल की एक गाथा की और पश्चात् मोक्ष के मार्ग की व्याख्या करेंगे।

आगे मोक्ष का फल अनन्त चतुष्टय है, यह दिखलाते हैं—

१३७) दंसणु णाणु अणंत-सुहु समउ तुट्टइ जासु।
सो पर सासउ मोक्ख-फलु बिज्जउ अत्थि ण तासु॥ ११॥

अन्वयार्थ :- जिस मोक्ष-पर्याय के धारक शुद्धात्मा के... क्या कहा? पहले मोक्षपर्याय का—मोक्ष का स्वरूप कहा, अब उसका फल। कहते हैं कि वह मोक्ष की पर्याय जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य—ऐसा अर्थ ले लेना। **केवलदर्शन, केवलज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य इन अनन्त चतुष्टयों को आदि देकर अनन्त गुणों का समूह एक समयमात्र भी नाश नहीं होता, अर्थात् हमेशा अनन्त गुण पाये जाते हैं।** यह उसका फल है। समझ में आया? यह परमात्म लाभ जो अनन्त ज्ञान, दर्शन आदि का हुआ, अब एक समयमात्र भी चूकेगा

नहीं। यह उसका फल है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

एक समयमात्र भी नाश नहीं होता, अर्थात् हमेशा अनन्त गुण पाये जाते हैं। उस शुद्धात्मा के वही निश्चय से हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है,... यह फल आया वह हमेशा रहेगा इसलिए उसका नाम मोक्ष का फल, ऐसा। यह धूल आवे और राग आवे और चला जाये और चला जाये, जाये और आये, (ऐसा) हुआ करे, वह कहीं वास्तविक फल नहीं है। भगवान आत्मा अपने में शक्तिरूप से आनन्द और केवलज्ञान है, उसे एकाग्रता द्वारा खींचकर पर्याय में प्रगट किया। ऐसे अनन्त आनन्दमय परमात्मा का लाभ हुआ, वह लाभ अब कभी नाश नहीं होगा। यह इसका फल। आहाहा! समझ में आया?

हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है,... शाश्वत् फल ऐसा। यह पर्याय अब शाश्वत् रहेगी, ऐसा कहना है। यह उसका फल, ऐसा। वस्तु भगवान आत्मा के गहरे-गहरे गोदाम में अनन्त आनन्द पड़ा था। गोदाम जैसा मकान बड़ा आया न, इसलिए याद आया। समझ में आया? अन्दर अन्तर अनन्त आनन्द जिसकी खान में पड़ा था। गहरा अर्थात् शक्तिरूप, ऐसा, पश्चात् प्रगट नहीं, ऐसा। उसकी एकाग्रता द्वारा, मोक्षमार्ग द्वारा जिसे मोक्ष की पर्याय पूर्ण प्रगट हो गयी, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप उस परमात्मा का लाभ, वह मोक्ष। अब वह नहीं टूटता, यह मोक्ष का फल। वह शाश्वत् ऐसी की ऐसी पर्याय है, वह शाश्वत् अर्थात् पर्याय भले बदले, परन्तु वह की वह... वह की वह... वह की वह... वह की वह... ऐसी सादि-अनन्त रहनेवाली। समझ में आया? ... ... को प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी रहनेवाली। समझ में आया?

हमेशा रहनेवाला मोक्ष का फल है, इसके सिवाय दूसरा मोक्षफल नहीं है, और इससे अधिक दूसरी वस्तु कोई नहीं है। इससे कोई अधिक चीज़ नहीं कि जो इसके फल में अब कचाश करे। यह पूर्ण हुआ, ऐसा का ऐसा, ऐसा का ऐसा सादि-अनन्त जब से....

सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में,
अनन्त दर्शन ज्ञान अनन्त सहित जो।

अनन्त दर्शन-ज्ञान ऐसा सुख, वह अतीन्द्रिय सुख, ऐसा का ऐसा कायम रहे, वह मोक्षस्वरूप का फल कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह दुनिया तो ऐसा कहे कि लक्ष्मी आ जाये न अभी तो हम सुखी हैं, ऐसा कहे न? धूल में भी नहीं। एक व्यक्ति कहे कि हमारे तो बस, सौ पेढ़ी से पैसा पैदा करते हैं तो भी कम पड़े ऐसा कुछ नहीं। प्रतिदिन लाख पैदा करे, प्रतिदिन लाख पैदा करे। सौ वर्ष में कम पड़े ऐसा नहीं, सौ पेढी में। धूल में भी नहीं। अब तू कहाँ रहनेवाला और वे कहाँ रहेंगे... ? समझ में आया?

भावार्थ :- मोक्ष का फल अनन्त ज्ञानादि जानकर समस्त रागादिक का त्याग करके उसी के लिये निरन्तर शुद्धात्मा की भावना करनी चाहिए। लो! मोक्ष का फल अनन्त आनन्द शाश्वत् रहनेवाला जानकर पुण्य-पाप के विकल्प से रहित भगवान आत्मा को—शुद्धात्मा को उपादेयरूप से ध्यान करनेयोग्य है। उसकी भावना। भावना कहो या एकाग्रता; एकाग्रता कहो या ध्यान कहो। निरन्तर भगवान आत्मा की भावना अर्थात् कि एकाग्रता अर्थात् कि उसे ध्येय करके ध्यान करना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष का फल शाश्वत् ऐसा आनन्द है, ऐसा जानकर... पहले में ऐसा कहा कि मोक्ष की पर्याय ऐसी है, वही उपादेय करना। उपादेय करना वह कि आत्मा के द्रव्य में एकाग्र होना। यहाँ कहते हैं, वह भी मोक्ष के फल की ऐसी स्थिति जानकर आत्मा को अपने द्रव्यस्वभाव की भावना करना कि जिस भावना से मोक्ष मिले और मोक्ष का फल ऐसा का ऐसा रहे। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है न यह तो?

इस प्रकार दूसरे महाधिकार में मोक्ष-फल के कथन की मुख्यताकर एक दोहा-सूत्र कहा। एक दोहे में फल पूरा किया। फल एक दोहे में पूरा किया। मोक्ष का स्वरूप दस दोहों में कहा था। अब मोक्ष का मार्ग आया। मोक्ष का स्वरूप कहा, मोक्ष का फल कहा, अब उसका मार्ग। किस रास्ते जाने से मोक्ष की नगरी को प्राप्त हुआ जाता है? मोक्षरूपी अतीन्द्रिय आनन्द की नगरी को किस रास्ते जाने से प्राप्त हो? वह रास्ता अब कहते हैं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - १२

आगे उन्नीस दोहापर्यन्त निश्चय और व्यवहार मोक्ष-मार्ग का व्याख्यान करते हैं। १९ दोहे।

१३८) जीवहँ मोक्खहँ हेउ वरु दंसणु णाणु चरित्तु।
ते पुणु तिण्णि वि अप्पु मुणि णिच्छएँ एहउ वुत्तु॥ १२॥

अन्वयार्थ :- जीवों के मोक्ष का हेतु, मोक्ष के कारण... अतीन्द्रिय आनन्दरूप परमात्म लाभ का कारण। समझ में आया? आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्दरूप परमात्मस्वरूप के लाभ का कारण। **उत्कृष्ट दर्शन, ज्ञान और चारित्र हैं,...** वर अर्थात् प्रधान दर्शन, ज्ञान और चारित्र। **फिर वे तीनों ही निश्चयकर आत्मा को (ही) जाने ऐसा श्री वीतरागदेव ने कहा है, ऐसा हे प्रभाकरभट्ट! तू जान।** उसे तीन भेद किये न, इसलिए उसे व्यवहार कहेंगे। आत्मारूप से एकाकार है, उसे निश्चय कहेंगे।

भावार्थ :- भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग साधक है,... लो! यहाँ अब गड़बड़ उठी। बात यह है कि आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु की अन्तर एकाग्रता, श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, निश्चय आदि जो एकाग्रता, उसे यहाँ साध्य कहा जाता है। अथवा मोक्ष का साधन, वह निश्चय कहा जाता है। और विकल्प जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र का व्यवहाररूपी भेद उठे, उसे उसका साधक कहा जाता है। विकल्पात्मक दर्शन-ज्ञान-चारित्र को साधक कहा जाता है। समझ में आया?

भेदरत्नत्रयरूप व्यवहार-मोक्षमार्ग साधक है,... अर्थात् शुभोपयोगरूपी देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत आदि के मुनि के परिणाम, वे सब भेदरूप से, व्यवहाररूप से मोक्षमार्ग का निमित्त है, इसलिए उसे साधकरूप से कहा जाता है। समझ में आया? **अभेदरत्नत्रयरूप निश्चय-मोक्षमार्ग साधनेयोग्य है।** उससे विकल्प है, उसे छोड़कर द्रव्य की—वस्तु की एकाग्रता करना, वह अभेदरत्नत्रयरूप निश्चय—सच्चा मोक्षमार्ग साधने योग्य है। समझ में आया?

यह सब गड़बड़ उठी है यह पंचास्तिकाय की और यह सब व्याख्या में से। वे कहे, शुभ उपयोग है, वह साधक है, चौथे में, पाँचवें में, छठवें में, सातवें में। पश्चात्

साध्य है। ऐसा नहीं होता। यहाँ तो एक समय में दो है। उसमें राग के शुभ उपयोग को व्यवहार साधक कहा है और वस्तु का स्वरूप अन्तर की एकाग्रता, उसे निश्चय मोक्ष का मार्ग कहा है। समझ में आया? **इस प्रकार निश्चय, व्यवहारमोक्षमार्ग का साध्य-साधकभाव,...** निश्चय है, वह साध्य है; व्यवहार है, वह साधक है। **सुवर्ण, (निश्चय) सुवर्ण-पाषाण (व्यवहार) की तरह जानना।** अग्नि का निमित्त पाकर उसमें स्वर्ण और पाषाण भिन्न पड़े, ऐसा विकल्प जो है, इसी प्रकार आत्मा राग से, तीव्र राग से भिन्न पड़े अथवा पर से भिन्न पड़ने का विकल्प। समझ में आया? ऐसा शुभराग, उसे व्यवहार साधक कहते हैं। उससे भिन्न पड़ी हुई ज्ञान की एकाग्र दशा, उसे साध्य कहते हैं। **सुवर्ण-पाषाण की तरह जानना।** पंचास्तिकाय में आया था न? यद्यपि स्वर्ण स्वयं ही अग्नि का निमित्त होने पर भी वह स्वयं ही परिणमता हुआ उज्ज्वलता को पाता है। परन्तु उसमें अग्नि का निमित्त हुआ, इसलिए ऐसा कहा गया कि उसने उस पत्थर को भिन्न किया। इतना निमित्तपना कहने में आया। परन्तु स्वयं ही स्वयं शुद्धरूप से सोना ही परिणमता हुआ निर्मल होता जाता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने अन्तर एकाग्र द्वारा, शुद्ध परिणति द्वारा आत्मा स्वयं शुद्ध होता जाता है। परन्तु साथ में वह विकल्प है, उसे साधकरूप से पत्थर में से जैसे सोना पृथक् पड़ने में निमित्त कहा, उसी प्रकार इसे निमित्त कहा जाता है। इतनी बात है। उसे व्यवहार होता है। वह निश्चय साधता है, उसे वह व्यवहार उसको साधक कहा जाता है। समझ में आया?

आगे ऐसा कहेंगे कि व्यवहार पहला नहीं, पहला नहीं। यह सब व्यवहार पहला अर्थात्? विकल्प होता है उसका अभाव करके निश्चय होता है, इसलिए उसे किसी समय नैगमनय से पहला भी कहा गया है। परन्तु वह साध्य को सिद्ध करे तो पूर्व के विकल्प को व्यवहार का आरोप दिया जाता है। समझ में आया? भारी झगड़ा इसका बड़ा झगड़ा है। नवनीतभाई! द्रव्यसंग्रह में भी इसका आधार दिया है, यहाँ टीकाकार ने ३९ गाथा है न?

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहार णिच्छयदो तत्तियमईओ णिओ अप्पा॥३९॥

यह ३९ गाथा है। **इसका अभिप्राय यह है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,**

सम्यक्चारित्र ये तीनों ही व्यवहारनयकर मोक्ष के कारण जानने,... भेद पड़नेरूप तीन हैंवे विकल्प हैं, वह व्यवहारनय से मोक्ष का कारण है। समझ में आया? **और निश्चय से उन तीनोंमयी एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।** अभेदरूप परिणमन आत्मा का। वह तो भेद का विकल्प था। यह तो भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु की एकाग्रता का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो अभेद परिणमन, वह आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

ओहोहो! व्यवहार मोक्ष शुभ उपयोग, शुभ उपयोग, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! साधक कहा, (वह) निमित्तरूप से कहा है, निमित्तरूप से कहा है। वह यहाँ साधता हो साध्य, उसमें वह निमित्त है, इसलिए उसे साधक कहा जाता है। ऐसी बात है। क्या हो? अरे! जगत कहाँ बेचारे को उल्टे रास्ते ले गया। इसे मुश्किल से मनुष्यपना मिला, हों! उसमें वीतरागमार्ग का क्या स्वरूप है, यह सुनने को मिलता नहीं, वह कब साधे? आहाहा! अरे! नरक के, निगोद के दुःखों में सड़ रहा है। यहाँ तो कहा कि बड़ा चक्रवर्ती हो तो उसे दुःख का लाभ है। पर्याय में ममत्व है, उसका उसे लाभ है। जिसे परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा का अतीन्द्रिय सुख का लाभ चाहिए हो, उसे भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की अन्तरदृष्टि की एकाग्रता करना, उसके द्वारा मुक्ति होगी, बाकी दूसरी बातें हैं। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन प्रकार का भेद व्यवहारनय मोक्ष का कारण, वह व्यवहार। निश्चय से तीनों (मिलकर) एक आत्मा ही मोक्ष का कारण, इकट्ठा है सब, हों! आहा! जब तक पूर्ण निश्चय वीतरागता प्रगटी नहीं, तब तक निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगटे, उसे यहाँ साध्य कहा उस व्यवहार की अपेक्षा से, हों! पूर्ण की अपेक्षा से साधन है। समझ में आया? और उस समय में व्यवहार के विकल्प उठते हैं—देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, शास्त्र, वह सब विकल्प है, उसे ऐसा निश्चय यदि साध्य हो तो उन्हें निमित्तरूप से व्यवहार साधक कहा जाता है। इतनी मर्यादा है, इससे (दूसरी) मर्यादा ले जाये (तो) वस्तुस्थिति श्रद्धा में नहीं आवे। समझ में आया? महँगा पड़ता है न! इससे कहीं नीलमणि निम्बोली की कीमत में मिले? कहो, समझ में आया? जो कीमत देनी चाहिए, उतनी कीमत न भरे और फिर कहे, दो मुझे हीरा दो। इसी प्रकार आत्मद्रव्य के

आश्रय से जो निश्चय दर्शन आदि हो, वह कीमत भरकर इसने आत्मा को दिया है। ज्ञायक चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द की कातली आत्मा है। उसे जिसने श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति द्वारा पकड़ा है, उसने उसकी कीमत भरी है। वह शुभ विकल्प, वह कहीं उसकी कीमत नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....निमित्त इच्छा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा हो, वह एकाग्र हुए बिना रहता नहीं। इच्छा किसे कहना? इच्छा की इच्छा नहीं होती। जिसे इच्छा की इच्छा नहीं होती, उसे द्रव्य की एकाग्रता है, उसे आत्मा की भावना कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लेने निकला है? कहाँ खबर नहीं कि क्या चीज़ है, कहाँ है, उसकी खबर नहीं। क्या लेने निकला?

मुमुक्षु : नीलमणि।

पूज्य गुरुदेवश्री : नीलमणि कहाँ, नीलमणि की तो खबर (नहीं)। नीलमणि तो यहाँ है। ऐसे नील नीलमणि तो चिदानन्दस्वरूप भगवान है। वहाँ तो दृष्टि करता नहीं और राग के कारण मिलेगी, ऐसा कहता है। कहाँ लेने निकला है वह? दुःख लेने निकला है। पत्थर लेने निकला है। समझ में आया?

अहो! वीतरागमार्ग वह वीतरागपर्याय से शुरु होता है। वह शुभ रागादि धर्म हो, यह तीन काल में होता नहीं, परन्तु क्या हो? अरे! नरक और निगोद से मुश्किल से निकला है। जहाँ निकला न, उस माता के गर्भ में से निकले, झट मानो निकलूँ और अब यहाँ से। बाहर निकलने के बाद हो गया, वापस हो गया। उसी प्रकार यह मुश्किल से निकला, वहाँ वापस फँसा वहाँ का वहाँ। वापस नरक और निगोद जाने के भाव में फँसा। समझ में आया?

इन पुण्य-पाप के भाव का आदर, वह संसार में गहरे जाने का आदर है। आहाहा! गहरे अर्थात् निगोद, ऐसा। पेट बड़ा है। कल कहा था न, भाई! रहने देना, हों! तत्त्व का विरोध करना। निगोद का पेट बड़ा है, हों! वरना वहाँ निगोद में जाना पड़ेगा।

ऐसा कहा है। आहाहा! अभी यह जो बाहर के त्याग और सब हो, फिर हम हैं, बस ऐसा हो... ऐसा हो... ऐसा हो... बापू! यह तो वीतराग के मार्ग की पेढ़ी है। उसमें राग से लाभ मनवाना, वह तो दुश्मन की पेढ़ी वीतराग के सामने माँढी है। आहाहा! समझ में आया? अहो! वीतराग परमात्मा, जिन्होंने राग के विकल्प का शुभ का अंश भी रहने नहीं दिया। ऐसी जिन्होंने वीतरागपर्याय प्रगट की। उन परमात्मा की वाणी में हुकम (आया कि) वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की ओर ढल, भाई! राग और निमित्त की उपेक्षा कर। प्रभु! तेरे पूर्ण स्वभाव की अपेक्षा कर। ऐसा वीतराग की वाणी में आया है। समझ में आया? इसके बिना प्रभु! तेरा पता तुझे नहीं लगेगा। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा... वह विकल्प होता है न! परन्तु विकल्प है, वह शुभ राग है, वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान महाव्रत, वह तो शुभराग है। उस भूमिका में ऐसा ही राग का भाव हो, तब इतना उसे निमित्त कहा जाता है, परन्तु भगवान आत्मा अपना खजाना खोलने में एकाग्र हो, इतना उसे मोक्ष के मार्ग का लाभ है। समझ में आया? ऐसी श्रद्धा भी न करे, तो उसके वीर्य का झुकाव तो राग में जाये, उसे उसमें पड़े। समझ में आया? ऐसी श्रद्धा भी न करे कि आत्मा की ओर ढलना, वही मोक्ष का वास्तविक मार्ग है, उसकी श्रद्धा में राग से लाभ हो, उसका वीर्य बाहर में ही भ्रमा करता है। वह एकाग्र नहीं हो सकता, हों! आहाहा! ऐसे ऐसे यहाँ लाभ, यहाँ लाभ, यहाँ लाभ, यहाँ लाभ। यहाँ कहते हैं कि यह मार्ग नहीं, हों! समझ में आया?

यह ज्ञानमूर्ति प्रभु अकेला वीतरागी निर्दोष सुख का कन्द-पिण्ड आत्मा, उस ओर के अन्तर के झुकाव की दशा, वह एक ही मुक्ति के उपायरूप है। बीच में यह व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है। इसलिए उसे व्यवहार साधकरूप से कहा जाता है। समझ में आया? **निश्चय से उन तीनोंमयी एक आत्मा ही मोक्ष का कारण है।** देखो! जरा थोड़ी दो बातें की और अब वापस वह कहते हैं। **आगे निश्चयरत्नत्रयरूप परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है,...** देखो! वह जरा साधकपना बताया सही, ज्ञान कराया। ओहो! भगवान आत्मा तो निर्विकल्प आनन्द की मूर्ति है। उसका जितना भाव निर्विकल्प शान्ति की पर्याय एकरूप से परिणमे, उतना मोक्ष का मार्ग। समझ में आया? इसलिए कहते हैं। व्यवहार साधक कहा था, निश्चय साध्य कहा था। ऐसे दो

भेद किये थे। अब कहते हैं, वास्तव में तो निश्चयरत्नत्रयरूप परिणत हुआ... भगवान आत्मा अपने दर्शन, सम्यग्दर्शनरूप से परिणमा। शुद्ध आत्मा, वह निर्विकल्प दृष्टिरूप से परिणमा, उसके ज्ञानरूप से निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप से हुआ और स्वरूप में रमणतारूपी चारित्र की शान्ति प्रगटी, उसरूप से परिणमा, वही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है। वह एक निमित्त साधनरूप से बतलाया था, भाई! **ऐसा कहते हैं—**

★ ★ ★

गाथा - १३

१३९) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि॥ १३॥

मोक्ष का कारण। मोक्ष, वह स्वद्रव्य की शुद्ध परिणति है। मोक्ष, वह पूर्ण शुद्ध द्रव्य की अतीन्द्रिय आनन्दमय दशा है। तो उसका कारण भी शुद्ध, अपूर्ण-शुद्धपर्याय ही उसका कारण होगा। शुद्ध द्रव्यस्वभाव, शुद्ध परिणति की पूर्ण दशा, वह मुक्ति। उसका कारण शुद्ध द्रव्य के आश्रय से अन्तरमय शुद्ध परिणति प्रगटे, वही मोक्ष का कारण होगा। यह 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' समझ में आया?

अन्वयार्थ :- जो अपने से आपको देखता है,... देखो भाषा! भगवान आत्मा अपने को दर्शन से देखे, अपने को देखे। सम्यग्दर्शन में श्रद्धा, परन्तु उसे अचक्षुदर्शन उपयोग द्वारा भी उसे स्वयं अपने को देखे, ऐसा कहते हैं। देखना, वह श्रद्धा और देखना दो के अर्थ में लेते हैं। अभव्य को ऐसा देखना नहीं, ऐसा प्रश्न करेंगे। कहते हैं, यह पेच्छइ शब्द पड़ा है न। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध है, उसे जो ज्ञान द्वारा देखे, दर्शन द्वारा देखे, वह मोक्ष का कारण है। आत्मा अपने को जानता है। **अपने से आपको देखता है, अपने से आपको जानता है,...** ओहोहो! अपने से। अपने से अपने को जाने, उसका

नाम ज्ञान। समझ में आया? स्वयं अपने को देखे, स्वयं अपने को जाने। आहाहा! शास्त्रज्ञान से जाने, यह बात नहीं रही। समझ में आया? यह शास्त्रज्ञान से ज्ञात हो, ऐसा आत्मा नहीं। आहाहा!

अपने से आपको देखता है,... परन्तु विकल्प या पर का आश्रय जिसमें नहीं। **अपने से आपको जानता है,...** अपने से—अपनी निर्मल ज्ञानानन्द पर्याय से अपने को देखता है, इसका नाम सम्यग्ज्ञान। परन्तु यह जरा निवृत्ति करके विचार करे तो सही। अभी विचार कहाँ करता है, यह? इसे तो यह बाहर की सब होली में सुलगकर बैठा है अन्दर। जरा जहाँ प्रतिकूलता आवे, वहाँ चिल्लाहट करता है अन्दर। है या नहीं? हरिभाई! यह जयचन्दभाई हैं ये। मोरबीवाले। जरा वह हुआ, आहाहा! अब मर जाऊँ। कहाँ जाना है? परन्तु वहाँ मौसीबा बैठी है, माँ कोई? तब वह अभी किस ओर निकलकर जाना, इसकी खबर नहीं होती, वह विचार किस प्रकार करेगा? नवनीतभाई! आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान मोटा परमानन्द की मूर्ति अन्दर देहदेवल में बैठा है। उसकी इसे खबर नहीं होती, उसका विचार नहीं होता, उसकी गन्ध की खबर नहीं होती। अब इसे कहाँ क्या करना और क्या विचार आवे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनता कहाँ है अन्दर? सुने वह अन्दर। ऐ जयचन्दभाई! क्या कहते हैं यह? लो, ऐसा है ठीक! यहाँ सुख की व्याख्या क्या की, सुनी नहीं? विकार के परिणाम का लाभ, वह दुःखी है। निर्विकार पूर्ण परिणाम का लाभ, वह सुखी मोक्ष है। और आत्मा के द्रव्यस्वभाव की एकाग्रता के निर्विकारी परिणाम का लाभ, वह अपूर्ण सुखी है। सुखी-दुःखी किसे कहना? वह सुखी है, ऐसा तुम्हारे हिसाब से? यह निरोगता है और ऐसा कहे, जवान शरीर है, निरोगता है। पैर ऐसे हो जायें। कहो, मणिभाई! वह दुःखी कहते हैं। क्या है परन्तु? यह तो बात कल की थी, 'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें।' मूढ़ अज्ञानी पाखण्डी मानता है। समझ में आया? अपने आत्मा को ठगनेवाला, लुटेरा, वह पर के शरीर की अनुकूलता से सुखी, वैसा आत्मा का ठग यह मानता है, लुटेरा मानता है। कल (बात) आयी थी न? भाई! आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा पूर्णानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा ऐसा है। उसका जिसे दर्शन, ज्ञान में लाभ हो, वह सुखी है। कहो, समझ में आया? बाकी जिसे पूरी दुनिया, शरीर निरोग और पाँच, पचास करोड़ और लड़के आठ, दस बड़े योद्धा जैसे और लम्बे पाँच हाथ के और रूपवान और यह सब काम। सब दुःखी... दुःखी... दुःखी... वे मेरे हैं—ऐसी मान्यता, वह दुःखरूप दशा है। कहो, अब किसे कहना सुखी? आहाहा! '...' नहीं आता? देव, देवता, देव ... नहीं सुखी एक सुखी मुनि वीतराग। इसे खबर नहीं, मुनि ... बाहर का त्याग—छोड़कर बैठे, वे सुखी हो गये। यह धूल में भी नहीं। सब आकुलता है।

भगवान आत्मा, अहो! जिसकी शक्ति में गहरे अमाप, आनन्द और शान्ति पड़ी है। जिसके तल में—आत्मद्रव्य के तल में तो अनन्त आनन्द और शान्ति है। उसके तल की थाह लेने जाये तो आनन्द और शान्ति मिले, ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा, वह पुण्य-पाप के विकल्परहित चीज़ जिसके तल में, जिसके तल में अतीन्द्रिय शान्ति और आनन्द पड़े हैं। उसकी जिसने थाह ली, वह सुखी है। बाकी दुनिया की थाह लेने से सब दुःखी हैं। आहाहा! समझ में आया?

किसे कहना शरीर धूल मिट्टी? अब जरा थोड़ा बराबर रहूँ तो क्या और बराबर न रहे तो क्या? यह तो मिट्टी है। इसमें पैसा और स्त्री, पुत्र थोड़े बराबर रहे या बराबर न रहे, वह तो धूल पर है। तुझे क्या है उसमें? यह उसे वे मेरे हैं और इससे कहे ठीक, वही महादुःख है। शरीर निरोगता से मुझे ठीक, वही भाव दुःख है। क्या करे? आहाहा! यह आत्मा निरोगी चिदानन्द भगवान है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान करे, वह सुखी है; बाकी कोई सुखी-बुखी है नहीं। आहाहा! भाई! यह तेरी नजरों में यह दौलत चैतन्य में है, उसे तू देखता नहीं और जहाँ नहीं, वहाँ देखकर मेरी दौलत है, ऐसा मानता है, बड़ी मूर्खता करता है। आहाहा!

क्या कहते हैं? यहाँ देखो न, आत्मा को जाने, वह ज्ञान। **अपने से आपको जानता...** है, वह ज्ञान, अपने से आपको, वापस ऐसा (कहा)। विकल्प से, राग से, शास्त्र से—ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपने को अपने से, अपने से अर्थात् निर्विकल्प शान्ति, आनन्द। जिस ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात हो, उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता

है। आहाहा! जिस दर्शन से आत्मा दिखायी दे, प्रतीति में आवे, उसने आत्मा से आत्मा को देखा, उसे सुखी कहा जाता है और **अपने से आपको आचरण करता है,...** यह तीनों में ले लेना। भगवान आत्मा अपने से, अपने को... विकल्प महाव्रत के आदि अपनापन नहीं, वह तो आस्रव है। महाव्रत के विकल्प, वे आत्मा नहीं, वे तो अनात्मा आस्रव हैं। अपने से अपने में अन्तर आचरण करे, निर्विकल्प वीतराग की परिणति का आचरण, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मा से पड़े, खबर किससे पड़े? आहाहा! रखने जैसा क्या है अभी उसमें? यहाँ क्या कहा?

जो अपने से आपको देखता है, अपने से आपको जानता है, अपने से आपका आचरण करता है, वही विवेकी दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणत हुआ जीव मोक्ष का कारण है। आहाहा! वह भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमा, वह मोक्ष का कारण। पूर्ण परिणमन, वह मोक्ष है। यह मोक्ष की पर्याय निर्मल... (अपूर्ण) वह मोक्ष का कारण है। बाकी सब बातें हैं। कहो, समझ में आया? इसका भावार्थ आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल १, गुरुवार, दिनांक - २३-१२-१९६५
गाथा - १३ - १४, प्रवचन - ८३

परमात्मप्रकाश, दूसरा भाग है। **भावार्थ :- जो सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को आपकर निर्विकल्परूप देखता है,...** अपने आत्मा को आत्मा **अपने आत्मा को आपकर...** स्वयं अपने को अपने से। भगवान ज्ञानमूर्ति शुद्ध द्रव्यस्वभाव, उसे **निर्विकल्प देखता है,...** अन्तर में अभेदरूप से राग बिना अभेददृष्टि से जो आत्मा को देखता है। एक बात। **अथवा तत्त्वार्थश्रद्धान की अपेक्षा चंचलता और मलिनता तथा शिथिलता इनका त्यागकर शुद्धात्मा ही उपादेय है,...** तीन दोष हैं—चंचलता, मलिनता और शिथिलता। उसके दोषरहित शुद्धात्मा उपादेय है। अत्यन्त शुद्ध ज्ञायक अकेला परम स्वभाव, वही आदरणीय है, ऐसी अन्तरदृष्टि करके **इस प्रकार रुचिरूप निश्चय करता है,...** अन्तर रुचिरूप निश्चय करता है, वह सम्यक्-निश्चय सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

वीतराग स्वसंवेदनलक्षण ज्ञान से जानता है... रागरहित अपने प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा, ज्ञान द्वारा स्वसंवेदन ज्ञान से 'यह आत्मा है' ऐसा जानता है, इसका नाम सम्यक् ज्ञान है। **और सब रागादिक विकल्पों के त्याग से निज स्वरूप में स्थिर होता है,...** वर्तमान विकल्प शुभाशुभराग से रहित होकर स्वरूप में स्थिर होता है। **सो निश्चयरत्नत्रय को परिणत हुआ पुरुष...** इन निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणमित पुरुष—आत्मा, वही मोक्ष का मार्ग है। वह आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? वस्तु पूर्णानन्द शुद्ध, उसे अन्तर्मुख निर्विकल्प से अवलोकन करना, अर्थात् कि तत्त्वार्थश्रद्धान चंचल विकल्प अस्थिरता आदि छोड़कर, शुद्ध सम्यग्दर्शन निश्चय प्रतीति करना। रुचिरूप निश्चय सम्यक् करना, रागरहित ज्ञान और रागरहित स्थिरता, इस प्रकार से **निश्चयरत्नत्रय को परिणत हुआ...** सच्चे तीन रत्नरूप एकरूप से आत्मा हुआ, वही मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग आत्मा, उसरूप से परिणम जाये। समझ में आया? अवलोकन आया न, अवलोकन? उसमें प्रश्न उठा। कहा पाठ में ऐसा है सही न **'पेच्छइ', 'पेच्छइ'** ऐसा शब्द है।

१३९) पेच्छइ जाणइ अणुचरइ अप्पिं अप्पउ जो जि।
दंसणु णाणु चरित्तु जिउ मोक्खहँ कारणु सो जि॥ १३॥

तब शिष्य का प्रश्न हुआ। **ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया कि...** तुमने कहा कि आत्मा को अवलोकना। उसमें उसे प्रश्न उठा। **हे प्रभो! तत्त्वार्थश्रद्धान रुचिरूप सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष का मार्ग है,...** देखा? यह निश्चयसम्यग्दर्शन है, हों, यह। तत्त्वार्थश्रद्धानरूप, रुचिरूप सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग है। **इसमें तो दोष नहीं और तुमने कहा कि जो देखे, वह दर्शन,...** देखे, वह दर्शन। वह देखे कहाँ से इसमें आया? **जानें वह ज्ञान,...** यह मूल पाठ से उतारा है इसमें। **और आचरण करे, वह चारित्र है। सो यह देखनेरूप दर्शन कैसे मोक्ष का मार्ग हो सकता है?** देखना तो अभव्य को भी होता है और तुम कहते हो कि देखने से मोक्षमार्ग होता है। आत्मा को देखने से मोक्षमार्ग होता है। तो देखना तो अभव्य को (भी) होता है। यह किस प्रकार का देखना तुम कहते हो? ऐसा कहते हैं।

और जो कभी देखने का नाम दर्शन कहो तो देखना अभव्य को भी होता है,... देखना तो अभव्य भी देखता है। चक्षु, अचक्षु दर्शन नहीं उसे? देखना तो उसे भी है। **उसके मोक्षमार्ग तो नहीं माना है?** भगवान ने तो उसे मोक्षमार्ग कहा नहीं। **यदि अभव्य के मोक्षमार्ग होवे, तो आगम से विरोध आवे।** देखो! यह नीचे से ही बात उठाई है, भाई! वह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यक् और व्यवहार नहीं, निश्चय से ही उठाया है यह तो। समझ में आया? **यदि अभव्य के मोक्षमार्ग होवे, तो आगम से विरोध आवे।** देखने से कहो तो देखना तो अभव्य को भी है। और वह देखे तो उसे मोक्षमार्ग हो। तो मोक्षमार्ग का भगवान ने तो अभव्य को निषेध किया है। अभव्य को होता नहीं। कहो, समझ में आया?

उसका समाधान यह है... यह प्रश्न समझ में आया प्रश्न? प्रश्न क्यों उठा, यह समझ में आया? कि आत्मा को देखे वह दर्शन, ऐसा आप कहते हो। तो देखना तो अभव्य को भी होता है, तो वह देखना किस प्रकार का आप कहते हो कि जो देखना, वह सम्यग्दर्शन? देखना, वह सम्यग्दर्शन (होवे) तो अभव्य को होना चाहिए। अभव्य को चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन देखना है। सत्ता-अवलोकन। और यदि उसे मोक्षमार्ग मानो

तो आगम से विरोध आवे। देखने से दर्शन कहलाये, उसे मोक्षमार्ग हो जाये अभव्य को। वह तो आगम से विरोध है, अभव्य का देखना सम्यग्दर्शन होता नहीं। **कि अभव्यों के देखनेरूप जो दर्शन है, वह बाह्यपदार्थों का है,...** वह बाह्य पदार्थ उसे चक्षु, अचक्षु दर्शन से देखता है। अन्तर आत्मा का अवलोकन उसे अन्तर दृष्टि में नहीं। समझ में आया? अन्तर जो दर्शन—आत्मा का अवलोकन होना चाहिए, स्व चैतन्य पदार्थ दृश्य में आना चाहिए। ऐसा उसे होता नहीं। अभव्य तो बाहर से देखे यह दूसरे पदार्थों को, स्व को छोड़कर दूसरे। **अन्तरंग शुद्धात्मतत्त्व का दर्शन तो अभव्यों के नहीं होता,...** भगवान ज्ञानमूर्ति वस्तु निर्विकल्प चैतन्यतत्त्व का देखना तो अभव्य को होता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

उसके मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों का उपशम-क्षयोपशम-क्षय नहीं है,... निमित्त से बात की पहले, क्योंकि **शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके नहीं है,...** वह मूल वस्तु तो यह। देखा! यह निश्चय की ही बात चलती है, हों! यह कोई इसमें से अकेला व्यवहार कहे तो वह व्यवहार नहीं। शुद्धात्मा ही उपादेय है। शुद्ध चैतन्य वस्तु निर्मल ज्ञायकभाव परमानन्दस्वरूप शुद्धस्वभाव, वह उपादेय / अंगीकार करनेयोग्य है। **ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन भी उसके (अभव्य के) नहीं है,...** अभव्य को ऐसा दर्शन नहीं है। बाहर के देखने के कारण उसे क्या है, बाहर तो सब देखता है। समझ में आया?

अन्तरंग शुद्धात्मा का अन्तर दर्शन होना, वह तत्त्वार्थश्रद्धान शुद्धात्मा की रुचि हो, उसे होता है। उसे वह होती नहीं। शुद्धात्मा अन्तर वस्तु है, वह देखनेयोग्य, रुचि करनेयोग्य, ऐसा उसे बैठता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? यह बोल आगे में भी आता है। यह बोल आगे में आवे १७१ पृष्ठ, इसी और इसी में। यह वहाँ आता है ३५वीं गाथा में आता है। ३४। है ३४। वहाँ भी है, यहाँ भी है। **यहाँ प्रभाकरभट्ट पूछता है कि आपने जो कहा कि निजात्मा का देखना, वह दर्शन है, ऐसा बहुत बार तुमने कहा है,...** ३४। है?

उत्तर :- हाँ, यह। **अब सामान्य अवलोकनरूप दर्शन कहते हैं। ऐसा दर्शन तो मिथ्यादृष्टियों के भी होता है, उनको भी मोक्ष कहनी चाहिए? इसका समाधान—**

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ये दर्शन के चार भेद हैं। इन चारों में मनकर जो देखना वह अचक्षुदर्शन है, जो आँखों से देखना, वह अचक्षुदर्शन है। इन चारों में से आत्मा का अवलोकन छद्मस्थ अवस्था में मन से होता है और वह आत्म-दर्शन मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम, क्षयोपशम तथा क्षय से होता है। सो सम्यग्दृष्टि के तो यह दर्शन तत्त्वार्थश्रद्धानरूप होने से मोक्ष का कारण है,.... यहाँ की तरह बात की है।

जिसमें शुद्ध आत्म-तत्त्व ही उपादेय है, और मिथ्यादृष्टियों के तत्त्वश्रद्धान नहीं होने से आत्मा का दर्शन नहीं होता। है न? यह तो इस गाथा की शैली है १३ (गाथा)। **मिथ्यादृष्टियों के स्थूलरूप परद्रव्य का देखना-जानना मन और इन्द्रियों के द्वारा होता है, वह सम्यग्दर्शन नहीं है, इसलिए मोक्ष का कारण भी नहीं है। सारांश यह है कि तत्त्वार्थश्रद्धान के अभाव से सम्यक्त्व का अभाव है, और सम्यक्त्व के अभाव से मोक्ष का अभाव है।** लो! वह देखना नहीं, देखना तो अन्दर शुद्धात्मा। समझ में आया? यह सब शब्द वे यहाँ हैं। शुद्धात्मा उपादेय अकेला आत्मा शुद्ध। पुण्य-पाप के विकल्प, कर्म, शरीर कुछ अंगीकार करने जैसा नहीं। वह इस वस्तु के स्वरूप में वे नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन अभव्य को नहीं होता। इसका अर्थ कि भव्य को वह हो सकता है। यह सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से बात है, हों! निश्चय की।

और चारित्रमोह के उदय से वीतराग चारित्ररूप निर्विकल्प शुद्धात्मा का सत्तावलोकन भी उसके कभी नहीं है। लो! चारित्रमोह के अभाव में वीतरागचारित्र से अनुभव में अन्तर विशेष अनुभवना, ऐसा भी उसे होता नहीं। **तात्पर्य यह है, निश्चयकर अभेदरत्नत्रय को परिणत हुआ निज शुद्धात्मा ही मोक्ष का मार्ग है।** लो! वास्तव में तो आत्मा अपने शुद्धस्वरूप की—अन्तर शुद्धस्वभाव की रुचि, उस शुद्धस्वरूप का स्वसंवेदनज्ञान और शुद्धस्वरूप में लीनता, वह आत्मा, वह स्वयं मोक्ष का मार्ग है। देखो! यह कितने ही इसे तेरहवें में कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो कुछ भेद पड़े हैं। कोई कुछ और कोई कुछ को। ... यह तेरहवें गुणस्थान में होता है। निश्चयमोक्षमार्ग तेरहवें में होता है, निश्चय समकित तेरहवें में होता है, ऐसा चला है। यह पत्रिका में डालते हैं (वे)। आलोचना की न एक व्यक्ति ने कि भाई! यह तुम ऐसा

क्यों डालते हो? इसमें तो मिलान बिना का है। आलोचना की है और किसी न। कौन आलोचना भी करे? पढ़ते जाते हैं। भान बिना के लोग जहाँ पड़े हो वहाँ। कुछ खबर नहीं होती कुछ (कि) तत्त्व क्या है। वह सामनेवाला कहे, उसे हाँ। जाओ भाई! भीखाभाई! **ऐसी ही द्रव्यसंग्रह में साक्षीभूत गाथा कही है।** उसमें ३९ का दृष्टान्त था १२वीं में। समझ में आया? था न? इसमें ४० का। १२वीं में ३९वी।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं भुइतु अण्णइवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥ ४०॥

उसका अर्थ ऐसा है कि रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य (दूसरी) द्रव्यों में नहीं रहता,... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र विकल्प आदि में नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। उसके साथ सम्बन्ध नहीं किया। इनने तेरहवें... बात करते हैं। वे भी आठवें और नवमें की। ... बातें करे। सब ही गप्प-गप्प मारे। आहाहा! कहते हैं, आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप... यहाँ जो कहा न '**पेच्छइ जाणइ अणुचरइ**' उसके आधार में गाथा दी। पाठ में ऐसा आया न? '**पेच्छइ जाणइ अणुचरइ**' ऐसा आत्मा ही स्वयं मोक्ष का मार्ग है। ऐसे वह विकल्प दया, दान आदि, व्रत आदि व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया? **रत्नत्रय आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्यों में नहीं रहता,...** भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप...

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र में नहीं रहता?

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु-शास्त्र में नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा में भी नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। समझे? श्रद्धा, वह विकल्प है, राग है। साधन है अर्थात् निमित्तरूप है, यहाँ करे तो, उसे छोड़कर करे तो। यह आयेगा। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा,... अभी ही आयेगा १४वीं में, १४वीं गाथा में आयेगा। कहो, समझ में आया? **द्रव्यों में नहीं रहता, इसलिए मोक्ष का कारण उन तीनमयी निज आत्मा ही है।** भगवान शुद्धस्वरूप पवित्र, वही स्वयं अन्तर में शक्तिरूप सत्व सब है, उसे ही अन्दर एकाग्रता द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणतिरूप

परिणमता आत्मा ही मोक्ष का कारण है। समझ में आया? यह विकल्प शुभराग हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, निमित्त, उसमें यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वर्तते नहीं, होते नहीं। समझ में आया? यह १३वीं कही। अब १४वीं।

★ ★ ★

गाथा - १४

आगे भेदरत्नत्रयस्वरूप-व्यवहार वह परम्पराय मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं।

१४०) जं बोल्लइ ववहारु-णउ दंसणु णाणु चरित्तु।
तं परियाणहि जीव तुहुँ जेँ परु होहि पवित्तु॥ १४॥

पूरा अर्थ टीका में से यहाँ पृष्ठ में लिखा है, वह एकदम अलग है। अब इसमें से सुनेंगे, यह अर्थ में नहीं, अर्थ इसमें। परमात्मप्रकाश अध्याय दूसरा। गाथा १४वीं संस्कृत टीका का अनुवाद अपने पण्डितजी ने किया है। यह टीका है संस्कृत की सीधी पाठ में है वह। लेखन में जरा अन्तर है। पटरी से नीचे उतर जाये, इसलिए फिर कुछ मेल रहे?

हे जीव,... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चयरत्नत्रय है लक्षण जिसका, ऐसे निश्चयमोक्षमार्ग के साधक व्यवहारमोक्षमार्ग को जान। समझ में आया? गाथा में व्यवहार की जहाँ व्यवहार की बात है। जैसे '**बोल्लइ**' है न? कहते हैं, व्यवहार कहते हैं। निश्चयरत्नत्रय आत्मा का जो कहा १३में। शुद्धस्वभाव पूर्णानन्द की अन्तर निर्विकल्प दृष्टि, निर्विकल्प अर्थात् रागरहित स्वभाव की दृष्टि, रागरहित चैतन्य का स्वसंवेदनज्ञान, रागरहित स्थिरता, वह आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है। अब उसमें व्यवहार विकल्प होता है, व्यवहारमोक्षमार्ग साधकरूप से, निमित्तरूप से साथ में होता है, वह कैसा? उसकी यह व्याख्या करते हैं। और पूर्व की अपेक्षा भी उसे विकल्प लेकर साधक कहेंगे।

इस निश्चयमोक्षमार्ग के साधक व्यवहारमोक्षमार्ग को जान। जिसे जानने से... जान, कहा है, हों! इसे जान। जिसे जानने से तू कैसा होगा? परम्परा से पवित्र परमात्मा

होगा। लो, ठीक! यह व्यवहार है, वह परम्परा मोक्ष का मार्ग है—ऐसा कहते हैं। निश्चय है, तो साक्षात् मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहते हैं मूल तो। स्वरूप—चिदानन्दस्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वही साक्षात् मोक्ष का कारण है। परन्तु साथ में पूर्व का विकल्प हो, यह अपेक्षा लेकर या वर्तमान उसे परम्परा साधकरूप से परम्परा मोक्ष का कारण व्यवहार है, इसलिए कहा है। समझ में आया? परम्परा से पवित्र परमात्मा है। मूल तो निश्चय से होगा, परन्तु उसमें यह विकल्प है, वह परम्परा अर्थात् कि उसका अभाव करके फिर स्थिर होगा। समझ में आया? व्यवहार-निश्चयमोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं। व्यवहार और निश्चय ऐसे मोक्षमार्ग का स्वरूप कहते हैं। कि जैसे कि वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत षट्द्रव्य आदि के सम्यक् श्रद्धान। वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए छह द्रव्य, उनकी सच्ची श्रद्धा, ऐसा शुभ विकल्प, शुभ उपयोग, शुभराग, ज्ञान। भगवान ने कहे हुए, सर्वज्ञ ने कहे हुए, सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे हुए षट्द्रव्यादि का ज्ञान। देखा? व्यवहार भी यह होता है उसे। क्योंकि द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है कि सहज एक समय की पर्याय में अपने को जानते हुए सबको जानता है। ऐसा उसका स्वभाव है, इसलिए उसे पहले विकल्पात्मक ज्ञान में भगवान ने कहे हुए षट्द्रव्य का उसे ज्ञान होना चाहिए। देखो! यह समझ में आया?

यह दूसरे बातें करते हैं न, ऐसा करो, ऐसा करो, विकल्प तोड़कर निर्विकल्प (होओ)। परन्तु विकल्प पहले कैसा हो? उसे व्यवहार के विकल्प की ऐसी जाति होती है। षट्द्रव्य की श्रद्धा का ज्ञान हो, उसे षट्द्रव्य का ज्ञान उसको होता है। अकेला आत्मा... आत्मा करे, ऐसा नहीं चलता। व्यवहार हों व्यवहार। फिर उसे छोड़कर अकेला निश्चय पावे उसे मोक्षमार्ग कहते हैं। जिसे ऐसी व्यवहाररूप श्रद्धा भी नहीं, वह तो निश्चय किसी प्रकार से नहीं पा सकता। इतना बतलाने के लिये यहाँ व्यवहार को साधक कहा है। समझ में आया?

क्योंकि वह षट्द्रव्य की श्रद्धा और षट्द्रव्य का ज्ञान, ऐसा जो विकल्प है—ऐसा उसे व्यवहार का उसी प्रकार का विकल्प आता है। उस प्रकार का ज्ञान और क्षयोपशम में उस प्रकार की श्रद्धा। ऐसा वह व्यवहार होता है। इसके अतिरिक्त दूसरा व्यवहार एक ही आत्मा है, फलाना है, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र ऐसे कहे हुए ऐसे तत्त्व हैं, ऐसा उसे

ज्ञान और विकल्प उसे व्यवहार होता नहीं। इसलिए उसे यहाँ निश्चयमोक्षमार्ग का निमित्तरूप से, साधनरूप से कहा गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ... ऐसा हो, ऐसा नहीं इसमें जरा भी। उससे होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहा। साधक का अर्थ कहा न यह, कि ऐसा जिसे ज्ञान के उघाड़ में बहिर्द्रव्य और ज्ञानवाला क्षयोपशम ऐसा ही विकल्प ऐसा कि षट्द्रव्य वस्तु है। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु ऐसे असंख्य कालाणु ऐसी वस्तु, उसकी स्वयं की ज्ञान की पर्याय ऐसी है जीव की। एक समय की पर्याय कि षट्द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली है। समझ में आया? परलक्ष्यी भी ज्ञान की पर्याय में इतना षट्द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली पर्याय है, परन्तु वह विकल्पवाला ज्ञान है। समझ में आया? उसमें से एक आत्मा छाँटकर निर्विकल्प करना, इसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग है। इससे यह जरा व्यवहार बताया है। भाई! कल यह दो दिन चला था। परसों रात्रि में चला और कल चला नहीं था एक? बहुत पण्डितजी ने तो स्पष्टीकरण नहीं किया था। थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ दिया था। समय रात्रि में... कहो, समझ में आया?

यहाँ तो बात भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप चिदानन्दमूर्ति की दृष्टि, ज्ञान और रमणता की अभेदता एक ही निश्चयमोक्षमार्ग। परन्तु उसके साथ व्यवहार, पूर्ण वीतराग नहीं, केवली हुए नहीं, इसलिए उसे विकल्प ऐसा ही होता है कि छह द्रव्य की श्रद्धा, छह द्रव्य का ज्ञान और राग की मन्दता (अर्थात्) तीव्र राग से (हटे)। समझ में आया? शुभराग का पुरुषार्थ है, अशुभराग का पुरुषार्थ छूटकर शुभराग का है। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की श्रद्धा छूटकर सुदेव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग है। दूसरों ने अनन्त तत्त्व उल्टे कहे हैं, उनकी ज्ञान और श्रद्धा का भाव छोड़कर ऐसे छह द्रव्य आदि की श्रद्धा का ज्ञान और शुभराग है। कहो, समझ में आया?

यहाँ वस्तु का स्वरूप ऐसा है, इसलिए व्यवहार विकल्प इसी प्रकार के (होते हैं), ऐसे वर्णन करना चाहते हैं। भाई! वस्तु ही ऐसी महान चैतन्यमूर्ति है, जिसकी एक पर्याय पर के लक्ष्य से भी छह द्रव्य को जानने की सामर्थ्यवाली वह पर्याय है। इसलिए यहाँ निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र की भूमिका में ऐसे ही विकल्प निमित्तरूप से होते

हैं, दूसरे प्रकार के होते नहीं। इसलिए उसे साधकरूप से वहाँ आरोप कहा गया है। ऐसा है। समझ में आया?

इसीलिए तो कल बात नहीं हुई थी अग्नि की और उस सोना की? अग्नि ऐसे सोना को पत्थर से भिन्न करती है, परन्तु वह सोना स्वयं भिन्न स्वयं से परिणम रहा है। पर से भिन्न करती है, ऐसा जो निमित्त कहना, वह तो निमित्त का ज्ञान कराना है। अग्नि बिना ही होता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वह सोना ही स्वयं अपने से ऐसा परिणम रहा है, उसकी अपनी शुद्धतारूप से ऐसे सोलहवान हो रहा है, तब वह अग्नि पत्थर से भिन्न करता है, ऐसा व्यवहार निमित्त कहने में आता है। निमित्त से परिणमता नहीं यहाँ। उसी प्रकार यह निमित्त से यहाँ निश्चय होता नहीं। निश्चय तो अपने द्रव्य के आश्रय से हुआ करता है। बात तो ऐसी है। वस्तु की ऐसी स्थिति ही है। समझ में आया? ऐसा हो, वापस निमित्त भी ऐसा हो, ऐसा। वह अकेला सामान्य निमित्त, ऐसा नहीं। निमित्त में, अन्तर निमित्त में है, इसलिए उसे साधक कहा है। समझ में आया? जिसे षट्द्रव्य का ही ज्ञान में विकल्प हो, षट्द्रव्य की ही व्यवहार श्रद्धा हो और उस सम्बन्धी उसे कषाय की मन्दता हो। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीत मिथ्यात्व वह नहीं। यहाँ तो षट्द्रव्य आदि की श्रद्धा का ज्ञान आदि, उसे महान तौलनेवाला तत्त्व अकेला निश्चय से तो तौलनेवाला है अन्तर। उसके विकल्प के व्यवहार में ऐसा षट्द्रव्य को तौले, श्रद्धा करे, ज्ञान करे, ऐसा ही विकल्प होता है, बस इतनी ही बात।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह टाला-फाला, उसकी बात नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो रहा, उसकी बात है, भाई! यहाँ। क्या कहना है? समझ में आया इसमें? यहाँ निश्चय से यह हुआ है, तब व्यवहार से ऐसा होता है, ऐसा कहना है यहाँ। गजब बात! समझ में आया? ज्ञान की परलक्ष्यी क्षयोपशम दशा की पर्याय में भी जिसने परलक्ष्यी विकल्प में षट्द्रव्य की श्रद्धा को तौला है, जान लिया है। जिसने षट्द्रव्य का

ज्ञान अन्दर प्रगट किया, षट्द्रव्य वे हैं, ऐसा ज्ञान कहा। समझ में आया? स्वद्रव्य का तो अन्दर निश्चय श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र तौला है, भाई! क्या कहा? समझ में आया इसमें? यह निश्चय दर्शन ज्ञान ने छह द्रव्य को... वे तो महान पदार्थ, महान पदार्थ। उसने ऐसे निश्चय श्रद्धा, ज्ञान किया और यह विकल्पवाली ऐसे यह षट्द्रव्य पूरे षट्द्रव्य की श्रद्धा, षट्द्रव्य का ज्ञान, उस प्रकार के विकल्प और कषाय की मन्दता को ऐसे में ऐसा ही भाव होता है, इतनी भूमिका में दूसरा होता नहीं, ऐसा गिनकर उसे साधकरूप से कहा गया है। निश्चय से उस काल में अपने स्वरूप का साधन होता है, वह साधक है। समझ में आया? मोक्ष का साधक तो स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वही स्वयं साधक है। परन्तु इस प्रकार की वहाँ योग्यता का विकल्प इस जाति का ही होता है, दूसरा होता नहीं, दूसरा ज्ञान होता नहीं दूसरे प्रकार का। समझ में आया? एक आत्मा है, ऐसा ज्ञान और सर्वव्यापक अथवा आत्मा... समझ में आया? सिद्ध हो गये और फिर वापस मुक्ति हुए आते हैं। यह ऐसी वस्तु की श्रद्धा, उसे षट्द्रव्य में ऐसी होती नहीं, ऐसा कहते हैं। षट्द्रव्य का जैसा स्वरूप सिद्ध का है, वैसा संसारी का है। जिस प्रकार से है, उस प्रकार से उसकी श्रद्धा में विकल्प उस जाति का वर्ते। समझ में आया इसमें? आहाहा! इसमें तो व्यवहार कहकर तो भगवान ने पर के उल्टे भाव से उसे विकल्प दूसरे होते नहीं, इसी जाति के होते हैं, ऐसा बताया है। तथापि वह पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : शुद्धि में आया ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि में जरा भी आया नहीं उसके कारण। शुद्धि तो स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ हो, वह शुद्धि है। इतना आया, उसे क्या कहना? होवे, उसे क्या कहना? है, उसे साधक क्यों कहा? इसकी व्याख्या चलती है यहाँ तो। समझ में आया? भाई! मार्ग तो ऐसी चीज़ है। ऐसे भगवान आत्मा जिसके गुण का अपारपना, जिसके भाव का अपारपना शक्ति के सामर्थ्य का। पूरा पदार्थ जहाँ निर्विकल्प दृष्टि में लिया, स्वसंवेदन से जाना, स्थिरता से रमा, वही मोक्ष का मार्ग तो वास्तव में एक ही बात है निश्चय। मोक्षमार्ग तो वह एक ही है। दूसरा ऐसी शैली को गिनकर, कि जिसे ऐसे षट्द्रव्य का विकल्प और उसका श्रद्धान आदि राग मन्द (हो), ऐसा भाव का वजन

गिनकर उसे व्यवहाररूप से, उसे व्यवहाररूप से साधक कहा है। निश्चय से साधक है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जोर तो स्वभाव की ओर का है। बाहर का कहाँ था जोर? परन्तु ऐसे ही विकल्प की जाति व्यवहार की होती है उसे। दूसरा हम एक ही आत्मा हैं और फलाना हैं और सब आत्मा एक ही है और सबका धर्म एक ही है—ऐसा विकल्प उसे होता नहीं। समझ में आया? ऐसा कहे, भाई! जरा-सा षट्द्रव्य में भी अनन्त आत्मायें, उसमें अनन्त आत्मा सिद्धरूप से है, अनन्त निगोदरूप से है, वह सब है या नहीं इसके अन्दर? समझ में आया? ऐसा उसे भले विशेष ख्याल नहीं, परन्तु ऐसा ही उसे उस प्रकार का ही विकल्प की मर्यादा होती है, इसलिए उसे व्यवहार साधकरूप से कहा गया है। समझ में आया? आहाह!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार से कहलाता है सहायक-सहायक। परन्तु वास्तव में कहीं कुछ है नहीं। वह व्यवहार का कथन ही ऐसा है। आप स्वयं परिणमते को धर्मास्तिकाय निमित्त है, इसलिए उसे सहायक, ऐसा कहा जाता है, परन्तु इसका अर्थ क्या? स्वयं परिणमता नहीं था? परिणमने का स्वकाल नहीं था? कि उसे उसके सहायक से ऐसा परिणमा, ऐसा ऊँचा आया कि ऐसा हुआ? समझ में आया? यह सब धर्मास्तिकायवत् निमित्त समझना। आहाहा! गजब बात है, भाई! वस्तुस्थिति ही ऐसी है, हों! यह तोड़-मरोड़कर बदले, वह नहीं होता अन्दर में। कल तो कहा था कि सर्वज्ञ को सिद्ध करने जाये तो इस प्रकार से खड़ा होता है, दूसरा खड़ा होता नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ भगवान हैं इस जगत के अन्दर, उन सर्वज्ञ का जहाँ निर्णय करने जाता है, तब उसे द्रव्यस्वभाव के ऊपर दृष्टि जाती है। इसलिए द्रव्यस्वभाव के ऊपर का ज्ञान होने से निश्चय ज्ञान, दर्शन होने से जो कुछ भाग में राग रह जाता है, उसे जाननेवाला रह जाये, वह जाननेवाला रह जाये। फिर उसे व्यवहार से समझाया कि यह व्यवहार है, यह साधक है, यह निमित्त है, ऐसा समझाया। बाकी उसे वह राग रह जाता है, उसे व्यवहार

कहा, निश्चय हुआ, उसे निश्चय कहा। बाहर निमित्त हो, उसे निमित्त। धर्मी स्वयं भी ऐसा जानता है और केवलज्ञानी भी उसके आत्मा को इस प्रकार से जानते हैं। इस प्रकार से मेल है, दूसरे प्रकार से मेल होता नहीं। समझ में आया इसमें कुछ?

सर्वज्ञ है, यह आत्मा सर्वज्ञस्वभावी है। उस सर्वज्ञस्वभाव का साधकपना स्वद्रव्य के आश्रय से जहाँ सर्वज्ञ है, अकेला ज्ञायक है। ऐसा जहाँ अन्तर निश्चय हुआ, निर्विकल्प दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ, स्थिरता... समझ में आया? तब बाकी रहा हुआ राग, उसे व्यवहार कहा गया है। स्व-आश्रय, ऐसा जो सर्वज्ञस्वभाव के आश्रय से जो प्रगट हुआ ज्ञान-दर्शन निश्चय कहा स्व-आश्रय। वह राग है, वह पर आश्रय, उसे व्यवहार कहा। बाकी ऐसी स्थिति रह जाती है। यह निश्चय और यह व्यवहार उसे कहा। भगवान केवली ने भी उसके आत्मा के लिये ऐसा देखा। उसके जिस समय का परिणमन इस प्रकार से वर्तता है, भगवान ने भी ऐसा देखा कि उसका आत्मा यह है, उसकी श्रद्धा, ज्ञान यह है, राग बाकी यह है, यह निमित्त है अथवा उस समय उसे कर्म का अभाव हुआ है। ऐसा उसे बैठा है, जानता है, ऐसा केवली जानते हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, भाई! विवाद ही पूरा उठा इसमें से बड़ा सर्वज्ञ का। वह यदि इसे बैठे तो यह सब घड़ी, सब घड़ी घड़ (तह) बैठ जाये। यही यहाँ कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत षट्द्रव्य आदि के। देखो, सर्वज्ञ प्रणीत, भाई! ऐसा आया न! आहाहा! यह तो कथन की पद्धति।

मुमुक्षु : सर्वज्ञ को माना पहले।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वज्ञ को माना, परन्तु सर्वज्ञ ने कहे हुए षट्द्रव्य। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! सर्वज्ञ प्रणीत षट्द्रव्य आदि। ये नौ तत्त्व, षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय इत्यादि। सम्यक् श्रद्धान, उसका सम्यक् श्रद्धा का राग, वह विकल्प है। ज्ञान का ऐसा उघाड़ होता है, ज्ञान उस प्रकार का उघाड़ परन्तु उसके साथ विकल्प होता है और व्रतादि अनुष्ठान। अब व्रत, दान आदि के शुभ परिणाम, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है। वह पर आश्रित विकल्प, उसे व्यवहारमोक्षमार्ग कहा जाता है। वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं, उसे मोक्षमार्ग कहना, इसका नाम व्यवहार। है, उसे कहना, इसका नाम निश्चय। बात ऐसी है। अरे!

मुमुक्षु : निश्चय और व्यवहार ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न। यह हो तब यह है, बाकी रहता है। सर्वज्ञ से निश्चय करे, स्वयं से निश्चय करे, तो भी इसी प्रकार से खड़ा होता है, दूसरा होता नहीं। यह निश्चय हुआ इसलिए राग मानो व्यवहार कहा। स्व आश्रय हुआ, उसे निश्चय कहा, पर आश्रय राग को व्यवहार कहा। भगवान भी से इस प्रकार से नियत, स्वभाव, पुरुषार्थ सब देखते हैं। एक समय में पाँचों ही, उन्हें देखते हैं और स्वयं भी पर्याय पाँचों से प्रगट हुई है। समझ में आया?

निश्चय न हो, वहाँ व्यवहार विकल्प की भूमिका खड़ी होती है। व्यवहार की भूमिका हो, वहाँ निश्चय होता है, ऐसा नहीं। भले ऐसी भाषा, परन्तु वह निश्चय हो, वहाँ व्यवहार होता है और व्यवहार जहाँ हो, वहाँ निश्चय का परिणमन अन्दर हो, तब उसे व्यवहार कहा जाता है। वस्तु ऐसी है। कथन अनेक प्रकार के आते हैं। समझ में आया? आहाहा! निज शुद्ध आत्मा के सम्यक् श्रद्धान, देखो! कथन पहले यह आया। निज शुद्ध आत्मा की सम्यक् श्रद्धा, निज शुद्ध आत्मा का सम्यग्ज्ञान, निज शुद्ध अनुष्ठानरूप निश्चय मार्ग है, वह निश्चय मार्ग है अथवा व्यवहारमोक्षमार्ग साधक है, निश्चयमोक्षमार्ग साध्य है। लो! उसको साधक कहा निमित्त है इसलिए, इसे साध्य कहा मूल वस्तु है इसलिए। समझ में आया?

उसमें ऐसा आया न हेमराजजी के बोल में नहीं कहा? 'निश्चयनय पहले कहे, पीछे ले व्यवहार...' ऐसा कहा न सामने? इसका अर्थ हुआ। सनातन दिगम्बर जैनधर्म में निश्चय है, वह पहले आता है। फिर उसको व्यवहार फिर भले नहीं, परन्तु उस समय ऐसा भान है, इसलिए उसको (शुभराग को) व्यवहार कहा जाता है। वस्तु ऐसी चलती थी, उसे यशोविजय ने लक्ष्य में ली कि यह लोग ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जो निश्चय हुआ, तब व्यवहार होता है, ऐसा कहा। फिर है, उसका अर्थ यह कि यह निश्चय हुआ और फिर विकल्प बाकी रह गया, उसे व्यवहार कहा। उस जाति के ही विकल्प वापस ऐसे। षट्द्रव्य की श्रद्धा, षट्द्रव्य का ज्ञान और षट्द्रव्य सम्बन्धी का जो राग मन्दता, उसमें पर से हटकर आचरणरूप व्यवहार व्रत आया। समझ में आया? आहाहा! गजब बात! अरे!

यहाँ शिष्य बोले कि निश्चयमोक्षमार्ग निर्विकल्प है। उस काल में सविकल्प मोक्षमार्ग नहीं तो वह साधक कैसे होगा? लो, ठीक! यह प्रश्न उठा अब। साधक-साध्य तुमने कहा, अब यह साधक तो किस प्रकार करना? साधक तो हुआ राग और यह साध्य हुआ निर्विकल्प वीतराग। यह किस प्रकार से हुआ? ऐसा कहते हैं। साधक-साध्य में उसे प्रश्न यह उठा कि साधक तो विकल्प है, साध्य तो निर्विकल्प है। ऐसा प्रश्न उठा। समझ में आया? प्रश्न उठने का कारण क्या? साधक और साध्य शब्द आया पहले। है न? व्यवहारमोक्षमार्ग साधक, निश्चय साध्य, उसमें से प्रश्न उठा कि यदि उसे तुम साधक कहो, मददगार कहो, सहायक कहो, वह उससे होता है, ऐसा कहो तो व्यवहारमोक्षमार्ग तो विकल्प है। समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग निर्विकल्प है, ऐसा प्रश्न उठा है। यह तो स्वयं टीकाकार ने उठाया है। जब तुम ऐसा कहो कि निश्चय, वह साध्य है और व्यवहार, वह साधन। तो उसके कारण से यह प्रगट हुआ, उसके कारण से यह प्रगट हुआ, ऐसा तुम्हारे कथन में आया। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। इस कारण यह प्रगट हुआ। कारण तो विकल्प है (और) प्रगटे वह निर्विकल्प वीतरागदशा है। उसे यह कारण कैसे कहा जाये? ऐसा शिष्य का प्रश्न उठा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा, उसका अर्थ करते हैं अब। उसे व्यवहार साधक कहकर, निश्चय साध्य है उसमें बाकी रहा हुआ (राग) है, वह है। पूर्ण स्थिर होगा आगे बढ़कर, इसलिए इसे छोड़ देगा और स्थिर होगा, तब मुक्ति होगी, ऐसा। समझ में आया? यहाँ शिष्य बोले कि निश्चयमोक्षमार्ग तो वीतराग पर्याय है। समझ में आया? निश्चयमोक्षमार्ग तो वीतरागदशा है। उस काल में राग मोक्षमार्ग, राग मोक्षमार्ग नहीं, उस काल में सविकल्प मोक्षमार्ग नहीं तो वह साधक कैसे कहलाये? प्रश्न यहाँ उठा है। उस काल में तो राग नहीं और तुम उसे साधक कहते हो। तो साध्य वीतराग पर्याय कहते हो। साधक को राग पर्याय को कहते हो, साध्य हुआ तब वह भाव तो नहीं। तब अब तुम उसे साधक कैसे कहते हो? देखो, लो! यह प्रश्न बराबर उठता है। समझ में आया?

यहाँ समाधान करते हैं। भूतनैगमनय से वह परम्परा से है। वह तो गत काल में ऐसा विकल्प था, उसे वर्तमान गिनकर ऐसा कहने में आया कि है। वर्तमान नहीं। साध्य हुआ, तब उस विकल्प को साधक कहा तो वह विकल्प उस काल में नहीं। विकल्प को तोड़कर निर्विकल्प हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह व्यवहार का ऐसा षट्द्रव्य और यह सब इत्यादि विकल्प है, परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर निर्विकल्प हुआ है। समझ में आया? इसलिए विकल्प के सहारे निर्विकल्प हुआ नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतनैगमनय से वह परम्परा से। इतनी बात यह पहली, हों! फिर दूसरी बात करेंगे। इसलिए उस राग से साधक को यह वीतराग, ऐसा कहना, वह तो परम्परा की नैगमनय की अपेक्षा से (बात है)। पहले भाव था, उसे वर्तमान साधकरूप से कहा, इसलिए वर्तमान साधक और यह साध्य, वह तो पूर्व में था, इस अपेक्षा से कहा है। परन्तु अभी राग है, वह इसे सहायता करता है, ऐसा नहीं। पूर्व में राग था, उसका अभाव करके स्थिर हुआ, तब राग को साधकरूप से कहा जाता है। समझ में आया?

जितना-जितना आगे बढ़ता जाता है, उतना-उतना राग तोड़ता जाता है, उसे राग को फिर साधक कहा जाता है। समझ में आया? भारी विवाद, भाई! यह बात तो ऐसी है न! साधक ऐसा होता है, उस भूमिका में, परन्तु जितना अन्दर में आगे स्थिर होता जाता है न, उतना-उतना विकल्प का अभाव होता जाता है, तथापि उसे विकल्प वर्तमान विकल्प साधक है, ऐसा पूर्व नैगम की अपेक्षा से राग को साधक कहा है। बाकी तो अभाव करता जाता है। वह बाकी रहा, उसे कहा, उसका कारण कि अभाव होता जाता है न पूर्व का, इसलिए उसे कहा है, ऐसा कहते हैं। तोड़ता जाता है, तब जितना विकल्प निर्विकल्प हुआ, वह राग के आश्रय से हुआ नहीं, ऐसा कहना है यहाँ तो। राग का रहा तो उसे साधक कहा, वह तो पूर्व का राग था, उसका अभाव करता जाता है, इसलिए उस राग को साधक कहा, ऐसा कहते हैं। उसे भी अब तोड़ता जाता है, इसलिए पूर्व के राग को साधक कहा जाता है। आहाहा!

इसमें इनकी विशिष्टता है। साधक इस प्रकार का, ऐसा कहते हैं कि यह राग है, वह अभी वीतरागपने को सहायता करता है, ऐसा नहीं। वह राग तो है नहीं। दृष्टि निर्विकल्प हुई, वहाँ राग है नहीं इतना तो। समझ में आया? परन्तु पूर्व का राग था उसका अभाव करके हुआ तब वह राग है, उसे भी साधकरूप से कहा गया है। वह भी हल्के से घटाता जाये और स्थिर होता जायेगा। समझ में आया? क्या इसमें, क्या आया? आहाहा! अरे! मार्ग तो, बापू! वीतराग है, भाई! एक ही स्वरूप है, एक ही मार्ग है। उसे साधक को अपेक्षा से ऐसा भाव था, इसलिए अपेक्षा से घटता गया और घटता गया, उतना वीतराग होता गया, उसकी अपेक्षा से उसे व्यवहार कहा, बाद में परम्परा करेगा। इसलिए इसका पूरा कर देगा अभाव का। इसलिए उसे आरोप करके कहा है। अकेली वीतरागी पर्याय अत्यन्त वर्तमान बस, वही मोक्ष का कारण है। इस प्रकार से है, कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... स्पष्टीकरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही है स्पष्टीकरण। दूसरा स्पष्टीकरण हो कहाँ से परन्तु? आहाहा!

अथवा अब दूसरी बात ली, इतनी बात उसकी अपूर्व प्रश्न की कही। अब उसमें से विशेष दूसरी बात करते हैं। सविकल्प और निर्विकल्प भेद द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग दो प्रकार से है। समझ में आया? वह तो मोक्षमार्ग साधक कहा था न व्यवहार को, उसका स्पष्टीकरण किया। अब और दूसरी बात करते हैं। अथवा सविकल्प, निर्विकल्प भेद द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग दो प्रकार से है। निश्चयमोक्षमार्ग, हों! वह तो व्यवहारमोक्षमार्ग साधक की शैली की बात की नैगमनय से। यह तो दूसरे प्रकार से बात करनी है। सविकल्प और निर्विकल्प भेद द्वारा निश्चयमोक्षमार्ग दो प्रकार से है। उसमें उसे जो स्व-आश्रय में विकल्प उठता है, उतना तो अभी पराश्रय है परन्तु उसे ऐसा... मैं अनन्त ज्ञान, मैं अनन्त दर्शन, ऐसा उठता है न, इस अपेक्षा से निमित्त से सविकल्प निश्चय कहा। है तो वह आस्रव। वह पराश्रय था अकेला। षट्द्रव्य की श्रद्धा आदि का पराश्रय राग। और उसमें यह तो मैं हूँ, ऐसा मैं हूँ। ऐसा होता है न। उसमें अनन्त ज्ञानरूप मैं। इसलिए यह स्वभाव अपार अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अमाप... अनन्त

ज्ञान, अनन्त दर्शन... समझ में आया? ऐसा अनन्त, यह अनन्त, यह अनन्त—ऐसा जो विकल्प उठता है, उसे निश्चयमोक्षमार्ग अपेक्षा से कहा है। है तो वह आस्रव, परन्तु स्व की भूमिका में अन्दर प्रविष्ट होने से ऐसा एक विकल्प आया अनन्त ज्ञान, बेहद आनन्द, अनन्त स्वरूप, यह ज्ञान शब्द से प्रयोग किया है इसमें। ज्ञान अर्थात् आत्मा, ऐसा वर्णन करना है न यह तो? उसमें फिर सब गुण लिये। अनन्त ज्ञानरूप मैं इत्यादि। अनन्त आनन्दरूप मैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त.. बेहद जिसकी शान्तिरूप हूँ। ऐसा जो स्व-आश्रय का विकल्प उठता है, वह सविकल्प साधक है। लो, यह सविकल्प साधक है। निर्विकल्प समाधिरूप साध्य है। उसमें से हटकर स्थिर होना है, वह हटे तब स्थिर होता है। तब उसे—सविकल्प को व्यवहार से साधक कहा, यह ऐसा कहते हैं यहाँ। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु है न, वस्तु? उस वस्तु को मैं ऐसा हूँ—ऐसा जो विकल्प उठता है, ऐसे अनन्त-अनन्त ज्ञान। अब यह राग है और पुण्य है, यह निमित्त है, यह बात गयी। ऐसा ढला है ज्ञान उसके विकल्प विचार में। यह अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद ज्ञान, बेहद स्वभाव। उसके स्वभाव के सामर्थ्य की अचिन्त्यता, ऐसा एक विकल्प उठा। वह विकल्प स्व की अपेक्षावाला है, इसलिए निश्चय कहा, परन्तु है तो वह विकल्प आस्रव। उसे साधक कहा, क्योंकि वह छूटकर अन्दर निर्विकल्प होनेवाला है। समझ में आया?

यह निश्चय तो भी आस्रववाला। यह निश्चय साथ में तो निश्चय किसलिए कहा? स्व का विकल्प है इसलिए। बाकी है तो वह व्यवहार। राग है न! तथापि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... इतना होता है न, इतनी बात की जरा। शुद्धि तो वह निर्विकल्प हो तब है। कहेंगे, हों! वह आस्रव है उतना। वह तो स्वयं ही उतना आस्रव है। समझ में आया? दृष्टान्त (उद्धरण) आधार देंगे इसे। यह अनन्त ज्ञानरूप हूँ, ऐसा निश्चय क्यों कहा कि वह तो स्व की अपेक्षा का विकल्प है इसलिए। वह जो पर के षट्द्रव्य आदि के लिये था इसलिए उसे व्यवहार कहा है। समझ में आया? उसकी अपेक्षा से निश्चय कहा है, बाकी है तो यह भी व्यवहार। परन्तु अन्तर के घोलन में जाने से पहले ऐसी एक दशा खड़ी होती है। महान वह पर का माहात्म्य टूटने और स्व के माहात्म्य में लेने

से विकल्प ऐसा आया। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त यह महान, महान यह। इस सम्बन्ध का विकल्प आया, हों! उसे निश्चय इस अपेक्षा से पर की अपेक्षा से कहा है। उस व्यवहार के षट्द्रव्य के विकल्प की अपेक्षा से, षट्द्रव्य के ज्ञान की अपेक्षा से इसे निश्चय विकल्प कहा है। निश्चयमोक्षमार्ग कहा इस अपेक्षा से। समझ में आया? अरे! गजब बात!

उसमें सविकल्प साधक है अर्थात् क्या? कि ऐसा विकल्प उठा है, से तोड़कर। उसका योगफल होकर जाना है अन्दर। इसलिए उसे सविकल्प साधक कहा गया है। वास्तव में सविकल्प है, वह तो आस्रव है; निर्विकल्प है, वह निरास्रव है। परन्तु साधक का अर्थ इस प्रकार का ही विकल्प उसे ऐसे ही प्रकार, अनन्त आनन्दकन्द में जाना है, इसलिए ऐसा ही एक विकल्प उठा है, इस जाति का ही विकल्प; इसलिए उसे यह साधक कहा गया है। समझ में आया? आहाहा!

महान भगवान के माहात्म्य का विकल्प उठा है, इसलिए उसे निश्चयमोक्षमार्ग में कहा जाता है। वरना है आस्रव। आहाहा! परन्तु बहुत नजदीक में माहात्म्य करने जाता है, ऐसे दूसरे का माहात्म्य अब नहीं। देव, गुरु, शास्त्र या फलाना व्यवहार यह विकल्प आया व्यवहार श्रद्धा का—उसका नहीं। यह माहात्म्य करने जाता है न अन्दर। आहाहा! ऐसा जो विकल्प, उसे निश्चयमोक्षमार्ग की पहली भूमिका में कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? निर्विकल्प समाधि, वह साध्य है। उससे हटकर अन्दर स्थिर होता है, वह उसका स्वरूप है, साध्य तो वह है। इसके कारण से हुआ नहीं, परन्तु इसके अन्दर लक्ष्य में वह था उसमें से हटकर स्थिर हुआ। समझ में आया? ऐसा भावार्थ है। लो! ऐसा भावार्थ इसमें समझना। उसका आधार देते हैं। सविकल्प, निर्विकल्प, निश्चयमोक्षमार्ग सम्बन्धी संवाद गाथा कहते हैं, देखो!

जं पुण सगयं तत्वं सवियप्पं होइ तह य अवियप्पं।
सवियप्पं सासवयं णिरासवं विगय संकप्पं॥ ५॥

अब जो स्वतत्त्व है... स्वतत्त्व की बात आयी वापस। यह ऊपर कहा उसका आधार दिया, स्वतत्त्व है वह सविकल्प और निर्विकल्प ऐसे दो प्रकार से। देखो, स्व है न, इस अपेक्षा से उसे निश्चय कहा गया है। वह सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार

से है। सविकल्प आस्रवसहित है, इतना विकल्प भी आस्रव है, पुण्य है। परन्तु अन्दर किनारे खड़ा है विकल्प (कि) यह मैं... यह मैं... यह मैं... इसलिए उसे निश्चय कहा गया है। उसे छोड़कर स्थिर होता है, यही वस्तु का निरास्रवमार्ग है। निर्विकल्प आस्रवरहित है। वीतराग पर्याय हुई है, वही आस्रवरहित है, वही मोक्षमार्ग है। ऐसा व्यवहार विकल्प करे वह तो ... बहुत नजदीक में अन्दर आया न, इस अपेक्षा से, बाकी वह व्यवहार, वह आस्रव है। आहाहा!

कहो, आस्रव से कहीं संवर का और निर्जरा का काम होता होगा? समझ में आया? यह तो लिखा है अर्थ... वरना उसमें जरा अन्तर था। मिलान खाना चाहिए न वापस कुछ मेल। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर में एकाग्र होने में ऐसी एक विकल्प की मर्यादा वर्तमान अथवा पूर्व, उसकी अपेक्षा से उसे साधक कहा है। बाकी वह वस्तु उसके कारण से अन्दर निर्विकल्प होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपनी वीतरागी पर्यायरूप से परिणमता है, वही मोक्ष का मार्ग है। उसे एक यह निश्चयरूपी निमित्त कहा, एक व्यवहाररूपी निमित्त कहा। दोनों निमित्त हैं। दो को साधक कहा गया, परन्तु दोनों आस्रवरूप है। समझ में आया? इस प्रकार से निश्चय और व्यवहार का स्वरूप इसे बराबर जानना चाहिए। तो वस्तु की यथार्थ सिद्धि हो, वरना होगी नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल २, शुक्रवार, दिनांक - २४-१२-१९६५
गाथा - १५ से १७, प्रवचन - ८४

गाथा - १५

१५वीं गाथा, यह परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की। **तीन दोहों से निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन किया।** पहले। **आगे चौदह दोहापर्यन्त व्यवहार मोक्षमार्ग का पहला अंग व्यवहारसम्यक्त्व को मुख्यता से कहते हैं—** मुख्यता से बात करते हैं, गौण में अन्तर आत्मदर्शन आदि आ जाते हैं।

१४१) दव्वइँ जाणइ जहठियइँ तह जगि मण्णइ जो जि।
अप्पहँ केरउ भावडउ अविचलु दंसणु सो जि॥ १५॥

अन्वयार्थ :- जो... छह द्रव्य हैं भगवान ने कहे हुए, उन्हें **जैसा उनका स्वरूप है, वैसा जानें,...** छह द्रव्य को जाने वह व्यवहार समकित के कारण हैं। समझ में आया? व्यवहारश्रद्धा के छह द्रव्य कारण हैं। निश्चयश्रद्धा का आत्मा कारण है। समझ में आया? **और उसी तरह इस जगत में निर्दोष श्रद्धान करे,...** उन छह द्रव्य के बराबर व्यवहार श्रद्धा करे। **वही आत्मा का चलमलिनावगाढ दोषरहित निश्चल भाव है, वही आत्मभाव सम्यग्दर्शन है।** इस व्यवहार के साथ अन्दर में निश्चयसम्यग्दर्शन का जो भाव है, वह निश्चयसम्यग्दर्शन का भाव निर्मल कहा जाता है। यह कहेंगे टीका में।

भावार्थ :- यह जगत छह द्रव्यमयी है,... किसी ने किये हुए नहीं, ऐसा कहना है। जगत अनादि छह द्रव्य वस्तु का स्वभाव(रूप) छह द्रव्य अनादि हैं। **सो इन द्रव्यों को अच्छी तरह जानकर श्रद्धान करे,...** इन छह द्रव्य का जानपना करके, जानपना करके श्रद्धा करे, ऐसा कहते हैं। समझे बिना की श्रद्धा होती नहीं, छह द्रव्य, उनके गुण-पर्याय जैसे हैं, वैसे बराबर व्यवहार श्रद्धा का वह विषय है। ऐसी व्यवहार श्रद्धा होती है तो निश्चय आत्मा की श्रद्धा भी होती है और जहाँ आत्मा की श्रद्धा निश्चय हो,

तब ऐसी व्यवहारश्रद्धा होती है। कोई कहे व्यवहार श्रद्धा नहीं होती और हमारे निश्चयश्रद्धा अकेली है—ऐसा नहीं होता, इसलिए यह बात वर्णन करते हैं। आत्मा की श्रद्धा हमारे निर्विकल्प बस आत्मा, परन्तु यह व्यवहार श्रद्धा, क्या इसका व्यवहार का विषय क्या? उसकी हमारे कुछ आवश्यकता नहीं। ऐसा नहीं। ऐसा बतलाने के लिये यह बात मुख्यता से व्यवहारदर्शन की बात लेना चाहते हैं। व्यवहार होता ही नहीं मानो, ऐसा कहते हैं यहाँ। निश्चय हो, वहाँ व्यवहार ऐसा होता है, यह बतलाना चाहते हैं। समझ में आया?

जिसमें सन्देह नहीं वह सम्यग्दर्शन है,... व्यवहार सम्यग्दर्शन में छह द्रव्य का... श्रद्धा, उसमें सन्देह होता नहीं। समझ में आया? उसमें जो निश्चय **यह सम्यग्दर्शन आत्मा का निज स्वभाव है।** यह व्यवहार के विकल्प काल में अन्तर का आत्मा का निज सम्यग्दर्शन का स्वभाव, वह निश्चय है। समझ में आया? **वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान...** अब थोड़ी दूसरी बात लेते हैं। ... आगे ... परन्तु उसमें भी थोड़ा, वह '**जाणइ**' शब्द आया है सही न, इसलिए लिया थोड़ा। वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन निश्चयसम्यग्ज्ञान। आत्मा का अन्तर रागरहित ज्ञान का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान, वह निश्चय ज्ञान।

उसका परम्पराय कारण जो परमागम का ज्ञान... उसका परम्परा कारण शास्त्र का ज्ञान। परम्परा कारण शास्त्र का ज्ञान। वह शास्त्र का ज्ञान परम्परा क्यों-कि वहाँ विकल्प है और यह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान, वह निश्चय है। समझ में आया? साक्षात् कारण सीधा स्वसंवेदन ज्ञान, वह मोक्ष का और उस केवलज्ञान का कारण। यह है परम्परा, विकल्प है, है वह परम्परा कारण है। **उसे अच्छी तरह जान,...** परमागम को भी बराबर जाने। **और मन में मानें, यह निश्चय करे कि इन सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावनेयोग्य है,...** वापस यह। छह द्रव्य का ज्ञान, श्रद्धा करे, परन्तु उसमें से छाँटे यह। कि **इन सब द्रव्यों में निज आत्मद्रव्य ही ध्यावनेयोग्य है,...** अपना आत्मा ही ध्यान करनेयोग्य है। समझ में आया? निज शुद्धात्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप, वही दृष्टि करके ध्यान करनेयोग्य है। **ऐसा रुचिरूप जो निश्चयसम्यक्त्व है,...** देखो! ऐसा रुचिरूप उसे सच्चा समकित कहा जाता है और साथ में उन छह द्रव्यों की श्रद्धा और

आगम का ज्ञान, उसे व्यवहारश्रद्धा और व्यवहारज्ञान कहा जाता है।

मुमुक्षु : तो पहले क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दोनों करना साथ में। यह निश्चय करते हुए व्यवहार बीच में ऐसा होता है, ऐसा बतलाते हैं। पहले क्या करना? उसे छह द्रव्य का ज्ञान और श्रद्धा उसके भाव में होते हैं, ऐसा साथ में वर्णन करते हैं। समझ में आया? पहले करना निश्चय दर्शन। उसमें छह द्रव्य की श्रद्धा का राग अन्दर आये बिना रहता नहीं। उसकी श्रद्धा और ज्ञान उसका होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार का ऐसा भाव होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम का ज्ञान है। करना। निश्चय यहाँ आत्मा का ज्ञान, यहाँ व्यवहार आत्मा का, आगम का ज्ञान। निश्चय आत्मा का दर्शन, व्यवहार से... दर्शन की श्रद्धा। निश्चय हुआ, इसलिए ऐसा व्यवहार साथ में होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ व्यवहार की मुख्यता से कथन है कि वह साथ में होता है। समझ में आया? व्यवहार की मुख्यता से बात है। गौण तो उसे निश्चय अन्दर है। इसलिए मुख्यता शब्द प्रयोग किया है। देखो, पहला है? व्यवहार समकित को मुख्यता से कहते हैं। ऐसा शब्द है। समझ में आया? गौणरूप से अन्दर निश्चय समकित की बात है, परन्तु मुख्यपना जिसे कहा है, उसे यहाँ व्यवहाररूप से वर्णन किया गया है। अटपटी बात लगे जरा परन्तु इसे....

उसका परम्परायकारण व्यवहारसम्यक्त्व... देखो! निश्चय समकित जो है, शुद्ध आत्मा निर्मल, पवित्र की रुचि, वह निश्चयसम्यग्दर्शन। उसका परम्परा कारण व्यवहार समकित। इसलिए साथ में रहा साधक विकल्प भाव, उसे परम्परा कारण कहा जाता है। **देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा उसे स्वीकार करे।** सच्चे अरिहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और धर्म अहिंसा, उसकी बराबर श्रद्धा करे। यह व्यवहार श्रद्धा है वह। समझ में आया? निश्चय आत्मा की निर्विकल्प ... श्रद्धा, उसके साथ ऐसी श्रद्धा होती है। **व्यवहारसम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं,...** देखो! यह व्यवहार मुख्यता से कथन है न,

इसलिए यह व्यवहार की व्याख्या। व्यवहार में पच्चीस दोष का त्याग है। निश्चय में तो आत्मा निर्विकल्प की दृष्टि और अनुभव वही सम्यग्दर्शन है। व्यवहार समकित में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, छह द्रव्य की श्रद्धा और पच्चीस दोष का त्याग। समझ में आया? जिसे आत्मा का करना है, उसे तो यह सब जानना पड़ेगा या नहीं? दुनिया के व्यापार में कितने गहरे उतरकर नहीं जानते? ऐई! ...भाई! गहरे उतरकर जानते हैं या नहीं? उसका ऐसा हुआ, उसका ऐसा, ... ऐसा करना, ढींकणा ऐसा करना, सूझ उसमें से ऐसी पड़ी। कितने ही... तुम्हारे मोटर में भी होता होगा न सब? यहाँ तो जरा आत्मचक्र जिसे मोक्षमार्ग का चलाना है, उसे यह निश्चय और व्यवहार दोनों जानना चाहिए, दोनों पहिचान करके श्रद्धा करनी चाहिए। समझ में आया? व्यवहार होता ही है, वीतराग (पूर्ण) न हो, तब तक ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं। जिसे साधकरूप से कहा, परम्परा कारण कहा। निमित्त कहो। समझ में आया? पच्चीस दोष टाले। न ही हो उसे—व्यवहार समकित को, ऐसा कहते हैं। याद करना पड़े क्या? ऐसा। क्या कहते हैं? देखो! '**मूढत्रयं**' है न? श्लोक है यह, हों! उसमें है?

मूढत्रयं मदाश्चाष्टौ तथानायतनानि षट्।
अष्टौ शङ्कादयश्चेति दृग्दोषा पंचविंशति॥

यशतिलक की गाथा है। जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन का भान है, उसे व्यवहार ऐसे दोष व्यवहार समकित में होते नहीं। क्या? **कि जहाँ देव-कुदेव का विचार नहीं है, वह तो देवमूढ़,...** जिसे देव और कुदेव का विचार नहीं। उसे देवमूढ़ता नहीं होती।

मुमुक्षु : धर्मशाला बँधावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मशाला बनावे। क्या कहाँ सब कौन जाने क्या कर डाला? धर्मशाला बँधावे वहाँ त्यागधर्म हुआ और त्यागधर्म, वह तो मोक्ष का कारण है। त्यागधर्म में से निकाला उस दस प्रकार का धर्म... है न। अरे! कहाँ मुनि को कहे, परन्तु वह त्याग किसे कहना? आहाहा! वीतरागदृष्टि हुई है, वीतरागी ज्ञान हुआ है, उसमें वीतरागी परिणति हो, उसे त्याग कहते हैं। ओहोहो! वहाँ के भेद में से निकाला। धर्मशाला बनावे वहाँ मोक्ष हो जाये, कहो। कौन जाने क्या? यह तुम्हारे तो यह लाखों रुपये खर्च किये लाखों, इसलिए मोक्ष हो जाता होगा उसमें से?

मुमुक्षु : हो गया न सबको।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया। ऐई! नवनीतभाई! लाखों रुपये खर्च किये हैं मन्दिर में वहाँ। मोक्ष हो जाता होगा न? इन्हें करना बाकी है।

जहाँ देव-कुदेव का विचार नहीं है, वह तो देवमूढ़; जहाँ सुगुरु-कुगुरु का विचार नहीं है, वह गुरुमूढ़,... यह व्यवहार समकिती को होता नहीं। उसे बराबर विवेक होता है। देव कौन, कुदेव कौन, गुरु कौन, कुदेव-कुगुरु कौन, इसका विवेक होता है। **जहाँ धर्म-कुधर्म का विचार नहीं है,...** धर्म किसे कहना, कुधर्म किसे कहना, इसकी खबर नहीं। **वह धर्ममूढ़, इन तीन मूढ़ता....** रहित है। वह होते नहीं। कहो, समझ में आया? उसे छोड़कर तत्त्व की श्रद्धा करे, ऐसा कहना है। ऐसे तीन दोषों को छोड़कर व्यवहारश्रद्धा करे।

जातिमद... नहीं होता। यह व्यवहार सम्यग्दृष्टि को जाति का मद, जाति कहाँ उसकी है, यह उसका मद हो? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कर्म से उपार्जित भाव जाति, उसका मद व्यवहार समकिती को नहीं होता, निश्चय समकित में तो अन्दर आत्मा की दृष्टि निर्विकल्पता है। व्यवहार समकिती को साथ में जाति... समझ में आया? हमारी माता की यह जाति, यह हमारी माता, इसका उसे मद नहीं होता। माता कैसी? आत्मा को कहाँ है वह? आत्मा तो निर्विकल्प आनन्दस्वरूप, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, उसे व्यवहार में भी हमारी माता ऐसी और महाकुल को हमारे... समझे न? दीवान की माता, दीवान की बहिन, फलाना और ढींकणा की पुत्री। ऐसा मद नहीं होता। कुल ही हमारे पिता ऐसे राजा थे, फलाना था। ऐसा मद नहीं हो सकता। व्यवहार समकिती को भी मद नहीं होता, क्योंकि उसका ऐसा अभिमान हो तो यहाँ स्वभाव की श्रद्धा रहती नहीं। जिसने अधिकरूप से आत्मा को राग से भी भिन्न जहाँ प्रतीति में लिया है, राग और विकल्प से अधिक—भिन्न जहाँ आत्मा को श्रद्धा, ज्ञान में लिया, उसे व्यवहार में ऐसे कुल का अभिमान नहीं होता। कहो, समझ में आया?

धनमद... लक्ष्मी का मद नहीं होता। लक्ष्मी कहाँ आत्मा की थी, वह उसे मद हो? समझ में आया? पैसा, लक्ष्मी, जड़, मिट्टी अजीव है। उसका अभिमान तो

मिथ्यादृष्टि को होता है, उसके हम पैसेवाले अर्थात् हम अजीववाले। हम अजीव के स्वामी अर्थात् हम जड़। ऐसा हुआ या नहीं? ऐसा धन का मद धर्मी को व्यवहार सम्यग्दर्शन में होता नहीं। विकल्प है सही न। **रूपमद...** शरीर के रूप का मद होता नहीं। समझ में आया? शरीर का सुन्दर रूप हो और लावण्यता हो, उसका मद क्या? वह तो जड़ का रूप है। आत्मा को क्या? आत्मा का स्वरूप निर्विकल्प जिसने अनुभव में, दृष्टि में लिया, उसे व्यवहार में ऐसे रूप का मद होता नहीं। कहो, समझ में आया?

तपमद... लो! यहाँ तप करने की शक्ति हो, थोड़ा तप करता हो, शरीर-बरीर ठीक हो और तप करे, दो, चार, पाँच अपवास। हम तप करते हैं, हम तप करते हैं। हम करते हैं। इसका अभिमान क्या? यह तो शुभराग है ऐसा। समझ में आया? उसका—तप का अभिमान नहीं होता। **बलमद...** शरीर के बल का मद, सामर्थ्य बल का, उसका मद हो या आत्मा के बल की प्रतीति हो, उसे आनन्द (हो)। मद किसका हो? **विद्यामद...** शास्त्र के पठन का मद। समझ में आया? व्यवहार समकित में यह नहीं होता। अनन्त सर्वज्ञपद जहाँ आत्मा की प्रतीति में लिया है। एक समय में तीन काल, तीन लोक जाने, ऐसी एक पर्याय केवलज्ञान की, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड द्रव्य, उसे जहाँ श्रद्धा में, निश्चय में लिया, उसे ऐसे पठन के, ज्ञान के उघाड़ के, विद्या के अभिमान—मद होते नहीं। समझ में आया? आहाहा!

राजमद... लो! हम राज कुटुम्बी हैं। उसमें कुटुम्बी कैसे आत्मा को? आत्मा का कुटुम्ब तो सिद्ध की जाति का कुटुम्ब है। उसे राज आदि का मद। **कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, इनकी और इनके आराधकों की जो प्रशंसा वह छह अनायतन और...** दोष के स्थान हैं। वे उसे नहीं होते। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और उनके सेवक—माननेवाले की प्रशंसा नहीं होती व्यवहार समकिती को। समझ में आया? कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, उन्हें माननेवाले, उनकी श्रद्धावाले, उनकी सेवावाले, उनके आराधक, उनकी प्रशंसा उसे व्यवहार समकित में भी होती नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? महिमा किसलिए करे उनकी? ... विषे बात है। गजब धर्मी। भारी तुम्हारी धर्म की भावना है, हों! मद न करे। भावना कैसी? ऐसा कि

दान देता हो कोई पाँच लाख का और अन्यमति हो वह, तब तो क्या करना उसका? ऐसा कहते हैं। ... बात करते हैं। दान देता है इतना, परन्तु धर्म की भावनारूप से उसे धर्म प्रशंसा, तुमने अच्छा धर्म किया, हों! और तुमको समझ में आता है? ऐसी प्रशंसा करे नहीं। क्या करना इसमें? ऐसा पूछते हैं यह, देखा?

कुगुरु, कुदेव, कुधर्म की और उनके आराधक—सेवक की जो प्रशंसा छह अनायतन हैं, अनायतन अर्थात् अस्थान। वे धर्मी को माननेयोग्य स्थान नहीं। इसमें बहुत उत्तरदायित्व आया। **और निःशंकितादि आठ अंगों से विपरीत शंका,...** वीतरागमार्ग में, व्यवहारमार्ग में शंका न हो उसे। **कांक्षा,...** पुण्य आदि की इच्छा नहीं होती। **विचिकित्सा...** ग्लानि नहीं होती। जैनमार्ग में उसे ग्लानि नहीं होती। मुनि आदि (का) मलिन (शरीर) आदि हों, उनकी उसे ग्लानि नहीं होती। **मूढ़ता,...** नहीं होती। मेरा मार्ग कैसा होगा यह? अन्यमति में तो बड़े-बड़े राजा, महाराजा माने, उनके गुरु को हाथी पर चढ़ावे। और ऐसे देखे तो ओहो! कि यह क्या होगा? उलझन में नहीं आता। वह तो जगत के, पुण्य के खेल। ऐसे पुण्य के खेल। धबो नमः हो जानेवाले वे। समझ में आया? धर्मी को कदाचित् बाहर के ऐसे मान, सन्मान होते नहीं, अधर्मी को ऐसे पूर्व के पुण्य के कारण बड़ा मान, सन्मान हो। इससे करे अहो! उसमें कुछ ऐसे रहे बड़े। ऐसे साधु हैं बड़े-बड़े, लाखों रुपये खर्च करते हैं। समझ में आया? इससे उसमें उलझन में नहीं आता। कहो, समझ में आया?

परदोष-कथन... परदोष का कथन वह करता नहीं। अपने को दोष टालना है, इसलिए पर के दोष का कथन क्या करे? जाने सही। **अथिरकरण...** अस्थिर नहीं होने दे आत्मा। समझ में आया? निःशंक के सामने है न सब? **साधर्मियों से स्नेह नहीं रखना,...** ऐसा नहीं होता। धर्मी को साधर्मी के प्रति प्रेम होता है। व्यवहार समकित में भी साधर्मी के प्रति प्रेम होता है, ऐसा कहते हैं। उसके प्रति द्वेष, ईर्ष्या, उसके गुण सहन न कर सके, ऐसा नहीं होता। ऐसा व्यवहार समकित में भी ऐसा गुण होता है।

और जिनधर्म की प्रभावना नहीं करना,... अर्थात् जिन (प्रभावना) नहीं करना, यह दोष उसे नहीं होता। जिन प्रभावना करनी हो। जिन प्रभावना न करना, ऐसा दोष नहीं होता, ऐसा। **ये शंकादि आठ मल, इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं, इन**

दोषों को छोड़कर तत्त्वों की श्रद्धा करे, वह व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा जाता है। लो! समझ में आया? निश्चय में तो आत्मा निर्विकल्प श्रद्धा, उसकी भूमिका में ऐसा व्यवहार सम्यग्दर्शन का भाव होता है। उसमें ऐसे दोषरहित वह सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। इससे किसी का तिरस्कार करना, यह इसमें आता नहीं वापस, हों! समझ में आया? कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, उनके माननेवाले का तिरस्कार करना, ऐसा नहीं। उनकी प्रशंसा धर्म के नाम से नहीं करना, इतनी बात है।

जहाँ अस्थिर बुद्धि नहीं है,... निश्चय समकित यथार्थ कहते हैं। **जहाँ अस्थिर बुद्धि नहीं है, और परिणामों की मलिनता नहीं, और शिथिलता नहीं, वह सम्यक्त्व है।** यह जरा निश्चय लिया है। समझ में आया? ऐसे व्यवहार समकित के काल में उसे ऐसा यह निश्चय समकित होता है। **यह सम्यग्दर्शन ही कल्पवृक्ष,...** लो! समझ में आया? निश्चय (के साथ) ऐसा व्यवहार हो, (उसकी) मुख्यता से बात की, वहाँ ऐसा सम्यग्दर्शन वह कल्पवृक्ष समान है। कहो, समझ में आया? ऐसा लगता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दोष व्यवहार के कहे। ऐसे व्यवहार के दोषरहित समकित है, वहाँ निश्चय समकित उसका स्थिर दृढ़तावाला होता है। वह समकित चिन्तामणि समान है। लो! वह कल्पवृक्ष समान है। कहो, पश्चात् **कामधेनु चिन्तामणि है, ऐसा जानकर भोगों की वांछारूप जो विकल्प...** भोग की वांछारूप राग, **उनको छोड़कर सम्यक्त्व का ग्रहण करना चाहिए।** निश्चय समकित ग्रहण करना, उसके साथ व्यवहार समकित भी ऐसा ग्रहण करना। कहो, समझ में आया?

ऐसा कहा है 'हस्ते' इत्यादि जिसके हाथ में चिन्तामणि है,... जिसके हाथ में चिन्तामणि है। **धन में कामधेनु है,...** लो! पैसे में कामधेनु गाय **और जिसके घर में कल्पवृक्ष है, उसके अन्य कहाँ प्रार्थना की आवश्यकता है?** उसे कोई दूसरी आवश्यकता नहीं। ऐसे आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन, उसके साथ व्यवहार की मुख्यता की बात की। ओहो! निश्चय सम्यग्दर्शन प्रतीति अनुभव है, निश्चय ज्ञान है, निश्चय स्वरूप की स्थिरता है। यहाँ निश्चय दर्शन की बात ली। समझ में आया? उसे दूसरी प्रार्थना की क्या आवश्यकता है? **कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि तो कहनेमात्र हैं, यह सम्यक्त्व**

ही कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि है, ऐसा जानना। रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है। समझ में आया? यह तो दूसरा श्लोक। चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष, वह आत्मा का सम्यग्दर्शन है। उसके साथ ऐसा मुख्य में व्यवहार सम्यग्दर्शन पच्चीस दोषरहित वर्तता है। उसे भी व्यवहार से कहा जाता है, कल्पवृक्ष आदि व्यवहार से। निश्चय से तो आत्मा को कहते हैं। उस समकित के व्यवहार की मुख्यता में बात की, निश्चय को गौणरूप से लिया।

★ ★ ★

गाथा - १६

आगे सम्यक्त्व के कारण जो छह द्रव्य हैं, उनसे यह तीन लोक भरा हुआ है,... यह व्यवहार समकित का कारण छह द्रव्य। भगवान ने देखे छह द्रव्य—अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। यह छह द्रव्य भगवान ने देखे, वह व्यवहार समकित का कारण है। निश्चय समकित का कारण तो आत्मा है। समझ में आया? **उनको यथार्थ जानो, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं—**

१४२) दव्वइँ जाणहि ताइँ छह तिहुयणु भरियउ जेहिँ।
आइ-विणास-विवज्जियहिँ णाणिहि पभणियएहिँ॥ १६॥

अन्वयार्थ :- हे प्रभाकरभट्ट! तू उन छहों द्रव्यों को जान... इन छह द्रव्यों को जान। **जिन द्रव्यों से यह तीन लोक भर रहा है,...** पूरा लोक छह द्रव्य से भरा है। एक ही आत्मा है, ऐसा नहीं, ऐसा सिद्ध करने के लिये व्यवहार के समकित की व्याख्या की। छह द्रव्य से पूरा लोक, चौदह ब्रह्माण्ड भरा है। समझ में आया? **यह तीन लोक भर रहा है, वे छह द्रव्य ज्ञानियों ने आदि-अन्तकर रहित द्रव्यार्थिकनय से कहे हैं।** भगवान ने इन छह द्रव्यों को आदि-अन्तरहित कहा। अनादि-अनन्त हैं। अनन्त आत्मायें पूरे लोक प्रमाण, अनन्त परमाणु पूरे लोक प्रमाण, धर्मास्ति पूरे लोक प्रमाण, अधर्मास्ति पूरे लोक प्रमाण, आकाश लोक और अलोक प्रमाण। काल भी पूरे लोक प्रमाण, पुद्गल भी पूरे लोक प्रमाण। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों निश्चय के साथ व्यवहार ऐसा होता है। क्या काम है क्या? निश्चय के साथ ऐसा व्यवहार होता ही है। उस भूमिका में वीतरागता केवलज्ञान हुआ नहीं, तब तक ऐसा व्यवहार उसका बराबर विवेकवाला होता है, ऐसा बतलाना है। वह दृष्टि तो आत्मा की हुई, परन्तु वापस अब पूर्णता नहीं, उसे व्यवहार विकल्प में छह द्रव्य की श्रद्धा आती है या नहीं? भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य पूरे लोक प्रमाण भरे हैं पूरे। ठसाठस। उनकी इसे श्रद्धा जानकर श्रद्धा हो। और कितनों को छह द्रव्य के नाम भी आते न हों।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म किसे कहना? छह द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा और उसमें आत्मा की श्रद्धा, वह निश्चय। व्यवहार श्रद्धा, वह छह द्रव्य की श्रद्धा, वह व्यवहार।

भावार्थ :- यह लोक छह द्रव्यों से भरा है,... पूरा लोक छह द्रव्य से भरा है। **अनादिनिधन है,...** अर्थात् अनादि-अनन्त। **इस लोक का आदि-अन्त नहीं है, तथा इसका कर्ता, हर्ता व रक्षक कोई नहीं है।** इन छह द्रव्यों का कोई कर्ता ईश्वर-बिश्वर नहीं। पर्याय का कर्ता भी कोई नहीं, पर्याय का कर्ता उसका द्रव्य है। दूसरा पर्याय का कर्ता हो तो ईश्वर कर्ता हो गया। समझ में आया? छह द्रव्य अनादि के, उनका कोई ईश्वर-बिश्वर कर्ता नहीं, उनका कोई हरनेवाला-नाश करनेवाला नहीं और उनका कोई रक्षक नहीं। अब छह द्रव्य वह रक्षक ईश्वर है, वह रक्षा करता है। सब भ्रम अज्ञान। समझ में आया?

यद्यपि ये छह द्रव्य व्यवहारसम्यक्त्व के कारण हैं,... देखा! वह तो यही कहा था वहाँ भी। परन्तु जरा आत्मभाव आया न थोड़ा। **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण नित्य आनन्दस्वभाव निज शुद्धात्मा ही है।** साथ में डाला वापस। समझ में आया? छह द्रव्य की श्रद्धा व्यवहार समकित का कारण। निमित्त है न वह छह द्रव्य? तथापि शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूति, शुद्ध आत्मा का अनुभव, ऐसा जो वीतराग समकित का कारण। कौन? नित्य आनन्दस्वभाव

निज शुद्धात्मा। समझ में आया? वापस उस व्यवहार समकित को कारण नहीं कहा, भाई! समझ में आया? वह भले साधक वहाँ कहा था निमित्त से। परन्तु यहाँ तो कहते हैं **शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण नित्य आनन्द स्वभाव निज शुद्धात्मा ही है।** समझ में आया? शुद्ध आत्मा ज्ञायकमूर्ति परमानन्द का मूलस्वभाव, वह निश्चय समकित का कारण। वीतराग समकित का कारण आत्मद्रव्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है यह? होगा क्या? है। भान नहीं होता और खो गया अर्थात् कहीं रत्न खो गया अर्थात् रत्न की कीमत चली जाये? कीमत न करे तो कहीं कीमत चली जाये? करोड़ रुपये का हीरा हाथ में लेकर यह कोड़ी जितनी है, ऐसा माने तो कहीं उसकी कीमत चली जाये? इसे कीमत करना आती नहीं। भान नहीं होता भान। मूढ़ हो गया अनादि का, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

महा निश्चय समकित का कारण तो भगवान है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जरा सी प्रतिकूलता हो वहाँ कहे यह... यह... हो गया। और ऐसा हुआ या ऐसा हुआ। अनुकूलता हो गयी, वहाँ मैं बढ़ गया। कहाँ बढ़े और घटे बाहर में वह? आत्मा के मोक्ष का कारण निश्चय सम्यग्दर्शन, उसका कारण आत्मद्रव्य तू अखण्ड पड़ा है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? वह तू स्वयं अखण्डानन्द भगवान पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... पूर्ण स्वरूप... वह सम्यग्दर्शन मोक्ष का कारण और सम्यग्दर्शन का कारण तेरा द्रव्य। पूर्ण शुद्धि का कारण सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग। और उस सम्यग्दर्शन का कारण तेरा द्रव्य। कहो, तू स्वयं कारण है, ऐसा कहते हैं यहाँ। समझ में आया?

देखो, '**वीतरागसम्यक्त्वस्य नित्यानन्दैकस्वभावो निजशुद्धात्मैव विषयो भवतीति**' सम्यग्दर्शन का विषय तो अकेला आत्मा ही है। निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय शुद्ध आत्मा अखण्ड ज्ञायकमूर्ति। वह निश्चय सम्यग्दर्शन, उसका विषय अर्थात् कि कारण। देखो, विषय कहो या कारण कहो, वह आत्मा है। (व्यवहार) सम्यग्दर्शन का विषय छह द्रव्य, अर्थात् सम्यग्दर्शन में छह द्रव्य कारण है, ऐसा। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय, निश्चय सम्यक्, निर्विकल्प प्रतीति, उसका विषय

आत्मा अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन, वीतरागी दृष्टि का कारण आत्मद्रव्य। और राग विकल्प व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय, वह छह द्रव्य अर्थात् कि छह द्रव्य व्यवहार समकित दर्शन का कारण है, ऐसा। समझ में आया? यह इस भव में हो ऐसा है—ऐसा कहते हैं। दरकार करे नहीं तो? कहो, कोई खान में हीरा की खान निकले तो इस भव में लेना चाहे या नहीं? कि नहीं, अभी नहीं। हीरा की खान निकले, वहाँ उस नर्म पत्थर के ठिकाने निकले अन्दर से गहरे जाते-जाते कोई... अरे... कहे, नहीं तुम्हारा काम नहीं। चले जाओ सब। चले जाओ सभी। घर के मजदूर होकर पड़े अन्दर। ऐ फूलचन्दभाई! वह वायदा करता होगा? उसी प्रकार आत्मा अनन्त गुण का खजाना है।

मुमुक्षु : वह हीरा की खान कब निकलेगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यहाँ निकलेगी यहाँ आत्मा में। बाहर की कहाँ बात है यहाँ? यह तो दृष्टान्त है। उसको निकली नहीं कहीं? निकली है न, कहते हैं न। पचास अरब रुपये की स्वर्णमोहर है। पचास अरब, पचास न? पचास अरब की स्वर्ण मोहर निकली। कोई राजा होगा पहले का तो कुछ लड़के के लिये गाड़ गया होगा। वह फिर उसमें लिखा है। लिखा है उसमें, हों! लड़के के लिय गाड़ गया था। एक लड़का उसका राजकुमार था। उसके लिये गाड़ गया था। फिर छोटा है न, तो बड़ा होगा तो मिलेगा। परन्तु वह भी कहीं चला गया और लड़का और उसकी माँ चले गये और ऐसा का ऐसा पड़ा रहा। फिर उसमें लेख है। उस लेख में सब चिह्न निकले हैं। यहाँ जाओगे तो यह निकलेगा, यहाँ जाओगे तो यह निकलेगा, यहाँ जाओगे तो यह सब चिह्न दिखते हैं। यहाँ से फिर यहाँ। वहाँ से फिर आगे जाकर जब वहाँ जरा पूजा भक्ति करना पश्चात्... ऐसा लिखा है। ऐसे चिह्न दिखलाते जाते हैं। वह निकले तब सही। परन्तु इस जगह इसके पश्चात् यह गाड़ा है, पश्चात् यह गाड़ा है, पश्चात् यह गाड़ा है, ऐसा। इस रास्ते चले जाना। उसी प्रकार यहाँ आत्मा गाड़ा है, ऐसा कहते हैं। अनन्त गुण का अन्दर आत्मा है, उसे विकल्प में पहले लेकर, फिर अन्दर जाकर अन्दर देख, आत्मनिधान है, ऐसा कहते हैं। बाहर का क्या काम है यहाँ? समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञ ने कहा कि तेरा आत्मा अनन्त गुण का रत्न का भण्डार अन्दर गड़ा हुआ पड़ा है। समझ में आया? तेरे दृष्टि कर तो वहाँ मिला हुआ, तत्त्व पड़ा हुआ

ही है। आहाहा! मजदूरी, मजदूरी क्या करे? मजदूर कहाँ था वह? मुफ्त की मजदूरी करके मर गया हैरान होकर और करोड़ों रुपये आये और पाँच करोड़ और दस करोड़ आये उसमें क्या, उसे क्या हुआ? उसे क्या हुआ? ममता हुई उसे तो। ममता आयी है उसके पास, चीज़ तो वहाँ रह गयी। उसमें कुछ हाय...हाय...! खर्च कर सके नहीं, खा सके नहीं, मुश्किल से जब अवसर आया, तब मरण आया। ऐसा वापस कहे। हाय.. हाय..! कोई उपाय नहीं लगता अब, कहते हैं। डॉक्टरों ने हाथ झटक दिये, मेरे पैसे इतने हुए और अब करना क्या? धूल भी नहीं सुन न अब। समझ में आया? यह चैतन्य रत्न का निधान, भगवान कहते हैं, तेरे पास पड़ा हुआ तू, गाड़ा हुआ तूने है। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर शुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागसम्यक्त्व का कारण नित्य आनन्दस्वभाव निज शुद्धात्मा ही है। देखा! नित्य आनन्दस्वभाव। वह नित्य आनन्दस्वभाव आत्मा। वह नित्य आनन्दस्वभाव। एक स्वभाव है न? नित्यानन्दस्वभाव निज शुद्धात्मा, (उसमें) 'एक' (शब्द) पड़ा रहा है। वह तो एक ओर छोड़ देते हैं। क्योंकि किसी ठिकाने अखण्ड... किसी ठिकाने लेते हैं। एक स्वभाव देखो, वह तो एकरूप है न, इसलिए ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निश्चय सम्यग्दर्शन अर्थात् शुद्ध प्रतीति का कारण तो तेरा द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। कारण कहो या विषय कहो, ध्येय कहो। व्यवहार समकित का कारण कहो या विषय कहो, वह छह द्रव्य है। दोनों की दिशा में अन्तर है ऐसा। दिशा एक ऐसी यह है, एक ऐसी है, दो वस्तु है।

मुमुक्षु : एक दिशा .... दोनों साथ में होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ में होते हैं। यह पूर्ण हो तो साथ में हो, इसलिए अन्तर है न? दो वस्तु है तो दो... यह निश्चय का विषय, उसका व्यवहार का विषय एक हो तो दो कहलाये कैसे? व्यवहार समकित का कारण यह आत्मा, निश्चय समकित का कारण हो तो फिर दो कहलाये क्यों? समझ में आया? दो नय हैं तो दोनों के नय के विषय भिन्न हैं। वरना दो पड़े कैसे? पहले पर के ऊपर का लक्ष्य वह विकल्प है। अपना आश्रय है निर्विकल्प। दो वस्तु में अन्तर है। एक वीतराग पर्याय है और एक राग पर्याय है। समझ में आया?

विषय कहा नहीं उसमें? पंचास्तिकाय में नहीं लिया? व्यवहाररत्नत्रय का

विषय आत्मा नहीं। आत्मा से पर है। पंचास्तिकाय, हाँ, ७२ में लिया न। सब एक की एक बात करते हैं सब प्रकार से। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का विषय आत्मा नहीं। आत्मा से पर है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो पर है कैसे? है, राग है या नहीं? भूमिका में ऐसा शुभराग होता है व्यवहार सम्यग्दर्शन। निश्चय का विषय स्व है। फिर इकट्ठे उन छह द्रव्य की बात की सही न? तो छह द्रव्य तो व्यवहार सम्यक्त्व का विषय है। समझ में आया? उसमें जो निश्चय समकित है, उसका विषय तो आत्मा त्रिकाल वस्तु शुद्ध आनन्दमय आत्मा एक स्वभावी आत्मा है। वह दो निश्चय और व्यवहार की व्याख्या, उसके कारण, उनका विषय, उनका स्वरूप, यह सब बातें इसमें आ गयी। समझ में आया?

शुद्ध निर्विकल्प दृष्टि का विषय वह आत्मा, निर्विकल्प दृष्टि का कारण वह आत्मा; सविकल्प व्यवहार सम्यग्दर्शन का कारण छह द्रव्य और उनका विषय वह। जो कारण है वह विषय, ऐसा। समझ में आया? और वह कारण निश्चय का नहीं, ऐसा। वह कारण निश्चय का नहीं। निश्चय का कारण द्रव्य और व्यवहार वह आत्मा के कारण से नहीं। व्यवहार, वह पर के कारण से, पर के लक्ष्य से, पर के विषय से उत्पन्न हुआ भाव है। समझ में आया? ऐसा यहाँ परमात्मप्रकाश में दो बोल का निश्चयसहित व्यवहार और व्यवहार की मुख्यता से कथन किया है। बाकी निश्चय तो अन्दर होता है। इसीलिए तो भाई ने कहा न? व्यवहार समकित में, निश्चय समकित निरन्तर गमनरूप है। टोडरमलजी। टोडरमलजी ने तो बहुत पूरा निचोड़ किया है। समझ में आया? परन्तु अब लोगों को अभिमान होता है न। हम मानो अधिक पढ़े हैं, इसलिए इस सत्य को स्वीकार करना मुश्किल पड़े। लो, १६ गाथा यह कही। १५ मिनिट चली।

★ ★ ★

गाथा - १७

आगे उन छह द्रव्यों के नाम कहते हैं— हे शिष्य,... अब नाम देते हैं, हों! व्यवहार समकित का विषय, हों! व्यवहार समकित के विषय के नाम देते हैं। व्यवहार अभूतार्थ है न? परन्तु है न।

१४३) जीउ सचेयणु दव्वु मुणि पंच अचेयण अण्ण।
पोग्गलु धम्माहम्मु णहु कालें सहिया भिण्ण॥ १७॥

अन्वयार्थ :- हे शिष्य! तू जीव चेतनद्रव्य है, ऐसा जान, और बाकी पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल सहित जो पाँच हैं, वे अचेतन हैं और जीव से भिन्न हैं,-ऐसा जान। **तथा ये सब अपने-अपने लक्षणों से आपस में भिन्न (जुदा-जुदा) हैं,...** देखो! जड़ और चैतन्य अपने-अपने लक्षण से परस्पर में अत्यन्त भिन्न हैं। समझ में आया? कोई एक है नहीं। यह तो अकेला आत्मा, अकेला आत्मा, बस, अकेला आत्मा। एक ही आत्मा है। परन्तु एक ही आत्मा हो तो फिर उसे करने का क्या रहा? एक ही आत्मा हो तो उसे विवेक करना क्या? उसे समझना क्या? उसे सुधरना क्या? एक ही था, उसमें और सुधरने का कहाँ आया और बिगड़ना कहाँ आया? समझ में आया? एक ही आत्मा हो सर्व होकर तो सुधरना और बिगड़ना उसमें कहाँ रहा? इसलिए कहते हैं कि जिसने एक आत्मा माना, उसे ऐसा विवेक होता नहीं। परन्तु अनन्त आत्मायें और अनन्त परमाणु अनन्त छह द्रव्य अपने लक्षण से विराजमान हैं। आहाहा! उनसे तेरा द्रव्य भिन्न सविकल्परहित निर्विकल्प द्रव्य है, उसे तू निश्चय से निर्णय कर, ऐसा। समझ में आया? **काल के बिना पाँच अस्तिकाय हैं।** ऐसे छह द्रव्य हैं, परन्तु काल में अस्ति है, परन्तु काय नहीं।

भावार्थ :- सम्यक्त्व दो प्रकार का है, एक सरागसम्यक्त्व, दूसरा वीतराग-सम्यक्त्व। सरागसम्यक्त्व का लक्षण कहते हैं। प्रशम अर्थात् शान्तिपना,... कषाय की मन्दता। **संवेग अर्थात् जिनधर्म की रुचि...** संवेग की व्याख्या की। **जिनधर्म की रुचि तथा जगत से अरुचि,...** संवेग और निर्वेग दोनों इकट्ठे ले लिये। निर्वेग अर्थात् अरुचि। **अनुकम्पा—परजीवों को दुःखी देखकर दया भाव...** यह व्यवहार समकित का लक्षण

है, हों! कषाय की मन्दता, कषाय की मन्दता इतना उसे उपशमभाव, क्षयोपशमभाव। समझ में आया? **और आस्तिक्य अर्थात् देव-गुरु-धर्म की तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा...** लो! यह व्यवहार समकित का लक्षण सराग समकित, सराग समकित कहा न यह? यह राग है साथ में, इसलिए इसे तो सराग कहेंगे, आगे वीतराग की बात अधिक रखी है।

देव-गुरु-धर्म के तथा छह द्रव्यों की श्रद्धा इन चारों का होना, वह व्यवहार-सम्यक्त्वरूप सरागसम्यक्त्व है,... व्यवहार समकितरूप सराग समकित है। **और वीतरागसम्यक्त्व जो निश्चयसम्यक्त्व वह निजशुद्धात्मानुभूतिरूप वीतरागचारित्र से तन्मयी है।** यहाँ से प्रश्न उठा इसलिए जरा... हुआ। वीतराग सम्यग्दर्शन जो निश्चय सम्यग्दर्शन से यह निजशुद्धात्मानुभूति, शुद्ध चैतन्य का अनुभव, उसका वीतरागचारित्र से एकमेक (पना) है। समझ में आया? इसलिए प्रश्न उठाया।

यह कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। हे प्रभो! निज शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व का कथन पहले तुमने अनेक बार किया,... क्या कहा? प्रश्न क्यों उठा? कि वीतरागचारित्र से तन्मयी आप अभी कहते हो। पहले तो ऐसा कहते थे कि **शुद्धात्मा ही उपादेय है, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व...** पहले कहते थे। प्रश्न क्या उठा, समझ में आया? पहले तो आप निश्चय शुद्ध सम्यक् आत्मा की शुद्ध दृष्टि... समझ में आया? ऐसा उसे समकित कहते थे।

फिर अब वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व है, वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है। प्रश्न समझ में आया प्रश्न? नहीं समझ में आया? फूलचन्दभाई इनकार करते हैं (कि) समझ में नहीं आया। बनिया को एक बार में कहीं समझ में आता है? पहले तुम ऐसा कहते थे कि इस शुद्ध आत्मा की रुचि से निश्चय सम्यग्दर्शन। शुद्धात्मा उपादेय निर्मलानन्द निर्विकल्प, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन। और यहाँ तुमने निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ वीतरागचारित्र अर्थात् तन्मयी ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन कहा। यह तो अब आपने बात बदली। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वीतरागचारित्र हो, विशेष बतलाने के लिये है। विशेष-

विशेष बतलाना था, इतना भी इसका यह विशेष बतलाने के लिये... **वह व्याख्यान करते हैं, सो यह तो पूर्वापर विरोध है।** समझ में आया? **क्योंकि जो निज शुद्धात्मा ही उपादेय हैं, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व तो...** अब सुनो! यहाँ गृहस्थ और मुनिपने का अन्तर जरा बतलाना है। बाकी है तो निश्चय समकित वही, परन्तु अधिक वीतरागचारित्र -सहित होता है, उसे निश्चय समकित में विशेष गुण है। रागवाला है—ऐसा है, वह भी ऐसा निश्चय समकित गृहस्थाश्रम में तो होता है, ऐसा कहते हैं, देखो! **क्योंकि जो निज शुद्धात्मा ही उपादेय हैं, ऐसी रुचिरूप निश्चयसम्यक्त्व तो गृहस्थ में तीर्थंकर परमदेव...** को था। समझ में आया? तीर्थंकरदेव को, गृहस्थादशा में तीन ज्ञानवाले भगवान को ऐसा निश्चय समकित तो था। भरत चक्रवर्ती आदि को था। **भरत चक्रवर्ती और राम, पाण्डवादि बड़े-बड़े पुरुषों के रहता है,...** लो! **लेकिन उनके वीतरागचारित्र नहीं है।** शिष्य कहता है। समझ में आया? तुम तो वीतरागचारित्र से एकमेक को यहाँ निश्चय समकित कहते हो... हमने तो यह सुना है और आपने कहा है कि भाई! यह सब तीन ज्ञान के धनी तीर्थंकर, भरत चक्रवर्ती को निश्चय समकित होता है, रहता है—ऐसा तो आपने कहा है। और वीतरागचारित्र से तन्मय कहते हो, वहाँ उन्हें वीतरागचारित्र तो है नहीं गृहस्थाश्रम में। समझ में आया? **यही परस्पर विरोध है।** शिष्य को लगा है। **यदि उनके वीतरागचारित्र माना जावे, तो गृहस्थपना क्यों कहा?** अब उन्हें यदि वीतरागचारित्र कहो तो उन्हें गृहस्थपना कैसे कहते हो? **यह प्रश्न किया।** यह प्रश्न शिष्य ने किया। प्रश्न में भी जरा माल है समझकर।

उसका उत्तर श्रीगुरु देते हैं। उन महान (बड़े) पुरुषों के शुद्धात्मा उपादेय है, ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है,... समझ में आया? '**शुद्धात्मोपादेयभावनारूपं निश्चयसम्यक्त्वमं विद्यते**' ऐसा है, हों! भावनारूपं अर्थात्? निश्चय बाद में होगा, ऐसा नहीं, एकाग्रतारूप। समझ में आया? पृष्ठ ... कुछ लिखा था। **परम्पराय मोक्ष के कारण और साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण जो देव-शास्त्र-गुरु हैं, इनकी जो निन्दा करता है, उसके नियम से पाप होता है...** ऐसा। ६२वीं गाथा में है न भावार्थ के ऊपर। वह भावार्थ में भी है। **निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि, वही निश्चयसम्यक्त्व,...** ६२ गाथा। **उसका कारण तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहारसम्यक्त्व, उसके मूल (कारण)**

अरहन्त देव, गुरु आदि... ऐसा। यह स्पष्टीकरण किया। यहाँ हमारे २०४ पृष्ठ है, ६२वीं गाथा है। यह अभी आनेवाली है। और इस ओर कुछ है।

६१ गाथा में है। **विषय कषायकर उत्पन्न हुए आर्त-रौद्र खोटे ध्यानों के नाश का कारण श्री पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करते हैं, और दान, पूजादिक करते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है, परवस्तु पर नहीं है। पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि शुभ क्रिया को परिणत हुए तो भरत आदिक हैं, उनके बिना चाहे पुण्यप्रकृति का आस्त्रव होता है। जैसे किसान की दृष्टि अन्न पर है,...** यह ६१वीं गाथा में है, यह ६२ में है। समझ में आया? क्या कहा?

कहते हैं कि भाई! महापुरुष, तीर्थंकर, भरत चक्रवर्ती आदि उन्हें **शुद्धात्मा उपादेय है ऐसी भावनारूप निश्चयसम्यक्त्व तो है, परन्तु चारित्रमोह के उदय से स्थिरता नहीं है।** समझ में आया? अस्थिरता है, अस्थिरता है। **जब तक महाव्रत का उदय नहीं है, तब तक असंयमी कहलाते हैं, शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित हुए...** शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित। एकाग्रता नहीं और अखण्ड नहीं। **भरत, सगर, राघव, पाण्डवादिक निर्दोष परमात्मा अरहन्त सिद्धों के...** भरत, सगर आदि लिये, समझ में आता है न? '**भरतादयो**' है न? तीर्थंकरादि नहीं लिये। '**भरतादयो**' लिये। ... पाठ में तो ऐसा है न! यहाँ कहे, शुद्धात्मा की अखण्ड भावना से रहित, ऐसा लिया, समझे न? ... अर्थात् शुद्ध भावना में एकाग्र नहीं तब, ऐसा। समझ में आया? भरत चक्रवर्ती, सगर चक्रवर्ती, राघव अर्थात् रामचन्द्रजी, पाण्डव (आदि) निर्दोष परमात्मा। समझ में आया?

अरहन्त सिद्धों के गुणस्तवन, करते थे। **वस्तुस्तवनरूप स्तोत्रादि करते हैं,...** लो! शुभराग में ऐसा शुभभाव उन्हें होता है, रामकथा। **और उनके चारित्र पुराणादिक सुनते हैं,...** महा तीर्थंकर आदि के चारित्र पुराण सुनते थे वे पुरुष। **तथा उनकी आज्ञा के आराधक जो महान पुरुष,...** देखो! **आचार्य, उपाध्याय, साधु, उनको भक्ति से आहारदानादि करते हैं,...** समझ में आया? **आचार्य, उपाध्याय, साधु, उनको भक्ति से आहारदानादि करते हैं, पूजा करते हैं। विषय-कषायरूप खोटे ध्यान के रोकने के लिये तथा संसार की स्थिति के नाश करने के लिये...** विशेष स्थिति घटती है न?

संसार का अभाव होता नहीं, अभाव होता नहीं परन्तु स्थिति घटती जाती है।

ऐसी शुभ क्रिया करते हैं। इसलिए शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि हैं,... लो! **शुभराग के सम्बन्ध से सम्यग्दृष्टि हैं, और इनके निश्चयसम्यक्त्व भी कहा जा सकता है, क्योंकि वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परम्पराय साधकपना है।** वह यहाँ वीतरागपना साथ में लेना है इतना। समझ में आता है न? रागरहित चारित्रसहित का समकित, वह उन्हें नहीं, इतना वीतराग समकित। परन्तु निश्चय समकित तो है। **वीतरागचारित्र से तन्मयी निश्चयसम्यक्त्व के परम्पराय साधकपना है।** निश्चय समकितवाला जीव राग की ऐसी क्रिया में है, वह वीतरागचारित्र तन्मयी ऐसा निश्चय सम्यक्त्व का परम्परा कारण होता है।

अब वास्तव में (असल में) विचार जावे, तो गृहस्थ अवस्था में इनके सरागसम्यक्त्व ही है... अब अपेक्षा से—उस चारित्र की अपेक्षा से, हों! निश्चय की अपेक्षा तो सम्यग्दर्शन बराबर है, परन्तु चारित्र की अपेक्षा से वीतरागचारित्रपना वहाँ नहीं, इस अपेक्षा से राग की प्रधानता गिनकर मुख्यपना व्यवहार की श्रद्धा का मुख्यपना है न उसमें? वह सब व्यवहार की मुख्यता से कथन चलता है न, भाई! व्यवहार सम्यग्दर्शन की मुख्यता के ये सब दोहे हैं। यह दूसरे प्रकार का बतलाया। व्यवहार की मुख्यता से यह सब कथन हैं। पहले से शुरु करके १४ गाथा तक। उसे सरागपने की प्रधानता है, इसलिए उसे वह वीतरागचारित्रवाला समकित निश्चय नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

वीतराग तन्मयी है। अब वास्तव में (असल में) विचार जावे, तो गृहस्थ अवस्था में इनके सरागसम्यक्त्व ही है और जो सरागसम्यक्त्व है, वह व्यवहार ही है, ऐसा जानो। उस राग की अपेक्षा से, हों! निश्चय सम्यग्दर्शन तो बराबर है परन्तु वीतरागचारित्र की अपेक्षा का समकित, इस अपेक्षा से उसे रागसहित, उसको व्यवहार समकित कहा (जाता है)। समकित तो निश्चय है (परन्तु) उस चारित्र की अपेक्षा से भेद करके व्यवहार कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ३, शनिवार, दिनांक - २५-१२-१९६५
गाथा - १८ से १९, प्रवचन - ८५

गाथा - १८

१८वीं गाथा, परमात्मप्रकाश, दूसरे भाग की। **आगे चार दोहों से छह द्रव्यों के क्रम से हरेक के लक्षण कहते हैं :—**

१४४) मुत्तिविहूणउ णाणमउ परमाणंद-सहाउ।
णियमिं जोइय अप्पु मुणि णिच्चु णिरंजणु भाउ॥ १८॥

अन्वयार्थ :- हे योगी,... प्रभाकर भट्ट शिष्य को योगीन्द्रदेव कहते हैं कि **निश्चय करके तू आत्मा को ऐसा जान। कैसा है आत्मा ? मूर्ति से रहित है,...** आत्मा में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श मूर्त नहीं है। **ज्ञानमयी है,...** यह भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यमूर्ति है और **परमानन्द स्वभाववाला है,...** परमानन्द और ज्ञान मुख्य दो लेना है न, दो ही वस्तु पूरी ज्ञान और आनन्दमूर्ति आत्मा है। **नित्य है,...** कायम रहनेवाला है। **निरंजन है, ऐसा जीवपदार्थ है।** लो!

भावार्थ :- यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा से भिन्न जो स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवाली मूर्ति उससे रहित है,... यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा, ऐसा लेना। यह आत्मा अमूर्तिक शुद्धात्मा, उनसे भिन्न। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाली मूर्ति से आत्मा भिन्न—पृथक् है। शरीर, कर्म आदि रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले पदार्थ हैं। आत्मा अमूर्तिक इनसे अत्यन्त भिन्न पदार्थ है। **लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाले केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** अरूपी मूर्त से रहित होने पर भी उसका स्वभाव लोक-अलोक का प्रकाश करनेवाला। मूर्त और अमूर्त सब पदार्थों को प्रकाश करनेवाला उसका स्वभाव है। **केवलज्ञानकर पूर्ण है,...** भगवान आत्मा केवलज्ञान से पूर्ण है, अभी हों! अभी। समझ में आया?

यह आत्मा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, जड़ जो शरीर, वाणी, कर्म से अत्यन्त भिन्न

है। स्वयं पर से भिन्न परन्तु अपने ज्ञान के स्वभाव से परिपूर्ण है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर तत्त्व है। समझ में आया? इसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श जड़ जो मिट्टी के, शरीर के, वाणी के, कर्म के ये रंग, गन्ध, रस, स्पर्श, जड़, इसमें—आत्मा में नहीं। वह तो अरूपी आत्मा है।

मुमुक्षु : कब नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल नहीं। कब नहीं क्या, अभी भी नहीं, तीनों काल नहीं। वे तो भिन्न जड़, मिट्टी, धूल है। कैसे होगा? जैचन्दभाई! समझ में आया?

भगवान आत्मा यह मूर्त जो वाणी शरीर, कर्म, जड़ से अत्यन्त भिन्न अभी है। भिन्न है तो है अरूपी। है अरूपी तो उसमें कोई स्वभाव है? कि उसमें ज्ञान तीन काल तीन लोक और लोकालोक को जाने, ऐसा ज्ञान भरा हुआ है। वह तो लोकालोक का जाननेवाला ही आत्मा है। समझ में आया? लोकालोक का रचनेवाला नहीं, लोकालोक को बदलनेवाला नहीं, लोकालोक का रक्षक नहीं, लोकालोक को टालनेवाला नहीं। क्या कहा? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी आत्मा है। वह ज्ञान भगवान आत्मा जितने परपदार्थ लोक-अलोक, तीन काल, तीन लोक के पदार्थ उनका यह आत्मा प्रकाशक है। कोई उसकी चीज़ में वह चीज़ नहीं तथा उस चीज़ का जाननेवाला है परन्तु उस चीज़ का कुछ भी बदलनेवाला, रक्षक, भक्षक, व्यय करनेवाला, परवस्तु को बदलनेवाला यह आत्मा नहीं है। समझ में आया?

जाननेवाला है, जगत को और आत्मा को ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। और लो! आया भाई! वह रात्रि में कहा था। कहाँ का कहाँ आया। कहो, समझ में आया? आत्मा जाननेवाला है और उसे तथा दूसरे अनन्त पदार्थ—अनन्त आत्माएँ, मिट्टी, धूल, शरीरादि, पैसा, लक्ष्मी, धूल आदि, ये सब ज्ञान में ज्ञेय—ज्ञात होनेयोग्य हैं और वे पदार्थ जानने में ज्ञात हों, ऐसा उनका स्वभाव है। आत्मा जाननेवाला है और जो चीज़ें जड़ आदि सब ज्ञात होनेयोग्य है। बस, इतना सम्बन्ध है, बाकी उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? रतिभाई! अब इस लोहे के व्यापार का सम्बन्ध है या नहीं करना? पैसे रखने का है या नहीं? पैसे दूसरे को देने का स्वभाव है या नहीं? ऐई!

यही कहते हैं कि तू तेरा स्वरूप सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप है, भाई! और जगत के सभी शरीर, वाणी, कर्म, पैसा, धूल, मकान, यह सब यह लोक और अलोक यहाँ तो सब ले लिये। ये सब तेरे ज्ञान में ज्ञेय—ज्ञात होने योग्य है, तू एक जाननेवाला है। इसके अतिरिक्त परपदार्थ के साथ तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया? खबर नहीं इसे कौन हूँ मैं? क्या करता हूँ? क्या होता है पर में? क्या सम्बन्ध है मुझे और उसे? देखो! रात में तो यों ही आया था ऊपर से, हों! इसमें तो यहाँ वापस यह आया? समझ में आया?

आत्मा लोकालोक का प्रकाश करनेवाला, **जो कि केवलज्ञान सब पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है,...** यह भी आत्मा एक समय में सबको जानने का ही उसका स्वभाव है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा, उसे यहाँ आचार्य महाराज अथवा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष ज्ञान में ज्ञात हुए। ऐसे भगवान तीर्थंकरदेव के श्रीमुख से दिव्यध्वनि में ऐसा आया, भाई! तू कौन है? तू कौन है? कि तू तो लोकालोक को जाननेवाला-देखनेवाला आनन्दमूर्ति है। समझ में आया? लोकालोक में क्या चीज़ बाकी रह गयी? अनन्त परमाणु दाल, भात, रोटी, सब्जी यह पैसा, धूल, शरीर, मिट्टी, मकान, यह सब पदार्थ तेरे ज्ञान में ज्ञात हों और तू जाने, ऐसा ही उनका सम्बन्ध है। उन परपदार्थ को तू करे, (ऐसा नहीं)। परपदार्थ कर्ता और तेरा कुछ काम हो, ऐसा उसमें सम्बन्ध नहीं है। तथा आत्मा कर्ता और इस शरीर आदि के काम-कार्य हो, ऐसा परपदार्थ के साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। बराबर होगा? यह दवा-बवा की...

मुमुक्षु : यह प्रत्यक्ष ही है...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या प्रत्यक्ष है?

मुमुक्षु : देह के काम कर सकता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं है। कर नहीं सकता - ऐसा भी नहीं है। वे होते हैं जगत के भाव, उन्हें जाननेवाला ही है, मात्र इतना। पहले कर सकता था और अभी नहीं कर सकता, ऐसी शल्य डालकर बात नहीं है। समझ में आया? पहले धमाल की थी,

वह करते थे, यह बात मूढ़ मानता है, कहते हैं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। शरीर ठीक था, तब करते और ऐसे हिलते और ऐसे मुम्बई जाते और विलायत जाते और... यह बात मिथ्या है, ऐसा भगवान कहते हैं। प्रवीणभाई! क्या कहा? यह तो ऐसा कहते हैं कि पहले हम ऐसे गये थे विलायत में और होली में और अमरिका में और मोटरों में भु... भु... करके। हराम बात है, ऐसा कहते हैं। परपदार्थ के द्रव्य, गुण और पर्याय के साथ तेरा जानने का स्वभाव-सम्बन्ध है और वह ज्ञात होता है, इतनी बात है। इसके अतिरिक्त अज्ञानी मूढ़ ऐसा माने कि मुझे और परद्रव्य को कर्ता-कर्म सम्बन्ध है, मैं करनेवाला और उसके कार्य हों अथवा वह करनेवाला और मुझे कुछ काम हो, ऐसा आत्मा का और पर का स्वभाव सम्बन्ध है नहीं। ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ तीर्थंकरदेव केवलज्ञान में से पुकारते हैं। समझ में आया?

यह इसके लिये तो बात चलती है। समझ में आया? ऐसे पाँच-पच्चीस लाख की पूँजी को देखो... यह सवेरे में ही कहते थे कि पचास लाख रुपये हैं तो यहाँ नहीं कुछ कर सकते। मणिभाई ऐसा सवेरे कहते थे। सवेरे आया न, हों! धूल में क्या पचास लाख करता था, और करोड़ करता था। वह तो आत्मा जाननेवाला और वे ज्ञेय हैं। ज्ञात होनेयोग्य को जाने। समझ में आया? सवेरे आये थे, तब कहा था। लो! इन मणिभाई के पास पचास लाख है। चार भाईयों के पास। परन्तु धूल, शरीर कुछ कर नहीं सकता। धूल भी किसके पैसे? पचास लाख किसके और पाँच करोड़ किसके और पाई किसकी और शरीर किसका? वह तो मिट्टी, जड़, परपदार्थ है। यह आत्मा जाननेवाला और वे ज्ञात हों, इतना ही सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त मेरे माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा! गजब बात, भाई!

...मिलते हैं न, देखो न! मोहनभाई! क्या होगा यह? हाय... हाय...! यहाँ तो एक बात ऐसी कहते हैं कि आत्मा लोकालोक को जाननेवाला सर्व पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जाने, ऐसा ही उसका स्वरूप ही है। समझ में आया? ... वापस वह कर्म करण शब्द पड़ा है न? अर्थात् **आगे-पीछे नहीं जानता,...** आत्मा का ज्ञान जो पूरे जगत के अनन्त परमाणु, अनन्त आत्माएँ, असंख्य कालाणु, धर्म, अधर्म और आकाश

ये तीन—पदार्थ हैं। इस वस्तु को एक समय में सब है ऐसा जाने, वह ज्ञात हो और यह जाने, बस। इसके अतिरिक्त में भोक्ता और वे चीज़ें मुझे भोग्य है, यह मूढ़ मानता है। ऐसा है नहीं। क्या कहा? यह दाल, भात, रोटी, स्त्री, कुटुम्ब, ऐसा मुझे भोगनेयोग्य है और मैं भोगता हूँ—मूढ़ है। भोगनेयोग्य परपदार्थ कैसा तुझमें? ऐ... रतिभाई! क्या होगा यह? यह सब तुम्हें पैसेवालों को बहुत कहे कि बहुत... ओहोहो! ऐसा कहते हैं। यह करोड़पति ऐसा है मोहनलाल घीया, लोग ऐसा कहते हैं। यह सब ऐसा है, धूल है और यह बातें लोग करते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान का पति तू है। वे चीज़ें जो हैं अनन्त जगत में, एक शरीर के रजकण से लेकर, वाणी के रजकण से लेकर अनन्त, उन सबका आत्मा जाननेवाला, वे ज्ञात हों। बस, इसके अतिरिक्त दूसरा सम्बन्ध माने (तो वह) मूढ़ मिथ्यादृष्टि आत्मा की हिंसा करता है। समझ में आया? मूर्ख भी नहीं, महापाप बाँधे। समझ में आया? मूढ़ता से पाप के बड़े चिकने पिण्ड बाँधे। कौन करे? कहते हैं न समझण कर, तू समझण कर, मैं तो ज्ञान हूँ। जगत जाननेयोग्य पदार्थ है। कल इसने कहा था। कहा था न भरत... और कहा था। ज्ञान हूँ, ऐसा ध्यान रखना। समझ में आया? शाम को कहा, शाम को आये थे न। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति! किस प्रकार से बात करते हैं, देखो न! यहाँ तो अभी आत्मा की साधारण बात करते हैं, हों! आत्मा कैसा ऐसा। उसके अन्दर में यह डाला। परमात्मस्वरूप है न यह? आत्मा परमस्वरूप, उसका ज्ञानस्वरूप है। भगवान जिसकी आँखें ज्ञान हैं। सब चीज़ें अनन्त, वे उसके ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य है, यह जाननेवाला है। बाकी इसके अतिरिक्त इससे अधिक दूसरे प्रकार से अन्दर खतौनी करे, वह असत्यबुद्धि, पापबुद्धि और मिथ्याबुद्धि से करता है। कहो, जमुभाई! क्या करना? यह गाँव, खेत और जमीन... ओहोहो! दस-दस भाई हों, और बारह-बारह भाई... 'बारह भाया' आता है न? कितने भाई और कितने काका और कितने मामा और धूल... कहते हैं कि भगवान! यह सब बात तू कहता है कि वे मेरे। वह सब बात झूठी है। तुझे और पर को ज्ञायक और ज्ञेय सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! जुगराजजी! आहाहा!

वस्तु का सत् ही ऐसा है कि तू ज्ञानस्वरूपी भगवान आगे-पीछे नहीं जानकर, एक क्षण में पूरी दुनिया लोकालोक जिस प्रकार से है, उसे जानने का स्वभाव है। आगे-पीछे नहीं कि उसका ऐसा होगा, इसका ऐसा होगा और उसका ऐसा होगा, तब ज्ञात होगा। एक समय में पूरी दुनिया ऐसी की ऐसी है, ऐसा जानने का ज्ञान का स्वभाव है। वहाँ आगे-पीछे नहीं, वहाँ व्यवस्थित काम चलता है और आत्मा आगे-पीछे नहीं कर सकता। समझ में आया? भारी बात, भाई! यह जो स्थिति इसकी दशा टलती हो, उस अवस्था को बदल डाले, लाओ बदल दूँ, ऐसी चलती है, इसलिए ऐसी कर दूँ, ऐसे चले तो ऐसे बदल दूँ। वह अवस्था जो उसके काल में हुआ करे, उसे बदल सकता नहीं। उसे होती है, उसको जान सकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब बात, भाई! इसका नाम जीव, इसका नाम आत्मा। जो भगवान ज्ञानसूर्य चैतन्यस्वरूप है। उसके लोकालोक... यहाँ तो पूरा ले लिया, देखो न! ... आहाहा!

सब पदार्थों को एक समय में प्रत्यक्ष जानता है, आगे-पीछे नहीं जानता,... आगे-पीछे कैसा फिर? आगे-पीछे क्या होगा? **वीतरागभाव परमानन्दरूप एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से समरसी भाव को परिणत हुआ है,...** ऐसा ही उसका स्वभाव है, कहते हैं। क्या कहते हैं? अब आनन्द लेता है। वीतरागभाव—राग बिना विकल्प बिना, परमानन्दरूप आत्मा परम अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। अतीन्द्रिय आनन्द रसस्वरूप भगवान ज्ञान के साथ, अकेला ज्ञान नहीं, उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर एक अतीन्द्रिय सुखस्वरूप, एक अतीन्द्रिय सुख का सागर भगवान है। आहाहा!

अमृत के रस के स्वाद से... भगवान अतीन्द्रिय अमृत के, अमृत अतीन्द्रिय रस के स्वाद से समरसी भाव को वीतरागभाव से आनन्दरूप परिणमे, ऐसा ही उसका स्वरूप है। **परिणत हुआ है, ऐसा हे योगी;...** देखो! **शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ,...** देखो! आहाहा! समझ में आया? नजर नहीं करता। उस एक मछली का दृष्टान्त शास्त्र में नहीं लिया? एक मनुष्य था, वह (कहे), मुझे मोक्षमार्ग बताओ, मोक्षमार्ग बताओ, आत्मा बताओ, आत्मा। आत्मा कहाँ है? आत्मा का ज्ञान जल कहा है?

एक मनुष्य मिला वह कहे, भाई! मेरे पास नहीं है, जा मछली के पास जा समुद्र में, वह बतायेगी। (वहाँ जाकर मछली को पूछता है) भाई! मेरा ज्ञान कहाँ है? मेरा ज्ञान कहाँ है? मेरा ज्ञान कहाँ है? मछली के पास जा। मछली के पास जा (जाकर कहता है), मुझे ज्ञान बताओ। तुम बड़े पुरुष लगते हो, मुझे किसी ने बताया, पूछा तो कहा, मछली के पास जा। मछली कहती है, ऐसा! बहुत अच्छी बात। तुम तो बड़े पुरुष लगते हो, मेरे पास आये तो। वह मछली कहती है। मुझे एक थोड़ा पानी लाकर दो न, मछली कहती है। पानी क्या? यह भरा। नहीं देखती तू? मछली को कहता है। (तब मछली कहती है), तू नहीं देखता कि तू इस ज्ञान से भरा है? समझ में आया?

मछली कहती है कि तू मुझे शिक्षा देने आया है कि यह पानी रहा, परन्तु तू तुझमें खोजने आया यह ज्ञानजल, ज्ञान कहाँ होगा? मेरा ज्ञान कहाँ होगा? ज्ञान से भरपूर तेरा समुद्र स्वयं ही है। भीखाभाई! 'पानी में मीन प्यासी रे... मुझ देखत आवे हाँसी।' भजन आता है भजन। समझ में आया? 'सुन सुन आवत हाँसी, पानी में मीन प्यासी।' पानी में मीन प्यासी। भान नहीं होता। ऐसे मुँह करके बैठे ऐसे बादल के सामने, ऊँचा मुख करके। पानी उसमें है...

इसी प्रकार आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसके सामने देखता नहीं और ऐसे बाह्य में देखा करता है। इन्द्रियों और मन को और जड़ को। भरपूर समुद्र अन्दर में स्वयं है। समझ में आया? क्यों नहीं देखता? यह पर के सन्मुख देखता है, इसलिए नहीं देखता। स्वयं कौन चीज़ है, उसके सन्मुख कभी देखा है, विचार किया है? ऐसे का ऐसा मूढ़रूप से इन इन्द्रियों की ओर का लक्ष्य और यह किया और यह छोड़ा और यह दिया और यह जाना और यह जाना। परन्तु जाननेवाला कौन है, उसने एक समय में भी अनन्त काल में जानने का प्रयत्न नहीं किया। समझ में आया?

हे योगी!... यहाँ तो... समझ में आया? **समरसीभाव परिणतस्वरूप तत्त्वार्थ...** यहाँ तो परिणतिस्वरूप है। ऐई! यह तो परिणतस्वरूप का स्वरूप ही ऐसा है। पर्यायरूप से परिणमे परम आनन्दरूप (परिणमे), ऐसा ही उसका स्वभाव है। रागरूप होना या विकाररूप होना या पर का कर्ता-भोक्ता (होना), उसके स्वरूप में है ही नहीं। आहाहा!

उसमें वहाँ डाला है। पर के साथ जो लोकालोक को जाने, साथ में रागादि जाने और वीतरागरूप से परिणमे। वीतराग की पर्यायरूप से, आनन्दरूप से परिणमे, ऐसा ही आत्मा का स्वभाव है। समझ में आया? लोकालोक के साथ ज्ञेय सम्बन्ध है और रागरूप होना भी उसका स्वभाव नहीं है, विकाररूप होना उसका स्वभाव नहीं है, ऐसा कहा। लोकालोक के साथ ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध है और विकाररूप होना या पुण्य-पापरूप होना, उसका स्वभाव नहीं है। उसका स्वभाव पर को जानना और वीतराग आनन्दरूप होना, ऐसा भगवान आत्मा का स्वभाव है। कहो, समझ में आया? इसमें। ओहोहो!

मुमुक्षु : कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी दृष्टि कर, ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा है, ऐसा मान अन्दर में। यह माना है कि मैं यह शरीर हूँ और राग हूँ और धूल हूँ और पुण्य-पाप हूँ और अल्पज्ञ एक समय की पर्याय जितना हूँ, यह सब मिथ्याभ्रम अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई! वहाँ का वहाँ डाल दिया। समझ में आया? '**जीव सचेतणु दऊ**' इस चेतन में आनन्द डाल दिया। समझ में आया? 'जीव सचेतणु दऊ' एक शब्द में से व्याख्या निकाली १७ है न १८, १८। '**मुत्ति-विहूणउ णाणमउ परमाणंदसहाउ**' लो! इसमें से यह निकाला।

भगवान आत्मा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शरहित ज्ञानमय और परम आनन्दमय स्वभाव है। बस! इतनी बात है। ओहोहो! यह भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का स्वभाव, इसे अन्तर जानकर, देखकर वीतराग पर्यायरूप से परिणमना, बस! वह तेरा स्वभाव है। तब उसने आत्मा को माना कहने में आता है। मैं आत्मा पर के साथ ज्ञेय-जानने का सम्बन्ध और रागादिरूप नहीं होने का और वीतरागरूप होने का सम्बन्ध है। उस रूप से आत्मा को जाने, माने, तब उसने आत्मा को माना कहने में आता है। आत्मा है, ऐसा इस प्रकार से माने, तब माना कहने में आता है - ऐसा यहाँ कहा। छह द्रव्य में सिद्ध करते हैं आत्मा। समझ में आया? आहाहा!

'**णिच्चु णिरंजणु भाउ**' वाह! कहते हैं कि आत्मा इसे कहना। छह द्रव्य में आत्मा का यह लक्षण कहा न? यह वर्णन करते हैं न? भगवान आत्मा, यह आत्मा

उसने माना, जाना कहलाता है कि यह आत्मा जगत के ज्ञेय को जाननेवाला तत्त्व है और उस वीतराग की पर्यायरूप से, आनन्दरूप से परिणमनेवाला आत्मा है। ऐसा आत्मा माने, उसने आत्मा माना, आत्मा का आस्तिक हुआ, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...आत्मा को मानता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ मानता है यह? किसने माना आत्मा को? आत्मा तो ऐसा है, ऐसा मानता है कब? क्या मानता है? आत्मा अर्थात् कौन परन्तु? आत्मा माना। आत्मा अर्थात् कौन? आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वरूप, आत्मा अर्थात् आनन्दस्वरूप। उस आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप वीतराग की आनन्दपने की पर्याय से परिणमे, ऐसा आत्मा। वह पर को करे और पर से ले और दे, ऐसा आत्मा नहीं है; इसलिए ऐसा आत्मा न माने, तब तक उसने आत्मा माना नहीं। ऐ... भीखाभाई! नाम ले तो। निम्बोली को नीलमणि मान ले तो। नीलमणि है देखो! यह नीलमणि है, यह देखो नीलमणि है। नहीं? आत्मा कहे और वह आत्मा पर के काम करे, ऐसा माने अथवा पर के कार्य से आत्मा को लाभ होगा, ऐसा माने। समझ में आया? यह आत्मा पैसावाला हूँ, ऐसा माने, यह पुण्य-पाप के रागवाला हूँ, ऐसा माने, उसने आत्मा माना नहीं। अल्पज्ञ पर्याय जितना माने, उसने आत्मा माना नहीं। इस दुःखरूप परिणमनेवाला आत्मा, उसने आत्मा माना नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? छह काय के जीव हैं न? उस जीव को जाननेवाला जीव। अनन्त जीव को आत्मा जाननेवाला और वे ज्ञात होनेयोग्य! इसके अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं है। उसे रखूँ या टालूँ, ऐसा सम्बन्ध पर के साथ है ही नहीं। पर अनन्त पदार्थ... यह तो उसमें आ गया। ज्ञायक में वे अनन्त जीव ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। समझ में आया? परन्तु उनका रक्षण करूँ, भक्षण करूँ, तोडूँ-फोडूँ— ऐसा सम्बन्ध तुझे और परजीव के साथ है नहीं। कहो, इस परिवार का और माता-पिता का और देश का रक्षण करना, ऐसा ज्ञान को और शरीर को सम्बन्ध है जगत को? नहीं। भारी बात भाई! जमुभाई! यह तो दरबार—आत्म दरबार की बात है। आहाहा! कहाँ गये दरबार? गये? गये? ठीक! समझ में आया? आहाहा!

आत्मा माना उसे कहते हैं कि जो पर में सुख न माने। परचीजें ज्ञान में ज्ञेय है, उसमें पर में सुख मानना कहाँ रहा? ऐ... मलूकचन्दभाई! यह तो जरा सा विस्तार होता है। आत्मा ज्ञान और वे ज्ञेय, वह ऐसा जाने परन्तु आत्मा, पर में सुख माननेवाला, उसमें सुख है, ऐसा माने, ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं, वस्तु में ऐसा है नहीं। है नहीं और मानता है तो इसने आत्मा को माना नहीं। शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत में सुख है, उसमें मजा है—ऐसा माननेवाले ने आत्मा है, ऐसा माना नहीं। आहाहा! ऐ.. प्रेमचन्दभाई! सुना नहीं होगा कभी वहाँ। उसमें वहाँ कहाँ था। आहाहा! ....आहाहा!

आत्मा सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग परमेश्वर फरमाते हैं, आत्मा उसने माना कहलाये कि जो परपदार्थ के किसी रजकण की दशा में या किसी जीव की पर्याय में मेरा सुख है वहाँ—ऐसा माने तो वह आत्मा मानता नहीं है। क्योंकि आत्मा को और परपदार्थ को ज्ञायक और ज्ञेय का सम्बन्ध है। वह सुख देनेवाले और यह सुख लेनेवाले, ऐसा कोई स्वभाव में उसमें पर में भी नहीं। वे ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला, इसके अतिरिक्त दूसरा पर में भी नहीं और इसमें भी नहीं। समझ में आया? क्या होगा? बँगला, बँगले में सुख होगा या नहीं थोड़ा-बहुत?

यह समझता है, यह कहा न? पर में हम सुख माने और पर को करें और यह सब आत्मा। ऐसा मानता है यह मूढ़ जीव अनादि से। समझ में आया? इसीलिए तो '**मुत्ति-विहूणउ**' पहला शब्द रखा है, उससे रहित परन्तु मूर्त को और इसको ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है। आहाहा! वाह रे वाह! शरीर, वाणी, मन, हड्डियाँ, माँस, चमड़ी, पैसा, धूल, दाल, भात, मौसम्बी, ये सब मूर्त पदार्थ हैं। इनसे रहित भगवान है। वे ज्ञेय और ज्ञान, इतना सम्बन्ध है परन्तु उसमें सुख है और उसमें सुख माने, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है और उसमें आत्मा का सुख नहीं है, तथापि उसमें मानता है।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष दिखता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ दिखता है? धूल। क्या प्रत्यक्ष दिखता है? मणीभाई इनकार करते हैं, देखो! क्या दिखता है? धूल में भी नहीं। यह सब रुपये ऐसे के ऐसे पड़े हैं तो शरीर ऐसा-ऐसा हो गया, लो!

मुमुक्षु : शरीर हुआ और आत्मा कहाँ हुआ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो होता है। उसका हो, उसके घर हुआ। शरीर ऐसा हुआ, उसमें कहाँ दुःख था। शरीर की जो अवस्था अनुकूल थी, परन्तु ज्ञान का ज्ञेय है, प्रतिकूल भी ज्ञान का ज्ञेय है। प्रतिकूल, वह दुःखदायक और अनुकूल, वह सुखदायक— ऐसा उसमें नहीं है। इस आत्मा में ऐसा नहीं है। समझ में आया ? आहाहा ! वह तो ज्ञेय है। यहाँ कहा न ? एक ज्ञेय में समाहित कर दिया। एक ही बात समाहित कर दी। आहाहा ! कथन तो कथन ! परमात्मप्रकाश है न ! तेरा प्रकाश तो जानना, उसका प्रकाश ज्ञेय होना, तुझमें ज्ञात होना। इसके अतिरिक्त तीसरी बात बीच में (वह विपरीतता है)। जमुभाई ! बराबर होगा यह ? ...आहाहा !

कहते हैं, भगवान आत्मा... ओहोहो ! वह तो ऐसा द्रव्य है, वह वस्तु ऐसी है। छह द्रव्य में जीवद्रव्य ऐसा, यह तो अभी बताते हैं। ....ऐसा ही है न परन्तु। भगवान आत्मा लोकालोक को जानने का स्वभाव और परमानन्द वीतराग की परिणति से परिणमना, परिणमना, परिणत होना बस ! यह द्रव्य का स्वभाव, यह द्रव्य का स्वभाव।

मुमुक्षु : शरीर की मदद से होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की मदद से नहीं, राग की मदद से नहीं। शरीर की तो कहाँ (बात करना)। राग विकल्प, दया, दान का उठे, उससे आत्मा की वीतरागी परिणति होती है, ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

कितनी संक्षिप्त में बात ली है ! पर के निमित्तों से कहीं यहाँ ज्ञान-आनन्द का परिणमन हो, ऐसा तो नहीं। क्योंकि वह तो ज्ञेय है और यह ज्ञान है। परन्तु अन्दर व्यवहाररत्नत्रय के, दया, दान, भक्ति, पूजा के विकल्प उठें, उनसे आत्मा वीतरागरूप परिणमे, ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। अपने से स्वयं ज्ञान और वीतराग की परिणति से परिणमे, ऐसा उसका स्वभाव है। कहो, समझ में आया इसमें ? ओहोहो ! अमृत घोंटा है अकेला ! एक ही शब्द में, एक ही गाथा के एक ही भाग में पूरा अमृत का समुद्र

उछलता है!! भगवान! तू तो अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु है न! और वह भी तेरा परिणमना तो पूर्ण ज्ञानरूप से, पूर्ण ज्ञानरूप से और पूर्ण वीतरागी आनन्दरूप से... लिया है। आहाहा! समझ में आया? वाह!

पीछे नहीं जानता, वीतरागभाव परमानन्दरूप एक... एक शब्द रह गया था। **अतीन्द्रिय सुखस्वरूप अमृत के रस के स्वाद से समरसी...** एक स्वरूप, एकरूप परिणमना, ऐसा। **परिणत हुआ है, ऐसा हे योगी! शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ,...** यह शुद्ध निश्चय का वास्तविक स्वरूप, उस ऐसा आत्मा को जान। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से जाने तो तूने आत्मा को माना नहीं। आहाहा! यह किसके लिये कहा जाता है यह? समझनेवाले को समझने के लिये कहा जाता है या नहीं? वाह! अरे! एक ही गाथा से, एक ही आँख से सब फैसला हो जाता है, लो! आहाहा!

भगवान परमात्मा के तेज के नूर से भरपूर भगवान तू स्वयं है, भाई! परमस्वरूप, परमस्वरूप प्रभु। यह ज्ञान और आनन्द। ऐसे पूर्णानन्द भगवान... पर को जानना, यह तीन काल में इतना परन्तु इसके अतिरिक्त साथ में वीतरागरूप से आनन्दरूप से परिणमना, परिणत होना-ऐसा ही जीवद्रव्य का स्वभाव है। ऐसा मानना, उसने जीवद्रव्य को माना कहलाता है। दूसरे प्रकार से माने उसने जीवद्रव्य को माना नहीं है। मैं एक कमानेवाला और होशियार हुआ, इसलिए पैसे प्राप्त किये। मूढ़ है, कहते हैं। तूने आत्मा को माना नहीं। ऐ... जमुभाई! ....सिर घूम गया होता है न बहुत तो। मानो कि दो-पाँच-दस लाख पैदा हो वहाँ तो आँखें ओढ़े जाए। धूल में भी... यह तो अज्ञानपने की उधम करता है व्यर्थ की।

भगवान आत्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने फरमाया कि भगवान जीवद्रव्य तुझे किसे कहें? तेरा द्रव्यपना-वस्तुपना किसे कहें? आत्मा किसे कहें? आत्मा ज्ञानस्वभाव से पर को जाने, आनन्द और वीतरागरूप परिणमे, पूर्णरूप परिणमे, हों! समरसी वीतरागरूप परिणमना, उसे आत्मद्रव्य कहा जाता है। आहाहा! वाह रे... वाह! वीतराग की कथन की पद्धति। ओहोहो! चारों ओर किसी भी प्रकार से बात उठाओ, एक ही

वस्तु पूर्वापर विरोधरहित सिद्ध होती है। आहाहा! समझ में आया? देवानुप्रिया! देवानुप्रिया समझते हो? देव को प्रिय, मनुष्य देह देव को वल्लभ (प्रिय) है।

ऐसा हे योगी! यह शिष्य को कहते हैं, हों! समझ में आया? **शुद्ध निश्चय से अपनी आत्मा को ऐसा समझ, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से बिना टांकी का घड्या हुआ सुघटघाट...** यह वस्तुरूप से देखो तो अघड़ित ऐसा का ऐसा सुघट घाट है। असंख्य प्रदेशी भगवान अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु ऐसा का ऐसा है। वह **ज्ञायक एक स्वभाव नित्य है।** यहाँ एक रह गया। ज्ञायक एक स्वभाव नित्य है, ज्ञायक एक स्वभाव नित्य है। समझ में आया? **तथा मिथ्यात्व रागादिरूप अंजन से रहित निरंजन है।** नास्ति की। मिथ्यात्व और रागादि दोनों। भ्रमणा और रागादि विकल्प पुण्य, दया, दान आदि से रहित है, ऐसा भगवान अभी द्रव्यस्वरूप है। आहाहा! अरे! इसने आत्मा कैसा है, यह कभी सुना नहीं है। आत्मा, आत्मा की आस्था और आस्था... परन्तु सुना नहीं इसने। इसे कहना आत्मा, बाकी आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : जैन है, यह तो सच्चा...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में जैन अर्थात् क्या हो गया? जैन वाड़ा में जन्मे, (इसलिए जैन) हो गये? थैली में (डाला) चिरायता और ऊपर लिखा मिश्री (तो) चिरायता मीठा हो जाता होगा? क्या होगा? मलूकचन्दभाई! ऐसे ऊपर लिखा जैन और अन्दर में भान का कुछ ठिकाना नहीं होता! जैन तो उसे कहते हैं कि ऐसा आत्मा माने, उसे जैन कहते हैं। यह तो वस्तु का स्वरूप है। जैन कोई वाड़ा है?

यह समझे तो भाग्यशाली कहलाये। अकेले (जैन में) जन्मे उसमें क्या है? व्यवहार से कहलाता है। सुनने का अच्छा मिले, इतनी अपेक्षा से कहलाता है। परन्तु यह समझे बिना... आहाहा! मिथ्यात्व, यह नास्ति से बात ली। समझ में आया? **'णियमि जोइण' 'आत्मानं मन्यस्व नित्यं निरंजनं भावम्'** इसके सामने डाला अंजनरहित। निरंजन शब्द प्रयोग किया है न? मिथ्यात्व और रागादि अंजन से रहित निरंजन है। भ्रमणा और राग-द्वेषरहित तत्त्व है। उसे आत्मा कहते हैं। भ्रमणा और राग-द्वेष तो अचेतन पर्याय जड़ की पर्याय है, विकारी पर्याय है, वह कहीं आत्मा का स्वभाव नहीं

है। **ऐसी आत्मा को तू भली-भाँति जान,...** आहाहा! हे आत्मा! ऐसे आत्मा को तू भलीभाँति जान। उसे भगवान ने आत्मा कहा है। इस प्रकार से तू जाने तो आत्मा जाना, माना कहलाये। आहाहा!

यहाँ तो जरा इज्जत जहाँ हो वहाँ कहे, हम सुखी हैं। पाँच-पचास लाख हो तो हमारे बादशाही है। ऐसा है, बादशाही है। मूढ़ वह भी कितना हो गया है पागल का कहीं प्रमाण होगा? जैसा पूरा-पूरा पर का जाननेवाला है, उसके बदले थोड़ी सी चीज़ में... यह मेरी। कितना पागल! ऐई! गजब बात, भाई! जीवराजजी! आहाहा! भगवान! यह तो तीन लोक के नाथ तेरे द्रव्यस्वभाव को बतलाते हैं। भाई! तू ऐसा है न! और ऐसे को तू दूसरे प्रकार से माने, वह कहीं आत्मा माना कहलाये, भाई? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसी आत्मा को तू भली-भाँति जान, जो सब पदार्थों में उत्कृष्ट है। सबमें तेरा उत्कृष्टपना जगत में है। क्योंकि इन सब ज्ञेय को तू सबका जाननेवाला है। समझ में आया? **इन गुणों से मण्डित शुद्ध आत्मा ही उपादेय है,...** लो! ऐसे गुणों से सहित भगवान आत्मा, वही अन्तर उपादेय अर्थात् श्रद्धा में अंगीकार करनेयोग्य है। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा कहा, वैसा ही आत्मा जीवों को श्रद्धा में आदर करनेयोग्य है। बाकी दूसरी कोई चीज़ आदर करनेयोग्य है नहीं। कहो, समझ में आया? **और सब तजनेयोग्य हैं।** ज्ञेयरूप से आदर करनेयोग्य नहीं, ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है। आदर करनेयोग्य नहीं कि यह हमारा... यह हमारा... यह हमारा, पुण्य-पाप हमारे, दया-दान हमारा, विकल्प हमारा... पैसा हमारा।

मुमुक्षु : भगवान तो हमारे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान भी इस आत्मा के नहीं। भगवान भगवान के घर के— ज्ञेय के। इस आत्मा में-ज्ञान में ज्ञेयरूप से भगवान है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं, आत्मा के द्रव्य के ज्ञायक में हम भी तुझे ज्ञेयरूप से हैं। आहाहा! समझ में आया? लो, एक गाथा हुई। पचास मिनिट हुए। कहो, समझ में आया इसमें? यह कहाँ का कहाँ से निकल गया! कहाँ का कहाँ कहो। आहाहा!

रात्रि में कहा था कि आत्मा और पर को तो... २०० (गाथा प्रवचनसार) में कहा, बाद में याद आया। २०० गाथा में है न! शुरु करने के बाद याद आया। ज्ञायक और ज्ञेय के अतिरिक्त कुछ है नहीं। इस लाईन की खबर नहीं थी, हों! यह तो अभी निकली... यह तो यह निकला। आहाहा!

उसमें परमात्मा स्थित है पूरा। भाई! वह स्वयं ज्ञान और आनन्दरूप परिणमे और परिपूर्ण परिणत हुआ, परिणमे तो ही उसे जीवद्रव्य कहा जाता है, कहते हैं। समझ में आया? उस राग से परिणमित वह कहीं जीवद्रव्य का पूरा स्वरूप नहीं है। वह तो अपूर्ण है, वह कहीं जीव की पूर्णता की प्रतीति नहीं है उसमें। आहाहा! समझ में आया? **'एगम जाणई सव्वे जाणइ'** ऐसा आत्मा जाने, उसने पूरी दुनिया तीन काल, तीन लोक को जान लिया। छोटाभाई! आहाहा! लो! एक की बात की।

पुद्गल, धर्म, अधर्म की बात करते हैं—तीन द्रव्य की। यह आत्मद्रव्य की बात की। पुद्गल और धर्म, (अधर्म), काल की बाद में कहेंगे। समझ में आया? आकाश की बाद में कहेंगे।

★ ★ ★

गाथा - १९

१४५) पुग्गलु छव्विहु मुत्तु वढ इयर अमुत्तु वियाणि।
धम्माधम्म वि गयठियहँ कारणु पभणहिँ णाणि॥ १९॥

गुरु शिष्य को कहते हैं कि **हे वत्स, तू पुद्गलद्रव्य छह प्रकार तथा मूर्तिक है,...** हे शिष्य! पुद्गल की छह प्रकार की जाति है, उसे पुद्गलरूप से जान। तेरे रूप से नहीं। ज्ञेय में ऐसे पुद्गल छह प्रकार के हैं, उन्हें ज्ञेय में पुद्गल मूर्तरूप से जान। समझ में आया? यह मूर्तिक है और **अन्य सब द्रव्य अमूर्त हैं,...** पुद्गल में, रजकण में प्रत्येक में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है। इसके अतिरिक्त पाँच पदार्थ अमूर्त हैं। भगवान के ज्ञान में छह पदार्थ केवलज्ञान में ज्ञात हुए, उनमें एक पुद्गल ही वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला है। इसके अतिरिक्त जीव, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल—ये

पाँच अमूर्त हैं, यह मूर्त है। **ऐसा जान,...** ऐसा तू जान, तेरा जानने का स्वभाव है तो जान, ऐसा कहते हैं।

धर्म और अधर्म इन दोनों द्रव्यों को गति-स्थिति का सहायक कारण केवली श्रुतकेवली कहते हैं। कहो। धर्मास्ति, अधर्मास्ति दो अरूपी पदार्थ जगत में चौदह राजुलोक में है। वे गति-स्थिति में सहकारी कारण हैं। पाठ में सहकारी शब्द लेंगे। सहकारी कारण। जड़ (पुद्गल) और चैतन्य स्वयं स्वत:गति और स्थिरता स्वरूप परिणमते हों तब उन्हें धर्मास्ति गति में निमित्त सहकारी है। साथ में, हों! आगे-पीछे नहीं। जीव और जड़ ऐसे गतिरूप गति में परिणमते हैं, उस काल में एक धर्मास्ति सहकारी निमित्त है। स्थितिरूप परिणमे, तब अधर्मास्ति सहकारी साथ में निमित्त है, आगे-पीछे नहीं। समझ में आया? ऐसा भगवान श्रुतकेवली कहते हैं। वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानी सन्त ऐसा कहते हैं।

पुद्गल द्रव्य के छह भेद दूसरी जगह भी 'पुढवी जलं' इत्यादि गाथा से कहते हैं। उसका अर्थ यह है कि बादरबादर १, बादर २, बादरसूक्ष्म ३, सूक्ष्मबादर ४, सूक्ष्म ५, सूक्ष्मसूक्ष्म ६—यह छह भेद पुद्गल के हैं। उनमें से पत्थर, काठ, तृण आदि पृथ्वी बादरबादर हैं,... यहाँ क्या कहते हैं? ये चीज़ें पुद्गलरूप से छह प्रकार है, उसके कारण से हुई हैं। तुझे तो तेरे ज्ञान में ज्ञेय है। समझ में आया? यह पत्थर, लकड़ी, तिनका, पृथ्वी, कहीं तूने नहीं बनाये। ऐसे इकट्ठे किये और... इन छह प्रकार के पुद्गलों का जो परिणमन उनका स्वभाव है, उस प्रकार से छह प्रकार से हुए हैं, वे तेरे ज्ञान में तो ज्ञेय हैं। समझे?

मुमुक्षु : परन्तु तोड़े तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लड्डू बना सके और लड्डू तोड़ सके, ऐसा तुझमें नहीं है। वह बना है और टूटता है, ऐसा उसका स्वभाव है, उसे जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया? पत्थर, लकड़ी, तिनका, पृथ्वी वे बादर-बादर हैं। वे बादर-बादर उनके परमाणु के परिणमन से पुद्गल मूर्तरूप से बादर-बादर परिणमे हैं। उन्हें कोई परिणमानेवाला दूसरा नहीं या तूने उन्हें परिणमाया नहीं। वे तुझसे परिणमित नहीं हुए

हैं, वे उनसे परिणमित हुए हैं। उन्हें तू जाननेवाला है।

टुकड़े होकर नहीं जुड़ते,... वे टुकड़े से इकट्ठे नहीं होते, ऐसा उनका ज्ञेय का—बादरबादर पुद्गल का स्वभाव है। वह उसके कारण से है। टुकड़े हों और टुकड़े होकर इकट्ठे न हों, वह उनका स्वभाव है। टुकड़े होकर न... टुकड़ा होना, उनका स्वभाव है, इकट्ठा न होना उनका स्वभाव है। वह टुकड़े तू नहीं कर सकता और इकट्ठे तू कर (सकता नहीं)। इकट्ठे तो न हों परन्तु इकट्ठे टुकड़े तू कर सके, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। लकड़ी का टुकड़ा तू कर सके, ऐसा तेरा स्वभाव नहीं है। तथा तुझसे टुकड़े हों, ऐसा उनका स्वभाव नहीं हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें व्यवहार की। बादरबादर के टुकड़े हों, वह उसके परिणमन का उस बादरबादर का स्वभाव है। इकट्ठा न होना, वापस टुकड़ा होकर चिपक जाए वापस वह? ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा ज्ञान ज्ञेय को जाने। ज्ञान बादरबादर पुद्गल के ज्ञेय को जाने। उसे बनावे नहीं, इकट्ठा करे नहीं, तोड़े नहीं। आहाहा! समझ में आया?

टुकड़े होकर नहीं जुड़ते,... दूसरा जोड़ नहीं सकता परन्तु उसका स्वभाव ही ऐसा है, यह कहते हैं। बड़े पत्थर के, लकड़ी के दो टुकड़े हो गये। समझ में आया? फिर कहीं जुड़ते नहीं हैं। **जल, घी, तेल आदि बादर हैं, जो टूटकर मिल जाते हैं,...** ऐसे पानी अलग हो और मिल जाए। वह उसका बादर का ऐसा स्वभाव है। वह तुझे तो ज्ञेयरूप से जानने का स्वभाव है। मैंने पानी को ऐसा करके मिला दिया। मूढ़ है, कहते हैं। मैंने छाछ डालकर दूध को मिला दिया और दही किया। हराम है तूने किया हो तो। तत्प्रमाण होना, वह उसका-बादर का स्वभाव है। समझ में आया? मिल जाए इकट्ठे होकर, पृथक् होकर मिल जाए, इकट्ठे होकर दही के... यह क्या कहलाता है? समझ में आया? .... पारा, पारा, पारा। यह उसका स्वभाव है। तेरे कारण से नहीं। ऐसे थाली में रखा और ऐसे पड़ा हो और फिर ऐसे-ऐसे करे, इसलिए इकट्ठा हुआ, इसलिए तूने ऐसा किया इसका कारण वहाँ इकट्ठा हुआ—ऐसा नहीं है। वह उसका स्वभाव, उस

प्रकार से ही पृथक् होकर इकट्ठा होने का है। उसे बादर पुद्गल कहा जाता है। यह पुद्गल की जाति की पर्याय का ऐसा उसका स्वभाव है। वह तेरे लिये तो ज्ञेय है— जाननेयोग्य है। तू माने कि इसका ऐसा कर दूँ और ऐसा कर दूँ, यह हराम बात तीन काल में होवे तो।

यही कहते हैं, पुद्गल का ऐसा स्वभाव है, वह उसके कारण से होता है। वह तेरे लिये ज्ञेय है, उसके बदले मैं कर दूँ, (ऐसा माने) तो उसका स्वभाव ऐसा नहीं है। वह तो उसके कारण से ऐसा स्वभाव है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? लो! यह दो कहे। यह जाननेयोग्य है, ऐसा कहा। यह ज्ञेय का स्वभाव है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ४, रविवार, दिनांक - २६-१२-१९६५
गाथा - १९, प्रवचन - ८६

परमात्मप्रकाश, देखो! यह पुद्गल की व्याख्या चलती है। क्या कहते हैं इसमें? पहली बात आयी है १८ में कि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। वह परवस्तु को जाने, वह परवस्तु ज्ञात हो और आत्मा जाननेवाला, बस इतना पर के साथ सम्बन्ध है। आत्मा वह चैतन्यमूर्ति है, ज्ञानस्वरूप है। वह परवस्तु को जानने में ज्ञायकरूप से जाने और परवस्तु उसे ज्ञेयरूप से ज्ञात होनेयोग्य ज्ञात हो। इसके अतिरिक्त परपदार्थ के साथ आत्मा को कुछ सम्बन्ध नहीं। कहो, रतिभाई! अब उसे पुद्गल की बात करते हैं, देखो! पुद्गल है न यह जड़ पुद्गल, इसके छह प्रकार भगवान ने देखे हैं। देखो! पत्थर, यह पत्थर। यह पत्थर है, वह स्वतन्त्र पुद्गल की एक दशा है। यह आत्मा उस पत्थर का काम नहीं कर सकता और आत्मा को पत्थर काम में आता नहीं। समझ में आया? तुम्हारा लोहा किसमें आता होगा? पत्थर में। लोहे की, तुम्हारे है न लोहे की मशीन। यह कहते हैं कि भगवान आत्मा उस लोहे की मशीन का काम जीव कर नहीं सकता। क्योंकि वह पुद्गल स्वतन्त्र पदार्थ है। तथा वे लोहे के पदार्थ आत्मा को काम नहीं आते।

मुमुक्षु : रुपये तो काम में आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये क्या होंगे? रुपये धूल हैं, पत्थर है। उसमें कहा रुपया पत्थर में आ गया। रुपया धूल (है, ऐसा) भगवान कहते हैं कि रुपये का काम आत्मा नहीं कर सकता और वह रुपया आत्मा को काम नहीं आता, ऐसा कहते हैं। फूलचन्दभाई! ऐ रतिभाई! ऐसा होगा? यह पैसा कुछ काम नहीं आता, कहते हैं।

मुमुक्षु : ममता करने के लिये काम नहीं आता?

पूज्य गुरुदेवश्री : ममता करने के लिये भी नहीं, वह कारण नहीं। यह इनकार करेंगे आगे। वह कारण नहीं। आत्मा को कारण नहीं। खड़ा करता है, वह तो स्वयं के कारण से खड़ा करता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? ममता को कारण

नहीं, कार्य नहीं, कारण नहीं—सिद्ध यह करना है। व्यवहार से निमित्त का ज्ञान करे, परन्तु वह कारण यहाँ आत्मा को हो, वह गुण उसमें है ही नहीं। उसमें प्रमेय होने का यह ज्ञेय का गुण है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! कहते हैं कि यह पत्थर, लकड़ी। यह लकड़ी है न, उसे भगवान बादरबादर कहते हैं। लकड़ी है, वह आत्मा को काम नहीं आती और लकड़ी का काम आत्मा नहीं कर सकता। वह लकड़ी पुद्गल है, उसकी अवस्था होना, वह लकड़ी के कारण से, उसके कारण से होती है। और वह लकड़ी आत्मा को काम नहीं आती। मगनभाई! गजब बात!

अब तिनका। तिनका-तिनका है न। वह तिनका आत्मा नहीं कर सकता। वह तिनका पुद्गल की एक पर्याय पुद्गल से होती है और उस तिनके को आत्मा कर नहीं सकता और वह तिनका आत्मा को काम नहीं आते। समझ में आया? आत्मा मात्र जाननेवाले को वे ज्ञात हों, इतनी बात—सम्बन्ध है। दूसरा पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं, दूसरा सम्बन्ध माने तो दृष्टि में मिथ्यात्व और पाप दृष्टि है, ऐसा यहाँ भगवान कहते हैं। समझ में आया? यह पृथ्वी आदि, यह पृथ्वी। समझ में आया? बादरबादर है, इस पृथ्वी के ढेले। यह सब... यह बादरबादर भगवान इनको कहते हैं। यह बादरबादर पुद्गल की वर्तमान अवस्था पुद्गल से हुई है। वह कहीं इसे करता नहीं, कोई आत्मा इसे यह अवस्था बादरबादर की कर सके, ऐसा नहीं है। यहाँ तो पुद्गल का वर्णन है न? तथा वे पृथ्वी आदि के पुद्गल आत्मा की पर्याय में आत्मा को जरा भी काम नहीं आते। ओहोहो! रतिभाई! क्या होगा यह? उन मशीनों का काम करते हो न वहाँ?

मुमुक्षु : वे तो लड़के करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के करें। आहाहा! यह तो भी मशीन है या नहीं दो, तीन? है या नहीं दो-तीन? है या नहीं, ऐसा मैंने कहा। तुम्हारे कहाँ कहा मैंने? वह है पुद्गल की पर्याय उससे है, ऐसा यहाँ भगवान कहते हैं। और वे भगवान कहते हैं कि तेरे आत्मा को वे काम आते नहीं। कारण ही नहीं, तेरे आत्मा को कोई कारण ही नहीं वे पुद्गल। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न यह तो। यह तो ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा जाननेवाला-देखनेवाला है। वे चीज़ें ज्ञात होती हैं बस, उन चीज़ों का काम कर सके या

वे चीज़ें आत्मा को काम आवे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं। अज्ञानी ने मिथ्याश्रद्धा से वह सब खड़ा किया है। जयन्तीभाई!

टुकड़े होकर नहीं जुड़ते,... उनके टुकड़े होकर इकट्ठे अपने आप नहीं होते। ऐसी वह एक बादरबादर पुद्गल की जाति है। अब **पानी...** यह पानी ऐसी चीज़ है कि ऐसे भिन्न पड़कर इकट्ठा, पानी ऐसे पाँच सेर पानी हो भिन्न ऐसे पड़े और फिर इकट्ठा हो जाये। ऐसा इस पुद्गल का उसका स्वभाव है। वह इकट्ठा करना या भिन्न करना, उसे आत्मा नहीं कर सकता। और वह पानी आत्मा को काम नहीं आता।

मुमुक्षु : पानी का काम क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पानी भी पुद्गल की पर्याय है। काम क्या? वह पुद्गल परमाणु की, परमाणु पुद्गल की वह पर्याय है, वह उसका काम। पर्याय उसका काम। क्या कहा? पर्याय उसका काम। परमाणु के स्कन्धरूप से उसकी पर्याय हुई, वह उसका काम। उसका काम आत्मा करता नहीं और वह आत्मा को काम आता नहीं। ऐसा न माने, तब तक अजीव को जीव मानता है और जीव को अजीव मानता है, वह मिथ्यादृष्टि जीव है। उसे जैनदर्शन की खबर नहीं। तत्त्व की श्रद्धा की खबर नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पानी पीना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन पीता है पानी? यही कहते हैं यहाँ। समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है, बापू! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, भगवान! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने तो तुझे ज्ञानस्वरूप देखा है। भगवान केवलज्ञानी ने (देखा कि) ज्ञानसूर्य, चैतन्यसूर्य तू है। उसमें यहाँ दूसरे पदार्थ तेरे नहीं और दूसरे पदार्थ तुझे काम आते नहीं। दूसरे पदार्थ तुझे ज्ञान में ज्ञेयरूप से जाननेयोग्य है कि इस प्रमाण यह है। परन्तु इस प्रमाण है, वह मुझसे है—ऐसा नहीं और इस प्रमाण है तो मुझे इस प्रमाण हुए तो मुझे अब काम आयेंगे, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तो इसने पुद्गल को जीव से भिन्न जाना, माना कहलाये। भिन्न जाना, माना तब कहलाये कि वे पुद्गल उनके कारण से वहाँ कार्य पर्यायरूप से, कार्यरूप से होते हैं

और मुझे काम के नहीं, तब उसने पुद्गल को पुद्गलरूप से जीव से भिन्न जाना, माना कहलाये। समझ में आया? कालीदासभाई! क्या है तुम्हारे लोहा है या नहीं? सब लोहे के व्यापारी कहलाते हैं ये। लोहे के व्यापारी बहुत पैसेवाले हो गये, ऐसा कहते हैं। कहते हैं कि आत्मा को पैसेवाला मानना, वह अजीववाला (माना), पैसा पैसे की पर्याय से पैसा है, वे आत्मा से हुए नहीं। पैसे आत्मा से हुए नहीं, तथा वे आत्मा को काम आनेवाले नहीं। कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्या भ्रमणा में काम करता है अज्ञान। राग-द्वेष और मिथ्याश्रद्धा। मिथ्याश्रद्धा करता है, इसलिए कि इसका मैं कर दूँ और यह मुझे काम आवे। मिथ्याश्रद्धा जाने के पश्चात् ज्ञानी को जरा राग हो, उस राग का अस्थिरतापना ज्ञानी करे। और राग हुआ, इसलिए पुद्गल इसे काम आये; राग हुआ, इसलिए पुद्गल की पर्याय इसने की, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : बात हो गयी....

पूज्य गुरुदेवश्री : टली नहीं, ऐसा है। टल जाये क्या? है ही ऐसा। उसने माना है दूसरे प्रकार से। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव अरिहन्त परमात्मा जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है। वे भगवान ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तू तो आत्मा है न, प्रभु! तू आत्मा तो ज्ञान का धनी, ज्ञानस्वभाव का धनी तू है। वह तेरे अतिरिक्त यह पुद्गल, यह तू उनका स्वामी नहीं, उन्हें तूने किया नहीं, वे तुझे काम में आते नहीं। ऐसा तू नहीं मानता और उल्टा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि से, पाप से तू दुःखी हो रहा है, ऐसा कहते हैं। जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : सौ टका बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ टका! परन्तु यह गले उतरना। ऐई! कहाँ गये मलूकचन्दभाई? वे बड़े याद किये। यह करोड़पति के दो, तीन करोड़। ऐसी बातें लोग करते हैं। वे कहाँ किसके बाप के हैं? हिम्मतभाई! ऐसा कहे पूनमचन्द मलूकचन्द दो-तीन करोड़ के आसामी, ऐसा मुम्बई में कहते हैं। इनके पुत्र नहीं? बाईस-बाईस मंजिल का मकान

बनाते हैं, नहीं। पूनमचन्द। यहाँ कहते हैं कि पैसा मेरा, इस पुत्र के शरीर को जीव माने कि मेरा, उसका कार्य मैं करता हूँ। इस शरीर का ऐसा-ऐसा करूँ, वह शरीर की पर्याय बादरबादर उससे हुई है। उसके बदले वह पर्याय मैं करता हूँ (—ऐसा माननेवाला) वह मिथ्यादृष्टि है और वह शरीर मुझे काम आता है, वह मूढ़ जीव है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! ऐई कनुभाई! किस प्रकार का कायदा होगा यह?

यह भगवान केवलज्ञानी ने प्ररूपित '**केवलिपण्णत्तो धम्मो**' खबर नहीं होती, खबर नहीं होती ऐसा का ऐसा अन्धी दौड़ से अनन्त अवतार किये और उसमें जन्मे जैन में, परन्तु जैन क्या कहते हैं, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! किस प्रकार से बात डाली है न। **घी...** यह घी है, ऐसा प्रवाही है न? उस घी की पर्याय स्कन्ध की, पुद्गल की पर्याय है। वह ऐसे भिन्न पड़े और इकट्ठी हो, उसके कारण से। दूसरा जीव घी को पृथक् करे और इकट्ठा करे, वह घी के काम की पर्याय जीव नहीं कर सकता। और घी जीव को काम नहीं आता। समझ में आया? ऐई! हिम्मतभाई! तुम्हारे भी लोहे का है न! अभी सब लोहे के व्यापारी बहुत हो गये। आहाहा! तो कहते हैं, वह लोहे की पर्याय होती है, एक स्थान से अन्यत्र जाती है। उसे आत्मा नहीं कर सकता और वह लोहा आत्मा को जरा भी किंचित् काम आता नहीं। तब उसने आत्मा से पुद्गल को अजीव को भिन्न माना कहा जाता है, भिन्न के काम भिन्न आत्मा करे, वह भिन्न है, ऐसा माना नहीं। और भिन्न है, वह मुझे काम आवे। भिन्न के काम यह भिन्न आत्मा करे तो भिन्न माना नहीं और भिन्न आत्मा से है, वह मुझे काम में आवे तो भी वह आत्मा से भिन्न माना नहीं, समझ में आया? भगवान का मार्ग इसे समझना, सुनने को मिलता नहीं, समझे कब? यह बाहर की और बाहर की सिरपच्ची में जिन्दगी चली गयी। समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

तैल,... तेल, वह तेल प्रवाही है, पृथक् पड़ता है और इकट्ठा, वह उसका कार्य स्वभाव है। उस तेल के स्कन्ध का कार्य और उसका पर्याय स्वभाव है। पृथक् पड़ा हुआ इकट्ठा होना। वह पृथक् पड़ा हुआ इकट्ठा आत्मा नहीं कर सकता। भिन्न चीज़ के कार्य आत्मा नहीं कर सकता और भिन्न चीज़ आत्मा को काम नहीं आती। इस प्रकार ऐसा सिद्ध करना है, भाई! आहाहा! ऐई! नटुभाई! क्या करना? यह दो वकील इकट्ठे

हुए। यह क्या कहते हैं यह ? क्या कहा ? यह काम नहीं आता, कहते हैं। वाणी-बाणी का पुद्गल आत्मा को काम नहीं आते, ऐसा कहते हैं। और वाणी के पुद्गल आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! देखो! अन्दर क्या देखो! **तैल आदि बादर हैं,...** बाद में आयेगा, हों! वह बाद में आयेगा।

जो टूटकर मिल जाते हैं, छाया,... अब छाया। छाया है न यह छाया ? **आतप, चाँदनी,...** यह चन्द्र का, सूर्य की धूप। **ये बादरसूक्ष्म हैं,...** यह चीज़ जगत की जड़ की अवस्था है। **छाया, आतप, चाँदनी ये बादरसूक्ष्म हैं,...** भगवान उसे बादरसूक्ष्म कहते हैं। क्यों ? कि **जो कि देखने में तो बादर...** आवे, पकड़ा नहीं जा सकता। ऐसे धूप, छाया देखने में आवे, पकड़ी नहीं जा सकती। इसलिए उसे भगवार बादरसूक्ष्म कहते हैं। वह **ग्रहण करने में सूक्ष्म हैं,...** समझ में आया ? **देखने में तो बादर और ग्रहण करने में सूक्ष्म हैं,...** उसे आत्मा नहीं कर सकता। छाया, आतप। समझ में आया ? या चाँदनी। पकड़ नहीं सकते। यहाँ तो समझाते हैं। पकड़े कौन ? ऐसे पकड़ने में ऐसा निमित्त हो, ऐसा उसमें है नहीं। ऐसा कहते हैं। ऐसा उसका स्वभाव है। वह स्वभाव उससे हुआ पुद्गल के जड़ से हुआ है। वह आत्मा को प्रकाश, छाया, चाँदनी काम नहीं आती। कहो, यह चन्द्रमा का प्रकाश, सूर्य का प्रकाश आत्मा को काम नहीं आता, ऐसा कहते हैं। गजब बात, भाई!

अरे! भगवान! वह तो पुद्गल की पर्याय है न, पुद्गल तो अचेतन और जड़ है न! यह प्रकाश तो पुद्गल की पर्याय है। किसकी ? पुद्गल—जड़ की अवस्था है, यह प्रकाश। यह अवस्था आत्मा करे, वह तो पुद्गल की पर्याय है, वह प्रकाश आत्मा को काम आवे ? आत्मा अरूपी और जड़ को ... काम आवे ? कार्य जड़ के प्रकाश का धूल भी नहीं। सब देखा नहीं हमने ? वह छह लाख का है न सूर्य का क्या वहाँ जामनगर में ? है न, देखा है न, हम गये थे न वहाँ ? अपने डॉक्टर हैं न, प्राणजीवन डॉक्टर तब, यह तो किस वर्ष में ? यह (संवत्) १९९१। ९१ में वाँचन हुआ था १००वीं गाथा। कर्ताकर्म (अधिकार) की, वे डॉक्टर हैं न प्राणजीवन डॉक्टर वहाँ के बड़े (डॉक्टर) ? सुनने आये थे। ... उसके साथ मिलान खाये। छह लाख का तब, हों! ९१ में। वर्ष ३१-३२। धूल भी मिटता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, परमाणु के-परमाणु के कार्य, स्कन्ध के स्कन्ध ने किये हैं, वे आत्मा ने किये नहीं और इस आत्मा को स्कन्ध की कोई पर्याय काम नहीं आती। आहाहा! ऐसा न माने, तब तक उसने पुद्गल को—जीव को भिन्न माना नहीं। दोनों को एक माने, वह मूढ़ जीव है। आहाहा! ऐसे तो बोले (कि) जीव को अजीव माने तो मिथ्यात्व और अजीव को, वह फिर मिथ्यात्व में पहाड़ा बोले जाये।

मुमुक्षु : प्रतिदिन बोल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिदिन बोल जाये। खबर न हो एक भी शब्द की और एक भी अर्थ की और एक भी भाव की। समझ में आया? कठिन बात, भाई! लो! यह रविवार को और आज बात आयी तुम्हारे।

नेत्र को छोड़कर चार इन्द्रियों के विषय रस,... रस है न ...रस। वह रस आँख से नहीं दिखता। वह रस रूप, हों! रस का रूप आँख से दिखता है? रूप दिखे तो आँख से, परन्तु रस है, वह आँख से दिखता है? वह तो जीभ से ज्ञात होता है। **गन्धादि सूक्ष्मबादर हैं, जो कि देखने में नहीं आते,...** देखने में नहीं आवे, इसलिए रस का रूप नहीं, रूप है वह तो आँख का विषय, परन्तु रस है, वह कहीं आँख का विषय नहीं। वह तो जीभ का विषय हो गया। रस, वह जीभ का विषय है। गन्ध, वह ज्ञान का। एक विषय जगत के शब्द, रूप, रस आदि। समझ में आया? सूक्ष्म कहा न विषय रस, गन्ध आदि सूक्ष्मबादर आदि, वह वस्तु सूक्ष्मबादर है। वह उसके कारण से हुई है। वह सूक्ष्मबादर रस, स्पर्श, शब्द आदि उनके कारण से हुए हैं। वे आत्मा को काम आते नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? कठिन बात, भाई! यह तो एकदम निवृत्त। इसे काम आवे इसके गुण की उलटाई और सुलटाई। क्या कहा?

इस आत्मा में अनन्त गुण हैं भगवान आत्मा में, यह इसके गुण और यह द्रव्य काम आता है किसमें? कि यह उल्टा करने की अवस्था पर के लक्ष्य से करने का कार्य पर्याय में। और या स्व के लक्ष्य से सुलटा करने में काम आवे, बाकी कोई दूसरा इसे काम नहीं आता। रतिभाई! वास्तव में है यह? कठिन बात, भाई! क्यों मणिभाई! समझ में आता है न यह? आहाहा! गन्ध, शब्द, स्पर्श वह सब उसमें जाये, हों! समझे न? वह है, आँख से नहीं दिखता शब्द। वह कान से ज्ञात हो परन्तु वह शब्द की पर्याय, वह

आत्मा का कार्य नहीं। इसी प्रकार शब्द की पर्याय आत्मा को काम नहीं आती। वह तो ज्ञान में यह ज्ञेय है, ऐसा जानने में काम आती है। जाननेरूप से काम आवे, बाकी दूसरे काम में आती नहीं। यह निमित्त से बात है। समझ में आया? आहाहा! कथन की पद्धति अलग प्रकार की पूरी।

फिर कहते हैं, **कर्मवर्गणा सूक्ष्म हैं,...** आठ कर्म हैं न, आठ कर्म? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम, आयुष्य, गोत्र (अन्तराय) आठ कर्म। आत्मा उन ज्ञानावरणीय कर्म की पर्याय कर नहीं सकता और वह ज्ञानावरणीय की पर्याय आत्मा को काम नहीं आती। समझ में आया? ... यह किस प्रकार का कथन? कितनों ने तो जिन्दगी में पहला (पहली बार) सुना होगा। यह और कैसी बात होगी? भगवान! यह तो जीव-अजीव की भिन्नता का वस्तु का स्वरूप ऐसा है। भगवान आत्मा पुद्गल से भिन्न, ऐसा कहना, और उस पुद्गल की अवस्था को आत्मा करे, ऐसा कहना, (इन) दोनों बातों का विरोध है। भगवान आत्मा से पुद्गल भिन्न है, ऐसा कहना और भिन्न आत्मा को काम आवे, ऐसा कहना, दोनों विरोध है। समझ में आया? यह कल्पना जैसा हो जाये, ऐसा है लोगों को। क्या है परन्तु यह? यह क्या कहते हैं? भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने ऐसा फरमाया है कि हे जीव! तुझसे भिन्न जितने पुद्गल यह कहते हैं, वे ज्ञानावरणीय आदि पुद्गल, ये तुझसे भिन्न चीज़ है। उस चीज़ के काम को तू करता नहीं। कर्म को बाँधने का कार्य तेरा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और वे कर्म बँधे हुए का कार्य तुझे काम दे, वह तुझे काम आवे, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : हैरान करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हैरान करे? कोई कराता नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसी तरह दर्शनावरणीय कर्म है न? उसका आत्मा उसे बाँध सकता नहीं क्योंकि वह तो पुद्गल की पर्याय है। इसी प्रकार आत्मा को काम आता नहीं। इसी तरह वेदनीय कर्म, वेदनीय साता है न, जड़ बँधे। जीव शुभाशुभ परिणाम करे तो वेदनीय कर्म उसके कारण से बँधता है। यह आत्मा उसके कार्य—वेदनीय के बाँधने का करे, ऐसा नहीं। तथा वेदनीय के कर्म का भाव आत्मा को काम आवे, सातावेदनीय का उदय आत्मा को काम आवे, (ऐसा) तीन काल में नहीं। गजब बात, भाई!

यह निरोगता, इसका फल, वह आत्मा को काम आवे, ऐसा नहीं। वह निरोगता की पर्याय सातावेदनीय ने की, ऐसा भी नहीं। यह पुद्गल भिन्न, वे भिन्न, भाई! वह तो कार्मण के पुद्गल हैं और यह है बादर। इसलिए यह बात भिन्न की है। बादरबादर है और वह जाति भिन्न है। उस भिन्न सातावेदनीय कर्म है सूक्ष्म। वह उसकी पर्याय से यह बादरबादर की पर्याय निरोगता की हुई नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! ऐ प्रेमचन्दभाई! सुनने आते हों न, तब तो कुछ इसे समझ में आये थोड़ा-सा, परन्तु सुनने का रोक दिया, इसलिए एकदम सब क्या है सत्य, वह कहीं पड़ा रहा ऐसा का ऐसा। यह अन्धाधुन्ध। अनन्त काल गया ऐसा, ऐसा का ऐसा चला जाता है। भगवान का सत् स्वरूप क्या है, भगवान कहते हैं। जीव और अजीव भिन्न क्या चीज़ है, उसकी इसे खबर नहीं। खबर पड़े बिना भिन्न... भिन्न और भिन्न के काम भिन्न और भिन्न के काम आत्मा को काम आवे, ऐसा निर्णय किये बिना भिन्न का रास्ता इसे हाथ आवे नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह वेदनीय। यह असाता की पर्याय है, वह कर्म की पर्याय है। वह सूक्ष्म में जाती है, भाई! वेदनीय का असाता, वह सूक्ष्म की पर्याय, सूक्ष्म में जाती है। वह सूक्ष्म की पर्याय जीव करता नहीं और वह असाता का उदय आत्मा को काम आता नहीं। तथा वह असाता का उदय बादरबादर जहाँ रोग—यह रोग की अवस्था इसे वह करता नहीं। क्योंकि वह जाति अलग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? यह आगम कुछ कहता नहीं। क्या कहता है आगम? क्या कहा आगम ने? दवा की पर्याय आती है, उसकी पर्याय बादरबादर स्वभाव है वह तो। वह दवा उसके कारण से आयी है। वह दवा आत्मा को काम आती नहीं, दवा की दशा को आत्मा ने किया नहीं।

अरे भगवान! बापू! तुझे अभी जड़ और आत्मा कहे, उसकी खबर नहीं होती, तुझे धर्म कैसे हो? आहाहा! धर्म करना है रे धर्म करना। परन्तु धर्म कहाँ से होता होगा? सत्य वस्तु के ज्ञान बिना वह धर्म कहा से आता होगा? समझ में आया? यह तो और वहाँ आया, कहो। ठीक आया यह। वह अकारण इन्होंने डाला न, उसमें से यह

सब आया, हों! नहीं, बराबर स्थान में डाला। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, भाई! यह मोहकर्म है न अन्दर, वह मोहकर्म सूक्ष्मरूप से परिणमित पुद्गल की पर्याय, उसे तूने किया नहीं और मोह का कर्म तुझे काम आता नहीं। आहाहा! विकारी भाव काम आवे तो तेरा तूने काम किया आता है। पर से पर तुझे काम आता नहीं। विकारी भाव करने में मोह काम आता नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! आहाहा! समझ में आया?

अब आयुष्यकर्म लेते हैं, आयुष्यकर्म जो बँधता है, वह इस पाँचवें भेद का पुद्गल का एक भाग है। वह सूक्ष्म, वह आयुष्यकर्म पुद्गल उसके कारण से बँधता है, आत्मा उसे बाँधता नहीं तथा आत्मा को आयुष्यकर्म की पर्याय काम आती नहीं। यहाँ रहने के लिये यहाँ शरीर में रहने के लिये आयुष्य का कार्य काम आता नहीं। ऐसा कहते हैं। ठीक! ले यह और कैसा? आयुष्य हो तब तक शरीर में रहे न, ऐसा नहीं? यह सब बातें निमित्त-नैमित्तिक की बात है। कहते हैं कि स्वयं अपनी योग्यता से आत्मा रहता है। आयुष्य कर्म उसे काम आता है रहने में, ऐसा नहीं। तथा आयुष्यकर्म की पर्याय आत्मा बाँधे, वह तो पुद्गल है। पुद्गल का कार्य तो पुद्गल से होता है, क्या आत्मा की पर्याय से...? जिस भाव से निमित्त हुआ आयुष्य बाँधने में, उस निमित्त से आयुष्य का कार्य हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। और उस आयुष्य के कार्य से आत्मा यहाँ रहा है, ऐसा नहीं। गजब बात, भाई! ऐई! धर्मचन्दजी! क्या है? फिर कहाँ रहा? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य। आयुष्य आ गया न? अब आया नाम। यह नामकर्म। इसकी—जड़ की ९३ प्रकृति है। भगवान ने नामकर्म की ९३ प्रकृति देखी है। वह सूक्ष्मरूप से परिणमित का कार्य पुद्गलों का स्कन्ध की पर्याय का है। सूक्ष्म स्कन्धरूप से परिणमित का वह कार्य है। वह आत्मा को काम आते नहीं। ओहोहो! समझ में आया?

यशकीर्ति प्रकृति है, वह सूक्ष्मरूप से परिणमी है। दूसरा जो बोलता है, यश गाता है भाषा, वह दूसरे प्रकार की पर्याय है उसकी। समझ में आया? दूसरे प्रकार की है। पकड़ में नहीं आती, आँख नहीं देखती, वह कान का विषय है। दूसरा है। तो यशप्रकृति के कारण से यह सामने के पुद्गल परिणमते हैं यश के, वह बोलता है कीर्ति, ऐसा नहीं। वह कीर्ति बोले, वह आत्मा को काम आती है, ऐसा नहीं। यश प्रकृति का

उदय उस बोलने में काम आता है, ऐसा नहीं। यशप्रकृति का उदय आत्मा को काम आता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? गजब परन्तु भगवान की पद्धति। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भिन्न-भिन्न है। कर डालने का क्या? है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। यहाँ तो ज्ञान कराते हैं कि तू ज्ञान है और वे ज्ञेय हैं, बस समाप्त। इसके अतिरिक्त तू ऐसा माने कि वह मेरा कार्य है और वे मुझे काम आवें, ऐसा दो वस्तुओं के स्वभाव में नहीं। नहीं और तू मानें, वह मिथ्यादृष्टिपना, अज्ञान है, महापाप है। मिथ्यात्व का महापाप है, फिर तू क्या घटायेगा अभी? मिथ्यात्व के पाप को छोड़ा नहीं और तू छोड़ेगा क्या अभी? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब-सब आया। सब लम्बा-लम्बा करने जायें तो सब बहुत है। यह तो सामान्य में इसके सिद्धान्त वर्णन किये हैं, बस हो गया। चार पैसे सेर तो मण के ढाई (रुपये)। फिर साढ़े सैंतीस का कितना? उसमें आ जाता है। सबके अंक अलग नहीं करने पड़ते। पौने अठारह सेर का कितना? कि उसमें पौने अठारह के पौने अठारह आने। चार पैसे सेर तो मण के ढाई। दह प्रकार के परिणमित पुद्गल, उनके कार्य, उनके वे काम तुझे नहीं आते। इस सिद्धान्त में सब न्याय आ गया। समझ में आया? आहाहा!

माला गिनते हैं न, माला? कहते हैं, उस माला गिनने की पर्याय का कार्य तुझे काम नहीं आता। और वह माला की पर्याय गिनने में तू उसका कार्य नहीं कर सकता। ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! बादरबादर है न यह तो? मणका और डोरा। यह उसका ऐसा... ऐसा... होना, वह तेरा कार्य नहीं, वह तो उसका है। और वह ऐसे-ऐसे हो, वह तुझे काम नहीं आते। पहला शुभभाव हो, उसमें वह काम नहीं आते, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! क्या पद्धति की रीति! समझ में आया? यह तो वीतरागी विज्ञान है, सर्वज्ञ भगवान परमेश्वर ने कहा हुआ वीतरागी विज्ञान। जगत के विज्ञान सब अन्धे और

खोटे हैं। तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ अनन्त ज्ञान जिन्हें खिला, वह खिलने का रास्ता भगवान कहते हैं। बापू! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, भाई! तू तो जगत की चीज़ को जाननेवाला है न! जगत की चीज़ को करनेवाला नहीं और जगत की चीज़ को काम लगे, ऐसा तू नहीं और वे ऐसे नहीं कि तुझे काम आवे। आहाहा! समझ में आया? कहो, यह तो समझ में आये ऐसा नहीं? अमल में अर्थात् क्या? यह जानना, ऐसा अमल में लाना। जानना कि, ऐसा है यह पहला अमल में लाया। अमल में क्या दूसरा रखना था? वे मेरे काम नहीं और वे मुझे काम आते नहीं, ऐसा निर्णय हुआ, वह अमल में लाया।

मुमुक्षु : वह फिर छोड़ देता है अमल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ना परन्तु क्या छोड़े? किसे छोड़े? वे पर पड़े हैं, उनमें छोड़ना क्या? क्या कहते हैं अज्ञानी भी वह यह। वह यहाँ से आगे जाना, न जाना, वह तो उनका कार्य है। तेरा कार्य है? और तुझसे वह कार्य होता है? और उसका कार्य तुझे काम आता है? तब क्या अमल में लाना है? आहाहा! अमल में यह लाया कि जड़ के छह प्रकार के पुद्गल की पर्याय, उसके कार्य से होती है, वह मुझे काम नहीं आते, उन्हें मैं नहीं करता। यह अमल में—निर्णय में लाया। यह सत् का निर्णय उसे अमल में लाया, बस। आहाहा! ऐ शशीभाई! फिर वे रविवार को आवे, तब कुछ नया निकले। आज तो नया निकला। बात तो सच्ची है, हों! बहुत विस्तार है इसमें। पुद्गल की पूरी जाति को भिन्न बता दिया है और निमित्तरूप से ज्ञान में भले हो, परन्तु ऐसे काम आता नहीं। वाह रे वाह!

आयुष्य नाम-नाम। यह नाम की प्रकृति तीर्थंकरगोत्र की बँधी हो न, कहते हैं कि उसे आत्मा बाँधता नहीं, ऐसा कहते हैं। और उस तीर्थंकर की प्रकृति का उदय आत्मा को काम आता नहीं। आहाहा! ऐ छोटाभाई! कठिन बात, भाई! बापू! दो पदार्थ भिन्न हैं न, प्रभु! तू भिन्न और वे भिन्न। भिन्न का काम तू कैसे करे? तो भिन्न कैसे रहे? वे तो दोनों एक हो गये। और भिन्न तुझे काम में आवे तो भी दोनों एक हो गये। दोनों भिन्न रहे नहीं। ऐसा बताते हैं। समझ में आया? ओहोहो! उठा ले जड़ के स्वामीपने की बुद्धि। उठा ले जड़ से (कि) मुझे कुछ काम आयेगा जड़। उठा ले खोटी बुद्धि।

शाकभाजी, पैसा हो तो काम आवे, इसके बिना शाकभाजी आती होगी? उसमें ऐसा कहते हैं कि शाकभाजी भी बादरबादररूप से परिणमित स्कन्ध भिन्न हैं और पैसा बादरबादररूप से परिणमित स्कन्ध भिन्न हैं। यह बादरबादररूप से परिणमित से वे बादररूप से परिणमित शाक आवे, ऐसा इनकार करते हैं यहाँ। क्योंकि अनन्त बादरबादररूप से परिणमित स्कन्ध हैं। आहाहा! अनन्त को भी यदि एक कर डाले तो भी वह तेरा ज्ञान खोटा। ऐसे वे एक होते नहीं। गजब बात, भाई! ऐ हिम्मतभाई! ... प्रवीणभाई नहीं आये? समझ में आया इसमें? आहाहा! इस विधि से व्याख्यान ही पहला है ऐसा, हों! समझ में आया?

नाम। ओहोहो! क्या कहते हैं? भगवान! यह बादर सूक्ष्मरूप से परिणमित पुद्गल, वे इन बादररूप परिणमित पुद्गलों को काम नहीं आते और सूक्ष्मरूप से परिणमित पुद्गल इस आत्मा को—अरूपी को काम नहीं आते। आहाहा! क्या परन्तु भिन्नता! जैसी अनेकता वह पुद्गल है अनेक, उनकी अनेकता के अनेक कार्य भिन्न-भिन्न हैं। वैसे भगवान आत्मा उनसे भिन्न, उसका कार्य भी जड़ से अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया? नाम, गोत्र। गोत्रकर्म। कहते हैं कि यह सूक्ष्मरूप से परिणमित है। यह कहीं गोत्र में कर्म अवतरित होता है, ऐसा काम नहीं आता। वह तो पर्याय भिन्न है, वह पर्याय भिन्न है। और वह गोत्रकर्म आत्मा को काम आवे, उच्च गोत्र बँधा हुआ, इसलिए उसे अच्छे परिणाम करने में काम आवे। नहीं। तेरे परिणाम का कर्ता तू। उच्च गोत्र की दशा जो अच्छे कुल में अवतार हुआ, वह अलग पर्याय हुई। वह कहीं उस पर्याय के कारण से तेरे अच्छे परिणाम हों, ऐसा नहीं। ओहोहो! सर्वज्ञ का पेट (अभिप्राय) बहुत गहरा, केवलज्ञानी का कथन बहुत गहरा।

मुमुक्षु : उसे काम आवे ऐसा रहा क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे काम आवे ऐसे इसके आत्मा के गुण। अनन्त गुण का पिण्ड भगवान आत्मा है। उसका अन्तर लक्ष्य करे तो अनन्त गुण का कार्य पर्याय में सुलटा परिणमे। यह उसका न करे और पर का लक्ष्य करे, पर को अपना माने तो उसकी पर्याय में विकार और मिथ्यात्व का कार्य स्वयं करे। बस, पर से नहीं और पर काम आवे नहीं। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के काम पर्याय में करे। बस, इतनी बात है। ऐई!

नेमिदासभाई! तुमने तो बहुत काम किये हैं यह। गोशाला में और पोरबन्दर में। ऐसा सब सुना नहीं। इतने वर्ष में व्याख्यान सुना था कभी? अरे! भगवान! बापू! तेरी भिन्नता की जाति तो देख। और उस भिन्नता की जाति के भी भिन्न-भिन्न प्रकार की जाति कैसी है, उसके कारण से परिणमित, हों! आहाहा! यह सब तेरे ज्ञान में ज्ञेय है, जाननेयोग्य है। तेरे ज्ञान के कार्य नहीं, और उनके कार्य तेरे ज्ञान और आत्मा को काम आवे, ऐसी वह चीज़ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : नाम नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखे, वह तो सब पुद्गल की पर्याय। कौन लिखे? वह विकल्प था, उसकी क्रिया उसके कारण से हुई, विकल्प में वह काम आती नहीं, विकल्प उसके कारण से हुआ नहीं और विकल्प के कारण वे शब्द लिखे नहीं गये। ऐसी बातें हैं बापू यह तो! ओहोहो! सर्वज्ञ के कहने की पद्धति छह प्रकार के पुद्गल में समाहित कर दी। अब, गोत्र और अन्तराय कर्म। अन्तराय कर्म आत्मा बाँध नहीं सकता, वह तो पुद्गल की सूक्ष्म पर्याय है। वह सूक्ष्म पुद्गल के स्कन्ध की पर्याय है। वह स्कन्ध की अन्तराय कर्म आत्मा को अवरोधक नहीं। आत्मा को काम आता नहीं।

अब रहा छठवाँ बोल **सूक्ष्मसूक्ष्म परमाणु है,...** कहो, कनुभाई! छह में बात नहीं आयी थी तब कि परमाणु काम नहीं आते, शरीर काम आवे? सुमनभाई और कनुभाई दोनों गये थे न! बहुत वर्ष हो गये, नहीं? भाई! पुद्गल यह स्कन्ध का काम आता है या नहीं? परमाणु काम न आवे। यह स्कन्ध तो काम आवे। इसका किया जा सकता है, परमाणु का नहीं किया जा सकता। रामजीभाई के सुमनभाई और यह कनुभाई दोनों एक बार यहाँ, बहुत वर्ष हो गये। गत वर्ष। (संवत्) २००० के कि यहाँ से पालीताणा गये यहाँ से सुनकर, तो इन्होंने पूछा। आत्मा को यह शरीर का काम आवे या नहीं? शरीर का कर सकता है या नहीं? शरीर कर सकता है या नहीं? शरीर कर सके, परमाणु का कर सके, यह अनेकान्त।

यहाँ तो भगवान ने, छह प्रकार के काम आत्मा नहीं कर सकता और छहों प्रकार आत्मा को काम नहीं आते, ऐसा यहाँ कहा। स्कन्ध बादरबादर शरीर का काम कर सकता है और परमाणु का नहीं कर सकता और परमाणु का, यह कुछ है नहीं इसमें।

परमाणु भी उसके कारण से एक-एक रजकण परिणम गये। अनन्त रजकण हैं, उनके कारण से वहाँ परिणमे हैं। यह आत्मा उनका कार्य नहीं कर सकता। वे परमाणु आत्मा को काम नहीं आते। जैसे आत्मा को काम नहीं आते, वैसे स्कन्ध भी आत्मा को काम नहीं आते और स्कन्ध का कार्य आत्मा कर नहीं सकता। एक जाति समान है। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? कायदा-बायदा में आता है यह? नटुभाई! सब उल्टे लेख होंगे।

मुमुक्षु : .... विषय भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा! ठीक, लो! हो गया? यह कहाँ आया, देखो! **सूक्ष्मसूक्ष्म परमाणु है, जिसका दूसरा भाग नहीं होता। इस तरह छह भेद हैं।** इन पुद्गल के छह प्रकार में कोई बाकी नहीं। जितने परमाणु से लेकर अनन्त ... रजकण का पिण्ड यह छह प्रकार में से दूसरा, सातवाँ भेद नहीं। छहों प्रकार पुद्गल की पर्याय के स्वभाव स्वतः परिणम रहे हैं। समझ में आया? **इन छहों तरह के पुद्गलों को तू अपने स्वरूप से जुदा समझ।** देखो! योगफल आया। इन छहों प्रकार की पुद्गल की जाति को तेरे आत्मा से भिन्न जान। भिन्न जान का अर्थ, तू जान सही, परन्तु इन भिन्न के कार्य करे और भिन्न काम आवे, ऐसा न जान।

मुमुक्षु : तो जानना कहाँ किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना कहाँ किया? आहाहा! समझ में आया? वाह! **यह पुद्गलद्रव्य स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण को धारण करता है,...** यह छहों पदार्थ हैं या नहीं परमाणु से लेकर सब? यह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श को धारण करे। इसलिए मूर्तिक है, मूर्तिक है छहों। परमाणु भी मूर्तिक है और यह बादरबादर, यह भी मूर्तिक... सब छहों जाति के मूर्तिकरूप से एक जाति है। छह प्रकार के परिणमनरूप से भिन्न-भिन्न हैं। अब दो हैं।

अन्य धर्म-अधर्म दोनों गति तथा स्थिति के कारण हैं,... एक धर्मास्ति और एक अधर्मास्ति, यह दो पदार्थ हैं भगवान ने देखे हुए। पूरे चौदह राजू में एक धर्मास्ति नाम का द्रव्य भगवान ने देखा है। कि जो जड़ (पुद्गल) और चैतन्य ऐसे गति करे, तब वह

निमित्त होता है। पानी में गति करते हुए मछली को पानी निमित्त होता है, उसी प्रकार भगवान ने यह एक धर्मास्तिकाय चौदह ब्रह्माण्ड में द्रव्य देखा है केवली ने। वे जड़-चैतन्य ऐसे गति करे, (उसमें) वह निमित्त। और एक अधर्मास्ति देखा है। वे गति करते हुए स्थिर हो जाये तो अधर्म (द्रव्य) निमित्त। जैसे चलते हुए मुसाफिर को वृक्ष की छाया मिले और स्थिर हो जाये तो वह छाया निमित्त कहलाती है। ऐसे एक, दो द्रव्य भगवान ने देखे हैं। लो! कल पूछते थे ये। आज आया। धर्म और अधर्म दो समझे न? गति-स्थिति का निमित्त है, **गति तथा स्थिति के (निमित्त) कारण हैं, ऐसा वीतरागदेव ने कहा है।** है? ऐसा भगवान वीतराग परमेश्वर केवली ने कहा है।

यहाँ पर एक बात देखने की है कि यद्यपि वज्रवृषभनाराचसंहननरूप पुद्गलद्रव्य मोक्ष के गमन का (निमित्त) सहायक है,... देखो! आत्मा को केवलज्ञान होने में वज्रनाराचसंहनन है न परमाणु पुद्गल वे बादररूप से परिणमित? समझ में आया? वे निमित्तरूप से है। उस निमित्त की सिद्धि करते हैं, हों! इनके बिना मुक्ति नहीं होती, ऐसा नहीं। सहकारी कारण है, ऐसा पाठ में कहा है। निमित्त है, निमित्त है। वास्तव में तो फिर काम आता नहीं, (ऐसा) अन्त में (स्पष्ट) कर देंगे।

मुमुक्षु : पहले काम आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त है, ऐसा सिद्ध किया। निमित्त है, इतना सिद्ध किया। करता नहीं। वास्तविक कारण वह है नहीं। वह निमित्त कारण है, वास्तविक कारण नहीं। उठा लिया, देखो! ऐसा नहीं सहकारी पाठ में है। देखो! '**मुक्तिगमनकाले सहकारिकारणं भवति**' यह नहीं होती, यह तो ऊपर से डाला है इन्होंने। यह निमित्त को सिद्ध करने के लिये, बस। संस्कृत देखो!

'**संहननरूपेण पुद्गलद्रव्यं मुक्तिगमनकाले सहकारिकारणं भवति तथापि धर्मद्रव्यं च गतिसहकारिकारणं भवति, अधर्मद्रव्यं...**' देखो! है न दूसरा अधर्म स्थिति '**लोकाग्रे स्थितिस्य स्थितिसहकारिकारणं भवति।**' सिद्ध भगवान लोक के अन्त में विराजते हैं, सिद्ध परमात्मा, वहाँ अधर्मास्तिकाय का निमित्त है। सिद्ध भगवान विराजते हैं न लोक के अन्त में? वहाँ स्वयं अपने कारण से परमात्मा सिद्ध हैं। वहाँ भी अधर्मास्ति एक द्रव्य है, वह निमित्त है। समझ में आया? बस इतना। इन सबके

'**अधर्मद्रव्यं स्थितिस्य स्थितिसहकारिकारणं**' सहकारी कारण है। ... यह स्वयं अधिक डाला है, यह आयेगा अब २० में। मूल २०वीं गाथा में आयेगा। ... यहाँ अधिक डाल दिया। अब यह बात सब शब्द हैं, यह बात अलग वस्तु है अब। अब ऐसा कहना है कि वहाँ मुक्त परमात्मा जो अनन्त सिद्ध लोक के अन्त में विराजते हैं, उन्हें यहाँ गति में धर्मास्ति निमित्त था, यहाँ से भगवान पधारे ऐसे। मुक्ति तो यहाँ हो गयी। ऐसे धर्मास्ति निमित्त। और (स्थिर हुए) उसमें अधर्मास्ति निमित्त। बस दो। पुद्गल से भिन्न।

यह '**मुक्तात्मप्रदेशमध्ये**' यह सब सिद्ध भगवान—अनन्त सिद्ध हैं, उनके '**परस्परैकक्षेत्रावगाहेन तिष्ठन्ति**' ये तीन द्रव्य परस्पर एक जगह रहे हुए हैं। वहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ धर्मास्ति, अधर्मास्ति और पुद्गल रहे हुए हैं। '**तथापि निश्चयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मानः सकाशाद्भिस्वरूपेण मुक्तौ तिष्ठन्ति।**' परन्तु भगवान आत्मा अनन्त सिद्ध जहाँ विराजते हैं, वहाँ वे तीन द्रव्य हैं सही, परन्तु भगवान आत्मा से वे भिन्न हैं। अनन्त सिद्ध भगवान से वे तीनों भिन्न हैं, वहाँ सिद्ध भगवान में। समझ में आया?

अनन्त सिद्ध भगवान विराजते हैं लोक के अग्र में। वहाँ आगे यहाँ से गये की अपेक्षा ली है अधर्मास्ति निमित्त। और स्थिर में अधर्मास्ति निमित्त और पुद्गल वहाँ हैं दूसरे। और यह छह प्रकार। वे सिद्ध जहाँ विराजते हैं, वहाँ तीनों द्रव्य हैं, तथापि वे भगवान के आत्मा के स्वभाव से वहाँ भिन्न हैं। तीनों द्रव्य भगवान के आत्मा से भिन्न पड़े हैं वहाँ सिद्ध में ऊपर। वे भगवान होंगे, वहाँ होंगे यह सब पुद्गल? है न पूरा लोक भरा है ठसाठस। पूरा लोक भरा है ठसाठस पुद्गल। जैसे शीशी में रोशनाई भरी हो न पूरी? खाली हो कहीं? उसी प्रकार चौदह ब्रह्माण्ड शीशी जैसी है यह चौदह ब्रह्माण्ड पुरुष के आकार। पूरे ठसाठस पुद्गल भरे हैं। वे सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी तीन द्रव्य रहे हैं सही। तथापि वे भगवान से अत्यन्त भिन्न हैं। '**तथात्र संसारे चेतनाकारणानि हेयानीति भावार्थः**' यह दो बातें ली। वे सिद्ध ले लिये। अब यहाँ चेतन जितने संसारी हैं, उनके लिये भी ये तीनों कोई काम में नहीं आते। गजब बात, भाई! दो बातें ले लीं, सिद्ध और संसारी दो ले लिये। समझ में आया?

अब नीचे लेखन में अन्तर है। यह पण्डितजी के साथ कल बात हो गयी। अपने

को कुछ यह वाँचना आवे नहीं संस्कृत व्यवस्थित। परन्तु पूछे तो सही न फिर (कि) यह क्या है, यह मिलान नहीं खाता यह। क्या कहा? सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ ये तीन द्रव्य जो कहे धर्मास्ति, अधर्मास्ति और पुद्गल हैं वहाँ। परन्तु भगवान के आत्मा से भिन्न है वहाँ। इसी प्रकार यहाँ संसारी चैतन्य को भी यहाँ पुद्गल, धर्म, अधर्म है, परन्तु आत्मा से भिन्न हैं। अकारण है उसे वास्तव में वे काम आते नहीं। वे वास्तव में कारण है नहीं। वास्तव में कारण है नहीं। व्यवहार कारण कहा निमित्त (परन्तु) वास्तव में कारण है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा। क्या लिखा, देखो न, पढ़ो न! '**संसारे चेतनाकारणानि**' संसारी... सिद्ध के लिये भिन्न बताये। अर्थात् उन्हें कारण है ही नहीं, ऐसा कहा उसमें भी यह। सिद्ध भगवान जहाँ विराजते हैं, वहाँ पुद्गल और धर्म, अधर्म, उन्हें कुछ काम के नहीं। भिन्न हैं, इसलिए फिर काम के नहीं, ऐसा हुआ। भले वहाँ है सही। इसी प्रकार यहाँ संसारी चैतन्य जीव में यह पुद्गल छह प्रकार के, धर्म, अधर्म भिन्न है सही यहाँ अकारण से। आत्मा को वास्तव में कारण नहीं। निश्चय कारण ... समझ में आया?

लो, यह परमात्मप्रकाश की १९वीं गाथा, समझ में आया? बापू! तू निराला प्रभु वस्तु भले हो तू है वहाँ भले वे हों, वह तो सिद्ध भगवान है, वहाँ भी है, ऐसा पहले सिद्ध किया न, भाई! सिद्ध भगवान है, वहाँ भी है, ऐसा कहा। कि क्या उन्हें किस काम के हैं कहते हैं ले, अब कह? है, एकमात्र जानने का ज्ञेय कहा, वह तो पहले ज्ञेय करके यह बात सिद्ध करते हैं। ज्ञान में ज्ञेयरूप से जानते हैं। उसी प्रकार यह नीचे भी यह छह प्रकार के पुद्गल बादरबादर आदि और धर्मास्ति, अधर्मास्ति—तीन। आकाश का बाद में लेंगे। वह यहाँ है, तू है वहाँ है। परन्तु तुझे कुछ कारण-फारण वास्तव में नहीं। व्यवहार कारण कहा निमित्तरूप से। वास्तव में तो ज्ञान के ज्ञेयरूप से कहे थे। ज्ञान में ज्ञेयरूप से कहे हैं, उन्हें निमित्त कारणरूप से समझाया, (परन्तु) वास्तव में उसे कारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कुछ नहीं। भाव का समझाना है न! कहो, समझ में आया इसमें?

उपादान कारण नहीं, ऐसा। अर्थात् कि वास्तव में वे कारण नहीं। ऐसा लेना। वास्तविक कारण नहीं। वास्तव में कारण तो तेरा तुझमें है। सिद्ध का सिद्ध में है। कारण कि ऐसा लेना है न कि आत्मा तो ज्ञायक है और वे ज्ञेय हैं। बस इतना। अब उस ज्ञेय को ऐसे कारण कहा भिन्न पाड़कर समझाने में उसके गुण का जो स्वभाव उतना। परन्तु वास्तव में तो ज्ञायक और ज्ञेय है, वे (एक-दूसरे को) कारण है नहीं, ऐसा यह कहते हैं। समझ में आया? अर्थात् कि वे ज्ञेय हैं तो ज्ञान होता है, ऐसा नहीं। वे हैं तो कार्य होता है, ऐसा तो नहीं, परन्तु ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान होता है, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? आहाहा! चारों ओर से वीतराग का तत्त्व देखो, पूर्वापर अविरोधी एक बात सिद्ध होती है। अज्ञानी के कथन वीतराग के सर्वज्ञ को समझे बिना के और इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने मारी हुई गप्प एक आत्मा है और फलाना है और ईश्वर कर्ता है, उसका कहीं एक भी मिलान है नहीं। समझ में आया? यह तो एक धारा छह द्रव्य है, अनन्त है, अनन्त के अनन्त कार्य हैं। निमित्तरूप से भले कहा, परन्तु वास्तव में उसका कारण आत्मा ज्ञायक और ज्ञेय है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। आहाहा! निमित्तकारण भी ज्ञेय है, इसलिए हेय है, ऐसा कहेंगे। यहाँ ... अकारण कहा। फिर हेय कहेंगे। आकाश के कारण हेय है, निमित्त से हेय है। ज्ञेय है सही परन्तु हेय है।

मुमुक्षु : इसमें हेय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसकी है न। अकारण हेय कहा, परन्तु अकारण से, ऐसा। कारण नहीं, इसलिए हेय है, ऐसा। कारण नहीं, इसलिए हेय है। वस्तु वही है ज्ञेय है। जाननेयोग्य है बस इतना। जाननेयोग्य है, है इसलिए ज्ञान होता है, ऐसा नहीं, ऐसा और कहते हैं। ज्ञान तो अपने से करता है, उसमें वे निमित्त सामने जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। इसके अतिरिक्त उनका कार्य करना या उनसे तुझमें काम होता है (-ऐसा नहीं)। वस्तु में जड़-चैतन्य में वह वस्तु नहीं और तू माने तो तेरे घर में मिथ्यात्व का लाभ आता है।

कहो, समझ में आया? (मिथ्या) दृष्टिपना टालने के लिये यह बात करते हैं। और यह मिथ्यात्व टले बिना इसे किसी प्रकार से धर्म का अंश भी होगा नहीं। मिथ्यात्व टले बिना स्वरूप में स्थिर कहाँ से हो? समझ में आया?

यह स्वरूप का भान होकर मिथ्यात्व टले, तब स्वरूप में स्थिर हो, तब उसे चारित्र कहा जाये। वह चारित्र कहीं मिथ्यात्व टले बिना आ जाये, ऐसा नहीं। इसलिए पहली बात (कि) पर है, जाननेयोग्य, तू जाननेवाला। जाननेवाला कितने का? कि, सबका। वापस ऐसा। इतने सब अनन्त पुद्गल का भी तू जाननेवाला। आहाहा! एक भी परमाणु का कार्य करनेवाला नहीं, उससे काम लेनेवाला नहीं। परन्तु अनन्त का जाननेवाला एक समय में। अनन्त का जाननेवाला एक समय में, ऐसी तेरी ज्ञान की सामर्थ्य है, उस ज्ञानमूर्ति का तू स्वामी है। यह ज्ञान में निर्णय कर। मैं ज्ञान हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी कोई चीज़ नहीं। राग भी नहीं, शरीर नहीं और पर भी नहीं, ऐसा अन्दर निर्णय करना, इसका नाम यथार्थ स्वस्वरूप दृष्टि—सम्यग्दर्शन है, वह सम्यग्दर्शन होने के लिये, यह बात की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पौष शुक्ल ५, सोमवार, दिनांक - २७-१२-१९६५
गाथा - २० से २२, प्रवचन - ८७

परमात्मप्रकाश १९ गाथा हुई। दूसरे अधिकार की। २०वीं। क्या चलता है यह? व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय छह द्रव्य, उसका स्वरूप चलता है। व्यवहार सम्यग्दर्शन है, वह एक शुभराग विकल्परूप भाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार है इसलिए कहलाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार कहलाता है, कहा न! आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप की अन्तर्मुख की निर्विकल्प प्रतीति सम्यग्दर्शन वह पवित्र पर्याय है। आत्मा शुद्ध आनन्द, ज्ञान (आदि) अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके अन्तर में, अनुभव में प्रतीति, वह सम्यग्दर्शन अरागी पर्याय है। वह वास्तव में सम्यग्दर्शन है और वह वास्तव में निश्चय से मोक्ष का मार्ग है। उसके साथ यह छह द्रव्य की श्रद्धा का राग, छह द्रव्य है जगत में, उसका विकल्प ऐसा वहाँ भूमिका में होता है। है हेय। है हेय, परन्तु आये बिना रहता नहीं। जगत में छह द्रव्य हैं। उन छह द्रव्य का बहिर् विषय वह व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है, वह छह द्रव्य। निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय स्वद्रव्य है। समझ में आया?

सच्चा सम्यग्दर्शन वह मोक्ष का मार्ग, उसका विषय स्व-चिदानन्द आत्मा भगवान उसका विषय है। अर्थात् कि सम्यग्दर्शन का कारण स्वद्रव्य है निश्चय और व्यवहार सम्यग्दर्शन का कारण छह द्रव्य है। छह द्रव्य विषय कहो या छह द्रव्य कारण कहो। समझ में आया? ऐसे यह व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में छह द्रव्य क्या कैसे हैं? ऐसा इसे बराबर जानकर श्रद्धा करना चाहिए। व्यवहार श्रद्धा करना चाहिए। यह बीच में व्यवहार श्रद्धा ऐसी आती है। उसकी बात चलती है। देखो, तीन तो हो गये।

पुद्गल, धर्मास्ति और अधर्मास्ति। ये तीन द्रव्य हैं भगवान ने—केवलज्ञानी प्रभु ने देखे हुए। ये पुद्गल इस परमाणु से लेकर शरीर, कर्म सब वह आत्मा की पर्याय के लिये वास्तव में तो अकारण है, वे कुछ काम के नहीं, परन्तु निमित्तरूप से सामने चीज़ ज्ञेय में है, वह हेयरूप से है। उसमें कर्म-बर्म सब हेयरूप से आये। पुद्गल में आये या नहीं कर्म? आठ कर्म हैं निमित्तरूप से। भगवान आत्मा अपनी निर्विकल्प शुद्ध श्रद्धा अन्तर की स्वद्रव्य के अवलम्बन से प्रगट करे, उस काल में उसे व्यवहार से एक विकल्प छह द्रव्य की श्रद्धा का, पुद्गल की श्रद्धा का, कर्म है, वह कर्म है—ऐसी श्रद्धा का एक विकल्प है। वह विकल्प है, उसमें यह छह द्रव्य का विषय है, परन्तु वे छह द्रव्य हेय है और उनकी श्रद्धा जो राग है, वह भी वास्तव में हेय है कि (क्योंकि) उसमें परद्रव्य का अवलम्बन आता है। समझ में आया? परन्तु वे ज्ञेय तो है न? आवे तो भी जाननेयोग्य तो है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

ये तीन—धर्मास्ति, अधर्मास्ति और पुद्गल। ये तीन। छह द्रव्य में सम्यग्दर्शन का विषय तीन कहा। अभी तीन बाकी रहे। उसमें यहाँ आत्मा अपने स्वभाव की श्रद्धा करे निश्चय, तब सामने छह द्रव्य में एक आकाश नाम का भी पदार्थ है, लोकालोक आकाश पदार्थ है। वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन के छह द्रव्य के विषय में आ जाता है। समझ में आया? इसलिए तीन को तो निमित्तरूप से गिनकर, ज्ञेयरूप से गिनकर हेयरूप से कहा। पुद्गल को हेय गिना, ज्ञेयरूप से गिनकर हेय गिना। गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : हेय परन्तु रखने जैसे तो हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हेय रखने जैसे कहाँ से आये? समझ में आया? व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है छह। ऐसा राग आवे, परन्तु वह बहिर् द्रव्य का उसमें अवलम्बन है और पराधीन है और वह राग नाशवान है। वह राग पर के अवलम्बन से प्रगट होता विनाशीक राग है। इसलिए वह उपादेय अन्तर स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से एक उपादेय नहीं। अन्तिम कहा नहीं? '**अकारणानि हेयानि**' शुद्ध आत्मा उपादेय समझना उसमें से। समझ में आया? कठिन बात, भाई! यह सब समझना पड़ता होगा? यह वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने छह द्रव्य, अनादि-अनन्त संख्या से अनन्त, जाति से छह (देखे)। उन छह को बराबर जानकर श्रद्धा करना चाहिए। श्रद्धा करने का ऐसा विकल्प

उसे आये बिना रहता नहीं। तो कहते हैं कि तीन द्रव्य हेय कहे पहले। जानकर हेय कहे, श्रद्धाकर, श्रद्धा करने पर भी वे द्रव्य भी हेय हैं और उनकी श्रद्धा का राग भी हेय है, छोड़नेयोग्य हेय है।

★ ★ ★

गाथा - २०

आगे आकाश का स्वरूप कहते हैं—आकाश एक। वह आत्मा की ज्ञानपर्याय में विकल्पसहित की श्रद्धा में यह सब द्रव्य इतने इसकी प्रतीति में आये बिना रहते नहीं। ऐसी प्रतीति न हो, उसे निश्चय सम्यग्दर्शन की प्रतीति होती नहीं। समझ में आया? ऐसा कहना चाहते हैं। जिसे ऐसे छह द्रव्य की भी श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसे ऐसे विकल्परहित एक द्रव्य अखण्डानन्द प्रभु आत्मा के सम्यग्दर्शन की श्रद्धा उसे हो नहीं सकती। समझ में आया? तीसरे आकाश का स्वरूप कहते हैं।

१४६) दव्वुइँ सयलइँ उवरि ठियइँ णियमेँ जासु वसंति।
तं णहु दव्वु वियाणि तुहुं जिणवर एउ भणंति॥ २०॥

अन्वयार्थ :- जिसके पेट में सब द्रव्य रहते हैं—आकाश में। पेट अर्थात् उदर में। आकाश है, अरूपी आकाश है, हों! यहाँ। यहाँ अरूपी आकाश सर्वव्यापक सर्वत्र लोकालोक। उसके पेट में अर्थात् अन्दर में **सब द्रव्य में स्थित हुई...** देखा! उदर शब्द प्रयोग किया है। आकाश के पेट में अर्थात् आकाश है, उसके अन्दर में, पेट अर्थात्। यह है न, **'सकलानि द्रव्याणि स्थितानि' निश्चय से आधार...** निश्चय से अर्थात् वस्तु है, ऐसा। वस्तु है, आधार आकाश है और (पाँच) द्रव्य उसमें दूसरे रहे हुए हैं, आकाश के अतिरिक्त पाँच। वे आधेय हैं। आकाश आधार है, वह वस्तु आधेय है। वह नया कुछ नहीं, अनादि का है। गजब! आकाश नाम का एक अरूपी पदार्थ, ऐसा का ऐसा अरूपी, हों! आकाश दिखता है, ऐसा नहीं। यह वह खाली आकाश दिखे, वह आकाश नहीं।

यहाँ आकाश अरूपी है ऐसा का ऐसा। असंख्य प्रदेश ऐसे उसे ऐसे चलते जाते हैं। ठेठ खाली भाग, कहीं अन्त नहीं आता, कहीं अन्त नहीं आता, अन्त नहीं आता,

अन्त नहीं आवे—ऐसा अनन्त आकाश प्रदेश ऐसे के ऐसे चलते ही जाते हैं... चलते ही जाते हैं... चलते ही जाते हैं... दसों दिशाओं में। ऊँचे... ऊँचे... ऊँचे... लो, तो ऐसे के ऐसे यह खाली भाग, पश्चात् खाली... खाली... खाली... खाली... खाली... चलता ही जाता है। कहीं नहीं, ऐसा नहीं। वह चारों ओर आकाश व्यापक अरूपी अनन्त प्रदेशी है। उसके उदर में—पेट में आधार में यह पाँच दूसरे रहे हुए हैं। सकल द्रव्य। समझे न? '**निश्चयेन णियमें वसन्ति**' अर्थात् है, ऐसा कहना है। '**णियमें वसन्ति**' पाँच द्रव्य आकाश में है। नहीं, ऐसा नहीं, इस अपेक्षा से निश्चय कहा है। ऐसा।

आधेयरूप होकर रहती हैं, उसको तू आकाशद्रव्य जान,... आहाहा! यह आकाश ऐसा, आकाश। वह कितना आकाश? दसों दिशा में चलता ही जाये अरूपी, अरूपी अनन्त प्रदेशी आकाश। उसे कहते हैं कि जान। देख, कहते हैं। है न? **ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।** ऐसा जिनेन्द्रदेव वीतराग तीर्थंकर त्रिलोकनाथ फरमाते हैं। कहो, **लोकाकाश आधार है, अन्य सब द्रव्य आधेय है।** आधार में इतना और लोकाकाश है न चौदह ब्रह्माण्ड जितना? उसमें लोकाकाश आधार और दूसरे आधेय हैं। दूसरा खाली आकाश तो खाली है अनन्त-अनन्त लोक के बाहर।

भावार्थ :- यद्यपि ये सब द्रव्य आकाश में परस्पर एक क्षेत्रावगाह से ठहरी हुई हैं,... सब आत्मायें और आकाश को सब इकट्ठे वहाँ छहों रहे। **तो भी आत्मा से अत्यन्त भिन्न हैं,...** वह आकाश आदि यह आत्मा भगवान से अत्यन्त भिन्न... भिन्न... भिन्न... हैं। **इसलिए त्यागनेयोग्य हैं,...** इसलिए आकाश भी श्रद्धा करनेयोग्य है, परन्तु उस श्रद्धा का विकल्प और वह आकाश हेय करनेयोग्य है। गजब भाई! जिसे छोड़ना है, उसे जानना किसलिए? परन्तु जाने बिना किसे छोड़ना? वह क्या चीज़ है? समझ में आया?

और आत्मा साक्षात् आराधनेयोग्य हैं,... वह आकाश है, ऐसा जानकर विकल्प हो, छोड़ने जैसा है। भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण शुद्ध आनन्दकन्द की दृष्टि करके उसे आदरनेयोग्य है। उसकी दृष्टि करना, वही उसे आदरनेयोग्य कहलाता है। कहो, यह भगवान आत्मा ही आदरनेयोग्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : आकाश .... मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : माने। कहाँ भान है उसे? आकाश है, उसका भान नहीं। यह तो आकाश है, इतना जाननेयोग्य और उसकी श्रद्धा का विकल्प है, इतनी बात। परन्तु उसे विकल्प को आदरनेयोग्य माने, वहाँ आकाश को आदरनेयोग्य माना। क्या कहा? जिस चीज़ की श्रद्धा का विकल्प उठा है, वह विकल्प आदरणीय माने, वह परद्रव्य ही उसने आदरणीय माना, स्वद्रव्य आदरणीय नहीं मानता। ऐसी बात है। समझ में आया?

आकाश ऐसे सर्वव्यापक। है, ऐसी श्रद्धा की ज्ञान में। विकल्प है, परद्रव्य का अवलम्बन है न उसमें? परन्तु वह विकल्प भी उपादेय माने तो वह परद्रव्य को उसने उपादेय माना। स्वद्रव्य को उपादेय नहीं माना। लो, क्या है? भाई! यह तो सच्चाई के खेल हैं वीतराग के। वीतराग का मार्ग समझना, वह कहीं ऐरे-गैरे साधारण का काम नहीं। वह मान ले (कि) हम समझे हैं, परन्तु वह समझने का खेल कठिन है। समझ में आया? देखो! कहा न '**जिणवर भणंति**' जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं कि आकाश सर्व व्यापक अपार... अपार... अपार... अपार... ज्ञान में श्रद्धेय है, ऐसा इतना। परन्तु वह श्रद्धा का विकल्प छोड़नेयोग्य है। भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञान, उसे ऐसा आत्मा भगवान अनन्त गुण की राशि एक, उसकी कीमत करके उसकी श्रद्धा करनेयोग्य है। उसकी कीमत करके श्रद्धा कि परद्रव्य की कीमत ज्ञान में कुछ नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान की पर्याय है, परन्तु वह परद्रव्य-पर्याय है। परद्रव्य अवलम्बी पर्याय है पराधीन है, नाशवान है, रागवाली पर्याय है। कहो, समझ में आया? यह २० वीं गाथा में भगवान आत्मा अनन्त सुखस्वरूप है। यह आत्मा अनन्त आनन्द की मूर्ति है अन्दर। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! यह धूल का आनन्द मानता है, पैसे का धूल का, वह आनन्द में नहीं, वह तो राग है और दुःख है। यह स्त्री, पुत्र और फलाना और पैसा, बँगले को, ये मेरे, उसमें मुझे सुख है, वह तो राग है और उसमें सुख माना, वह तो मिथ्याभ्रान्ति अज्ञान है। समझ में आया? वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर वस्तु, उसके अन्दर अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय आनन्द रस पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द अपार रस पड़ा है आत्मद्रव्य में—वस्तु में। जैसे पीपर में चौंसठ

पहरी चरपराई पड़ी है। पीपर का दाना, दाना यह पीपर का नहीं इतना? छोटी पीपर। उसमें चौंसठ पहरी चरपराई का रस पड़ा है अन्दर, इतनी में चौंसठ पहरी। यह घूँटते हैं (तो) निकलती है चौंसठ पहरी। कहाँ से आयी? पत्थर में से? घिसने में से? कोयला घिसे न? उसमें पड़ी है। उस पीपर के दाने-दाने में चौंसठ पहरा चरपरा रस और हरा रंग। बाहर काली दिखे, अन्दर हरा रंग है। पूरा हरा रंग, पूरा चरपरा रस। उसी प्रकार इस भगवान आत्मा के अन्दर में पूरा अतीन्द्रिय आनन्द और पूरा सर्वज्ञपद अन्दर में पड़ा है। हाय! हाय! उस पीपर की प्रतीति हो परन्तु इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? आहाहा!

देखो, क्या कहा? भगवान एक आराधनेयोग्य। '**अत्यन्तभिन्नत्वात् धेय**' समझ में आया? '**उपादेयभूतादनन्तसुखस्व रुपात्**' ऐसा कहा। टीका कहते हैं न? क्यों भगवान आत्मा आदरणीय है, श्रद्धा करनेयोग्य है? उसकी कीमत करके उसमें स्थिर होनेयोग्य क्यों है? कि वह अनन्त सुखस्वरूप है। अतीन्द्रिय-अतीन्द्रिय अनन्त जैसा सिद्ध का आनन्द है, वैसा आनन्द अन्दर पड़ा है पूरा-पूरा अखण्ड एकरूप। शक्तिरूप आनन्द है, उसे एकाग्र, उसमें एकाग्र होकर उस आनन्द का ही अनुभव लेनेयोग्य है। लो! समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कब प्रयत्न किया है कब? ऐसी की ऐसी बाहर और बाहर धमाल की है। यह भाईयों को सम्हाला, फलाने को सम्हाला, लड़के को ठिकाने लगाया और बहियाँ की। किया अभिमान। ऐई! शशीभाई! क्या किया है अभी तक? कभी स्वयं निधान पड़ा है अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द। जिनवर त्रिलोकनाथ परमेश्वर कहते हैं, बापू! तुझमें अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय-इन्द्रियरहित अनन्त-अनन्त रस का पिण्ड है। समझ में आया? अभी क्या होगा? कुछ अता-पता हाथ आता नहीं। कभी सुना नहीं, सुनकर उसकी तुलना का विचार किया नहीं, विचार करके क्या चीज़ है, उसकी दृष्टि की नहीं। क्या हो? यह होली बाहर की। यह किये और धूल की और यह किया पैसे को। पैसा-बैसा तो कहाँ प्राप्त करता है? राग-राग। स्त्री, पुत्र को नहीं था और मिला, नहीं थे और गये। बातें बहुत करे लोग। गरीब मनुष्य न हो, उसे प्राप्त हो पाँच, पच्चीस लाख और

होवे उसका पुण्य हो रहा तो चले जाये। थे और गये, नहीं थे और प्राप्त हुए। धूल भी नहीं गया और आया। सुन न अब वह तो। यह बाहर के धूल के धमाका पुद्गल के पिण्ड जड़ हैं। उसमें विकल्प के जाल में इसने अनन्त काल गँवाया। समझ में आया?

भगवान आत्मा, अरे! ऐसा मनुष्य देह मुश्किल से मिला। समझ में आया? 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से..' नहीं आता श्रीमद् में? मानवदेह मिला... ऐसा मानव कि बापू! इस स्वरूप की कीमत नहीं करे तो (और) पर की कीमत करेगा तो तेरा भटकना मिटेगा नहीं कभी। भाई! तूने तेरी कीमत कभी की नहीं। हीरा-माणेक को परखा, मोतियों को परखा, वस्त्र को परखा, घोड़े-हाथी को परखा। परखे नहीं कि ऐसा घोड़ा हो तो ऐसा, ऐसा बैल हो तो ऐसा और ऐसी गाय हो तो ऐसा और ऐसा वस्त्र हो तो ऐसा। मकान को कैसा परखा मकान को? यह मकान ले तो ऐसा-ऐसा करे वापस। क्या कहलाये? टकोर मारे। इसका प्लास्टर कैसा है, लाख, दो लाख का मकान लेना हो तो प्लास्टर-ब्लास्टर में ऐसा करे, कैसा खोटा कैसा हो गया है, कितने वर्ष का है? प्लास्टर में बीच में पोल तो नहीं हो गयी न? वहाँ सब परीक्षायें धूल की। लाख, दो लाख का मकान लेना हो तो। यह भगवान कौन है, इसकी परीक्षा की इसने कभी? जुगराजजी! नहीं करते।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धन्धा तुम्हारे कपड़ा, क्या धन्धा है?!

मुमुक्षु : कपड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कपड़े की ऐसी जाति होती है और कपड़े की ऐसी जाति होती है और कितनी जमाये। दो, पाँच लाख का डालकर। यह लाओ और यह रख और। आहाहा!

मुमुक्षु : ...आती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की कृपा हो, इसलिए आये बिना रहे नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरे! प्रभु यहाँ कहते हैं कि अनन्त सुखस्वरूप। यह शब्द पड़ा है न? यह

अनन्त सुखस्वरूप, वही दृष्टि करके आदरनेयोग्य है। बापू! वही दृष्टि करनेयोग्य है और फिर स्थिर होनेयोग्य है। बस यह एक है इसके लिये। यह श्रद्धा करनेयोग्य है, विकल्प है आवे, आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा! वह बाह्य द्रव्य के अवलम्बन से वह व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र का राग होता है। वह बाह्य द्रव्य के अवलम्बनवाली बात है इसलिए ... नाशवान है, पराधीन है। भगवान आत्मा के अवलम्बन से वह स्वाधीन है, अविनाशी है। समझ में आया?

वहाँ कहा न व्यवहार का? ... निर्विकल्प शान्ति, वह स्व के आश्रय से है और व्यवहार ज्ञान ... श्रद्धा आदि समाधि से विरुद्ध है। वह पराधीन कहा, पश्चात् समाधि से विरुद्ध है। व्यवहारमोक्षमार्ग, वह आत्मा की शान्ति से विरुद्ध है। व्यवहारमोक्षमार्ग परद्रव्य अवलम्बी है, निश्चयमोक्षमार्ग स्वद्रव्य अवलम्बी है। व्यवहारमोक्षमार्ग अशान्ति है, निश्चयमोक्षमार्ग समाधिशान्ति है। समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहार से पवित्र है, निश्चय से अपवित्र है। भगवान आत्मा का निश्चय सम्यग्दर्शन आदि मार्ग परमार्थ से पवित्र है। यह निश्चयमोक्षमार्ग साक्षात् मोक्ष का कारण है। व्यवहारमोक्षमार्ग व्यवहार से पवित्रता का कारण गिनकर परम्परा मोक्ष का कारण कहा है। बाकी निश्चय से तो पराधीन, शान्ति से विरुद्ध और वास्तव में स्वभाव की शान्ति की अपेक्षा से उसे पाप भी कहा जाता है। आहाहा! अरे! इसे भी, स्वयं कितना कहाँ, इसकी कीमत नहीं होती और यह बाहर की कीमत बहुत इसे। शास्त्र के पढ़नेवाले भी खोज-खोजकर उसमें से यह निकाला। समझ में आया? हीरा खोजना चाहिए, उसके बदले यह। क्या कहते हैं कुछ? खोदा पर्वत और क्या कहा? निकाला चूहा। अब यह क्या शास्त्र खोज-खोजकर निकाला क्या तूने?

मुमुक्षु : समुद्र बिलोकर जहर निकाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर निकाला। आहाहा! भगवान आत्मा, भाई! उसकी कीमत केवली भी कोई बोल सके नहीं। बोल सके नहीं, जान सके का अनुभव पूरा पूरी कीमत भगवान की वाणी में भी आती नहीं। 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब।' क्या कहना यह? स्वसंवेदन चीज़ पूरी आनन्दकन्द, उसे वाणी

द्वारा, वाणी जड़, वह आत्मा अरूपी, यह रूपी। यह मूर्त, वह अमूर्तिक एक दूसरे के विरोधी शत्रु। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुख का सागर प्रभु पड़ा है। कहते हैं कि उसकी श्रद्धा करनेयोग्य है, उसे अन्तर में आदरनेयोग्य है। बाकी कोई आदरनेयोग्य है नहीं। आहाहा! उसमें ऐसे आकाश में यह डाला। उन तीन में डाला। आकाश में। चार और अब काल रहा। हेय है न काल? वह तो काल का भेद तो तब कहा था न मैंने। वह काललब्धिवाला। २१वीं गाथा में नहीं। द्रव्यसंग्रह २१वीं गाथा तब (संवत्) १९८४ के वर्ष से उसमें उसे बताते थे। वे कहे, ऐ! ऐसा है। अब सुन न! काल है। कौन इनकार करता है? निमित्त है काल, कहा। आदरणीय वह आत्मा होगा या कालद्रव्य आदरणीय होगा? उसमें है उसमें पाठ में यह। २१ नहीं? द्रव्यसंग्रह तब (संवत्) १९८४ में। हमारे यह जीवराजजी को भराव्या वे... बातें करते थे, मैं अन्दर बैठा था और वही मुझे आता था। मौके से वह पृष्ठ आया था। भाई! यह काल-फाल तो जाननेयोग्य है। जानकर उसकी श्रद्धा का विकल्प भी छोड़नेयोग्य है। यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व का विषय बताते हैं, परन्तु जानना तो सही न! जाने बिना किसे छोड़ना? किस चीज़ को किस प्रकार से है, उसे छोड़ना, ऐसा। समझ में आया? नजदीक आओ, नजदीक....

यह मार्ग की तो... सबको हो या नहीं? बापू! ऐसा मार्ग है, भाई! अपने बनिया में तो नहीं, वह फरसो देते हैं बलजोरी से। खाने के बाद। यह रहे देखो यह सब मुफतिया ऐसे। खा गया हो तो भी थोड़ा खा, थोड़ा खाओ। फिर मर जायेगा भाईसाहब अब पूरा पेट... इसी प्रकार यह कहते हैं ले रे ले यह मार्ग। तूने कभी यह मार्ग जाना नहीं। आहाहा! अनन्त सुखस्वरूप भगवान आत्मा वही उपादेय है। बाकी सब दूसरा तो हेय है, परन्तु उसकी श्रद्धा का राग भी हेय है। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २१

अब **आगे कालद्रव्य का व्याख्यान करते हैं—**एक वस्तु है, हों! काल। कितने ही तो भाई सम्प्रदाय में काल को नहीं मानते, ऐसा जैन में भी एक सम्प्रदाय है, इसलिए कालद्रव्य की व्याख्या जैसी है, वैसी जाननी चाहिए। जानकर उसका विकल्प है, वह श्रद्धा में आवे परन्तु वह छोड़नेयोग्य है।

१४७) कालु मुणिज्जहि दव्वु तुहुँ वट्टण-लक्खणु एउ।
रयणहँ रासि विभिण्ण जिम तसु अणुयहँ तह भेउ॥ २१॥

अन्वयार्थ :- **हे भव्य! तू इस प्रत्यक्षरूप वर्तनालक्षणवाले को कालद्रव्य... 'एतत्'** कहा न? यह। यह। ऐसा कहा है। एक काल नाम के असंख्य अणु हैं, भाई! सूक्ष्म बात है जरा। यह चौदह ब्रह्माण्ड—राजुलोक है, उसमें अनन्त आत्मायें हैं, अनन्त परमाणु हैं और यहाँ आकाश के प्रदेश असंख्य हैं। एक-एक प्रदेश में एक-एक कालाणु अरूपी पदार्थ है। जिसमें एक कालाणु में भी अनन्त गुण हैं जड़ के उसके। ऐसे एक-एक यहाँ आकाश प्रदेश हैं। एक-एक प्रदेश में एक-एक (कालाणु) है। रत्न के ढ़ेर की भाँति असंख्य कालाणु चौदह ब्रह्माण्ड में है। वह व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषय में उन कालाणु की श्रद्धा आ जाती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो! **इस प्रत्यक्षरूप वर्तनालक्षणवाले को कालद्रव्य जान...** यह वर्तनालक्षण, दूसरे परिणमे, उसमें निमित्तरूप से है, उसका गुण वर्तनालक्षण है। **अर्थात् अपने आप परिणमते हुए...** देखो, भाषा! संस्कृत में है। यह जीव और पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश स्वयं अपने से बदलते हैं, परिणमते हैं। **अपने आप परिणमते हुए द्रव्यों को कुम्हार के चक्र की नीचे की शिला की तरह जो बहिरंग सहकारीकारण है,...** देखो! क्या कहते हैं? यह शरीर, आत्मा है न, क्षण-क्षण में पलटता है। आत्मा में परिणमन—बदलना होता है, जड़ में अवस्था बदलती है। इसी प्रकार दूसरे धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश बदलते हैं। वह काल नाम के अणु पदार्थ हैं। वे दूसरे परिणमे उन्हें स्वयं परिणमे उन्हें बाह्य सहकारी कारण कहे जाते हैं। सह—साथ में रहा हुआ एक निमित्तकारण कालद्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य अपनी अवस्थारूप से बदले। उसमें बाह्य

एक कालद्रव्य बाह्य सहकारी कारण है, उसकी बराबर श्रद्धा करना चाहिए। समझ में आया?

किसकी भाँति? **कुम्हार के चक्र की नीचे की शिला की तरह...** कुम्हार का चक्र चले न, उसमें नीचे होती है न शिला की एक खीली-खीली, खीली के ऊपर पूरा चक्र चलता है ऐसा। चक्र चलता है स्वयं से, परन्तु उसे निमित्त वह है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ बदलता है, परिणमता है, रूपान्तर होता है, अवस्थान्तर होता है स्वयं से। उसमें निमित्तकारण, सहकारीकारण, वह बहिर् कहा न। पाठ में है, देखो न! '**स्वयमेव परिणममाणानां द्रव्याणां बहिरंगसहकारिकारणम्**' बाहर सहकारी कारण। **जो बहिरंग सहकारीकारण है, यह कालद्रव्य असंख्यात प्रदेशप्रमाण है।** असंख्यात प्रदेश है वस्तु। **जैसे रत्नों की राशि जुदारूप है,...** रत्न के ढ़ेर हों रत्न। पाँच सेर रत्न वे भिन्न... भिन्न... भिन्न... अकेला ढ़ेर है ऐसा। इसी प्रकार असंख्य कालाणु चौदह ब्रह्माण्ड में पृथक्-पृथक् हैं। **सब रत्न जुदा-जुदा रहते हैं—मिलते नहीं हैं, उसी तरह उस काल के काल की अणुओं का भेद है।** इसलिए कोई काल के अणु एकमेक होते नहीं। **एक कालाणु से दूसरा कालाणु नहीं मिलता।** एक कालाणु है अरूपी। थोड़ा यह तो जानने का विषय है। भगवान के कहे हुए द्रव्य हैं, व्यवहार समकित का विषय है; इसलिए उसे जानना चाहिए। कितने ही कालद्रव्य को ही नहीं मानते, पुद्गल आदि को न माने उसे व्यवहार श्रद्धा में वह खोट है। उसे आत्मा की निश्चय श्रद्धा हो नहीं सकती। समझ में आया?

भावार्थ :- अब शिष्य का प्रश्न है। **कि समय ही निश्चयकाल है, अन्य निश्चयकाल नामवाला द्रव्य नहीं है?** क्या पूछता है शिष्य? जरा सूक्ष्म पड़े ध्यान रखना। कि महाराज! एक समय की पर्याय है न एक समय, वही काल, वही काल है, इसके अतिरिक्त दूसरा काल नाम का पदार्थ हमको दिखाई नहीं देता, ऐसा शिष्य पूछता है। **अन्य निश्चयकाल नामवाला द्रव्य नहीं है?** काल अणु जो आप कहते हो पूरा, वह तो मुझे नहीं लगता। उसकी एक समय की अवस्था होती है वह पर्याय, उस पर्याय को हम तो काल मानते हैं। पूरा द्रव्य आप पृथक् कहते हो, वह हमको ज्ञात नहीं होता।

इसका समाधान श्रीगुरु करते हैं। समय वह कालद्रव्य की पर्याय है,... भाई! एक समय की अवस्था, वह कालद्रव्य की पर्याय है। द्रव्य है, वह त्रिकाली है। सोना है,

वह कायम है, परन्तु उसकी कुण्डल, कड़ा की अवस्था वर्तमान है। उसी प्रकार कालाणु एक अरूपी कायम द्रव्य है, उसकी एक समय, दो समय, तीन समय जैसे कहलाते हैं, वह उसकी पर्याय का भाग है। पर्याय, पर्याय (वान) बिना, पर्यायवान बिना होती नहीं। **क्योंकि विनाश को पाता है।** क्योंकि एक समय की पर्याय नाश होकर दूसरे समय में दूसरी अवस्था होती है, दूसरी अवस्था—पर्याय होती है। **ऐसा ही श्री पंचास्तिकाय में कहा है 'समओ उप्पण्णपद्धंसी' अर्थात् समय उत्पन्न होता है...** एक समय की अवस्था उत्पन्न हो, दूसरे समय में समा जाये और नयी अवस्था हो, नया समय हो।

इससे जानते हैं कि समय पर्याय द्रव्य के बिना हो नहीं सकता। एक समय की... यह समय कहलाये न कि एक समय हुआ। एक समय हुआ, एक घण्टा हुआ, लो! एक घण्टा गया, लो! वापस। ऐसी एक पर्याय है समय। उस पर्याय को समय कहते हैं। एक समय की पर्याय को उसकी अवस्था कहते हैं, परन्तु वह पर्याय त्रिकाली द्रव्य का एक अंश है। पर्याय द्रव्य बिना होती नहीं, अवस्था अवस्थावान बिना होती नहीं। एक समय की दशा, दशावान पदार्थ के बिना होती नहीं। बहुत सूक्ष्म बात। यह लोगों को कहीं अभी निवृत्ति नहीं मिलती। अनन्त काल से इसने ली नहीं कभी। **किस द्रव्य का पर्याय है, इस पर अब विचार करना चाहिए। यदि पुद्गलद्रव्य की पर्याय मानी जावे, तो जैसे पुद्गल परमाणुओं से उत्पन्न हुए घटादि मूर्तिक हैं, वैसे समय भी मूर्तिक होना चाहिए,...** क्या कहते हैं? एक समय माप कहा जाता है न? एक समय। एक समय यदि पुद्गल की पर्याय हो तो पुद्गल मूर्त है तो वह पर्याय भी मूर्त दिखनी चाहिए। **परन्तु समय अमूर्तिक है,...** एक समय, उसे रूप नहीं, वह अमूर्त है। **इसलिए पुद्गल की पर्याय तो नहीं है। पुद्गलपरमाणु आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश को जब गमन होता है,...** एक रजकण है पॉईन्ट। एक प्रदेश से ऐसे दूसरे प्रदेश में जाये, इतने में एक समय का माप आता है। वह समय का माप, वह पर्याय है। समझ में आया?

जो समय-पर्याय काल की है,... वह एक समय की पर्याय, वह काल नाम का अणु-द्रव्य वहाँ है, उसकी अवस्था है। **पुद्गलपरमाणु के निमित्त से होती हैं,...** भले

परमाणु ऐसे गति किया। एक प्रदेश से ऐसे दूसरे प्रदेश, वह पुद्गल की गति का माप किया, इसलिए उसका निमित्त कहलाया, परन्तु वह पर्याय है, वह पुद्गल की नहीं, पुद्गल से हुई नहीं। काल नाम का एक पदार्थ है, उससे हुई है। **नेत्रों का मिलना तथा विघटना उससे निमेष होता है,...** निमेष ऐसा। निमेषमात्र नहीं कहते? मेखोनमेख। यह और बहुत समय का मेखोमेख होता है। एक समय को पर्याय कहते हैं, असंख्य समय को ऐसे मेखोमेख (समय का माप) का काल कहते हैं। **जल-पात्र तथा हस्तादि के व्यापार से घटिका होती है,...** यह विशेष वह है न? **और सूर्यबिम्ब के उदय से दिन होता है... इत्यादि काल की पर्याय हैं, पुद्गलद्रव्य के निमित्त से होती हैं, पुद्गल इन पर्यायों का मूलकारण नहीं है,...** पुद्गलद्रव्य निमित्त सही। एक समय, दो समय, तीन समय, चार समय गिनती में पुद्गल का निमित्त सही, परन्तु उससे उत्पन्न होती नहीं। **पुद्गल इन पर्यायों का मूलकारण नहीं है, मूलकारण काल है।** थोड़ा-थोड़ा कहते हैं, भाई! हों! इसमें। समझे यह सब बात आ जाती है। **जो पुद्गल मूलकारण होता तो समयादिक मूर्तिक होते।** एक समय, दो समय, तीन समय यदि पुद्गल की पर्याय हो तो पुद्गल मूर्त है और समय भी मूर्त होना चाहिए।

जैसे मूर्तिक मिट्टी के ढेले से उत्पन्न घड़े... यह मूर्तिक मिट्टी का ढेला, उससे घड़ा भी मूर्त होता है, उससे घड़ा मूर्त होता है। उसी प्रकार पुद्गल मूर्त है, उससे यदि समय पर्याय हो तो वह भी मूर्त होना चाहिए। **वैसे समयादिक मूर्तिक नहीं हैं। इसलिए अमूर्तद्रव्य जो काल, उसकी पर्याय हैं,...** इसलिए काल नाम का एक अणु उस जगह है, पर्याय हो उस-उस जगह वह पर्यायवान होता है। देखो! यह शीशपेन की अवस्था है यह। यह अवस्था समय की एक अवस्था है न, यह अवस्था है। तो इस अवस्था प्रमाण पूरा द्रव्य है। यह अवस्था जितने में है, उतने में वह द्रव्य है। यह सब सूक्ष्म बात है। यह लॉजिक से वीतराग का तत्त्व ऐसा है कि यह अवस्था है न? यह अँगुली की अवस्था देखो! यह अवस्था है न इतनी? इस अवस्था प्रमाण यह परमाणु है वहाँ इतना चौड़ा। अवस्था जितने में है, उतने ही प्रमाण में वह द्रव्य है। इसी प्रकार कालाणु जो अवस्था है जिस जगह, उस जगह वह कालाणु स्वयं है। उस कालाणु द्रव्य की वह पर्याय है। समझ में आया?

परन्तु विनश्वर हैं, अविनश्वरपना द्रव्य में ही है,... क्या कहते हैं ? पर्याय है, वह विनश्वर है। एक समय की अवस्था नाशवान है। अविनश्वरपना तो उस कालाणु द्रव्य में है। पर्याय में अविनश्वरपना नहीं। **यह निश्चय से जानना। इसलिए समयादिक को कालद्रव्य की पर्याय ही कहना चाहिए, पुद्गल की पर्याय नहीं हैं, पुद्गलपर्याय मूर्तिक है। सर्वथा उपादेय...** अब अन्तिम बात वापस। यह जानकर, श्रद्धा करके, पहिचान कर उसका विकल्प छोड़नेयोग्य है। खाकर फिर हाथ धो डालो या खाये बिना हाथ धोओ ? इसी प्रकार कालाणु है, उसका निर्णय करके उसका विकल्प छोड़नेयोग्य है। आहाहा!

सर्वथा उपादेय शुद्ध-बुद्ध केवलस्वभाव... देखो! अब इस व्यवहार में कालद्रव्य ऐसा है, उसकी एक समय की पर्याय है, ऐसा श्रद्धा करनेयोग्य है। व्यवहार समकित के छह द्रव्य विषय है, कारण है, इसलिए माननेयोग्य है परन्तु आदरनेयोग्य नहीं। गजब बात, भाई! शुद्ध-बुद्ध स्वभाव-भगवान आत्मा शुद्ध है, बुद्ध अर्थात् ज्ञान का पिण्ड है। ऐसा एक केवल स्वभाव। समझ में आया ? है न शुद्ध एक स्वभाव, उसका अर्थ केवल किया। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव पाठ में है। उसका अर्थ यहाँ केवल किया। एक स्वभाव भगवान! शुद्ध अर्थात् पवित्र आत्मा है, बुद्ध अर्थात् ज्ञान की मूर्ति है और एक स्वभाव अर्थात् केवल एक स्वरूप है। ऐसा अकेला स्वभाव अखण्ड ज्ञानानन्दस्वरूप। वह जीव **उससे भिन्न कालद्रव्य है,...** कालद्रव्य आत्मा से—भगवान से भिन्न है।

इसलिए (काल) हेय है,... वह कालद्रव्य हेय है, आदरनेयोग्य नहीं। **यह सारांश हुआ।** इस सारांश का अंश इसमें से यह निकाला। जानना, मानना और छोड़ना। कहो, समझ में आया ? राग है, ऐसा जानना तो चाहिए या नहीं ? राग है, जानना, छोड़ना। आत्मा ज्ञानानन्द है, जानना, आदरना। समझ में आया इसमें ? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द शुद्धस्वरूप एक स्वभाव जानना। दृष्टि करना, स्थिर होना, रागादि जानना, छोड़ना। ऐसे कालद्रव्य आदि जानना, उनका विकल्प श्रद्धा में छोड़नेयोग्य है। समझ में आाय ? यह २१ वीं (गाथा) हुई। जानने की बात थी थोड़ी-थोड़ी लेने की।

★ ★ ★

गाथा - २२

आगे जीव, पुद्गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक हैं, और धर्म, अधर्म, आकाश ये तीन द्रव्य एक हैं, ऐसा कहते हैं। उसकी संख्या कहते हैं अब। संख्या भी उसे श्रद्धा में लेनी चाहिए।

१४८) जीउ वि पुग्गलु कालु जिय ए मेल्लेविणु दव्व।
इयर अखंड वियाणि तुहुँ अप्प-पएसहिँ सव्व॥ २२॥

अन्वयार्थ :- हे जीव! तू जीव और पुद्गल, काल इन तीन द्रव्यों को छोड़कर... पुद्गल परमाणु जो है, यह रजकणों की संख्या अनन्त। आत्मा की संख्या भी अनन्त है। एक, दो, पाँच, पच्चीस संख्या, असंख्य नहीं। आत्मा सर्वज्ञ भगवान ने अनन्त देखे हैं, हैं, हैं ऐसा देखा है न? देखा है, ऐसा है। है, ऐसा देखा है; है, ऐसा कहा है। अनन्त आत्मा है, एक आलू का टुकड़ा इतना राई के जितना टुकड़ा एक टुकड़ा लो, तो उसमें असंख्य तो एक शरीर है औदारिक सूक्ष्म और एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध भगवान हुए, उससे अनन्त गुणे जीव एक शरीर में है। श्रद्धा करना चाहिए, उसे मानना चाहिए, व्यवहार समकित के विषय में, ऐसा कहते हैं। अनन्त संख्या माननी पड़ेगी भाई! ऐसा कहा। आहाहा! एक राई के (जितना) टुकड़ा लो आलू का, शकरकन्द का, प्याज का, लहसन का, इतना टुकड़ा, हों! राई जितना, तो उसमें असंख्य औदारिक -शरीर हैं। यह बड़ा है। वह सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म ऐसे असंख्य शरीर हैं। एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध भगवान हुए, छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्त होते हैं, भगवान के ज्ञान में आया है। छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्त होते हैं, ऐसे अनन्त काल से मुक्त होने की संख्या है। उससे एक शरीर में अनन्तगुणे जीव हैं। ऐसे-ऐसे असंख्य शरीर हैं पूरे लोक में औदारिक (शरीर) भरे हुए हैं। यह जीव की संख्या अनन्त है, ऐसी इसे श्रद्धा करनी चाहिए। श्रद्धा करके उसका विकल्प छोड़नेयोग्य है। समझ में आया? ऐसे उससे अनन्तगुणे पुद्गल हैं। देखो, यहाँ जीव एक है और यह अनन्तगुणे रजकण हैं, यह रजकण। यह (स्कन्ध) कहीं मूल चीज़ नहीं, यह टुकड़े-टुकड़े करते... करते... करते... अन्तिम टुकड़ा रहे, उसे भगवान परमाणु कहते हैं।

सूक्ष्म अणु ऐसे बहुत रजकण का यह दल है, इकट्ठा है यह तो... ऐसे-ऐसे अनन्त रजकण हैं वे सब, ऐसे यह सब अनन्त रजकण हैं। एक जीव की संख्या से रजकण की— पुद्गल की अनन्तगुणी संख्या है। ऐसा इसे ज्ञान में श्रद्धा करनी चाहिए। श्रद्धा करके वह विकल्प छोड़नेयोग्य है। समझ में आया?

और काल। काल है, वे असंख्य हैं। काल है न? चौदह ब्रह्माण्ड में एक-एक आकाश के प्रदेश में एक-एक अणु, वे असंख्य हैं। जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, काल असंख्य, ये तीनों बहुत हैं। यहाँ बहुत को बहुत रीति से मानना। और वे हैं न तीनों द्रव्य छोड़कर **दूसरे धर्म, अधर्म, आकाश...** एक-एक है। धर्मास्ति नाम का वह पदार्थ भगवान ने चौदह ब्रह्माण्डरूप से देखा, कहा न अभी। जीव गति करे, तब निमित्तरूप से है। और एक गति करके स्थिर हो, वह निमित्तरूप से अधर्मास्ति है और यह रहे हुए के लिये आकाश। वे एक-एक द्रव्य हैं। धर्मास्ति नाम का एक पदार्थ है, अधर्मास्ति नाम का एक, आकाश नाम का एक है, कालाणु असंख्य हैं, जीव अनन्त हैं, उससे अनन्त गुणे पुद्गल हैं। यह एक-एक है, वे बहुत हैं, ऐसा कहा।

ये सब तीन द्रव्य अपने प्रदेशों से अखण्डित हैं। लो! यह सब धर्म, अधर्म, आकाश अपने प्रदेश से अखण्ड है। यह चौदह राजुलोक प्रमाण धर्मास्ति असंख्य प्रदेशी पिण्ड है पूरा, अधर्मास्ति असंख्य प्रदेशी पिण्ड है। आकाश भी लोक प्रमाण असंख्य प्रदेशी पिण्ड है। आकाश अनन्त प्रदेशी सर्वव्यापक होकर पिण्ड है। समझ में आया? आहाहा! जैनशाला के पाठशाला को यह मूल सीखने का नहीं होता, वह (दूसरा) सीखे। जीविया वहोरविया तस्स मिच्छामी दुक्कडम। फलाना करो। अब वह तो पाठ है, अब मूल यह समझे बिना। छह द्रव्य, छह द्रव्य में आत्मा क्या? छह द्रव्य की संख्या कितनी? छह द्रव्य में प्रदेश अधिक कितने? थोड़े कितने? नहीं प्रदेश (अप्रदेश) कितने? परमाणु एक-एक है। सब होकर अनन्त पुद्गल हैं।

जीवद्रव्य जुदा-जुदा जीवों की गणना से अनन्त हैं,... आया? यह जीववस्तु गिनती की अपेक्षा अनन्त है। सब होकर एक है, ऐसा है नहीं। अनन्त आत्मा है, अनन्त आत्मा। ओहोहो! देखो न, काई, यह पानी में देखो न कितनी थर हो काई की। काई कहते हैं न? एक इतनी राई (जितनी काई में) अनन्त जीव हैं। उस काई के थर।

तालाब में जमती है न काई ? वह तो अकेला जीव का समूह। यह दिखता है शरीर, हों! यह शरीर दिखता है रजकण, यह जैसे शरीर दिखता है, ऐसे और अन्दर आत्मा। ऐसे वह दिखता है शरीर, अन्दर अनन्त आत्मा है। उसमें अनन्त बार था और मुश्किल से निकलकर मनुष्य हुआ है। इसे भान कहाँ है कि मैं कहाँ था और कहाँ आया हूँ ? जेल में से निकले तो प्रसन्न हो थोड़ी-सी देर, नहीं ? हाश! करो उस लापसी का आंधण आज। लड़का छह वर्ष में जेल में से निकला। तुम्हारे थे न वे दो लड़के ? मांडला में। वे बेचारे बाहर निकले तो हाश! वरना वह ऐसा होता नहीं था कान्ति। कि अरे! मेरे दो भाई जेल में हैं। मुझे कुछ चैन पड़ता नहीं। शान्ति पहले आया था न। दो भाई जेल में, मुझे क्या करना ? कैसे करना ? यह जेल में से निकलकर, निगोद की जेल में से निकला है। आहाहा!

मुमुक्षु : याद भी आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से याद ? याद तो छह महीने का कितना था, वह याद आता है ? क्या ? छह महीने का शरीर था, तब क्या था, वह याद आता है ? याद नहीं आता, इसलिए नहीं था ?

मुमुक्षु : दो-चार दिन पहले क्या सब्जी खाई....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह याद नहीं आवे तुमको। परन्तु यह तो, मैं तो छह महीने, जन्मने के बाद छह महीने ऐसे दुलार किया और ऐसा किया और ढींकणा रोता ऊं... ऊं... यह और यह। वह कुछ याद आता है ? याद आवे नहीं, इसलिए नहीं; याद न आवे, इसलिए नहीं—ऐसा किसने कहा ? समझ में आया ? इसने कभी दरकार ही की है कभी ? ऐसे के ऐसे भटकने की दरकार की है इसने। आहाहा! रतिभाई! बारह महीने, छह महीने नहीं था, आत्मा नहीं था वहाँ ? शरीर नहीं था ? रोया या नहीं ? दूध पिया है, फलाना किया है, ढींकणा किया है, यह दिशा (दस्त) होकर ऐं... ऐं... करके ऐसे ... याद आता है कुछ ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुम्हारा याद आता है कुछ ? तुम्हारा याद आता है या

नहीं? तब तुम्हारा याद नहीं आता, इसलिए नहीं था उस काल में? उस काल में वह आत्मा नहीं था? उस समय शरीर नहीं था? क्या नहीं था? समझ में आया? इसी प्रकार भगवान ने कहे हुए छह द्रव्य अनन्त आत्मायें निगोद में अनन्त काल से पड़े थे। उसे याद न आवे, इसलिए पड़े थे वे कहीं चले जायें, ऐसा है? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसे कब थे की खबर है? इसे मानना पड़ेगा या नहीं परोक्ष रीति से? कि भाई! मैं था, कुछ बड़ा हुआ हो इतना तीस वर्ष का, चालीस वर्ष का या छह महीने और बारह महीने बिता कर गया, हुआ है या नहीं? छह महीने और बारह महीने व्यतीत हुए बिना चालीस वर्ष का हो गया? उन छह महीनों में, बारह महीनों में कहाँ क्या था तेरा? वह मुझे कुछ खबर नहीं। खबर नहीं, इसलिए नहीं था? है सब। ऐसी वस्तु की अनन्तता जीव की निगोद में थी, वह है। खबर नहीं, इसलिए नहीं—ऐसा किसने कहा? समझ में आया? ऐई! शशीभाई! न्याय की बात में तो ऐसी बात है यहाँ तो। सर्वज्ञ भगवान की कोर्ट है यह तो। तीन लोक के नाथ वीतराग जिनवरदेव वाणी पुकारते हैं। अनन्त निगोद के जीव हैं, उन्हें अनन्त मान। है न? पुद्गलद्रव्य उनसे अनन्तगुणे हैं, उन्हें मान। पुद्गल परमाणु अनन्तगुणे हैं, उन्हें मान। व्यवहार समकित के विषय का विकल्प, देखो! **कालद्रव्याणु असंख्यात हैं,...** ऐसा मान। देखो, काल को बहुत है, द्रव्य है। जीव-अजीव की पर्याय है, ऐसा नहीं। जीव-अजीव की पर्याय है, ऐसा नहीं, परन्तु कालाणु भिन्न द्रव्य है। आहाहा!

धर्मद्रव्य एक है,... धर्मास्तिकाय नाम का पदार्थ चौदह ब्रह्माण्ड में भी एक वस्तु है अरूपी अनादि-अनन्त। **और वह लोकव्यापी है,...** लोक में व्याप्त। **अधर्मद्रव्य भी एक है,...** स्थिर होने में एक निमित्त है, यह अपेक्षा समझे न? **अधर्मद्रव्य भी एक है, और वह लोकव्यापी है,...** लोक में व्याप्त है। **ये दोनों द्रव्य असंख्यात प्रदेशी हैं,...** दोनों को असंख्य प्रदेश हैं एक-एक करते। **और आकाशद्रव्य अलोक अपेक्षा अनन्त प्रदेशी है,...** आहाहा! आकाश अलोक.. अलोक... अलोक... कहीं कहीं दीवार—वाडा कुछ होगा? क्या कहलाता है? काँटा की वाड। फिर वाड़ होगी? फिर क्या होगा? वाड होगी, बेल होगी, क्या होगा? भाई! यह तुझे खबर नहीं। आकाश ऐसा का ऐसा अरूपी,

अमाप, अनन्त प्रदेश चलता ही जाये। जिसका कहीं अस्ति का नास्ति होता नहीं। ऐसा आकाश नाम का पदार्थ, उसे तू तेरे ज्ञान में मान। आहाहा! समझ में आया? व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है।

लोक अपेक्षा असंख्यातप्रदेशी है। आकाश लोक प्रमाण असंख्य (प्रदेशी) है। समझ में आया? **ये सब द्रव्य अपने-अपने प्रदेशोंकरसहित हैं,...** अपने-अपने क्षेत्र से, अपने-अपने अंश से सभी द्रव्य हैं। किसी के किसी के प्रदेश और किसी के-किसी के क्षेत्र से हैं, ऐसा नहीं। **किसी के प्रदेश किसी से नहीं मिलते।** आत्मा के असंख्य प्रदेश में परमाणु के प्रदेश नहीं मिलते और दूसरे आत्मा के प्रदेश में इस आत्मा के प्रदेश नहीं मिलते। धर्मास्ति के प्रदेश आत्मा में नहीं मिलते और आत्मा के प्रदेश धर्म में नहीं मिलते—धर्मास्ति द्रव्य में। प्रत्येक का भिन्न-भिन्न क्षेत्र भिन्न-भिन्न है। **इन छहों द्रव्यों में जीव ही उपादेय है।** लो! इन छह वस्तुओं में, जानकर विकल्प है ज्ञान उस सम्बन्धी। भगवान आत्मा... छह में अब भेद करते हैं जरा। इन छह द्रव्यों के अन्दर एक जीव ही आदरणीय है।

यद्यपि शुद्ध निश्चय से शक्ति की अपेक्षा सभी जीव उपादेय हैं,... क्या कहते हैं? जीव का शक्तिपना है और वह तो आनन्दमूर्ति और पूर्ण ज्ञानमूर्ति एक शक्ति है उसकी। इस अपेक्षा से सब जीव ज्ञान में आदरनेयोग्य हैं। आहाहा! अनन्त आत्मायें परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। उसकी पर्याय में, एक समय की दशा में अन्तर है। भगवान, आहाहा! पूरा लोक भगवान से भरपूर है, अनन्त जीव शक्ति की अपेक्षा से जीव उपादेय है। **तो भी व्यक्ति की अपेक्षा पंच परमेष्ठी ही उपादेय हैं,...** परन्तु प्रगट निर्मलता हुई पाँच परमेष्ठी को—अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। पंच परमेष्ठी को निर्मलता प्रगट हो गयी है। यह अनन्त जीव की शक्तिरूप पवित्रता पड़ी है अनन्त की। इस अपेक्षा से शक्तिरूप से उसे गिनकर अवस्था, राग, निमित्त छोड़नेयोग्य (और) वह शक्तिरूप से आत्मा है, वह आदरनेयोग्य है।

यह अनन्त शक्ति का आदरना मानता है, कितनी इसकी पर्याय हो गयी? सब शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... अनन्त आत्मा परमानन्द की मूर्ति है। एक समय की दशा में विकार, मिथ्यात्व, भ्रम अज्ञान भेद, वह सब एक समय की दशा में। वस्तुरूप से तो

शक्ति तो शुद्ध, शुद्ध और शुद्ध। लाख पीपर के दाने, उनकी चौंसठ पहरी सामर्थ्य ही अन्दर भरी हुई है। समझ में आया? इसी प्रकार अनन्त आत्मायें अन्तर शक्ति में पूर्णानन्द, पूर्णस्वरूप शुद्ध ही पड़ा है। इस अपेक्षा से लक्ष्य में लेनेयोग्य, आदरनेयोग्य है। व्यक्ति की अपेक्षा से पाँच परमेष्ठी। निर्मल पर्याय शक्ति में थी, वह पाँच परमेष्ठी ने प्रगट की है। चौंसठ पहरी जैसे पीपर शक्तिरूप से थी, पश्चात् घूंटकर जैसे कोई पच्चीस, तीस, चालीस, पचास पहर इकट्ठी करते हैं न व्यक्त घूंटकर? इसी प्रकार भगवान अरिहन्त और सिद्ध ने पूर्ण घूंटकर बाहर प्रगट की है। आचार्य, उपाध्याय, साधु ने अभी अपूर्ण करके शक्ति की व्यक्तता पूर्ण, अधूरी भी पवित्रता प्रगट की है।

उनमें भी अरहन्त सिद्ध ही हैं,... पाँच में भी अरिहन्त और सिद्ध पूर्ण परमात्म दशा है, इसलिए वह आदरनेयोग्य है। अनन्त जीव शक्ति से है अशुद्ध, इसलिए आदरनेयोग्य। ऐसे यह पाँच परमेष्ठी ने पवित्रता प्रगट की, इसलिए आदरनेयोग्य, उसमें भी अरिहन्त और सिद्ध ने पूर्ण पवित्र प्रगट (की है), इसलिए आदरनेयोग्य है। **उन दोनों में भी सिद्ध ही (आदरणीय) हैं,...** क्योंकि अरिहन्त की भी अभी अपूर्ण दशा है। सिद्धदशा हुई वह पूर्ण दशा निर्मल है। वह उपादेय। **और निश्चयनयकर...** यह उसमें भी यह **मिथ्यात्वरागादि विभावपरिणाम के अभाव में विशुद्धात्मा ही उपादेय है,...** यह सिद्ध भगवान आदि उपादेय कहे, वे विकल्प से आदरणीय भले हो। निश्चय से तो यह भगवान आत्मा अपना शुद्ध आनन्दकन्द ध्रुव। है? विशुद्ध आत्मा। अपना शुद्ध निर्मलानन्द स्वरूप वही। देखो, भाषा ऐसी है। शुद्धात्मा ऐव निवृत्ति काले। परन्तु कब? कि मिथ्याभ्रम छोड़कर, राग जितना मैं, पर में सुखबुद्धि—यह सब मिथ्याभ्रम छोड़कर और राग-द्वेष के विकल्प छोड़कर, उस काल में यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द विशुद्ध है, परमानन्द की मूर्ति है। वही दृष्टि में आदरणीय उस काल में है। समझ में आया? क्या कहा?

सिद्ध आदि आदरणीय हैं, परन्तु वे तो अमुक विकल्प के काल में। अमुक आदरणीय... आदरणीय... आदरणीय माने। यह तो निर्विकल्प काल में यह आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? भ्रमणा छोड़ दे कि मैं राग और अल्पज्ञ जितना हूँ या पर में सुख है—ऐसी मिथ्यात्व भ्रान्ति छोड़कर, पूर्णानन्द प्रभु विशुद्ध आत्मा ऐसे परिणाम के—विभाव के काल में अभाव के काल में अभावविशुद्ध आत्मा ही भगवान शुद्ध, वह

अन्तर अनुभव में, दृष्टि में आदरनेयोग्य है। ऐसा इस गाथा का सार जानना। कहो, प्रदेश की व्याख्या की, द्रव्य की व्याख्या की। वह है ऐसा जानना, अनन्त जीव हैं, अनन्त पुद्गल हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्म, अधर्म, आकाश है, आकाश के अनन्त प्रदेश हैं, धर्म, अधर्म के असंख्य प्रदेश हैं। ऐसा है, ऐसा जानना। जानकर उन अनन्त जीवों की शक्तियाँ शुद्ध हैं, उन्हें लक्ष्य में बराबर मानना। इस प्रकार जानना, मानना। पाँच परमेष्ठी जानने-आदरनेयोग्य है व्यवहार से। परन्तु उसमें से अरिहन्त-सिद्ध और उसमें से सिद्ध। यह उसमें से भी अपना आत्मा। समझ में आया? ... यह गजब, भाई! सिद्ध की अपेक्षा भी आत्मा आदरनेयोग्य तेरा आत्मा है, क्योंकि सिद्ध का लक्ष्य करने जाये तो विकल्प उठते हैं। निश्चयनयकर, ऐसा कहा है न देखो न! भाषा क्या ली है? देखो न! समझ में आया? निश्चय से परमार्थ शब्द पड़ा है न उसमें? '**मध्ये सिद्धा एव, परमार्थेन तु**' ऐसा। वह व्यवहार से विकल्प ऐसे जाननेयोग्य। निश्चयनयकर अन्दर स्वरूप भगवान आत्मा भ्रमणा और विकल्प का जाल छोड़कर, उस काल में विभाव का अभाव होने से विशुद्ध आत्मा, वह आदरणीय है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान कहा जाता है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ही आत्मा आदरणीय है। दूसरा कोई आदरणीय है नहीं, इसका नाम धर्म कहा जाता है, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)



: प्रकाशक :
श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
विले पार्ला, मुंबई
www.vitragvani.com